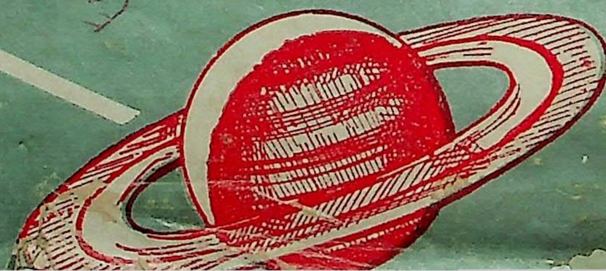
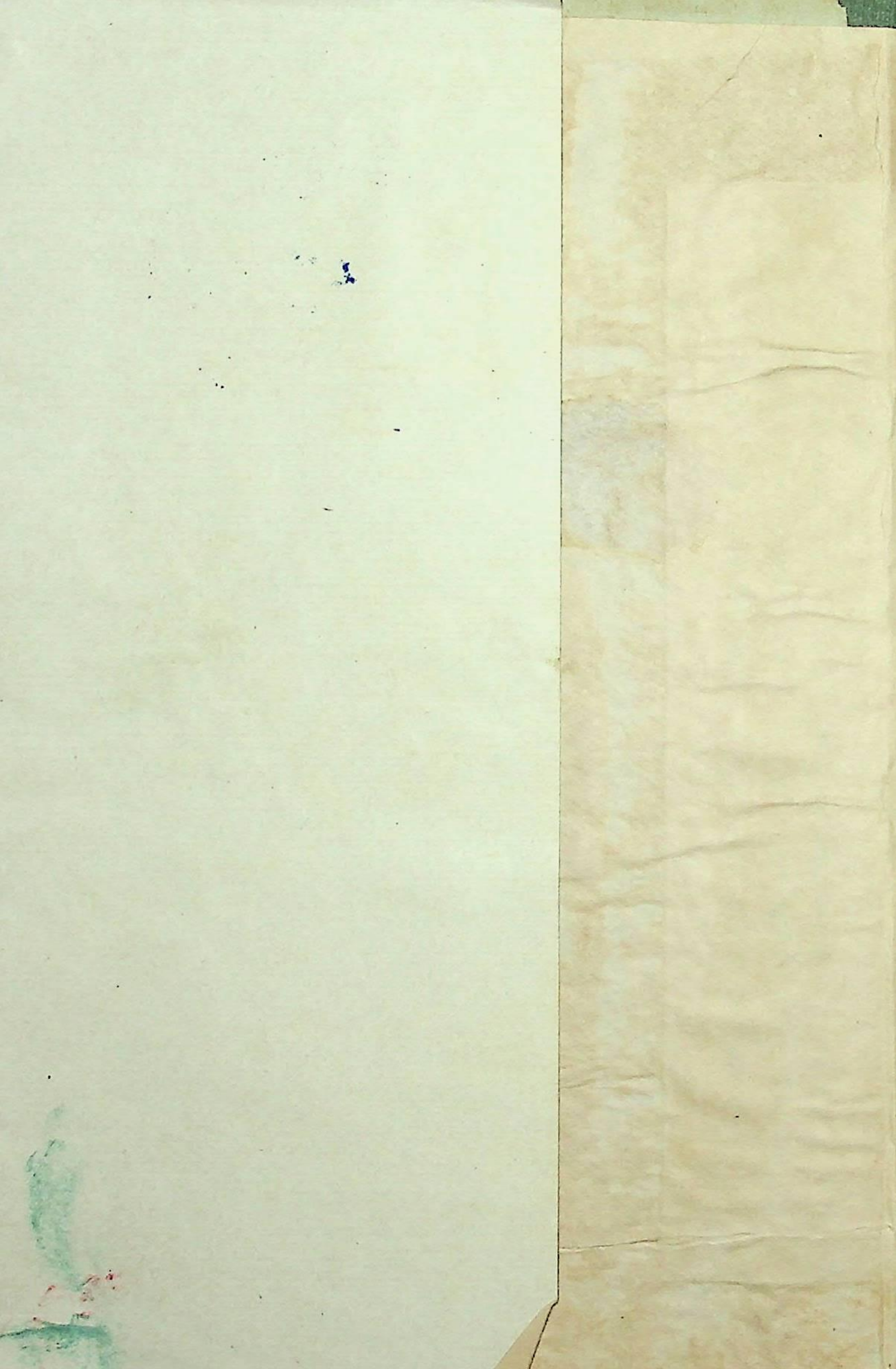
ભવિષ્ય પુરાણ

૧







भविष्य पुराण

प्रथम खण्ड

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

❋

सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,
२० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

※

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

※

※

द्वितीय संस्करण
१९७०

※

मुद्रक :
दाऊदयाल गुप्त
सस्ता साहित्य प्रेस
मथुरा

※

मूल्य सात रुपये पचास पैसे

भूमिका

भविष्य पुराण—जैसा कि इसके नाम से ध्वनित होता है। भावी घटनाओं के वर्णन में अपेक्षाकृत अधिक भाग लेने वाला है। वैसे तो इसमें भी पुराण के पाँचों लक्षणों का आरम्भ में ही निर्देश कर दिया गया है और तदनुसार सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित्र का नियमानुसार भली प्रकार वर्णन किया गया है। पर लोगों में यह भावी घटनाओं की विशेषता के कारण ही अधिक प्रसिद्ध है। इसमें ये 'भावी' घटनायें कहाँ से आईं और उसका क्या उपयोग है, इस सम्बन्ध में शंका अथवा विवाद उठाना निरर्थक-सा है। जैसा हम इससे पहले कई बार स्पष्ट कर चुके हैं, पुराण-साहित्य तर्क अथवा प्रमाण द्वारा जाँचने का विषय नहीं है। इसका निर्माण अल्पशिक्षित या अशिक्षित समुदाय को धर्म, ज्ञान, नीति, चरित्र, मर्यादा, सद्व्यवहार सम्बन्धी प्रेरणायें प्रदान करने के निमित्त किया गया है। जिन लोगों को सामाजिक या आर्थिक कारणों से न तो पढ़ने-लिखने का अवसर मिलता है और न जो उच्च लोगों के सत्सङ्ग का लाभ ही प्राप्त कर सकते हैं, उनके लिये सद्प्रेरणायें प्राप्त करने का एक-मात्र मार्ग इस प्रकार की धार्मिक कथायें श्रवण करना ही होता है। विशेषतया मध्य-काल में, जब वर्ण-व्यवस्था पर अधिक जोर दिया जाता था और 'चतुर्थ वर्ण' वालों को 'श्रुति' के अन्तर्गत आने वाला समस्त जीवनोपयोगी साहित्य पढ़ सकने अथवा सुन सकने का भी द्वार बन्द कर दिया गया था, उस समय उस निम्न वर्ग के हितार्थ विशेष रूप से पुराण-साहित्य की रचना की गई थी। "भविष्य-पुराण" के आरम्भ में ही इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया है—

भवंति द्विज शार्दूल श्रुतानि भुवनत्रये।
विशेषतः चतुर्थस्य वर्णस्य द्विज सत्तमः ॥३५

ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदः प्रकल्पिताः ।
मन्वादीनि च शास्त्राणि तथांगानि समंततः ॥३६
शूद्राश्चैव भृशं दीनाः प्रतिभांति द्विज प्रभो ।
धमार्थ काम मोक्षस्य शक्ताः स्युरवने कथम् ॥३७

अर्थात्—"राजा जनमेजय के पुत्र राजा शतानीक के यहाँ जब समस्त मुनिगण आये तो उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि—हे ब्रह्मन् ! तीनों भुवनों में जो ज्ञान है वह सब "श्रुत" है, पर चतुर्थ वर्ण (शूद्र) की तो इस सम्बन्ध में भी विशेष स्थिति है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीन वर्णों के लिए तीन वेदों की रचना की गई है और मनुस्मृति आदि अनेक शास्त्र भी उनके अङ्ग स्वरूप निर्मित किये गये हैं । पर विचारे शूद्रों की स्थिति बहुत ही हीन जान पड़ती है । हे भगवन् ! ये शूद्रगण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति में किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं ?"

इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि प्राचीन युग में जब पुस्तकों का अभाव था, कभी कोई बहुत आवश्यक रचना भोजपत्र या ताड़ पत्र आदि पर बड़े परिश्रम से लिखी जाती थी और अलभ्य वस्तु की भाँति गुप्त रखी जाती थी, तो शूद्र तथा अन्य श्रमजीवी समुदाय, जिसका पूरा समय कृषि कार्य तथा अन्य सामाजिक-सेवा के कार्यों में लग जाता था, मनुष्योपयोगी ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकते थे ? प्रथम तो उनको शारीरिक श्रम के कार्यों से अवकाश ही बहुत कम मिलता था, फिर उनके पास ज्ञान वृद्धि के कुछ साधन भी नहीं होते थे । ऐसी दशा में यदि लोक कल्याण के व्रत धारी ऋषि-मुनि उनके लिये कोई विशेष व्यवस्था न करते तो उनका मानव-जन्म एक प्रकार से व्यर्थ ही था । वे भी अन्य प्राणियों की तरह केवल भूख, प्यास, निद्रा की किसी प्रकार पूर्ति करके निरन्तर भव-सागर में गोते ही खाते रहते । इसलिए समाज के कर्णधार मनीषियों ने उनके उत्थान के लिये पुराणों की रचना की । राजा शतानीक की प्रार्थना के उत्तर में व्यास-शिष्य महर्षि सुमन्त ने जो कुछ कहा उसका सार यही

हैं कि अल्प विकसित व्यक्तियों का उत्थान पौराणिक, धर्म-कथाओं से ही हो सकता है, क्योंकि वे उनको सुन और समझ सकते हैं—

साधु साधु महाबाहो पृष्टोस्मि मानद ।
शृणु मे वदतो राजन् पुराणं नवमं महत् ।।
इदं तु ब्रह्मणा प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुत्तमम् ।
विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ।
शिष्येभ्यश्चैव वक्तव्यं चातुर्वर्णेभ्य एव हि ।।

सुमन्त मुनि ने राजा शतानीक का कथन सुनकर उसकी प्रशंसा करते हुये कहा—"हे महाबाहो ! आपने यह अत्यन्त श्रेष्ठ प्रश्न किया है। इसके लिये अब मैं तुमको नवम पुराण श्रवण कराता हूं। इस सर्वश्रेष्ठ शास्त्र को ब्रह्माजी ने प्रकट किया है और समस्त विद्वानों को उसका प्रयत्न-पूर्वक अध्ययन मनन करके चारों वर्णों के शिष्यों में इसका प्रचार करना चाहिये।"

सत्साहित्य का लक्षण यही है कि उससे जन साधारण का हित-साधन हो सके। केवल ज्ञान सम्बन्धी ऊँची ऊँची बातें कर लेना या बुद्धि-कौशल दिखलाकर लोगों को चमत्कृत कर देना ही प्रशंसा की बात नहीं। आरम्भ में पुराण-साहित्य की रचना का उद्देश्य यही था कि सृष्टि-रचना, दैव शक्तियाँ, आध्यात्मिक क्षेत्र के जिन गूढ़ रहस्यों को सामान्य मनुष्यों की बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती, उनको कथा, दृष्टान्त, रूपक, उपमा आदि की शैली में वर्णन करके बोधगम्य बनाया जाय। इसलिए पुराणों में समाविष्ट घटनायें सत्य, अर्ध-सत्य और कल्पना प्रसूत सभी तरह की हो सकती हैं। बाल-बुद्धि वाले व्यक्तियों के लिए विषय को रोचक बनाने के लिये अतिशयोक्तियों का प्रयोग करना भी पुराणकारों के लिये सामान्य बात है। भविष्य पुराण के रचयिता के लिये यह प्रशंसा की बात है कि उन्होंने अपना उद्देश्य उदारता और अशक्त-वर्ग की कल्याण-भावना से चुना और उसे स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया।

संसार में अपनी विद्वता की धाक जमाने के लिये, अन्य विद्वानों द्वारा अपनी योग्यता के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक उद्गार प्राप्त करने के लिए, महत्त्वपूर्ण तथ्यों का कठिन और दुरूह भाषा में विवेचन करने की अभिलाषा होना कोई नई बात नहीं है। अधिकांश ग्रन्थकार अपनी कीर्ति को दीर्घकाल व्यापिनी बनाने की भावना से इसी मार्ग का अनुसरण करते आये हैं। पर हमारी सम्मति में उन से भी बढ़ कर प्रशंसा के पात्र वे लेखक हैं जो अपने नाम तथा कीर्ति के स्थायित्व की चिन्ता न करके सामान्य जनता के हित को दृष्टिगोचर रख कर अपनी कलम उठाते हैं। पुराणों का मूल स्वरूप ऐसा ही था और उस समय उन्होंने अनेक भ्रम और शङ्काओं में ग्रस्त जन-समुदाय का उपयोगी ढङ्ग से मार्ग-दर्शन भी किया था। इसी पुराण साहित्य से ज्ञान प्राप्त करके दादू, रैदास, नामदेव, तुकाराम आदि अनेक सन्त-कवियों ने शूद्र कही जाने वाली जातियों के लिए भी ब्रह्मज्ञान सुलभ बना दिया। यह बात दूसरी है कि अधिक समय बीतने पर जैसे प्रत्येक व्यक्ति और संस्था में निर्बलतायें उत्पन्न हो जाती हैं और चलते पुर्जा लोग उनको स्वार्थ साधन का जरिया बना लेते हैं, वैसे ही सैकड़ों वर्षों के बीच विभिन्न कथा-वाचकों ने पुराणों में भी अपनी बुद्धि और सुविधा के अनुसार बहुसंख्यक नये अंश सम्मिलित कर दिये, जिनमें उपयोगी-अनुपयोगी, उत्तम-मध्यम-निकृष्ट, भली-बुरी सभी तरह की बातें हैं।

फिर भी जब हम पुराणों का विचार पूर्वक मनन करते हैं तो हमको उनमें बहुत-सी ऐसी प्रेरणा दायक कथायें, ज्ञानवर्द्धक सूचनायें और सदुपदेशपूर्ण कथोपकथन मिलते हैं, जिनका प्रचार सामान्य जनता में किया जाना आज भी अभीष्ट माना जायगा। हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा, भीष्म का प्रतिज्ञा-पालन, राम का दुष्टों का दमन, अभिमन्यु की अद्भुत वीरता, कृष्ण की राजनीति—ये सब ऐसे पौराणिक वर्णन हैं जिनसे अब तक करोड़ों व्यक्ति लाभ उठाकर श्रेष्ठ मार्ग के पथिक बन चुके हैं। इसलिये यदि अन्धविश्वास और साथ ही निरर्थक आलोचना की प्रवृत्ति को त्याग कर पौराणिक सामग्री का उचित उपयोग किया जाय तो उसमें पुस्तक-प्रेमी पाठकों का

पर्याप्त हित साधन हो सकता है। हमारे द्वारा प्रकाशित पुराणों के संशोधित संस्करणों को जिन सज्जनों ने ध्यान पूर्वक देखा होगा वे भली प्रकार समझ गये होंगे कि उनके कुछ अनावश्यक, अप्रासंगिक और पुनरुक्ति वाले अंशों को छोड़ देने पर जो संशोधित-संस्करण प्रस्तुत किये गये हैं वे वास्तव में सर्वोपयोगी और शिक्षाप्रद हैं। उनसे मनोरंजक कथाओं के रूप में धार्मिक सिद्धान्तों और कल्याणकारी उपदेशों का जो लाभ मिलता है उसके महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

वर्ण व्यवस्था का आधार चरित्र पर—

जब हम 'भविष्य-पुराण' के उपदेशों और विवेचनों पर इस दृष्टि से विचार करते हैं, तो उसमें अनेक महत्वपूर्ण नवीनतायें पाते हैं। उसमें आरम्भ में ही समाज के दीन-हीन वर्ग के प्रति जो सहानुभूति प्रकट की गई है, वह आगे चल कर घनीभूत होती गई है और 'षष्ठी-कल्प' के विवेचन में उसने स्पष्ट कह दिया है कि वर्ण और जाति का अन्तर जन्म से नहीं वरन् कर्म, गुणों और आचार-व्यवहार से मान्य है और इस दृष्टि से जो शूद्र जाति में जन्म लेने पर भी शुद्ध आचार-विचार रखता है और परमार्थमय जीवन व्यतीत करता है वह ब्राह्मण ही है और उसे वेद पढ़ने का अधिकार है—

वेदाध्ययनमप्येत ब्राह्मण्यं प्रतिपद्यते।
विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणादया॥
श्वाद चांडाल दासाश्च लुब्धकाभीर धीवराः।
येन्येऽपि वृषलाः केचित्ते पि वेदानधीयते॥
शूद्रा देशान्तरं गत्वा ब्राह्मण्यं श्रिता।
व्यापाराकार भाषद्यैविप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः॥

अर्थात्—"ब्राह्मण की भाँति क्षत्रिय और वैश्य भी वेदाध्ययन द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेते हैं। रावण आदि राक्षस, श्वाद, चाण्डाल, दास, लुब्धक, आभीर, धीवर आदि के समान वृषल (वर्णसङ्कर) जाति

वाले भी वेदों का अध्ययन कर लेते हैं। शूद्र दूसरे देशों में जाकर, ब्राह्मण क्षत्रिय आदि का आश्रय लेकर ब्राह्मणों के व्यापार, आकार और भाषा आदि का अभ्यास करके ब्राह्मण ही कहलाने लगते हैं।"

लेखक का आशय यह है कि ब्राह्मणत्व की पहिचान वेदाध्ययन को ही मान लेना भूल है। सभी जातियों के प्रतिभाशाली व्यक्ति वेदों का अध्ययन कर सकते हैं और अपने निवास स्थान में नहीं तो दूर देश में जाकर अपनी योग्यता के आधार पर ब्राह्मणत्व का दावा कर सकते हैं। इसकी पुष्टि करते हुए वे आगे लिखते हैं—"समस्त वेदों, दो वेद या एक ही वेद का यथाक्रम अध्ययन करके मनुष्य शुद्ध ब्राह्मण से उत्पन्न होने वाली कन्या से विवाह कर लेते हैं। इसी प्रकार से दाक्षिणात्य और गौड़-पूर्वा ब्राह्मण जातियाँ बन गई। इस कारण वेदों के अध्ययन के आधार पर जाति का भेद नहीं जाना जा सकता।"

"फिर छैओं अङ्गों के सहित वेदों का अध्ययन कर लेने पर भी मनुष्य सच्चा ब्राह्मण नहीं बन सकता, क्योंकि जो आचारहीन हैं उन्हें वेद पवित्र नहीं बनाया करता। इस प्रकार वेदों का अध्ययन कर लेना तो द्विजों के लिए एक शिल्प कला की भाँति हैं। ब्राह्मण का वास्तविक लक्षण तो चरित्र ही कहा गया। चारों वेदों का अध्ययन करके भी यदि कोई ब्राह्मण चरित्र-पालक नहीं रहता, तो उसके द्वारा कोई कर्म नहीं किया जाना चाहिये। जिस प्रकार स्त्री को रत्न कहा गया है, किन्तु नपुंसक व्यक्ति उसका कुछ भी उपयोग नहीं कर सकता। शिखा, प्रणव, संस्कार, संध्यापासन, मेखला-धारण, दण्ड, अजिन और पवित्रा आदि को शूद्र भी बिना किसी बाधा के ग्रहण कर सकते हैं। इस कारण मेखला, चूलिका आदि से मनुष्यों में विलक्षणता नहीं मानी जा सकती। तप और सत्य आदि से देवता की सिद्धि और मन्त्र की शक्ति भी सब मनुष्यों को प्राप्त हो सकनी संभव है।

"शाप या वरदान देना भी ब्राह्मणत्व की शक्ति का प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि चोर, जार तथा अन्य अपराधियों द्वारा राजाओं

(सरकारी अधिकारियों) को प्रायः इसी प्रकार शाप दिया जाया करता है। पापों का उदय होने पर जो कष्ट मिलता है उससे शूद्र अपने को नहीं बचा सकता और ब्राह्मण भी इस कार्य में असमर्थ सिद्ध होता है। अनुष्ठान योग्य गुण जिनमें सम्पूर्ण हैं वे शूद्र भी द्विजों के ही समान है। इस प्रकार विचार किया जाय तो 'द्विज' और 'शूद्र' में जो अन्तर है वह न तो आध्यात्मिक है और न बाह्यनिमित्तक है। ब्राह्मण और शद्र के बीच न वीर्य में, न आकृति में, न व्यापार में, न अक्ष में, न आयु में, न अङ्गों में, न पुष्टि में, न दुर्बलता में, न स्थिरता में और न चपलता में कोई विभेद जान पड़ता है। प्रज्ञा, वैराग्य, धर्म, पराक्रम, त्रिवर्ग, नैपुण्य, रूपादि और भेषज में भी कोई भेद नहीं रहता। ब्राह्मण चन्द्रमा की किरणों के समान शुभ्र नहीं होते, न क्षत्रिय ढाक के फूल की तरह लाल होते हैं, न वैश्य हरताल के समान पीत वर्ण के होते हैं, और न शूद्र कोयले के समान काले रङ्ग के होते हैं। पैरों से चलना शरीर का वर्ण, केश, सुख और दुःख तथा रक्त, त्वचा, माँस, मेद और अस्थि की दृष्टि से ये चारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समान ही होते हैं, तब इनमें भेद कैसे हो गया ?"

'देवता' किसे कहते हैं—

देवताओं के सम्बन्ध में भी श्री कृष्ण और उनके पुत्र साम्ब के सम्वाद में ऐसी ही युक्ति सङ्गत बातें कहीं हैं, जो अन्यत्र कम मिलती हैं। साम्ब ने कहा—'हे जनार्दन ! बहुत से लोगों को तो देवताओं के अस्तित्त्व में कुछ भी सन्देह नहीं होता और अन्य कहते हैं कि कोई देवता होता ही नहीं। अब इस सम्बन्ध में कोई विशिष्ट सम्मति दीजिये।"

इस पर भगवान् कृष्ण ने कहा—बहुत से आगमों में देवताओं के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है और जिसका प्रमाण आगम में होता है उसका अस्तित्व अवश्य ही होता है। अनुमान द्वारा भी उसका अस्तित्व सिद्ध किया जाता है और प्रत्यक्ष प्रमाण भी उसके लिए दिये जाते हैं। साम्ब ने कहा—"यदि देवता प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिद्ध हो जायें तो फिर आगमों और अनुमान का प्रयोजन ही क्या है ? आप मुझे प्रत्यक्ष देवताओं का ही परिचय दीजिये।"

श्री कृष्ण कहने लगे—"प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्य हैं जो समस्त जगत के नेत्र हैं और दिन का सृजन करने वाले हैं। इनसे अधिक निरन्तर प्रकट होने वाला और कोई देवता नहीं है। जिनसे यह जगत उत्पन्न हुआ है और जिनमें अन्त में लय होगा, जिनके द्वारा सत्युग, त्रेता आदि चारों युग होते हैं, वे भगवान दिवाकर ही हैं। इन्हीं की इच्छा से यह चर और अचर से युक्त जगत उत्पन्न हुआ है स्थिर रहता है और कर्म में भी प्रवृत्त हुआ करता है। इन्हीं के प्रसाद से यह लोक चेष्टाशील होता दिखलाई दिया करता है। उनके उदय होने पर सभी का उदय होता है और अस्त होने पर सब अस्तङ्गत हो जाया करते हैं। इस प्रकार सूर्य का देवत्व प्रत्यक्ष ही सिद्ध होता है। इनसे अधिक न कोई है, न हुआ और न भविष्य में होगा। इन्हीं को समस्त वेदों में 'परमेश्वर' के नाम से पुकारा जाता है। इतिहास, पुराणों में इन्हीं को 'अन्तरात्मा' के नाम से गाया जाता है। इसलिए यह दिवाकर देव ही सबके ईश, सबके कर्त्ता, सबके भरण करने वाले और अव्यय हैं। जो इनके मण्डल का उपस्थान किया करता है और इनकी उपासना प्रातःकाल, मध्यान्ह-काल और सायंकाल करता रहता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।"

इस प्रकार पुराणकार ने 'देववाद' का सच्चा स्वरूप प्रकट किया है। 'देव' वही है जो दूसरों का उपकार करे उन्हें कुछ प्रदान करे, कल्याणकारी मार्ग पर चलने में सहायक हो। सूर्य में ये सभी गुण मौजूद हैं और प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ते हैं। इसलिये अब आधुनिक विज्ञान भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यह संसार सूर्य का ही एक अंश है। किसी समय में—संभवतः आज से दस-बीस अरब वर्ष पहले उससे एक पृथक् पिण्ड के रूप में आया और शायद कुछ अरब वर्ष पश्चात् फिर उसी में मिल जाय। इस बीच में इसमें जितने भी ज्ञात और अज्ञात परिवर्तन हो रहे हैं और छोटे-बड़े अगणित प्राणियों की उत्पत्ति होकर विकास की गति अन्तरिक्ष-गामी मनुष्य तक पहुँच चुकी है, इस सबका मूल स्रोत सूर्य ही है। सूर्य से पृथक् किसी संसार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिए भगवान्

कृष्ण ने जो यह कहा कि प्रत्यक्ष देवता सूर्य नारायण ही हैं, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। आगे चल कर पुराण रचयिता ने यह भी कह दिया है कि सूर्य ही एक मात्र देव हैं और अन्य सब देवता उन्हीं के रूपान्तर या पर्यायवाची हैं—

"आदित्य के आदि देव और अज्ञात (अजन्मा) होने से वह 'अज' कहा गया है। देवों में सबसे बड़ा देव है इसलिए 'महादेव' के नाम से प्रसिद्ध है। लोक का सर्वेश और अधीश होने के कारण उसे 'ईश्वर' का नाम दिया गया है। वृहत् होने से उसे 'ब्रह्मा' पुकारा गया है और भवत्व होने से उसका 'भव' नाम पड़ा है। वही समस्त प्रजा की रक्षा और पालन करता है। इसलिये उसे 'प्रजापति' कहा गया है। कहीं से उत्पन्न न होने और अपूर्व होने से 'स्वयम्भू' के नाम से प्रसिद्ध हैं। हिरण्य-अण्ड में रहने वाला है और ग्रहोंका स्वामी है इससे 'हिरण्यगर्भ' नाम पड़ा। देवों का भी देव होने से 'दिवाकर' कहा गया। तत्त्वदर्शी महर्षियो ने जल का एक नाम 'नारा' कहा है, वही जल उनका निवास स्थान होने से वह 'नारायण' कहे गये। वह सहस्रशीर्षो, सहस्र नेत्रों वाला और सहस्र पैरों वाला है। वही आदित्य के वर्ण वाला इस भुवन का रक्षक और पुराण-पुरुष है।"

धर्म की प्रधानता—

भारतीय धर्म शास्त्रों में मानव जीवन का लक्ष्य पुरुषार्थ-चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को बतलाया गया है। इसमें धर्म का सबसे पहले उल्लेख करने का उद्देश्य यही है कि बिना धर्म का विचार किये जो धन, वैभव प्राप्त किया जाता है वह कभी कल्याणकारी नहीं होता। 'भविष्य-पुराणकार' ने स्पष्ट कहा है—

परित्येजदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
सर्व लोक विरुद्धं च धर्ममप्याचरेन्न तु ॥

अर्थात्—"धर्म से रहित जो अर्थ और काम है उनको त्याग देना चाहिये और जो समस्त लोक के विरुद्ध धर्म है उसको भी स्वीकार नहीं करना चाहिये।" इस प्रकार 'भविष्य-पुराण' का निर्णय यही है कि मनुष्य

को सबसे पहले और सबसे अधिक ध्यान धर्म पर ही देना चाहिये। जो धर्माचरण करेगा उसे अन्य वस्तुयें उचित और न्याययुक्त रूप में स्वयम् मिल जायेंगी। पुराणकार कहते हैं—

"धर्म से अर्थ प्राप्त होता है और धर्म से ही काम भी उपलब्ध होता है। धर्म से ही अपवर्ग हुआ करता है, इसलिए धर्म का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक है। धर्म, अर्थ, काम इनका त्रिवर्ग माना गया है, इनके गुण क्रमशः सत्त्व, रज, तम होते हैं। जो सत्त्व में स्थित होते हैं वे ऊर्ध्व भाग में जाते हैं, राजस वाले मध्य में और तमोगुणी अधोगति में जाया करते हैं। जो व्यक्ति धर्म का पालन करता है उसे अर्थ और काम की प्राप्ति स्वयम् हो जाती है, और इस लोक के जीवन को सुख-संतोष के साथ व्यतीत करके वह देहान्त के पश्चात् ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त होता है! इसलिए अर्थ और काम से युक्त धर्म का सेवन करना ही बुद्धि-मत्ता है। धर्म से काम और अर्थ स्वयं ही प्राप्त होते हैं।"

विज्ञजनों ने सदा से यही उपदेश दिया है कि धर्म से ही मनुष्य का कल्याण होता है और सब प्रकार का सुख भी प्राप्त होता है। पर आज जिसे देखो उसकी मति इसके विपरीत ही दिखाई पड़ती है। आज किसी को यह कहते संकोच नहीं जान पड़ता—"अजी, धर्म में क्या रखा हैं। धर्म वाले तो सदा दुःख ही उठाते हैं और अधर्मी स्वार्थी लोग मौज, शौक का जीवन बिताते हैं।" बाह्य दृष्टि से देखने पर उनका कथन कुछ ठीक भी जान पड़ता है। क्योंकि वर्तमान समय में जो लोग कोठियों और बंगलों में रहते हैं, मोटरों से चलते हैं, बढ़िया पोशाक और कीमती खाद्य सामग्रियों का उपयोग करते हैं, उनमें से ज्यादातर 'धर्म' की तरफ़ से उदासीन ही रहते हैं और अधिकांश भ्रष्टाचार अथवा अनैतिक ढङ्ग से धनोपार्जन करने वाले भी होते हैं। इसी दृश्य को देख कर सामान्य बुद्धि के लोग यही समझ लेते हैं कि 'अधार्मिक' लोग सुखी और धर्म का पालन करने वाले दुर्दशाग्रस्त रहते हैं।

पर इस गलतफहमी का कारण उनका धर्म के स्वरूप और सृष्टि के नियमों का न समझ सकना ही है? वे लोग सुख और दुःख की वास्त-

विकता से भी अनजान होते हैं और इतनी ही बुद्धि रखते हैं कि पास में काफी रुपया रहने से हर एक इच्छित वस्तु प्राप्त की जा सकती है, और यही सुख का साधन है। पर वे यह नहीं देखते कि हजारों व्यक्ति लखपती, करोड़पती होने पर भी रोते, कलपते रहते हैं और गृह-कलह से दुःखी होकर अनेक बार आत्महत्या भी कर लेते हैं। फिर अधिकांश धनी लोगों का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता, कोई न कोई रोग उनको लगा ही रहता है और उनकी शरीर-यात्रा डाक्टरों के भरोसे ही चलती है। और अन्तिम बात यह है कि जो धर्म का ध्यान छोड़कर अर्थ और काम की खोज में ही रहेगा उसे कभी मानसिक शान्ति नहीं मिल सकती और उसके बिना सच्चे सुख के दर्शन कभी नहीं हो सकते।

वृक्षारोपण का महत्त्व—

इस पुराण में धार्मिक अनुशासन के अतिरिक्त गृहस्थों के अनेक कर्तव्यों का भी निरूपण किया है जो सामाजिक उन्नति और व्यक्तिगत सुख-शान्ति की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं। धर्म कर्तव्यों का पालन भी समाजोन्नति और जन-कल्याण की दृष्टि से किया जाता है, पर जिन कार्यों का धम से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, पर जो समाज और व्यक्ति की दृष्टि से हितकारी है, उनको भी यहाँ के मनीषियों ने धर्म का ही एक अङ्ग बना दिया है जिससे लोग उनके पालन में उदासीनता न करें। इस दृष्टि से विचार करते हुये 'भविष्य पुराण' में वृक्षारोपण का जो 'माहात्म्य' बतलाया है, वह ध्यान देने योग्य है—

"जो वृक्ष छाया देता है, पुष्प देता है, फल दिया करता है, और मार्ग में या देवालय में रहता है वह पितृगण को पाप से तार दिया करता है। ऐसे स्थान में समारोपित छाया, पुरुष एवं फलों के देने वाला वृक्ष इस लोक में कीर्ति देता है, और शुभ फल प्राप्त कराता है। जो पितृगण हो हो चुके हैं और जो आगे होने वाले हैं उन सब पितरों को वह वृक्षों का रोपण करने वाला तार देता है, इसलिए वृक्षारोपण प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति के लिये आवश्यक है। इस लोक में जो मनुष्य पुत्रहीन हो उसको ये समारोपित वृक्ष पुत्रवान् कर देते हैं। इसलिए मनुष्यों को प्रयत्न पूर्वक

वृक्ष लगाना चाहिए। सैंकड़ों और सहस्रों पुत्रों से भी ऐसा एक वृक्ष अधिक विशेषतायुक्त होता है। इसलिए मनुष्य को एक, दो या तीन वृक्ष अवश्य लगाने चाहिये। अश्वत्थ वृक्ष का समारोपण मुक्ति प्रदान करने वाला होता है। लाखों और करोड़ों की सम्पत्तिवान बनाने वाला होता है।

"जो अशोक का वृक्ष लगाता है उसके शोक-संताप दूर हो जाते हैं। प्लक्ष (पाकर) के वृक्ष के आरोपित करने से भार्या की प्राप्ति होती है। विल्व का वृक्ष दीर्घायु प्रदान करने वाला होता है। जामुन का वृक्ष धन प्रदान करने वाला होता है, तिन्दुक के लगाने से कुल की वृद्धि होती है, दाड़िम से भी पत्नी की प्राप्ति होती है और वकुल (मौलसिरी) तथा बंजुल के वृक्ष पापों के हनन करने वाले तथा बल बुद्धि के प्रदाता होते हैं। धातकी का वृक्ष स्वर्ग प्रदाता और वट वृक्ष मोक्ष देने वाला होता है। आम का वृक्ष कामना पूर्ण करने वाला, गुवाक का सिद्ध प्रदायक, बलबल, मधूक और अर्जुन के वृक्ष अन्न की वृद्धि करने वाले हाते हैं। कदम्ब के आरोपण से विपुल कीर्ति की प्राप्ति होती है। जीवन्ती के वृक्ष से रोग शान्ति और केशर के लगाने से शत्रु नाश होता है। शिशपा, अर्जुन, जयन्तो, हयमारक, श्रीवृक्ष, किंशुक (ढाक) के वृक्षों के लगाने से स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करतो है।"

वृक्षारोपण समाज के लिए कल्याणकारी है और इस प्रवृत्ति को बढ़ाना प्रत्येक समाजहितैषी का कर्तव्य है। वर्तमान समय में भी देश में वृक्षों का अभाव देख कर राज्य की तरफ से वृक्षारोपण समारोहों की प्रथा प्रचलित की गई थी। फल, फूल, पत्त, लकड़ी छाया—ये सब जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हैं, मनुष्यों का ही नहीं पशु और पक्षियों का पालन भी इन्हीं के आधार पर होता है। इसलिए पुराणकर्ता ने विविध वृक्षों के लाभों का और अनेक अप्रत्यक्ष सद्परिणामों का भी मनोरञ्जक शैली में वर्णन करके लोगों को जहाँ जैसा संभव हो वृक्ष लगाने की प्रेरणा दी है।

सामाजिक कर्तव्यों का पालन—

आज संसार में धर्म, राजनीति, समाजनीति आदि को एक दूसरे से

पृथक मानने की मनोवृत्ति बढ़ती जाती है। अनेक प्रसिद्ध नेता और समाज में आदरणीय माने जाने वाले व्यक्ति भी व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में हानिकारक अन्तर रहने को बुरा नहीं समझते और मद्य, मांस, व्यभिचार आदि को निजी (प्राइवेट) विषय बतलाकर सर्व साधारण के सम्मुख दूषित आदर्श उपस्थित किया करते हैं। पर प्राचीन भारत का आदर्श इससे सर्वथा भिन्न था। उस समय मानव-जीवन की समस्त प्रवृत्तियों का एक ही लक्ष्य माना जाता था और वह था सदवृत्तियों और सदविचारों की वृद्धि। जब तक मनुष्य अपने आन्तरिक भावों को शुद्ध और श्रेष्ठ रख कर तदनुसार व्यवहार नहीं करेगा तब तक केवल मुख से उत्तम उपदेश करना अथवा बड़े-बड़े आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रचार करना महत्त्वहीन है। सच्ची आध्यात्मिकता और धार्मिकता तो यही है कि जो कुछ कहा जाय उसका स्वयम् परिपूर्ण निष्ठा के साथ पालन भी किया जाय। ऐसा करने से जो थोड़ा-सा भी उपदेश दिया जायगा उसका पूर्णतया प्रभाव पड़ेगा और सामान्य व्यक्ति स्वयं धर्म की ओर प्रवृत्त होते जायेंगे। इसी तथ्य को दृष्टिकोण मे रख कर 'पुराण' में कहा गया है—

"यज्ञ करते समय जी आनन्द और प्रसन्नता से रहित होता है और क्रोध से युक्त होकर निकृष्ट वस्तुयें प्रदान करता है वह 'कृपण' सम्पूर्ण धर्मों से बहिष्कृत होता है। बिना किसी दोष के शुभ कर्मों का त्याग करने वाला पुण्य कर्मों का वेचने वाला बन जाता है। माता-पिता और गुरु का त्याग कर देने वाला तथा शौच और आचार से वर्जित रहने वाला घोर पापी माना गया है। जिसने जीवित माता-पिता की सेवा से मुख मोड़ लिया है वह दूसरा पापी है हवन का त्याग करने वाला तीसरा पापी है। जो ऊपर से झूठ-मूठ साधु का-सा आचरण करने का ढोंग करता है, उसे नष्ट समझना चाहिये। इसी प्रकार जो धन देकर विषय-सेवन करता है वह भी नष्ट है। इन दो के अतिरिक्त देव पूजा की कमाई से पेट भरने वाला, स्त्री की कमाई अथवा कन्या को वेचकर या स्त्री-धन द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले नष्ट' माने गये हैं। शास्त्र के मतानुसार में

स्वर्ग और मोक्ष के भागी नहीं हो सकते। जिसका मन सदा क्रोध से भरा रहता है, जो अपने से निम्न स्थिति के व्यक्ति को देख कर बड़ा गुस्सा दिखलाता है, जिसकी भृकुटियाँ सदैव तिरछी ही रहती हैं और क्रुद्ध रहता है, आदि पाँच प्रकार के 'रुष्ट' बतलाये गये हैं। ये सदा निरर्थक बातों में लगे रहते हैं और धर्म-कर्म में ध्यान नहीं दे पाते। रात-दिन निद्रा में रहने वाला, व्यासनों में आसक्ति रखने वाला, मद्यपान करने धाला, स्त्रियों को भ्रष्ट करने वाला और दुष्ट पुरुषों से वार्तालाप करने वाला, अकेला ही मिष्ट पदार्थों को खाने वाला, सज्जन पुरुषों की अकारण निन्दा करने वाला—ये सात प्रकार के 'दुष्ट' होते हैं। जो द्विज, निगम, आगम एवं शास्त्रों को न पढ़ता है, न पढ़ाता ही है, न कभी इनको श्रवण ही करता है वह भी 'दुष्ट' कहा जाता है।

यों तो सभी व्यक्ति जीवित रहते हैं और अपने-अपने भावानुसार अपना महत्त्व भी समझते हैं, पर वास्तविक जीवन उसी का है जो समाज की वृद्धि और समृद्धि में योगदान दे सके। जिसका आचार-विचार ही ठीक नहीं, जो जिह्वा और इन्द्रिय के भागों की लालसा से अपने कर्तव्य पालन से हट जाता है, वह समाज का क्या हित कर सकता है ? ऐसा निम्नस्तर का स्वार्थी तो सदा अपना पेट भरने, विषय-वासना को तृप्ति करने में ही संलग्न रहेगा और उसकी पूर्ति में यदि निन्दनीय, गर्हित उपायों से काम लेने की आवश्यकता पड़ेगी तो उनके करने में भी न हिचकिचायेगा। ऐसे व्यक्ति समाज के उपयोगी सदस्य होने की बजाय उसमें तरह-तरह के दोष, दुर्गुणों को फैलाने वाले सिद्ध होते हैं, और उनका अन्तिम परिणाम सदैव शोचनीय ही होता है।

राजवंश वर्णन—

इस पुराण के 'मध्य-पर्व' में दी गई चारों युगों के राजाओं की वंशावली भी अनोखी है। अन्य पुराणों में जहाँ सूर्यवंश और चन्द्रवंश के प्रमुख राजाओं की चरित्र-सम्बन्धी विशेष घटनायें दी हैं, वहाँ इसमें सैकड़ों राजाओं के केवल नाम और उनका शासनकाल दिया है। इसमें राजा इक्ष्वाकु और पुरूरवा आदि से उत्पन्न सूर्य और

चन्द्रवंश के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे वंशों का वर्णन दिया है जिनको हम अन्यदेशीय और विधर्मी मानते हैं। उदाहरण के लिए इसमें हजरत नूह (न्यूह) का वर्णन 'म्लेच्छ' के नाम से दिया है और लिखा है कि वे भगवान विष्णु के भक्त थे और उन्हीं की आज्ञा तथा कृपा से जलप्रलय से बचकर उन्होंने नवीन मानव-वंश की स्थापना की थी। 'आदम' और 'हव्वा' (हव्यवती) को भी उन्होंने विष्णु-भक्त लिखा है और बतलाया है कि उन्होंने कलियुग के बहकाने से भगवान द्वारा वर्जित पेड़ के फल खाकर नई सामाजिक मर्यादा का प्रारम्भ किया—

"जो 'आत्मा' के ध्यान में ही परायण हैं, उसने इन्द्रियों का 'दमन' करके 'आदम' नाम को प्राप्त किया। उसकी पत्नी हव्यवती (हव्वा) नाम वाली कही गई। 'प्रदान' (अदन) नगर के पूर्व भाग में 'महावन' नाम का एक उद्यान परम सुन्दर और चार कोस विस्तार वाला कहा गया है। उसी उद्यान में पाप-वृक्ष के तले वह अपनी पत्नी के दर्शन में तत्पर था। कलि वहाँ शीघ्र आ गया, जो सर्प का रूप धारण किये हुये था। उस धूर्त न उसे बहकाकर विष्णु की आज्ञा भङ्ग करने वाला बना दिया। आदम ने उस वृक्ष के 'लोक-मार्गप्रद' फल खाये। आदम नौ सौ तीस वर्ष जीवित रहा और उसके जितने पुत्र-पौत्र हुये वे सब म्लेच्छ हो गये। आदम अपनी आयु के अन्त में फलों का हवन करता हुआ पत्नी सहित दिव्य-लोक को चला गया।"

बहुत से पाठकों को यह वर्णन अजीब-सा जान पड़ेगा, पर जो लोग यह जानते हैं कि संसार के समस्त धर्म और सभ्यतायें आर्य-धर्म और भारतीय संस्कृति से ही निकली हैं, उन्हें इसमें कुछ आश्चर्य नहीं होगा। प्राचीन इतिहास की खोज करने वालों का कहना है कि वैदिक धार्मिक क्रियाओं और सिद्धान्तों में पारस्परिक मतभेद के कारण बहुसंख्यक भारत-वासी, जो असुर, दैत्य, पणि आदि कहलाते थे समुद्री मार्ग से इराक, पैलेस्टाइन, मिश्र आदि चले गये और वहीं उन्होंने नवीन सभ्यताओं को जन्म दिया। इन्हीं में से असुरों ने 'असीरिया' और पणियों ने 'फिनीशिया' आदि राज्यों की स्थापना की था। कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि इन

समुद्र-पार के देशों से भारत का सम्बन्ध हजारों वर्षों से चला आया है और कभी मेल-जोल और कभी लड़ाई-झगड़ा द्वारा उनसे हमारा आदान-प्रदान होता रहा है। वेदों में भी ऐसे संघर्षों का वर्णन पाया जाता है। सभवत: ऐसी ही किसी जाति द्वारा एक आर्य नरेश का पुत्र 'भुज' समुद्र के मध्य में आक्रान्त किया गया था, जहाँ से उसकी रक्षा 'अश्विनी कुमारों' ने की थी। ऐसी दशा में जब तक यहूदी धर्म (जो ५००० वर्ष पूर्व चलाया गया है), ईसाई धर्म (जिसे १९६८ वर्ष हुये हैं) और मुसलमानी धर्म (जो केवल १३८८ वर्ष पुराना है) नहीं थे, तो उस समय वहाँ के निवासी भारतीय-धर्म की ही एक शाखा के रूप में रहे हों, इसमें असंभव क्या है ?

भारत का मध्यकालीन इतिहास—

'भविष्य पुराण' के एक बड़े अंश में इस देश के मध्यकालीन इतिहास की चर्चा की गई है। इसमें पृथ्वीराज चौहान, जयचन्द्र और आल्हा-उदल की कथा बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। केवल नामों में थोड़ा-सा अन्तर भाषा-भेद को प्रकट करने के उद्देश्य से कर दिया गया है, जैसे—'पृथ्वीराज' को 'महीराज', 'आल्हा, को 'आह्लाद', 'मलखान' को 'बलखानि', 'ढेवा' का 'देवसिंह', 'महोबा' का 'महावती' आदि। पुराणकार ने यही दर्शाया है कि जिस प्रकार देवताओं और दैत्यों के अंश से उत्पन्न राजागण महाभारत के समय में परस्पर लड़े थे, उसी प्रकार इस युग में आल्हा-ऊदल और पृथ्वीराज आदि के संग्रामों में, उन्हीं प्राचीन राजाओं के "नवीन अवतार" आपस में लड़-भिड़ कर नष्ट हो गये। पृथ्वी के भार को हल्का करने का यही उपाय भगवान ने निश्चित किया है, और जब कभी 'धरती-माता' उनसे सैनिक शक्ति के अहङ्कारियों द्वारा अस्त्र शस्त्रों का ढेर एकत्रित किये जाने की शिकायत करती है, तब वे अपनी किसी विभूति को भेज कर सबका सफाया करा देते हैं। 'भविष्य पुराण' के रचयिता के कथानुसार आल्हा-ऊदल को भगवान ने घोर अहंकारी क्षत्रियों को दण्ड देने के लिये ही भेजा था। इसी से ऊदल का नाम 'कृष्णांश'

लिखा गया है। आल्हा और मलखान भी प्रमुख देवताओं के अंश थे। एक अन्य अध्याय में यह भी कहा गया है कि महाभारत कालीन सभी पाण्डवों ने आल्हा-ऊदल के पक्ष में जन्म लिया था और कौरव पृथ्वीराज (धृतराष्ट्र) के पक्ष में उत्पन्न हुये थे। इस बार भी इन दोनों पक्षों ने महाभारत के समान घोर गृह-युद्ध करके युग-परिवर्तन का मार्ग उन्मुक्त कर दिया।

जैसा भारतीय इतिहास के पाठक जानते हैं पृथ्वीराज, जयचन्द्र और आल्हा-ऊदल की कलह के फल स्वरूप ही भारत की रक्षा-शक्ति अधिकांश में नष्ट हो गई और उसी से विदेशी मुसलमान आक्रमणकारियों को भारत-वर्ष में अपनी जड़ जमाने का अवसर प्राप्त हो सका। इसलिए अधिकांश व्यक्ति इन कलहशील क्षत्रिय राजाओं को और विशेषकर जयचन्द्र को कोसा करते हैं कि उसने पारस्परिक द्वेष के कारण भारत को विदेशियों का गुलाम बनाने में सहयोग दिया। पर आध्यात्मिक जगत की गतविधियों को जानने वाले और उनको प्रत्यक्ष कारणों से अधिक महत्त्व देने वाले पुराणकार बुराई में भी किसी छुपी हुई भलाई को देखते हैं। उनके विचारानुसार इस समस्त लीला के सूत्रधार भगवान ही होते हैं और वे किसी दूरवर्ती उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ ऐसा विधान भी रचते हैं, जो चाहे आरम्भ में हानिकारक जान पड़े पर जिसका अन्तिम परिणाम शुभ होता है।

ऐसे लोगों के मतानुसार देश के छोटे-छोटे सैकड़ों राज्यों में बँट जाने और उनके परस्पर लड़ते-झगड़ते रहने से सामाजिक और राष्ट्रीय विकास की गति रुद्ध हो गई थी। जहाँ अन्य देश अपना राष्ट्र-व्यापी सुदृढ़ सङ्गठन बनाकर प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहे थे, अरब जैसा 'जाहिल' देश सौ-दो सौ वर्ष के भीतर ही स्पेन से जावा सुमात्रा तक अपना प्रभाव फैला चुका था, वहाँ भारत की शक्ति मूर्खतापूर्ण झूठे झगड़ों में नष्ट होरही थी। देश में कोई ऐसी केन्द्रीय सत्ता न थी जो विभिन्न भागों को एकता के सूत्र में बाँध कर अन्य राष्ट्रों के मुकाबले में आगे चलाती। इसलिये दैवी

विधानानुसार भारत का हित इसी में था कि पृथकता और द्वेष की प्रवृत्तियाँ विनष्ट होकर लोगों को सङ्गठन और सहयोगयुक्त जीवन-यापन का महत्व विदित हो। यह तब तक संभव न था जब तक कि अहंकारी और संसार की गति विधि से अनजान राजाओं को एक गहरी ठोकर न लगती और उनकी हठधर्मी को बलपूर्वक दूर न किया जाता। 'भविष्य पुराण' के म्लेच्छों वंशों के उदय और उनका राज्य स्थापना होने का वृतान्त पढ़कर पाठक यही अनुभव करेंगे कि यह जो कुछ हुआ उसका पूरा विधान दैव-शक्ति ने पहले ही बना रखा था।

आधुनिक युग की झलक—

'भविष्य-पुराण' में कलियुगी राज्यवंशों तथा राजाओं का जो वर्णन किया है वह बहुत विस्तृत है और उसमें अधिकांश नाम ऐसे हैं जिनके विषय में हम न तो इतिहास से कुछ जान पाते हैं और न अन्य पुराणों से। यों तो इसमें मुसलमान बादशाहों के शासन तथा अंग्रेजों (गुरुण्ड) के आगमन तक का वर्णन कर दिया गया है, पर वह सब ऐसा अतिशयोक्ति पूर्ण और कौतूहलवर्धक है कि उसकी जाँच ऐतिहासिक वर्णन के रूप में नहीं की जा सकती। पुराणों की शैली के अनुसार रचयिता ने प्रत्येक व्यक्ति और घटना को अद्भुत रूप दिया है और उसका सम्बन्ध प्राचीन युगों के देव, असुर, दैत्य, दानव, नाग आदि समुदायों के प्रसिद्ध व्यक्तियों से जोड़ा है। उदाहरणार्थ उसने अकबर बादशाह को मुकुन्द ब्रह्मचारी का अवतार लिखा है और उसके समस्त सहयोगियों को उसका पूर्वजन्म का शिष्य बताया है। इस अद्भुत उपाख्यान का एक अंश इस प्रकार है—

"जब दैत्यों के राजा बलि ने यह सुना कि भगवान कृष्णचैतन्य और उनके सहयोगी अनेक सन्तों द्वारा कलियुग में धर्म की वृद्धि और देवताओं की विजय हो रही है, तो उसने 'रोषण' नाम के दैत्य को बुला कहा कि तैमूरलंग का पुत्र सरुष नाम से विख्यात है, तू वहाँ जाकर दैत्यों के महान कार्य को सम्पादन कर। यह सुनकर वह दैत्य हृदय में विशेष रोष प्राप्त करके देहली नगर में आया व उसने वेद-मार्ग पर चलने वालों का बहुत

अधिक नाश किया। उसका पुत्र बाबर हुआ और उसने भी अपने राज्य की नींव खूब मजबूत की। उसका पुत्र हिमायूँ हुआ, जिसने देवताओं का निरादर किया इस कारण देवगणों ने भगवान को अपनी दुःख गाथा सुनाई। इस पर हरि बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने अपने तेज द्वारा ही उसके राज्य में विघ्न उपस्थित कर दिया। स्वंय हिमायूँ की सेना के एक प्रधान 'शेष शाक' (शेरशाह) ने हिमायूँ को हरा कर बाहर निकाल दिया।

'ब्रह्मचारी मुकुन्द, जो शंकराचार्य के गोत्र में जन्मा था प्रयाग में अपने बीस शिष्यों सहित तप करता था। उसने यह देख कर कि म्लेच्छों के धूर्त बादशाह बाबर ने देवताओं को भ्रंशित कर दिया है, अपने शरीर की अग्नि में आहुति दे दी। उसके शिष्य भी म्लेच्छों का नाश करने के उद्देश्य से अग्निकुण्ड में भस्म हो गये। गाय के दूध के साथ उसका एक रोम पेट में चले जाने के पाप से मुकुन्द को म्लेच्छ वंश में जन्म लेना पड़ा। जिस समय हिमायूँ काश्मीर में था उसी समय उसके यहाँ पुत्र-जन्म हुआ। उस पुत्र के होते ही आकाशवाणी ने कहा—यह 'अकस्मात् वर' पुत्र 'अकबर' के नाम से प्रसिद्ध होगा। यह सब प्रकार से सौभाग्य-वान है। यह दारुण पैशाच मार्ग में न कभी रहा है और न रहेगा।'' आगे चलकर यह भी कहा गया है कि मुकुन्द के पूर्व-जन्म के सात प्रमुख शिष्य ही मानसिंह, बीरबल, तानसेन, बैजू बावरा, बिल्व मंगल, हरिदास, माधव आदि के रूप में उसके सम्पर्क में आये और सहायक बने।

इतना ही नहीं कबीर, नानक, पीपाजी, गो० तुलसीदास, सूरदास, शिवाजी, औरङ्गजेब, नादिरशाह आदि सभी प्रसिद्ध व्यक्तियों की चर्चा इसमें की गई है और उनके पूर्व जन्मों का विवरण बतलाकर इस जन्म के कर्मों की आलोचना की गई है। यह सब वर्णन किस प्रकार किया गया है, इसके सम्बन्ध मे विभिन्न व्यक्ति अपनी सम्मति पृथक-पृथक प्रकट करते हैं। गुप्त दैवी शक्तियों में विश्वास रखने वाले तो मुनि-ऋषियों को दिव्य दृष्टि वाला मान कर इन विवरणों को प्राचीन ही मानते हैं। अन्य लोगों का कथन है कि जिस प्रकार अनेक धार्मिक ग्रन्थों में लोगों ने प्रक्षिप्त अश

जोड़ दिये हैं—थोड़े समय पहिले ही लिखी गई तुलसीकृत रामायण में पचासों क्षेपक सम्मिलित कर दिये हैं, उसी प्रकार बाद में होने वाले कथा-कारों ने इसमें भी प्रक्षित वर्णन मिला दिये हैं।

जैसा आरम्भ में ही कहा जा चुका है हम इस वाद-विवाद को महत्व देना अनावश्यक समझते हैं। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो, पुराणों में वर्णित घटनाओं को अक्षरशः सत्य नहीं बतलाता। स्वयं पुराणकारों ने इनकी संज्ञा 'उपख्यान' बतलाई है, जिसका आशय सत्य और कल्पना मिश्रित कथा या कहानी ही होता है। उनका मुख्य उद्देश्य जन साधारण को धर्मोपदेश और सत्शिक्षा देना होता है और उसी का हम महत्वपूर्ण समझते हैं। तो भी इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि जिन विद्वानों ने इन वर्णनों को लिखा है वे दूरदर्शी अवश्य थे, और तत्कालीन सूक्ष्म परिवर्तनों और चिन्हों को देख भावी परिवर्तनों का अनुमान लगा सकते थे। इसी आधार पर उन्होंने मुसलमानी शासन और अङ्गरेजों के आगमन का वर्णन करने के पश्चात् अन्त में जो निष्कष निकाला है, उसमें वर्तमान व्यापारिक और यांत्रिक सभ्यता की प्रधानता का संकेत स्पष्ट रूप से कर दिया है—

नानकलैश्च कर्माणि विचित्राणि महीतले।
ग्रामे ग्रामे नराश्चक्रुवर्णसंकर कारकाः॥
ब्रह्म क्षत्रमयोवर्णो नाम मात्रेण दृश्यते।
वैश्यप्राया नरा आयाः शूद्रप्रायाश्चकारिणः॥

अर्थात्—"पृथ्वी में नाना प्रकार को कलों (मशीनों) से तरह-तरह के अद्भुत कार्य होने लगेंगे, और सर्वत्र वर्णसङ्कर लोगों की अधिकता होगी। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग के व्यक्ति तो नाम मात्र को रह जायेंगे। अन्यथा सर्वत्र वैश्य (व्यापारी-व्यवसायी) और कार्य करने वाले (शूद्र, मजदूर और कारीगर) ही दिखलाई पड़ेंगे।"

यदि निष्पक्ष भाव से निर्णय किया जाय तो वास्तव में आज वर्णाश्रम धर्म के प्राचीन आदर्श और नियमों के अनुसार आचरण करने वाले

ब्राह्मण और क्षत्रियों का मिल सकना अत्यन्त कठिन है उनकी संख्या नगण्य रह गई है। अन्यथा सभी ब्राह्मण और क्षत्रिय नामधारी आज व्यापार-व्यवसाय (वैश्यकर्म) या नौकरी, कारखानों का काम, मजदूरी (शूद्र कर्म) कर रहे हैं। यन्त्रों का प्रचार जैसा बढ़ रहा है वह तो प्रत्यक्ष ही है। खेत जोतने से लेकर कपड़ा धोने तक का काम इञ्जिन या बिजली की शक्ति से चलने वाले यन्त्रों से होने लग गया है। 'वर्णसङ्कर' होना या कहा जाना आजकल कुछ भी अर्थ नहीं रखता। एक-एक वर्ण में सैकड़ों प्रकार की जातियाँ, उपजातियाँ होने का कारण 'वर्ण सङ्करता' की वृद्धि ही है। आज अपने को केवल ब्राह्मण या वैश्य कहने वाले व्यक्ति तो नाम मात्र को मिलेंगे। जिससे पूछा जायगा वही अपनी उपजाति का ही नाम लेकर परिचय देगा। इस दृष्टि से पुराण रचयिता द्वारा भावी जगत की रूप रेखा के सम्बन्ध में निकाला गया निष्कर्ष प्राय: ठीक ही मानना पड़ेगा।

गर्भावस्था निरूपण—

जीवात्मा की अमरता और पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय धर्म का मेरुदण्ड है। इसका समस्त आचार-विचार, मर्यादा, संयम, नियम, परोपकार, दया, क्षमा, आदि सद्गुण इसी पर आधारित हैं, जिन धर्मों ने इनके तत्व को ठीक प्रकार से नहीं समझा है, वे शीघ्र ही भौतिकवाद की तरफ झुक जाते हैं। पर पुनर्जन्म में आस्था रखने के कारण भारतवासी इस विपरीत काल में भी आध्यात्मिक जीवन को किसी न किसी रूप में अपनाये हैं। 'भविष्य पुराण' के उत्तर-पर्व में भगवान कृष्ण ने जीवात्मा की गर्भावस्था का दिग्दर्शन कराके यही उपदेश दिया है कि यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहता है तो भगवान का ध्यान और सत्कर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिए—

"यह प्राणी शुभ कर्मों के द्वारा ही देवत्व की प्राप्ति किया करता है और जो कर्म शुभ तथा अशुभ से मिश्रित होते हैं उनसे मानवता को प्राप्त किया करता है। जब सर्वथा अशुभ कर्म हो तो तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होता है। धर्म और अधर्म का निश्चय करने में श्रुति ही

प्रमाण मानी जाती है। जघन्य कर्म से पाप होता है, और श्रेष्ठ कर्म से पुण्य की प्राप्ति होती है। जीव अपने कर्मों से ही शुक्र-बीज द्वारा स्त्री के गर्भाशय में स्थित होता है। वहाँ पर शुक्र और रक्त एकत्र होकर एक दिन में 'कलल' हो जाता है। वह कलल पाँच रात्रि में बुद्बुदाकार बन जाता है। वह बुद्बुद् सात रात्रि में माँसपेशी के रूप में होता और फिर दो सप्ताह में दृढ़ पेशी के रूप में बदल जाता है। दो मास में ग्रीवा, शिर, स्कन्ध, पृष्ठ-वंश और उदर सब क्रम से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार विकसित होते हुए सात मास में अङ्ग प्रत्यंग से पूर्ण शिशु का रूप ग्रहण कर लेता है। नाभि-सूत्र (नाल) के निबन्ध से वह दिनों दिन बढ़ता और पुष्ट होता रहता है। तब वह जीवात्मा स्मृति की प्राप्ति किया करता है और सुख-दुःख को भी जानने लगता है।"

"उसे उस समय यह ज्ञान होता है कि मैं मर गया था और अब फिर जन्म ग्रहण कर रहा हूँ। मैंने इस तरह की अनेक प्रकार की सहस्त्रों योनियाँ देखी हैं। इस बार जन्म लेने पर ऐसे कल्याणकारी मार्ग पर चलूँगा जिससे फिर गर्भवास का कष्ट सहन न करना पड़े। इस तरह जीवात्मा गर्भ में स्थित होता हुआ, भगवान का चिन्तन किया करता है और जरायु से बँधा हुआ और गर्भोदक से भीगा हुआ अत्यन्त व्याकुल रहता है। इस प्रकार यह गर्भवास प्राणियों को अत्यधिक दुःखदायी और संकट युक्त होता है इससे भी बहुत अधिक कष्ट गर्भाशय से बाहर आते समय होता है। सुनार के तार खींचने के यन्त्र के समान अवस्था को प्राप्त होकर वह घोर पीड़ा का अनुभव करता है।"

हमारे देशवासियों में अधिकांश का यही विश्वास है कि जीवात्मा को गर्भ की 'काल कोठरी' में जो पीड़ा सहन करनी पड़ती है उससे व्याकुल होकर वह भगवान की प्रार्थना करता है कि 'इस कष्ट से मुझे छुड़ाओ, अब मैं ऐसे शुभ कर्म ही करूंगा जिससे फिर इस प्रकार का दण्ड न भोगना पड़े।' पर जब वह गर्भाशय से बाहर आ जाता है तो जन्म लेने के समय की पीड़ा से मूर्छित-सा हो जाता है और उसकी सब स्मृति नष्ट हो जाती है और अपने स्वरूप को भूल कर मोह में फँस

जाता है। इस प्रकार वह बालक से युवा और फिर प्रौढ़ होकर वृद्ध हो जाता है, तब फिर काल आकर उसे घेर लेता है। इस प्रकार वह माया मोह में ग्रस्त होकर आत्मा का उद्धार करने की बजाय भव बंधनों में ही अधिकाधिक बँधता चला जाता है वह समस्त भौतिक पदार्थों को अपनी सम्पत्ति मान कर उनकी रक्षा के लिये व्याकुल रहता है। वह सब पुत्र कलत्र को अपना परम स्नेही समझकर उनके भविष्य के लिये घोर चिन्ता करता है, पर मृत्यु से किसी प्रकार छुटकारा नहीं हो सकता। इसकी अनिवार्यता के विषय में पुराणकार लिखते हैं—

"इस मानव देह में एक सौ एक मृत्यु प्रतिष्ठित हैं। उनमें से एक काल से संयुक्त होता है और शेष आगुन्तक होते हैं। जो आगन्तुक मृत्यु हैं वे औषधियों से शान्त हो जाते हैं और जप, होम, दान से भी उनकी निवृत्ति होती है, पर जो काल-मृत्यु होता है वह किसी प्रकार शान्त नहीं होता। यदि काल-मृत्यु नहीं है तो विष खा लेने पर भी मनुष्य का शरीरान्त नहीं होता। देहधारियों की मृत्यु के अनेक द्वार (कारण) होते हैं—बहुत प्रकार के रोग, शस्त्र, सर्प आदि जीवों की बाधा, विष, जङ्गम आदि सभी मृत्यु प्राप्त होने के साधन हैं। काल-मृत्यु से पीड़ित पुरुष की रक्षा करने की सामर्थ्य औषध, जप, दान, मन्त्र और बान्धव किसी में भी नहीं होती।"

जन्म और मृत्यु का यह वर्णन अवश्य ही प्रभावपूर्ण है और यदि मनुष्य इसका हार्दिक रूप से मनन करता रहे तो उसके विचारों में सुधार होना भी संभव है। गर्भ काल में भौतिक मस्तिष्क की तो कुछ सोचने,समझ सकने की स्थिति नहीं होती,पर जीवात्मा तो प्रत्येक अवस्था में संकल्प-विकल्प करता है। स्वर्ग में या प्रेत लोक में जब उसको स्थूल शरीर सर्वथा नहीं होता तब भी वह सब प्रकार की भावनायें, अच्छे-बुरे विचार और सङ्कल्प किया करता है। इस दृष्टि से गर्भकाल में यदि उसे अपने गत जन्मों के कर्मों पर परिताप करते चित्रित किया गया है तो यह कोई अनुचित बात नहीं है। इस प्रकार की प्रेरणा मनुष्य के लिए कल्याणकारी ही होती है। वैसे भी आत्मा पर पड़ने वाले गूढ़ संस्कारों

के विषय में कोई स्पष्ट नियम अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है, इसलिए भारतीय मनीषियों ने उसके जन्म-जन्मान्तर के उत्थान और पतन का जो वर्णन किया है उसे असम्भव नहीं कहना चाहिए।

'एकदेववाद' का प्रतिपादन—

पुराणों पर प्रायः यह आक्षेप भी किया जाता है कि उन्होंने एक परमात्मा के बजाय छोटे-बड़े अनेक देवों की पूजा का प्रचार किया है और इसके फल स्वरूप इस देश के निवासी पचासों सम्प्रदायों में विभक्त हो गये हैं। प्रत्यक्ष में तो यह ठीक ही जान पड़ता है, क्योंकि विभिन्न पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, गणेश, देवी, अग्नि, राम, कृष्ण, हनुमान नाग शेष आदि अनेक देवताओं की पूजा का विधान और माहात्म्य बतलाया है। पर जब हम पुराणों की अन्तरंग परीक्षा करते हैं तो मालूम होता है कि अनेक देव-देवियों की महिमा कथन करते हुए साथ-साथ यह भी कह दिया है कि ये सब एक ही परमात्मा के स्वरूप हैं। 'भविष्य-पुराण' का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट है। उसने जोरदार शब्दों में देवताओं के एकत्व की घोषणा करते हुए कहा है—

ब्रह्मा विष्णुर्वृषांकश्च त्रयो देवाः सतां मता।
नाम भेदः क्रियाभेदैर्भिद्यन्ते नात्मना स्वयम्॥

अर्थात्—"ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन देवता सज्जनों द्वारा माने जाते हैं। ये नाम और कर्म के भेद से पृथक जान पड़ते हैं, पर स्वरूप की दृष्टि से इनमें कोई भिन्नता नहीं है।"

आदित्यश्चादिदेवत्वा तत्राभूः त्रिगुणात्मकः।
प्रातः प्रजापति रसौ मध्याह्ने विष्णुरिष्यते।
रुद्रोऽपराह्न समो स एवैकस्त्रिधामतः॥

अर्थात्—"आदित्य (सूर्य) ही आदि देव हैं, जो त्रिगुणात्मक हो जाते हैं। यह प्रातःकाल में ब्रह्मा, मध्याह्न में विष्णु और दोपहर के बाद (अपराह्न) में रुद्र हो जाते हैं। इस प्रकार वे एक ही तीन स्वरूपात्मक होते हैं।"

इस प्रकार पुराणकार ने देववाद की वास्तविकता को प्रकट करके यह उपदेश दिया है कि बौद्धिक स्तर अथवा मनोभावना के कारण मनुष्य दैवी शक्ति की किसी भी रूप में उपासना क्यों न करे पर उसे यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि मूल तत्त्व में कोई अन्तर नहीं है। इसी भावना के कारण भारतवासियों ने कभी किसी बाहरी धर्म या उसके देवता का भी अपमान नहीं किया। वरन् सबको उसी एक परमात्मा का स्वरूप मान कर नमस्कार ही किया, खेद है कि कुतर्की व्यक्तियों को पुराणों में 'कृष्ण की रास-लीला', 'विष्णु द्वारा वृन्दा का सतीत्व भङ्ग', 'ब्रह्मा का मस्तक छेदन', 'शिवजी का लिङ्ग पूजन' आदि बातें तो बहुत जल्दी दिखाई पड़ जाती हैं पर इन देवताओं के तात्त्विक स्वरूप और उनकी कथाओं में निहित गूढ़ आशय पर उनकी दृष्टि कभी नहीं गई। जैसा हम पहले बतला चुके हैं, पुराणों में वेद, उपनिषद्, दर्शनों के ऊँचे ऊँचे आध्यात्मिक सिद्धान्त प्रकट किये गये हैं, पर सामान्य स्तर की जनता उसे सुन और समझ सके इस उद्देश्य से उनको प्रायः मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद कथाओं का रूप दे दिया गया है।

व्रत और पर्व :—

पुराण के अन्तिम भाग से जिन अनेक व्रतों और पर्वों का वर्णन किया है,वे हिन्दू-धर्म के अभिन्न अङ्ग हैं और सामान्य जनसमुदाय में उन्हीं के द्वारा मार्मिक भावना की वृद्धि होती रही है। इनसे हमको अपनी प्राचीन संस्कृति और इतिहास का स्मरण होता रहता है और जातीय एकता की भावना भी दृढ़ हुआ करती है। कितने ही व्रत तो स्पष्ट रूप से समाजोपयोगी तथ्यों से समन्वित है। उदाहरण के लिए हम अश्वत्थ (पीपल), वट (बरगद), अशोक, आँवला, आम, तुलसी आदि वृक्षों की पूजा सम्बन्धी व्रतों को ले सकते हैं। ये सब पेड़ मानव-स्वास्थ्य और अन्य समाजोपयोगी कार्यों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और व्रतों के नाम पर ही इनकी रक्षा करना तथा उनके सम्पर्क में रहना सब प्रकार से लाभकारी है। यह अवश्य है कि दान-दक्षिणा के लोभी धर्म व्यवसायी लोगों ने उनके स्वरूप और विधानों को बहुत कुछ विकृत कर दिया है, पर फिर

भी इसका प्रभाव 'भविष्यत्पुराण' के वर्णनों में अपेक्षाकृत कम है। कुछ भी हो हमको अपनी इस प्राचीन परम्परा को स्थिर रखना चाहिये और समयानुकूल संशोधनों द्वारा उसे अधिक उपयोगी बनाना चाहिए।

व्रत और पर्वों का जो विधान प्राचीन ग्रन्थों में दिया गया है, वह व्यक्तिगत लाभ और आत्म विकास की दृष्टि से विशेष उपयोगी है। उदाहरणार्थ मनुष्य के स्वास्थ्यका बहुत कुछ आधार खाये हुए आहार के ठीक तरह पचकर उसका शुद्ध रस और रक्त बनने पर है। पर आहार-विहार में गड़बड़ी हो जाने से अनेक व्यक्तियों की पाचन-क्रिया में त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और उसके परिणाम स्वरूप स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ने लगता है। व्रतों में प्राय: थोड़ा बहुत उपवास करना ही पड़ता है अथवा भोजन अल्प मात्रा में और हल्का किया जाता है। यदि इन नियमों का समझदारी के साथ पालन किया जाय तो विभिन्न व्रतों से हम स्वास्थ्य को ठीक रखने में काफी सहायता पा सकते हैं। यह बात दूसरी है कि हम अर्थ का अनर्थ करके मेवा, मिठाई, पक्वान आदि-पदार्थ अधिक मात्रा में खा जायें और इस तरह लाभ के स्थान पर उल्टा हानि उठायें। इसी प्रकार व्रत और पर्वो के अवसर पर जप, भजन, कीर्तन, हवन आदि का उपयोगी रूप में आयोजन करके हम मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में भीं प्रगति कर सकते हैं और व्यक्तिगत कुप्रवृत्तियों तथा दोषों का शमन करने में काफी हद तक सफल हो सकते हैं।

अनेक व्रत और पर्व सामूहिक रूप से भी मनाये जा सकते हैं और उससे समाज में सहयोग, सद्व्यवहार और उदारता की प्रवृत्तियों की वृद्धि हो सकती है। पर ये सभी लाभ तभी संभव है जब व्रत और पर्वों को बुद्धिमत्ता पूर्वक और शुद्ध भावना से मनाया जाय। जो लोग इस सम्बन्ध में केवल लकीर पीटते रहते हैं अथवा खान-पान-दान की निगाह से उनमें हानिकारक प्रवृत्तियाँ सम्मिलित कर देते हैं, उनका तो इनसे पृथक रहना ही अच्छा! आशा है पाठक इस पुराण में दिये गये व्रत के विधानों से लाभकारी निष्कर्ष ही निकालेंगे।

भारत का पौराणिक-साहित्य बहुत विशाल और बिखरा हुआ है

ग्रौर ग्राज उसे जो रूप प्राप्त हो गया है उसे पूर्णतया समाजोपयोगी नहीं कहा जा सकता। पिछले दिनों में ग्रनेक लोगों ने अपने स्वार्थ के लिये उसका जो दुरुपयोग किया है, उससे बहुसंख्याक व्यक्तियों, विशेषतया नवशिक्षित लोगों में उनके प्रति विरोधी-भावना उत्पन्न हो गई है। अनेक व्यक्ति उन पर तरह-तरह के आक्षेप करने लगे हैं और उनको भी सामाजिक पतन का एक कारण बतलाते हैं।

अनेक लेखकों ने तो ग्रपना उद्देश्य ही पुराणों का खण्डन करते रहना बना लिया है, और वे इधर-उधर से कुछ अंश लेकर उनकी ग्रालोचना करने लग जाते हैं। ऐसी ग्रालोचना में अनेक बार निरर्थक वितण्डावाद ही अधिक होता है, क्योंकि उन लोगों ने कभी पुराणों का मनोयोग पूर्वक ग्रध्ययन किया ही नहीं होता। इस प्रकार की मनोवृत्ति ग्रवश्य ही शोचनीय है, पर इसके लिए हम उनको ग्रधिक दोषी नहीं कह सकते। हमने इतने समय तक पुराणों को ऐसे रूप में प्रकाशित ही नहीं किया जिससे वे सर्व साधारण के सामने पहुँचने लायक बनते ग्रौर उनका ध्यान इन की विशेषताग्रों की तरफ ग्राकर्षित होता। पुराणों में प्राचीन इतिहास, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था, कला, विद्या सम्बन्धो बहुत सी उपयोगी सामग्री भरी पडी है। पर वह केवल हमारी उपेक्षा ग्रौर अज्ञान के कारण नष्ट हो रही है। यदि उसे सुन्दर, सुचारु रूप में भारतीय पाठकों के हाथों में पहुंचाया जाता तो निस्सन्देह उसका पर्याप्त प्रचार हो सकता था ग्रौर लोग उससे लाभान्वित हो सकते थे। इस उद्देश्य से गत दो वर्षों में हमने जिन पुराणों को संशोधित सुलभ संस्करण निकाले हैं उनके प्रति पाठकों की सद्भावनाग्रों ग्रौर ग्राग्रह को देख कर हमको दृढ़ विश्वास होता है कि हमारा यह प्रयास सफल ग्रौर लोकरुचि के अनुकूल सिद्ध हुग्रा है। यदि पाठकों का ऐसा ही सहयोग मिलता रहा तो शेष पुराण भी शीघ्रातिशीघ्र उनकी सेवा में उपस्थित करने का उद्योग करेंगे।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

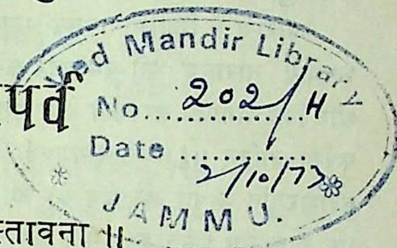
विषय सूची

॥ मध्यम-पर्व ॥

॥ प्रतिसर्ग-पर्व ॥

भविष्य पुराण

ब्राह्मपर्व



॥ कथा प्रस्तावना ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१
जयति पराशरसुनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥२
मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥३॥
पाराशर्यवचः सरोजममलं गींतार्थ गंधोत्कटं
नानाख्यानककेसरं हरि कथासंबोधनाबोधितम् ।
लोके सज्जनषट् पदं रहरहः पेपीयमानं मुदा
भूयाद्भारत पङ्कज कयिमलप्रध्वंसि नः श्रयसे ॥४
यो गोशतं कनक शृंगमयं ददाति
प्रियाय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
पुण्यां भविष्यसुकथां शृणुयात्समग्रां
पुण्यं समं भवति तस्य च तस्य चैव ॥५
कृत्वा पुराणानि पराशरात्मजः सर्वाण्यनेकानि सुखावहानि ।
तत्रात्म सौख्याय भविष्यधर्मान् कलौयुगे भावि लिलेख सर्वम् ॥६

तत्रापि सर्वर्षि वरप्रमुख्यः पराशराद्यैर्मुनिभिः प्रणीतान् ।
स्मृत्युक्तधर्मागमसंहितार्थान् व्यासः समासादवदद्भविष्यम् ।।७
अल्पायुषौ लोकजनान्समीक्ष्य विद्याविहीनान्पशुवत्सुचेष्टान् ।
तेषां सुखार्थं प्रतिबोधनाय व्यासः पुराणं प्रथितं चकार ।।८

आरम्भ में शिष्टाचारानुमत मङ्गल चरण किया जाता है । सर्व प्रथम भगवान् नारायण को नमस्कार करे इसके अनन्तर नरों में श्रेष्ठ नर को और फिर भगवती सरस्वती देवी प्रणाम करके 'जय' शब्द का उच्चारण करना चाहिए ।।१।। मातासत्यवती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले पराशरमुनि के पुत्र व्यासदेव की जय हो जिनके मुख रूपी कमल से निःसृत इस वाङ्मय अमृत का समस्त संसार पान किया करता है ।।२।। जिसकी कृपा गूँगे को बहुभाषी बना देती है और पँगले के द्वारा पर्वत का लङ्घन करा दिया करती है, उन परम आनन्दस्वरूप माधव को मैं वन्दना करता हूँ ।।३।। पराशर मुनि के पुत्र व्यास के वचन रूपी सरोज अमल हैं जिसमें गीता के अर्थ का उत्कट गन्ध विद्यमान है । इस कमल में अनेक आख्यान ही इसके केसर हैं और यह हरिकथा के सम्यक् बोधक से आबोधित होता है । लोक में सत्पुरुष रूपी भ्रमरों के द्वारा प्रतिदिन बड़े ही आनन्द के साथ इसके मकरन्द का पुनःपुनः पान किया जाया करता है । ऐसा यह भारत पङ्कज इस कलिकाल के मल को नष्ट करने वाला हमारे कल्याण के लिये होवे ।।४।। जो वेदार्थ के ज्ञाता बहुश्रुत विप्र के लिये सुवर्ण से मण्डित सींगों वाली एक सौ गौओं का दान किया करता है और जो परम पवित्र इस भविष्य पुराण की सुन्दर एवं समस्त कथा को सुनता है उन दोनों का समान ही पुण्य हुआ करता है ।।५।। पराशर महर्षि के पुत्र व्यासजी ने अनेक पुराणों की रचना करके, जोकि परमसुख प्रदान करने वाले होते हैं, अन्त में फिर उन्होंने अपने सौख्य के लिये कलियुग में होने वाले धर्मों को तथा आगे कुछ होगा उस सब को लिखा था ।।६।। उसमें भी समस्त श्रेष्ठ ऋषियों में प्रमुखों के द्वारा, जिनमें कि पराशर आदि अनेक मुनिगण हैं, प्रणीत किये गये स्मृतियों में वर्णित धर्म-आगम और संहिता के अर्थों को व्यासदेव ने इस भविष्य में संक्षेप से बताया है ।।७।। व्यास महर्षि ने लोक

में मनुष्यों को बहुत थोड़ी उम्र वाले देखकर तथा लोगों को विद्या से हीन एवं पशुओं की भांति चेष्टा करने वाले विचारकर उनके सुख सम्पादन करने के लिये तथा उन्हें ज्ञान प्राप्त कराने के लिये इस भविष्य महापुराण को लोक में प्रथित किया था ॥८॥

जयति भुवनदीपो भास्करो लोककर्त्ता
जयति च शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारिः ।
जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेयो
जयति च स तु देवो भानुमांश्चित्रभानुः ॥९
श्रियावृतं तु राजानं शतानीकं महाबलम् ।
अभिजग्मुर्महात्मानः सर्वे द्रष्टुं महर्षयः ॥१०
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
पराशरस्तथा व्यासः सुमन्तुर्जैमिनिस्तथा ॥११
मुनिः पैलौ याज्ञवल्क्योगौतमस्तु महातपाः ।
भारद्वाजो मुनिर्धीमांस्तथा नारदपर्वतौ ॥१२
वैशंपायनो महात्मा शौनकश्च महातपाः ।
दक्षोंगिरास्तथा गर्गो गालवश्च महातपाः ॥१३
तानागतानृषीन्दृष्ट्वा शतानीको महीपतिः ।
विधिवत्पूजयामास अभिगम्य महामतिः ॥१४
पुरोहितं पुरस्कृत्य अर्घं गां स्वागतेन च ।
पूजयित्वा ततः सर्वान्प्रणम्य शिरसाभृशम् ॥१५

इस समस्त भुवन को प्रकाश प्रदान करने वाले दीपक के स्वरूप तथा लोकों के कर्त्ता भास्कर भगवान की जय हो । शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले श्याम शरीर मुरारि की जय हो । मस्तक में चन्द्रमा के आभूषण वाले रुद्र नामधारी की जय हो और भानुमान् चित्रभानु देव की जय हो ॥९॥ श्री से परिपूर्ण महान् बल वाले शतानीक नामक राजा के समीप में महान् आत्मा वाले समस्त महर्षि गण उनके दर्शन करने के लिये गये थे ॥१०॥ उन मुनियों में से कतिपय नामों को प्रदर्शित किया जाता है–भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, पराशर, व्यास, सुमन्तु, जैमिनी,

पैल, याज्ञवल्क्य, गौतम, महा-तपस्वी भारद्वाज मुनि, धीमान् नारद, पर्वत, वैशम्पायन, माहात्मा शौनक, महा-तपस्वी दक्ष, अङ्गिरा गर्ग और महान् तप वाले गालव ये सब महर्षि गण थे जो कि शतानीक राजा के पास गये थे ।।११-१३।। उनके समीप में समागत महान् महर्षियों के मण्डल को देख कर अधिक बुद्धिमान् राजा शतानीक ने उठकर आगे आकर उन सब की विधि के साथ पूजा की थी ।।१४।। राजा शतानीक ने अपने पुरोहित को आगे लेकर अघ पाद्यादि के सहित पूर्ण स्वागत के द्वारा सबकी समर्चा की और फिर शिर चरणों में रख कर बार-बार प्रणाम किया था ।।१५।।

सुखासीनाँस्ततो राजा निरातंकान्गतक्लमान् ।
उवाच प्रणतो भूत्वा बाहुमुद्धृत्य दक्षिणम् ।।१६
इदानीं सफलं जन्म मन्येऽहं भुवि सत्तमाः ।
आत्मनो द्विजशार्दूलास्तथा कीर्तिर्यशोबलम् ।।१७
धन्योऽहं पुण्यकर्मा च यतो मां द्रष्टुमागताः ।
येषां स्मरणमात्रेण युष्माकं पूयते नरः ।।१८।।
श्रोतुमिच्छाम्यहं किंचिद्धर्मशास्त्रमंशास्त्रमनुत्तमम् ।
आनृशंस्यं समाश्रित्य कथयध्व महाबलाः ।।१९
येनाहं धर्मशास्त्रं तु श्रुत्वा गच्छे परां गतिम् ।
यथा गतो मम पिता श्रुत्वा वै भारतं पुरा ।।२०
तथोक्तास्तेन राज्ञा वै ब्राह्मणास्ते समन्ततः ।
समागम्य मिथस्ते तु विमृस्य च भृशं तदा ।।२१
पूजयित्वा ततो व्यासमिदं वचनमब्रुवन् ।
व्यासं प्रसादय विभो एष ते कथयिष्यति ।।२२
तिष्टत्यस्मिन्महाबाहो वयं वक्तुं न शक्नुमः ।
तिष्ठमाने गुरौ शिष्यः कथं वक्ति महामते ।।२३

इसके अनन्तर जब वे सब सुखपूर्वक बैठ गये और निरातङ्क होकर सब ने अपना श्रम दूर कर दिया तब राजा ने अपना दाहिना हाथ उठाकर प्रणत होते हुए कहा—।।१६।। हे द्विजों में शार्दूल के समान श्रेष्ठ गण !

मैं इस भू-मण्डल में आज इस समय अपना जन्म, कीर्त्ति, यश और बल सभी सफल मानता हूँ ।।१७।। मैं बहुत ही अधिक पुण्य कर्मों वाला हूँ और परम भाग्यशाली हूँ कि आप सब लोग मुझे दर्शन देने के लिये मेरे यहाँ पधारे हैं जिन आप लोगों के केवल स्मरण कर लेने भर से ही मनुष्य पवित्र हो जाया करता है ।।१८।। मैं अब कुछ सर्वश्रेष्ठ धर्म शास्त्र के श्रवण करने की इच्छा करता हूँ । अतः आप लोग महान् बलशाली हैं, अत्यन्त सरलता का समाश्रय करके कहने की कृपा करें ।।१९।। जिससे धर्म शास्त्र को सुनकर परा गति को प्राप्त हो जाऊँ । जिस तरह पहिले मेरे पिता भारत का श्रवण करके परम गति को प्राप्त हुए थे ।।२०।। इसप्रकार से उस राजा शतानीक के द्वारा कहे गये उन ब्राह्मणों ने सब ओर से इकट्ठे होकर और आपस में उस समय भली भाँति विचार किया ।।२१।। इसके अनन्तर वे सब व्यास देव की पूजा करके उन से यह बोले—हे विभो! आप महर्षि व्यासजी को प्रसन्न करलो । यह आपको धर्मशास्त्र श्रवण करायेंगे ।।२२।। हे महा बाहो ! इन महर्षि चरण के यहाँ विद्यमान होने पर हम लोग कुछ भी कहने में असमर्थ हैं । हे महामते ! जब गुरुवर उपस्थित होते हैं तो शिष्य किस तरह कह सकता है ।।२३।।

अञ्चलिः शिरसा ब्रह्मन्कृतोऽयं पादयोस्तव ।
ब्रूहि मे धर्मशास्त्रं तु येनाहं पूततां व्रजे ।।२४

समुद्धर भवादस्मात्कीर्तयित्वा कथां शुभाम् ।
यथा मम पिता पूर्वं कीर्तयित्वा तु भारतम् ।।२५

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत् ।
एष शिष्यः सुमंतुर्मे कथयिष्यति ते प्रभो ।।२६

यदिच्छसि महाबाहो प्रीतिदं चाद्भुतं शुभम् ।
श्रव्यं भरतशार्दूल सर्वपापभयापहम् ।।२७

यथा वैशंपायनेन पुरा प्रोक्तं पितुस्तव ।
महाभारतव्याख्यानं ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ।।२८

अथ तमृषयः सर्वे राजानमिदमब्रुवन् ।
साधु प्रोक्तं महाबाहो व्यासेनामितबुद्धिना ॥२६
सुमंतुं पृच्छ राजर्षे सर्वशास्त्रविशारदम् ।
अस्माकमपि राजेन्द्र श्रवणे जायते मतिः ॥३०

राजा शतानीक ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं शिर के सहित यह अञ्जलि आपके चरणों में रखता हूँ । आप मुझे कृपा कर धर्म शास्त्र का श्रवण कराइये जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ ॥२४॥ शुभ कथा का वर्णन करके मुझे इस संसार से पार कर दीजिए । जिस तरह भारत का कीर्त्तन करके पहिले मेरे पिता का उद्धार किया था ॥२५॥ उस राजा के इस विनम्र वचन को सुनकर महर्षि व्यासजी ने कहा—हे प्रभो ! यह सुमन्तु मेरा ही एक शिष्य है । यह तुमको धर्मशास्त्र कहेगा ॥२६॥ हे महान् वाहुओं वाले ! जो तुम प्रीति का देने वाला, परम अद्भुत और शुभ सुनना चाहते हो तो हे भरत शार्दूल ! समस्त प्रकार के पाप और भयों के अपहरण करने वाला शास्त्र सुनना चाहिए ॥२७॥ पहिले जिसप्रकार वैशम्पायन मुनि ने तुम्हारे पिता को सुनाया था वह तहाभारत का व्याख्यान ब्रह्म हत्या दूर हटाने वाला था ॥२८॥ इसके पश्चात् समस्त उन ऋषियों ने उस राजा से कहा—हे महावाहो ! अपरिमित बुद्धि वाले व्यासदेव ने वहुत ही समुचित कहा है । हे राजर्षे ! समस्त शास्त्रों के महान पण्डित सुमन्तु मुनि से आप पूछिए । हे राजेन्द्र ! हम लोगों को भी श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न हो रही है ॥२९–३०॥

पुण्याख्यानं मम ब्रह्मन्पावनाय प्रकीर्तय ।
श्रुत्वा यद्ब्राह्मणश्रेष्ठ मुच्येऽहं सर्वपातकात् ॥३१
नानाविधानि शास्त्राणि संति पुण्यानि भारत ।
यानि श्रुत्वा नरो राजन्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥३२
किमिच्छसि महाबाहो श्रोतुं यत्त्वां ब्रवीमि वै ।
भारतादिकथानां तु यासु धर्मादयः स्थिताः ॥३३

चतुर्णामिह वर्णानां श्रेयसे यानि सुव्रत ।
भवंति द्विजशार्दूल श्रुतानि भुवनत्रये ।।३४
विशेषतश्चतुर्थस्य वर्णस्य द्विजसत्तम ।।३५

ब्राह्मणादिषु वर्णेषु वेदाः प्रकल्पिताः ।
मन्वादीनि च शास्त्राणि तथांगानि समंततः ।।३६

शूद्राश्चैव भृशं दीनाः प्रतिभांति द्विजप्रभो ।
धर्मार्थकाममोक्षस्य शक्ताः स्युरवने कथम् ।।३७

राजा शतानीक ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप मुझे पवित्र करने के लिये किसी पुण्यतम आख्यान का वर्णन करें। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! जिसका श्रवण करके मैं सब तरह के पातकों से मुक्त होजाऊँ ।।३१।। सुमन्तु ने कहा—हे भारत ! अनेक प्रकार के परम पुण्यशास्त्र हैं जिनको सुनकर हे राजन् ! मनुष्य सब पापों से छुटकारा पाजाया करता है ।।३२।। हे महा-बाहो ! आप कथा सुनना चाहते हैं जिसको कि मैं तुमको सुनाऊँ ? भारत आदि की बहुत-सी कथाऐं हैं जिनमें कि धर्म आदि सबका वर्णन रहता है ।।३३।। हे सुव्रत ! तीनों भुवनों में चार वर्णों के कल्याण के लिये जो भी हैं वे सब श्रुत हैं ।।३४।। खास करके चतुर्थ वर्ण के विषय में भी श्रुत है ।।३५।। ब्राह्मण आदि तीन वर्णों में वेद बताये गये हैं और मनु आदि शास्त्र और उनके बहुत से सभी अङ्ग शास्त्र भी हैं ।।३६।। विचारे शूद्र बहुत ही हीन मालूम होते हैं। हे द्विज प्रभो ! ये शूद्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं ।।३७।।

साधुसाधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि मानद ।
शृणु मे वदतो राजन्पुराणं नवमं महत् ।।३८
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो नृप ।
अश्वमेधफलं प्राप्य गच्छेद्भानौ न संशयः ।।३९
इदं तु ब्रह्मणा प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुत्तमम् ।
विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ।।४०

शिष्येभ्यश्चैव वक्तव्यं चातुर्वर्ण्येभ्य एव हि ।
अध्येतव्यं न चान्येन ब्राह्मणं क्षत्रियं विना ।
श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन ॥४१
देवार्चां पुरतः कृत्वा ब्राह्मणैश्च नृपोत्तम ।
श्रोतव्यमेव शूद्रैश्च तथान्यैश्च द्विजातिभिः ॥४२
श्रौतं स्मार्तं हि वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम ।
तस्माच्छूद्रैर्विना विप्रान्न श्रोतव्यं कथंचन ॥४३

सुमन्तु मुनि ने कहा—हे मानद ! हे महाबाहो ! यह तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । अब मैं तुमको बताता हूँ और तुम महान् नवम पुराण का श्रवण करो ॥३८॥ हे नृप ! यह ऐसा पुराण है जिसको सुन कर मानव समस्त पापों से छूट जाता है और अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करके वह सूर्य लोक में चला जाता है–इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३९॥ इसको, जोकि सर्वोतम धर्मशास्त्र है,ब्रह्माजी ने कहा था । विद्वान् ब्राह्मण को इसका प्रयत्न के साथ अवश्य ही अध्ययन करना चाहिए ॥४०॥ और चारों वर्णों के शिष्यों के लिये इसको कहना चाहिए । ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को छोड़ कर अन्य किसी भी वर्ण वाले को इसका अध्ययन नहीं करना चाहिए । शूद्र को तो इसे सुनना ही चाहिए उसे इसका अध्ययन कभी नहीं करना चाहिए ॥४१॥ हे नृपोत्तम ! पहले देव पूजन करके ब्राह्मणों के द्वारा तथा अन्य द्विजातियों के द्वारा और शूद्रों के द्वारा इसे सुनना चाहिए ॥४२॥ हे नृपों में उत्तम! इस पुराण में श्रौत अर्थात् श्रुति से प्रतिपादित और स्मार्त्त अर्थात् स्मृतियों से प्रतिपादित धर्म कहा गया है । इससे विप्रों के बिना शूद्रों के द्वारा किसी प्रकार से भी नहीं श्रवण करना चाहिए ॥४३॥

इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
मनोवाग्देहजैर्न्नित्यं कामदोषैर्न लिम्पते ॥४४
शृण्वंति चापि ये राजन्भक्त्या वै ब्राह्मणादयः ।
मुच्यंते पातकैः सर्वैर्गच्छंति चदिवं प्रभो ॥४५

श्रावयेच्चापि यो विप्रः सर्वान्वर्णान्नृपोत्तम ।
स गुरु प्रोच्यते तात वर्णानामिह सर्वशः ॥४६
स पूज्यः सर्वकालेषु सर्वैर्वर्णैर्नराधिप ।
पृथिवीं च तथैवेमां कृत्स्नामेकोपि सोऽर्हति ॥४७
इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धि विवर्धनम् ।
यशस्यं सततमिदं निःश्रेयसं परम् ॥४८
अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ।
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चापि शाश्वतः ॥४९

इस शास्त्र का अध्ययन करने वाला संशित व्रत ब्राह्मण मन-वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाले कर्मों के दोषों से वह लिप्त नहीं हुआ करता है ॥४४॥ हे राजन् ! जो ब्राह्मण आदि इसका भक्ति पूर्वक श्रवण करते हैं वे सब पातकों से छूट जाया करते हैं और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं ॥४५॥ हे नृप श्रेष्ठ ! जो विप्र समस्त वर्णों को इसका श्रवण कराता है वह इस संसार में सब प्रकार वर्णों का गुरु कहा जाता हैं ॥४६॥ हे नराधिप ! वह सब समयों में समस्त वर्णों के द्वारा पूजा के योग्य होता है । और उसी प्रकार से इस समस्त पृथ्वी के लिये वह एक ही योग्य होता है ॥४७॥ यह कल्याण का आधार है, परम श्रेष्ठ है और बुद्धि का बढ़ाने वाला है । यश देने वाला और सदा परम श्रेय सम्पादन करने वाला है ॥४८॥ इसमें पूर्ण धर्म कहा गया है और कर्मों के गुण तथा दोष भी बताये गये हैं और इसमें चारों वर्णों का शाश्वत आचार भी वर्णित किया गया है ॥४९॥

।। सृष्टि वर्णन ।।

शृणुष्वेदं महाबाहो पुराणं पंचलक्षणम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते राजन्पुरुषो ब्रह्महत्यया ।।१
पर्वाणि चात्र वै पंच कीर्तितानि स्वयंभुवा ।
प्रथम कथ्यते ब्राह्मं द्वितीयं वैष्णवं स्मृतम् ।।२
तृतीयं शैवमाख्यातं चतुर्थं त्वाष्ट्रमुच्यते ।
पंचमं प्रतिसर्गाख्यं सर्वलोकैः सुपूजितम् ।।३
एतानि तात पर्वाणि लक्षणानि निबोध मे ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च । ४
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ।
चतुर्दशभिर्विद्याभिर्भूषितं कुरुनन्दन ।।५
अंगानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः ।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।।६
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गांधर्वश्चैव ते त्रयः ।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः ।७

सुमन्तु ने कहा—हे महावाहो ! अब इस पांच लक्षण वाले पुराण का तुम श्रवण करो जिसको सुनकर पुरुष ब्रह्महत्या से मुक्ति पा जाया करता है ।।१।। स्वयम्भू ने इस के पाँच पर्व कहे हैं । उनमें प्रथम पर्व ब्राह्म कहा जाता है । दूसरे पर्व का नाम वैष्णव कहा गया है ।।२।। तीसरे पर्व का नाम शैव कहा गया है और चतुर्थ का नाम त्वाष्ट्र कहा जाता है । पंचम का नाम प्रतिसर्ग है जोकि समस्त लोकों के द्वारा पूजित होता है ।।३।। हे तात ! ये पाँच पर्वों के नाम हैं अब इनके लक्षणों को समझ लो जिन्हें मैं बतलाता हूँ । पुराण के पांच लक्षण होते हैं इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित होते हैं । हे कुरुनन्दन ! यह चौदह विद्याओं से भूषित हुआ करता है । ।।४-५।। चार वेद—उन वेदों के छन्द शिक्षादि छै अङ्ग—मीमांसा, न्याय का विस्तार, पुराण, और धर्मशास्त्र ये कुल चौदह विद्याऐं होती हैं ।।६।। आयुर्वेद,

धनुर्वेद और गान्धर्व ये तीन हैं और चौथा अर्थशास्त्र है। इन चारों को मिला कर अठारह विद्याऐं हो जाती हैं ॥७॥

प्रथमं कथ्यते सर्गो भूतानामिह सर्वशः।
यच्छ्रुत्वा पापनिर्मुक्तो याति शांतिमनुत्तमाम् ॥८
जगदासीत्पुरा तात तमोभूतमलक्षणम्।
अविज्ञेयमतर्क्यं च प्रसुप्तमिव सर्वशः ॥९
ततः स भगवानीशो ह्यव्यक्तो व्यंजयन्निदम्।
महाभूतानि वृत्तौजाः प्रोत्थितस्तमनाशनः ॥१०
योसावतींद्रियोऽग्राह्यः सूक्ष्योऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिंत्यः स एष स्वयमुत्थितः। ११
योसौ षड्विंशको लोके तथा यः पुरुषोत्तमः।
भास्करश्च महाबाहो परं ब्रह्म च कथ्यते ॥१२
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥१३
यस्मादुत्पद्यते सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
बीजं शुक्रं तथा रेत उग्रं वीर्यं च कथ्यते ॥१४

सर्व प्रथम यहाँ संसार में भूतों के सर्ग को कहा जाता है जिसका श्रवण करके मनुष्य पाप से निर्मुक्त हो जाता है और सर्वोत्तम शान्ति को प्राप्त किया करता है ॥८॥ हे तात ! पहिले यह जगत् तमोभूत अर्थात् अन्धकार पूर्ण और लक्षणहीन था। जोकि विशेष रूप से जानने के अयोग्य और तर्क न करने के योग्य था जैसा कि सब प्रकार से सो रहा हो ॥९॥ इसके पश्चात् वह भगवान् ईश अव्यक्त इसको प्रकट करते हुए महाभूत वृत्तौजा तम का नाश करने वाला उत्थित हुआ ॥१०॥ वह यह अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा न ज्ञान किये जाने वाला—अग्राह्य, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, सर्व भूतमय और अचिन्त्य है। वह यह स्वयं उत्थित हुआ ॥११॥ जो यह लोक में षड्विंशक है तथा जो पुरुषोत्तम है और भास्कर है। हे महाबाहो ! यह परब्रह्म कहा जाया करता है ॥१२॥ अपने शरीर से विविध प्रकार की प्रजा के सृजन करने की इच्छा

वाले उसने प्रकट होकर आदि में जल की ही सृष्टि की थी और उसमें वीर्य का अब सृजन किया था ।।१३।। जिनसे देवता, असुर और मनुष्य सब उत्पन्न होते हैं यह बीज, शुक्र, रेत, उग्र और वीर्यं नाम से कहा जाता है ।।१४।।

वीर्यस्यैतानि नामानि कथितानि स्वयंभुवा ।
तदंडमभवद्धैमं ज्वालामालाकुलं विभो ।।१५
यस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।
सुरज्येष्ठश्चतुर्वक्त्रः परमेष्ठी पितामहः ।।१६
क्षेत्रज्ञः पुरुषो वेधाः शम्भुर्नारायणस्तथा ।
पर्यायवाचकैः शब्दैरेवं ब्रह्मा प्रकीर्त्यते ।।१७
सदा मनीषिभिस्तात विरंचिः कंजजस्तथा ।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपौ वै नरसूनवः ।।१८
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।
अरमित्येव शीघ्राय नियता कविभिः कृताः ।।१९
आप एवार्णवीभूत्वा सुशीघ्रास्तेन ता नराः ।
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।।२०
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ।
एवं स भगवानंडे तत्त्वमेव निरूप्य वै ।।२१

स्वयम्भू ने वीर्य के ये नाम कहे हैं । वह ज्वाला मालाओं में आकुल सुवर्ण का दण्ड हो गया था ।।१५।। जिसमें स्वयं समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया था । परमेष्ठी पितामह समस्त देवों में श्रेष्ठ और चार मुख वाले हैं ।।१६।। क्षेत्रज्ञ, पुरुष, वेधा, शम्भु, नारायण इन पर्याय-वाचक शब्दों के द्वारा इस ब्रह्मा को कहा जाया करता है ।।१७।। हे तात ! सर्वदा मनीषियों के द्वारा विरञ्चि, पद्मज कहा जाता है । जलों को नार कहे गये हैं वे आप (जल) नर सूनु हैं ।।१८।। वह जल जिसका पहिले अयन अर्थात् निवास का स्थान है । इसी से उनका नाम नारायण कहा गया है । अरम् यही कवियों ने शीघ्र के लिये नियत किये हैं ।।१९।। आप अर्थात् जल ही अर्णव होकर सुशीघ्र होते हैं ।

इससे वे नर हैं। जो उसका कारण अव्यक्त है वह नित्य और सद्-असद् स्वरूप वाला होता है ॥२०॥ उसके द्वारा विसृष्ट वह पुरुष है जो लोक में 'ब्रह्म' कहा जाता है। इस प्रकार से अण्ड में तत्व का ही निरूपण करके वह भगवान् होते हैं ॥२१॥

ध्यानमास्थाय राजेन्द्र तदंडमकरोद्द्विधा ।
शकलाभ्यां च राजेन्द्र दिवं भूमिं च निर्ममे ॥२२
अंतर्व्योम दिशश्चाष्टौ वारुणं स्थानमेव हि ।
ऊर्द्ध्वं महान्गतो राजन्समन्ताल्लोकभूतये ॥२३
महतश्चाप्यहंकारस्तस्माच्च त्रिगुणा अपि ।
त्रिगुणा अतिसूक्ष्मास्तु बुद्धिगम्या हि भारत ॥२४
उत्पत्तिहेतुभूता वै भूतानां महतां नृप ।
तेषामेव गृहीतानि शनैः पंचेद्रियाणि तु ॥२५
तथैवावयवाः सूक्ष्माः षण्णामप्यमितौजसाम् ॥२६
संनिवेश्यात्ममात्रासु स राजन्भगवान्विभुः ।
भूतानि निर्ममे तात सर्वाणि विधिपूर्वकम् ॥२७
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयाणि षट् ।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥२८

ध्यान में आस्थित होकर हे राजेन्द्र ! उस अण्ड को दो प्रकार का किया था। उन खण्डों के द्वारा दिव और भूमि का निर्माण किया था ॥२२॥ अन्तर्व्योम—आठ दिशाऐं और वारुण स्थान की रचना की। हे राजन् ! सब ओर से इस लोक की विभूति के लिये महान् ऊर्ध्व को गया ॥२३। महत्तत्त्व से अहङ्कार उत्पन्न हुआ और अहङ्कार से सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की उत्पत्ति हुई। हे भारत ! ये त्रिगुण अत्यन्त सूक्ष्म हैं जो कि केवल बुद्धि से ही गम्य होते हैं ॥२४॥ हे नृप ! ये महान् भूतों की उत्पत्ति के कारण हुआ करते हैं। उनकी धीरे से ये पाँच इन्द्रियाँ गृहीत होती हैं ॥२५॥ उसी प्रकार से अमित ओज वाले छैओं के सूक्ष्म अवयव होते हैं ॥२६॥ हे राजन् ! व्यापक भगवान् ने आत्म मात्राओं में अर्थात् उनको पंच तन्मात्राओं में सन्निविष्ट करके विधि

के साथ समस्त प्राणियों का निर्माण किया ॥२७॥ जिस मूर्त्ति के ये सूक्ष्म अवयव हैं उसके ये छै आश्रय होते हैं। इसी हेतु से मनीषी लोग उसकी मूर्त्ति को शरीर इस नाम से कहते हैं ॥२८॥

महांति तानि भूतानि आविशन्ति ततो विभुम् ।
कर्मणा सह राजेन्द्र सगुणाश्चापि वै गुणाः ॥२९
तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ।
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्वचयम् ॥३०
भूतादिमहतस्तात येन व्याप्तमिदं जगत् ।
तस्मादपि महाबाहो पुरुषाः पंच एव हि ॥३१
केचिदेवं परां तात सृष्टिमिच्छति पन्डिताः ।
अन्येऽप्येवं महाबाहो प्रवदन्ति मनीषिणः ॥३२
योऽसावात्मा परस्तात कल्पादौ सृजते तनुम ।
प्रजनश्च महाबाहो सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥३३
तेन सृष्टः पुद्गलस्तु प्रधानं विशते नृप ।
प्रधानं क्षोभितं तेन विकारान्सृजते बहून् ॥३४
उत्पद्यते महांस्तस्मात्ततो भूतादिरेव हि ।
उत्पद्यते विशालं च भूतादेः कुरुनन्दन ॥३५

हे राजेन्द्र ! वे भूत महान् हैं और विभु में आविष्ट हो जाया करते हैं। कर्म के साथ गुण और सगुण भी आविष्ट हो जाते हैं ॥२९॥ उन सात महान् ओज वाले पुरुषों की सूक्ष्म मूर्त्ति मात्राओं से अव्यय से द्वय का सम्भव होता है ॥३०॥ हे तात ! भूत आदि महत् है जिससे कि यह समस्त जगत् व्याप्त है। हे महाबाहो ! उससे भी पांच ही पुरुष होते हैं ॥३१॥ हे तात ! इस प्रकार से कुछ विद्वान् परा सृष्टि की इच्छा करते हैं। अन्य मनीषीगण भी इसी प्रकार से कहते हैं ॥३२॥ हे तात ! जो यह आत्मा पर है वह कल्प के आदि में तनु का सृजन किया करता है और प्रजन करता है। यह अनेक प्रकार की प्रजाओं के सृजन करने की इच्छा वाला होता है ॥३३॥ हे नृप ! उसके द्वारा सृजन किया हुआ पुद्-गल प्रधान में प्रवेश करता है। उसके द्वारा प्रधान क्षोभित हो जाता है

और फिर वह बहुत से विकारों का सृजन करता है ।।३४।। उससे महान् उत्पन्न होता और उससे भूतादि उत्पन्न होते हैं। हे कुरुनन्दन ! फिर भूतादि का यह विशाल स्वरूप होता है ।।३५।।

विशालाच्च हरिस्तात हरेश्चापि वृकास्तथा ।
वृकैर्मु ष्णं ति च बुधास्तस्मात्सर्वं भवेन्नृप ।।३६
तथैषामेव राजेन्द्र प्रादुर्भवति वेगतः ।
मात्राणां कुरुशार्दू ल विबोधस्तदनंतरम् ।।३७
तस्मादपि हृषीकाणि विविधानि नृपोत्तम ।
तथेयं सृष्टिराख्याताऽऽराध्यतः कुरुनन्दन ।।३८
भूयो निबोध राजेन्द्र भूतानामिह विस्तरम् ।
गुणाधिकानि सर्वाणि भूतानि पृथिवीपते ।।३९
आकाशमादितः कृत्वा उत्तरोत्तरमेव हि ।
एकं द्वौ च तथा त्रीणि चत्वारश्चापि पंच च ।।४०
ततः स भगवान्ब्रह्मा पद्मासनगतः प्रभुः ।
सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ।।४१
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ।
कर्मोद्भवानां देवानां सोसृजद्देहिनां प्रभुः ।।४२

उस विशाल से हरि और हरि से वृक तथा वृकों से बुध होते हैं तथा उससे फिर सब हुआ करता है ।।३६।। हे राजेन्द्र ! इनका बड़े वेग से प्रादुर्भाव होता है। हे कुरुशार्दूल। उसके अनन्तर मात्राओं का विशेष बोध हुआ करता है ।।३७।। हे नृपों में श्रेष्ठ ! उससे विविध हृषीक अर्थात् विषयेन्द्रियाँ होती हैं ! इस प्रकार से आराध्य देव से यह सृष्टि बताई है ।।३८।। हे राजेन्द्र ! फिर यहाँ भूतों का विस्तार होता है ऐसा समझ लो। हे पृथिवीपते ! ये समस्त भूत गुणों से अधिक हुआ करते हैं ।।३९।। सबसे आदि में आकाश की रचना करके उत्तरोत्तर एक-दो-तीन-चार और पाँचों को बनाया ।।४०।। इसके अनन्तर उन पद्मासन पर बैठे हुए भगवान् ब्रह्माजी ने सबके नाम और अलग-अलग कर्मों का निर्माण किया था ।।४१।। आदि में वेद शब्दों से ही उस प्रभु ने पृथक संस्था का

निर्माण किया था और कर्म से उत्पन्न देहधारी देवों का उसने सृजन किया था ।।४२।।

तुषितानां गणं राजन्यज्ञं चैव सनातनम् ।
दत्त्वा वीर समानेभ्यो गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।।४३
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ।
कालं कालविभक्तीश्च ग्रहानृतूंस्तथा नृप ।।४४
सरितः सागराञ्छैलान्समानि विषमाणि च ।
कामं क्रोधं तथा वाचं रतिं चापि कुरूद्वह ।।४५
सृष्टिं ससर्ज राजेन्द्र सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
धर्माधर्मौ विवेकाय कर्मणां च तथासृजत् ।।४६
सुखदुःखादिभिर्द्वंद्वैः प्रजाश्चेमा न्ययोजयत् ।
अण्व्योमात्राविनाशिन्योदशार्धानांतु याःस्मृताः ।।४७
ताभिः सर्वमिदं वीर संभवत्यनुपूर्वशः ।
यत्कृतं तु पुरा कर्म संवियुक्तन वै नृप ।।४८
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानं पुनः पुनः ।
हिंसाहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते ।।४९

हे राजन् ! तुषितों के गण को और सनातन यज्ञ को तथा सनातन गुह्य ब्रह्म को समानों के लिये दिया था ।।४३।। हे नृप ! फिर उसने यज्ञों की सिद्धि करने के लिये ऋग्, यजु और साम लक्षण वाले का दोहन किया था । काल और काल की विभक्तियों को, ग्रहों को तथा ऋतुओं को बनाया था ।।४४।। समस्त नदियाँ, समुद्र, पर्वत, सम और विषम, काम, क्रोध, वाणी और रति का सृजन किया था ।।४५ । हे राजेन्द्र ! विविध भांति की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा रखने वाले ने कर्मों के विवेक के लिये धर्म और अधर्म की रचना की थी ।।४६।। फिर इस विरचित प्रजा को सुख-दुःख आदि के द्वन्द्वों से नियोजित किया था जो कि दशार्धों की अणु मात्रा विनाश वाली कही गई है ।।४७।। हे वीर ! यह सब उनसे अनुपूर्वशः उत्पन्न होता है । जो पहिले जन्म में कर्म किया गया है उससे संनियुक्त होकर ही सम्भव हुआ करता है ।।४८।।

बार-बार सृज्य मान उसी को स्वयं सेवन किया करता था। हिंस्र और अहिंस्र, मृदु और क्रूर, धर्म और अधर्म तथा ऋत और अनृत इन सबका वह स्वयं सेवन किया करता है ॥४६॥

यद्यथास्याभवत्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ।
यथा च लिङ्गान्यृतवः स्वयमेवानुपर्यये ॥५०
स्वानिस्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः ।
लोकस्येह विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥५१
ब्रह्म क्षत्रं तथा चौभौ वैश्यशूद्रौ नृपोत्तम ।
मुखानि यानि चत्वारि तेभ्यो वेदा विनिःसृताः ॥५२
ऋग्वेदसंहिता तात वसिष्ठेन महात्मना ।
पूर्वान्मुखान्महाबाहो दक्षिणाच्चापि वै शृणु ॥५३
यजुर्वेदो महाराज याज्ञवल्क्येन वै सह ।
सामानि पश्चिमात्तात गौतमश्च महाऋषिः ॥५४
अथर्ववेदो राजेंद्र मुखाच्चाप्युत्तरान्नृप ।
ऋषिश्चापि तथा राजञ्छौनको लोकपूजितः ॥५५
यत्तन्मुखं महाबाहो पञ्चमं लोकविश्रुतम् ।
अष्टादश पुराणानि सेतिहासानि भारत ॥५६
निर्गतानि ततस्तस्मान्मुखात्कुरुकुलोद्वह ।
तथान्याः स्मृतयश्चापि यमाद्या लोकपूजिताः ॥५७

इसके सर्ग में जो भी जिस प्रकार का हुआ वह उसके सर्ग में स्वयं आविष्ट होता था। जैसे लिग होते हैं वैसी ही ऋतुऐं स्वयं ही एक दूसरी के बाद आ जाया करती हैं ॥५०॥ यहां संसार में लोक को विवृद्धि के लिये देहधारी मुख, बाहु उरु और पैर से अपने-अपने कर्मों को प्राप्त हुआ करते हैं ॥५१॥ हे नृपश्रेष्ठ ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और दोनों वैश्य तथा शूद्र ये चार मुख हैं उनसे वेद निकले हैं ॥५२॥ हे तात ! ऋग्वेद संहिता महात्मा वसिष्ठ के साथ पूर्व मुख से निःसृत हुई थी। हे महाराज ! दक्षिण मुख से याज्ञवल्क्य के साथ यजुर्वेद निकला था। पश्चिम से सामवेद

की संहिता और गौतम ऋषि प्रकट हुए। हे राजेन्द्र! उत्तर मुख से अथर्व वेद और लोक के द्वारा पूजित शौनक ऋषि निकले ।।५३-५५।। हे महावाहो ! पाँचवाँ जो लोक में परम प्रसिद्ध मुख है, उससे इतिहास के सहित अठारह पुराण निकले थे। इसके अनन्तर अन्य लोक पूजित यमादि अनेक स्मृतियाँ भी उस मुख से निकलीं थीं ।।५६-५७।।

ततः स भगवान्देवो द्विधा देहमकारयत् ।
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोभवत् ।।५८
अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभुः ।
तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।।५९
स चकार तपो राजन्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
पतीन्प्रजा नामसृजन्महर्षीनादितो दश ।।६०
नारदं च भृगुं तात कं प्रचेतसमेव हि ।
पुलहं क्रतुं पुलस्त्यं च अत्रिमंगिरसं तथा ।।६१
मरीचिं चापि राजेन्द्र योसावाद्यः प्रजापतिः ।
एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र असृजद्भूरितेजसः ।।६२
अथ देवानृषीन्दैत्यान्सोऽसृजत्कुरुनन्दन ।
यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ।।६३

इसके पश्चात् भगवान् देव ने अपने देह को दो भागों में कर दिया था। अपने देह के जो दो भाग किये गये थे उनमें आधे भाग से वे पुरुष हुए और आधे शेष भाग से नारी बने। उस नारी रूप में प्रभु ने विराज का सृजन किया था। तपस्या करके जिसका सृजन किया था वह स्वयं विराट पुरुष था ।।५८-५९।। उसने तप किया क्योंकि उसे विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की पूर्ण इच्छा हुई थी। आदि में दश प्रजापति महर्षियों का सृजन किया था ।।६०।। उन दश महर्षि प्रजापतियों के नाम ये हैं—नारद, भृगु, कम्, प्रचेतस, पुलह, ऋतु, पुलस्त्य, अत्रि, अंङ्गिरस और मरीचि। हे राजेन्द्र ! मरीचि सबमें प्रथम प्रजापति हुआ है। इनको और अन्य भी बहुत तेज वालों को सृजित किया था ।।६१-६२।। हे

कुरुनन्दन ! इसके पश्चात् उसने देवों की, ऋषियों की, दैत्यों की, राक्षस, यक्ष और पिशाचों की, गन्धर्व, अप्सरा तथा असुरों की सृष्टि की थी ॥६३॥

मनुष्याणां पितृणां च सर्पाणां चैव भारत ।
नागानां च महाबाहो ससर्ज विविधान्गणान् ॥६४
क्षणरुचोऽशनिगणान्रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
धूमकेतूंस्तथाचोल्कानिर्वातान्ज्योतिषांगणान् ॥६५
मनुष्यान्किन्नरान्मत्स्यान्वराहांश्च विहंगमान् ।
गजानश्वानथ पशून्मृगान्व्यालांश्च भारत ॥६६
कृमिकीटपतंगांश्च यूकालिक्षकमत्कुणान् ।
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥६७
एवं स भास्करो देवः ससर्ज भुवनत्रयम् ।
येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ॥६८
कथयिष्यामि तत्सर्वं क्रमयोगं च जन्मनि ।
गजा व्याला मृगास्तात पशवश्च पृथग्विधाः ॥६९
पिशाचा मानुषा तात रक्षांसि च जरायुजाः ।
द्विजास्तु अडंजाःसर्पा नक्रा मत्स्याःसकच्छपाः ॥७०

हे भारत ! मनुष्य, पितृगण, सर्प, वर्ग, नाग और विविध गणों की रचना की थी ॥६४॥ क्षणरुच, अशनिगण, रोहितेन्द्रधनुष, धुमकेतु तथा उल्का निवात, ज्योतिर्गण, मनुष्य, किन्नर, मत्स्य वराह और विहङ्गमों का सृजन किया । गज, अश्व, पशु मृग और व्यालों की सृष्टि की थी ॥६५-६६॥ कृमि, कीट, पतङ्ग, यूका, लिक्षा और मत्कुणों की रचना की थी । सब प्रकार के दर्शन करने वाले मशकों का सृजन किया तथा विविध भाँति के पृथक स्थावर की रचना की ॥६७॥ इस तरह से उस भास्कर देव ने इस भुवन त्रय का निर्माण किया था । यहाँ पर जिन प्राणियों के जैसे भी कर्म थे वे बतला दिये हैं ॥६८॥ अब आगे जन्म में वह सब क्रम योग बताया जायगा । हे तात ! गज, व्याल, मृग और पृथक प्रकार के पशु वर्ग, पिशाच, मानुष, राक्षस, ये सब जरायुज होते हैं । पक्षी, सर्प, नक्र, मत्स्य और कच्छप ये सब अण्डज होते हैं । जेर

में उत्पन्न होने वाले जरायुज और अण्डों से उत्पत्ति रखने वाले जीव अण्डज कहे जाते हैं ॥६९-७०॥

एवंविधानि यानीह स्थलजान्यौदकानि च ।
स्वेदजं दशमशकं यूकालिक्षकमत्कुणाः ॥७१
ऊष्मणा चोपजायन्ते यच्चान्यत्किंचिदीदृशम् ।
उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकांडप्ररोहिणः ॥७२
ओषध्यः फलपाकांता नानाविधफलोपगाः ।
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ॥७३
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ।
गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ॥७४
बीजकांडरुहाण्येव प्रताना वल्लय एव च ।
तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्म हेतुना ॥७५
अन्तः संज्ञा भवंत्येते सुखदुःखसमन्विताः ।
एतावत्यस्तु गतयः प्रोद्भूताः कुरुनन्दनः ॥७६
तस्माद्देवाद्दीप्तिमन्तो भास्कराच्च महात्मनः ।
घोरेऽस्मिंस्तात संसारे नित्यं सततयायिनि ॥७७

इस उक्त प्रकार के जीव हैं जिनमें यहाँ कुछ तो स्थल भाग में उत्पन्न होते हैं और कुछ इनमें ऐसे प्राणी हैं जो जल भाग में जन्म धारण किया करते हैं। दश, मशक, यूका, लिक्षा और मत्कुण ये स्वेदज कहे जाते हैं क्योंकि ये सब ऊष्मा से ही उत्पन्न हुआ करते हैं। अन्य कुछ इस प्रकार के प्राणी भी होते हैं जो उद्भिज्ज कहे जाते हैं। ये सब स्थावर सृष्टि वाले हैं और बीज काण्ड से प्ररोहण प्राप्त किया करते हैं ॥७१-७२॥ इस तरह से जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज चार प्रकार की सृष्टि हुई। औषधियाँ फल पाक के अन्त वाली, नाना प्रकार के फलों वाली, पुष्प रहित और फल वाली होती हैं जो कि वनस्पतियाँ कही जाती हैं ॥७३॥ वृक्ष दो प्रकार के होते हैं। कुछ तो ऐसे वृक्ष हैं जो पुष्प वाले ही हुआ करते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो पुष्प और फल दोनों के रखने वाले होते हैं। गुच्छ, गुल्म अनेक प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार से तृण

की भी विभिन्न जातियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं ।।७४।। बीज और काण्ड से प्ररोहण प्राप्त करने वाली प्रतान तथा बल्ली होती हैं। बहुत प्रकार के कर्मस्वरूप हेतु के तम से सब वेष्टित हुआ करते हैं ।।७५।। ये सब अपने अन्दर ही थोड़ा सा ज्ञान रखने वाले होने के कारण जड़ सृष्टि वाले कहे जाते हैं किन्तु उन्हें भी सुख और दुःख का अनुभव अवश्य ही होता है अतः ये सुख दुःख से समन्वित हैं। हे कुरुनन्दन! इतनी गतियाँ प्रोद्भुत होती हैं। ये सब महान् आत्मा वाले उसी भास्कर देव से दीप्ति वाले होते हैं और निरन्तर गमनशील इस घोर संसार में प्रकट हुआ करते हैं ।।७६-७७।।

एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं राजँल्लोकगुरुं परम् ।
तिरोभूतः स भूतात्मा कालं कालेन पीडयन् ।।७८
यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ।।७९
तस्मिन्स्वपिति राजेन्द्र जन्तवः कर्मबन्धनाः ।
स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानि मृच्छति ।।८०
युगपत्तु प्रलीयंते यदा तस्मिन्महात्मनि ।
तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति भारत ।।८१
तमो यदा समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः ।
न नवं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ।।८२
यदाहंमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च ।
समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्ति विमुञ्चति ।।८३
एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं जगत्प्रभुः ।
संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ।।८४

इस प्रकार वह इस जगत् का सृजन करके काल से काल को पीड़ित करता हुआ भूतात्मा परमलोक गुरु में तिरोभूत हो जाता है ।।७८।। जब वह देव जाग्रत रहता है, तब यह जगत् भी चेष्टा वाला रहता है और जब वह शान्त आत्मा वाला होकर सो जाता है तब यह सब जगत् निमीलित हो जाता है ।।७९।। हे राजेन्द्र ! उसके शयन करने पर कर्म के बन्धन से

युक्त ये समस्त जन्तुगण अपने कर्मों से निवर्तित हो जाया करते हैं और मन ग्लानि को प्राप्त होता है ॥८०॥ जिस समय उस महात्मा में सब एक ही साथ प्रलीन हो जाया करते हैं तब यह समस्त भूतों का आत्मा सुख पूर्वक शयन किया करता है ॥८१॥ जिस समय में तमोगुण का समाश्रय करके इन्द्रियों के सहित चिरकाल तक स्थित रहता है और कोई भी नया कर्म नहीं करता है उस समय मूर्ति से उत्क्रान्त होजाता है ॥८२॥ जब यह अहंमात्रिक होकर स्थाष्णु और चरिष्णु बीज में समाविष्ट हो जाता है उस समय संसृष्ट होता हुआ मूर्त्ति को त्याग देता है ॥८३॥ इस प्रकार से वह प्रभु इस जगत् को जाग्रत् और स्वप्नों से संजीवित किया करता है और अव्यय वह अजस्त प्रमापित करता है ॥८४॥

कल्पादौ सृजते तात अन्ते कल्पस्य संहरेत् ।
दिनं तस्येह यत्तात कल्पांतमिति कथ्यते ॥८५
कालसंख्या ततस्तस्य कल्पस्य शृणु भारत ।
निमेषा दश चाष्टौ च अक्षगः काष्ठा निगद्यते ॥८६
त्रिंशत्काष्ठाःकलामाहुःक्षणस्त्रिंशत्कला स्मृताः ।
मुहूर्तमथ मौहूर्ता वन्दति द्वादश क्षणम् ॥८७
त्रिंशन्मुहूर्तमुद्दिष्टमहोरात्रं मनीषिभिः ।
मासस्त्रिंशदहोरात्रं द्वौद्वौ मासावृतुः स्मृतः ॥८८
ऋतुत्रयमप्ययनमयने द्वे तु वत्सरः ।
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ॥८९
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ।
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥९०
कर्म चेष्टास्वहः कृष्णेः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।
दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥९१
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्वाद्दक्षिणायनम् ।
ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं महीपते ॥९२

हे तात ! वह कल्प के आदि में इस जगत् का सृजन करता है और कल्प के अन्त में इस जगत् का संहार कर देता है । यहाँ जो उसका दिन

है वह कल्पान्त नाम से कहा जाता है ॥८५॥ हे भारत ! इसके अनन्तर कल्प के काल की संख्या का श्रवण करो। नेत्रों के अठारह जो निमेष होते हैं वह एक काष्ठा कही जाती है। अर्थात् अठारह निमेषों की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठा की एक कला होती है और तीस कला का एक क्षण होता है तथा बारह क्षणों का एक मुहूर्त्त होता है। क्षण को मौहूर्त्त भी कहा जाता है ॥८६-८७॥ मनीषियों ने तीस मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र बताया है। अहोरात्र का अर्थ एक दिन और एक रात्रि होता है। तीस अहोरात्र का एक मास होता है और दो-दो मास का एक ऋतु होता है ॥८८॥ तीन ऋतुओं का एक अयन होता है। दो अयन का एक वर्ष होता है। सूर्यदेव मानुष और दैविक अहो रात्रों का विभाजन करते हैं। अर्थात् अहोरात्र मानुष और दैविक दो प्रकार के होते हैं। अहोरात्र में जो रात्रि होती है वह प्राणियों के स्वप्न (शयन) के लिये हुआ करती है तथा दिन का समय विविध कर्मों के करने की चेष्टा के लिये हुआ करता है। पितृगण की रात्रि और दिन मास होता है जिसमें पक्षों का प्रविभाग किया जाता है ॥८९-९०॥ कर्मों कीं चेष्टाओं में कृष्ण पक्ष दिन होता है और मास का शुक्ल पक्ष रात्रि है जोकि स्वप्न के लिए होती है। दैविक रात्रि और दिन वर्ष होता है। उसका भी विभाग किया जाता है। वर्ष में जो उत्तरायण होता है, वह देवों का दिन और जो दाक्षिणायन होता है वही देवों की रात्रि होता है। ब्राह्म दिन रात्रि का प्रमाण बताया है सो हे महीपते ! उसका श्रवण करो ॥९१-९२॥

एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोध मे।
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ॥९३

तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः।
त्रेता त्रीणि सहस्राणि वर्षाणि च विदुर्बुधाः ॥९४

शतानि षट् च राजेन्द्र सन्ध्यासन्ध्यांशयोः पृथक्।
वर्षाणां द्वे सहस्रे तु द्वापरे परिकीर्तिते ॥९५

चत्वारि च शतान्याहुः सन्ध्यासन्ध्यांशयोर्बुधः ।
सहस्रं कथितं तिष्ये शतद्वयसमन्वितम् ।।९६
एषा चतुर्युगस्यापि संख्या प्रोक्ता नृपोत्तम ।
यदेतत्परिसंख्या तमादावेव चतुर्युगम् ।।९७
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ।
दैविकानां युगानां तु सहस्रपरिसंख्यया ।।९८

युगों में एक-एक युग का क्रम से ब्रह्मा का दिन और रात्रि समझनी चाहिए । ब्रह्मा के चार सहस्र वर्षों का कृत युग होता है । उसकी उतनी शती सन्ध्या हैं और उसी प्रकार का सन्ध्यांश होता है । बुध लोग त्रेतायुग को तीन सहस्र वर्षों का बताया करते हैं ।।९३-९४।। हे राजेन्द्र ! छै सौ छै इसके पृथक् सन्ध्या तथा सन्ध्याँश होते हैं । दो सहस्र वर्षों का त्रेता के पश्चात् द्वापर युग होता है ।।९५।। इसके सन्ध्या और सन्ध्यांश चार सौ होते हैं । तिष्य में एकसहस्र वर्ष कहे गये हैं जो कि दो सौ सन्ध्या-संध्यांश से युक्त होता है ।।९६।। हे नृपोत्तम ! यह चारों युगों की संख्या बतादी गई है । इसकी जो परि संख्या है वह आदि में हो चतुर्युग बतादी गई है ।।९७।। यह बारह सहस्र देवताओं का युग होता है । इस प्रकार दैविक युगों की जब एक सहस्र परिसंख्या होती है, तब ब्रह्मा का एक दिन होता है ।।९८।।

ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरुच्यते ।
एतद्युगसहस्रांतं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ।।९९
रात्रिं च तावतीमेव तेहोरात्रविदो जनाः ।
ततोऽसौ युगपर्यंते प्रसुप्तः प्रति बुध्यते ।।१००
प्रतिबुद्गस्तु सृजति मनः सदसदात्मकम् ।
मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।।१०१
विपुलं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ।
विपुलात्तु विकुर्वाणात्सर्वगंधवहः शुचिः ।।१०२
वलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः ।
वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ।१०३

उत्पद्यते विचित्रांशुस्तस्य रूपं गुणं विदुः ।
तस्मादपि विकुर्वाणादापो जाताः स्मृता बुधैः ॥१०४
तासां गुणो रसो ज्ञेयः सर्वलोकस्य भावनः ।
अद्भ्यो गंधगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥१०५

ब्रह्मा का जैसा दिन होता है उतने ही परिमाण की ब्रह्मा की रात्रि हुआ करती हैं । यह युगों के सहस्र का अन्त ब्राह्म पुण्य दिन कहा गया है ॥९९॥ उतनी ही दिन के बराबर रात्रि होती है । ऐसे दिन और रात्रि का एक अहोरात्र जानना चाहिए । इस तरह से एक युग पर्यन्त वह प्रसुप्त रहकर फिर जागते हैं ॥१००॥ जब यह ब्रह्मा प्रतिवुद्ध होजाते हैं तो फिर जगकर सद् और असद् स्वरूप वाले मन का सृजन किया करते हैं । सृजन करने की इच्छा से प्रेरणा प्राप्त करने वाला यह मन सृष्टि किया करता है ॥१०१॥ उससे विपुल अर्थात् नभ उत्पन्न होता है उसका गुण शब्द होता है । विपुल से जब वह विकुर्वाण होता है तो सर्वगन्धों का वहन करने वाला वायु उत्पन्न होता है ॥१०२॥ वायु बलवान् उत्पन्न हो जाता है तो उसका गुण स्पर्श कहा गया है । विकुर्वाण वायु से फिर तम का नोदन करने वाला विरोचिष्णु उत्पन्न होता है ॥१०३॥ इस उत्पन्न हुए विचित्रांशु का गुण रूप होता है । जब यह भी विकुर्वाण अर्थात् विकार युक्त होता है तो इससे जल उत्पन्न होते हैं । इन जलों का गुण रस होता है जो कि समस्त लोक को प्रिय लगने वाला होता है । इन जलों से गन्ध के गुण वाली भूमि उत्पन्न होती है । यह इस प्रकार से आदि से सृष्टि का क्रम होता है ॥१०४–१०५॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुक्तं सौमनसं युगम् ।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वंतरमिहोच्यते ॥१०६
मन्वंतराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च ।
तथाप्यहे सदा ब्राह्मे मनवस्तु चतुर्दश ॥१०७
कथ्यन्ते कुरुशार्दूल संख्यया पन्डितैः सदा ।
मनोः स्वायंभुवस्येह षड्वंश्या मनवोऽपरे ॥१०८

सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वाः महात्मानो महौजसः ।
सावर्णयस्तथा पञ्चभौत्यो रौच्यस्तथापरः ।।१०९
एते भविष्या मनवः सप्त प्रोक्ता नृपोत्तम ।
स्वेस्वेन्तरे सर्वमिदं पालयन्ति चराचरम् ।।११०
एवंविधं दिनं तस्य विरिंचेस्तु महात्मनः ।
तस्यांते कुरुते सर्गं यथेदं कथितं तव ।।१११
क्रीडन्निवै तत्कुरुते परमेष्ठी नराधिप ।
चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ।।१२२

जो बारह सहस्र वाला देवों का युग अभी बताया गया है उसको इकहत्तर से गुणित करने पर एक मन्वन्तर कहा जाता है ।।१०६।। इस तरह असंख्य मन्वन्तर होते हैं और उनका सर्ग और संहार भी होता है । तो भी ब्राह्म दिन में अर्थात् ब्रह्मा के दिन में चौदह मनु हुआ करते हैं ।।१०७।। हे कुरुशार्दूल ! पण्डितों के द्वारा सदा संख्या इस प्रकार से कही जाती हैं । यहाँ पर स्वायम्भुव मनु के दूसरे वंश में होने वाले छै मनु हैं ।।१०८।। ये महान् आत्मा वाले और महान् ओज से युक्त अपनी-अपनी प्रजाओं की सृष्टि करने वाले थे । सावर्णय, पञ्चभौत्य तथा अपरशैच्य मनु हैं । हे नृपोत्तम ! ये सात आगे होने वाले मनुगण कहे गये हैं । इतर सब अपने-अपने इस चराचर का पालन किया करते हैं ।।१०९-११०।। इस प्रकार का महात्मा विरञ्चि का दिन होता है । उसके अन्त में सर्ग को किया करता है जैसा कि तुम्हारे सामने मैंने कहा है ।।१११।। हे नरों के अधिप ! परमेष्ठी पितामह इस जगत् का सृजन क्रीड़ा की भाँति किया करते है । पूरा धर्म चार पाद वाला होता है और सत्य भी होता है जो कि कृतयुग में था ।।११२।।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ।।११३
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ।।११४

जन्म विप्रस्य राजेन्द्र धर्मार्थमिह कथ्यते ।
उत्पन्नः सर्वसिद्धयर्थं याति ब्रह्मसदो नृप ।।११५
महर्लोकाज्जनोलोकं ब्रह्मलोकं च गच्छति ।
ब्रह्मत्वं च महाबाहो याति विप्रो न संशयः ।।११६
ब्रह्मत्वं नाम दुष्प्रापं ब्रह्मलोकेषु सुव्रत ।।११७
ब्रह्मत्वं कीदृशं विप्रो ब्रह्मलोकं च गच्छति ।
नाममात्रोऽथ किं विप्रो ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः सदा ।
याति ब्रह्मन्गुणाः केस्युर्ब्रह्मप्राप्तौ ममोच्यताम् ।।११८

जगत् के समस्त भूतों में प्राणी श्रेष्ठ होते हैं । प्राणियों में जो बुद्धि जीवी प्राणी होते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं । बुद्धि से अपना जीवन यापन करने वाले प्राणी बुद्धिजीवी कहे जाया करते हैं । बुद्धिमानों में भी नर श्रेष्ठ हैं और नरों में भी ब्राह्मण परम श्रेष्ठ माने जाया करते हैं ।।११३।। ब्राह्मणों में भी जो विद्वान् होते है वे श्रेष्ठ होते हैं । विद्वानों में भी कृत बुद्धि अर्थात् प्रतिभा वाले श्रेष्ठ हैं । कृति बुद्धियों में भी कर्त्ता अर्थात् करने वाले श्रेष्ठ हैं और कर्त्ताओं में भी ब्रह्म के ज्ञाता श्रेष्ठ होते हैं ।।११४।। हे राजर्षे ! यहाँ संसार में ब्राह्मण का जन्म धर्म के लिये ही कहा जाता है । समस्त सिद्धि के लिये उत्पन्न होकर ब्रह्मपद को वह प्राप्त होता है ।११५। महर्लोक से जनलोक को और ब्रह्मलोक को जाया करता है । हे महाबाहुओं वाले ! विप्र अन्त में ब्रह्मत्व को अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।।११६।। हे सुव्रत ! शतानीक ने कहा—ब्रह्म लोकों में ब्रह्मत्व बहुत कठिन और दुष्प्राप्य होता है तो वह ब्रह्मत्व किस प्रकार का होता है जिसको विप्र ब्रह्म लोक में जाकर भी फिर बाद में प्राप्त किया करता है ? क्या नाम मात्र का विप्र सदा ब्रह्मा के ब्रह्मत्व को प्राप्त किया करता है । हे ब्रह्मन् ! वे कौनसे गुण हुआ करते हैं जो कि ब्रह्म की प्राप्ति में होने चाहिए । आप कृपा कर मुझे यह सब बताइये ।।११७-११८।।

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।।११९

ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु।
गर्भादानादयो ये च संस्कारा यस्य पार्थिव ॥१२०
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च निर्वृत्ताः शास्त्रतो नृप।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वं च मानद।
संस्काराः सर्वथा हेतुर्ब्रह्मत्वे नात्र संशयः ॥१२१
संस्काराः के मता ब्रह्मन्ब्रह्मत्वे ब्राह्मणस्य तु।
शंस मे द्विजशार्दूल कौतुकं हि महन्मम ॥१२२
साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु।
मनीषिभिर्महाबाहो शृणु सर्वानशेषतः ॥१२३
गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतोन्नयनं तथा।
जातकर्मान्निाशनं च चूडोपनयनं नृप ॥१२४
ब्रह्मव्रतानि चत्वारि स्नानं च तदनंतरम्।
सधर्मचारिणीयोगो यज्ञानां कर्म मानद ॥१२५
पंचानां कार्यमित्याहुरात्मनः श्रेयसे नृप।
देवपितृमनुष्याणां भूतानां ब्रणस्तह्मथा ॥१२६

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहो ! बहुत अच्छा प्रश्न तुमने पूछा है। अब तुम मेरा वचन सुनो। वेद शास्त्रों में ब्राह्मण के जो संस्कार बताये गये हैं और गर्भाधान आदि संस्कार होते हैं वे कुल ४८ संस्कार ब्राह्मण के होते हैं। जिसके शास्त्र की विधि से ये सब पूरे-पूरे किये गये हैं वह ब्राह्मण ब्रह्मा के पद को प्राप्त करता है और हे मानद ! वह ब्रह्मत्व को भी प्राप्त करता है। ये संस्कार सब प्रकार से ब्रह्मत्व की प्राप्ति में हेतु हुआ करते हैं। इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥११९-१२१॥ राजा शतानीक ने कहा—हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण के ब्रह्मत्व का स्वरूप प्राप्त करने में कौन से संस्कार माने गये हैं ? हे द्विजों में शार्दूल ! मुझे हृदय में इसके जानने का बड़ा कुतूहल हो रहा है। आप कृपाकर मुझे समझाइये ॥१२२॥ महर्षि सुमन्तु ने शतानाक राजा के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—हे महाबाहो ! बहुत अच्छा प्रश्न है, अब तुम मेरे परम वचन इस

विषय में श्रवण करो। वेदों में और शास्त्रों में ब्राह्मण के जो भी संस्कार कहे गये हैं और मनीषियों ने उनको भली भांति बताया है, उन सबको पूर्णतया अब तुम मुझसे श्रवण करो ॥१२३॥ वे संस्कार क्रम से ये होते हैं—सबसे प्रथम गर्भाधान संस्कार होता है फिर पुंसवन होता है, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूड़ोपनयन, चार ब्रह्मव्रत और उसके अनन्तर स्नान, सहधर्मचारिणी के साथ योग अर्थात् विवाह, पाँच यज्ञों के कर्म का कार्य हे नृप! ये समस्त संस्कार आत्मा के श्रेय के लिये ही होते हैं। देव, पितृगण और मनुष्यों के तथा भूतों के और ब्रह्म के कल्याण के लिये होते हैं ॥१२४-१२६॥

एतेषां चाष्टकाकर्म पार्वणश्राद्धमेव हि।
श्रावणी चाग्रहायणी चैत्री चाश्वयुजी तथा ॥१२७
पाकयज्ञास्तथा सप्त अग्न्याधानं च सत्क्रियाः।
अग्निहोत्रं तथा राजन्दर्शं च विधुसंक्षये ॥१२८
पौर्णमासं च राजेन्द्र चातुर्मास्यानि चापि हि।
निरूपणं पशुवधं तथा सौत्रामणीति च ॥१२९
हविर्यज्ञास्तथा सप्त तेषां चापि हि सत्क्रियाः।
अग्निष्टोमोत्यग्निष्टोमस्तथोक्थ्यः षोडशीं विदुः ॥१३०
वाजपेयोतिरात्रश्च आप्तोर्यामिति वै स्मृतः।
संस्कारेषु स्थिताः सप्त सोमाः कुरुकुलोद्वह ॥१३१
इत्येते द्विजसंस्काराश्चत्वारिंशन्नृपोत्तम।
अष्टौ चात्मगुणस्तात शृणु तानपि भारत ॥१३२
अनसूया दया क्षांतिरनायसं च मंगलम्।
अकार्पण्यं तथा शौचमस्पृहा च कुरूद्वह ॥१३३

इनका अष्टका कर्म, पार्वण श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी, सात पाक यज्ञ, अग्न्याधान, सत्क्रिया तथा हे राजन्! अग्नि होत्र, दर्श, विधु, संक्षय में पौर्णमास और चातुर्मास्य, निरूढ पशु बन्ध, सौत्रामणी, सात हविर्यज्ञ और उनकी सत्क्रियाँ, अग्निष्टोम, अत्याग्निष्टोम,

उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्यामा और सात सोम संस्कारों में स्थित होते हैं। हे कुरुकुलोद्वह ! ये समस्त चालीस द्विजों के संस्कार होते हैं। आठ आत्मगुण होते हैं, उन्हें भी बतलाता हूँ ॥१२७-१३२॥ अनसूया (निन्दा या बुराई का न करना)—दया (प्राणिमात्र पर अनुग्रह रखना), क्षान्ति (क्षमा की भावना), अनायास, मङ्गल, अकार्मण्य, शौच और अस्पृहा ये आठ हैं। ये आत्म गुण होते हैं जिन्हें स्वयं ही आत्मा अपने साथ आरम्भ से ही लेकर संसार में देह धारण करते हैं ॥१३३॥

य एतेष्टगुणास्तात कार्त्यंते वै मनीषिभिः।
एतेषां लक्षणं वीर शृणु सर्वमशेषतः ॥१३४

न गुणान्गुणिनो हंति न स्तौत्यात्मगुणानपि।
प्रहृष्यते नान्यदोषैरनसूया प्रकीर्तिता ॥१३५

अपरे बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा।
आत्मवद्वर्तनं यत्स्यात्सा दया परिकीर्तिता ॥१३६
वाचा मनसि काये च दुःखेनोत्पादितेन च।
न कुप्यति न चाप्रीतिः सा क्षमा परिकीर्तिता ॥१३७

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिंदितैः।
आचारे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम् ॥१३८

शरीरं पीडयते येन शुभेनापि च कर्मणा।
अत्यंतं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥१३९
प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ॥१४०

हे तात ! ये आठ गुण मनीषियों के कहे जाया करते हैं। हे वीर ! अब इन सबका लक्षण पूर्ण रूप से श्रवण करो ॥१३४॥ गुणी के गुणों का जो हनन नहीं करता है और अपने गुणों की प्रशंसा नहीं किया करता है तथा अन्य के दोषों से जो कभी प्रसन्न नहीं होता है वह धर्म असूया कहा जाता है ॥१३५॥ दूसरे के विषय में, बन्धु वर्ग में, मित्र में और द्वेष रखने वाले में भी जो सदा अपने समान ही व्यवहार किया

जाता है वह दया कही गई है ॥१३६॥ मन-वचन और शरीर में उत्पादित दु:ख से भी जो क्रोध नहीं किया करता है और न अप्रीति का भाव ही रखता है उसे क्षमा कहा गया है ॥१३७॥ जो भक्षण करने के योग्य नहीं है उसका परिहार रखना तथा जो अनिन्दित अर्थात् सत् पुरुष हैं उनके साथ संसर्ग रखना तथा आचार में व्यवस्थित रहना, इसी को शौच कहा गया है ॥१३८॥ जिस शुभ कर्म से भी शरीर को पीड़ा उत्पन्न होती है उस कर्म को अत्यन्त रूप से नहीं करना ही अनायास कहा गया है ॥१३९॥ प्रशस्त कार्यों का करना और नित्य ही अप्रशस्त कर्मों का त्याग कर देना, इसी को मङ्गल कहा गया है। इसे समस्त मुनिगण ब्रह्मवादियों ने मङ्गल नाम से पुकारा है ॥१४०॥

एतद्धि मंगलं प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥१४१
स्तोकदपि प्रदातव्यमदीनेनांतरात्मना।
अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं तदुच्यते ॥१४२
यथोत्पन्नेन संतुष्टः स्वल्पेनाप्यथ वस्तुना।
अहिंसया परस्वेषु साऽस्पृहा परिकीर्तिता ॥१०३
वपुर्यस्य तु इत्येतैः संस्कारैः संस्कृतं द्विजः।
ब्रह्मत्वमिह संप्राप्य ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥१४४
वैदिकैःकर्मभिः पुण्यैर्निषेकाद्यैर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥१४५
गभशुद्धि ततः प्राप्य धर्मं चाश्रमलक्षणम्।
याति मुक्ति न संदहः पुराणेस्मिन्नृपोत्तम ॥१४६

अपनी स्वल्प वस्तु मे से भो अन्तरात्मा को दीन न करते हुए जो प्रदान कर देना है और ऐसा दिन-प्रतिदिन थोड़ा बहुत किया जाता है उसे ही अकार्पण्य कहा गया है। जो कुछ भी उत्पन्न हो अर्थात् लब्ध हो उसी में सन्तुष्ट रहते हुए चाहे वह बहुत ही थोड़ा भी क्यों न हो, पराये धन में हिंसा भाव का न रखना ही अस्पृहा कही जाती है। इन संस्कारों से जिसका शरीर संस्कृत किया गया हो वह द्विज यहाँ ब्रह्मत्व को प्राप्त करके निश्चय ही ब्रह्मलोक को जाया करता है ॥१४१-१४४॥

निषेकादि वैदिक पुण्य कर्मों के द्वारा द्विजन्माओं के शरीर का संस्कार करना चाहिए। वह परम पावन हो जाता है और अन्त में मरकर सद्गति को प्राप्त होता है ॥१४५॥ हे नृपोत्तम ! इससे गर्भ की शुद्धि प्राप्त करके और आश्रय के लक्षण वाले धर्म को प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करता है। इस पुराण में कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१४६॥

———

॥ सर्व संस्कार वर्णन ॥

जातकर्मादिसंस्कारान्वर्णानामनुपूर्वशः ।
आश्रमाणां च मे धर्मं कथयस्व द्विजोत्तम ॥१
गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतोन्नयनं तथा ।
जातकर्मान्नप्राशश्च चूड़ा मौंजीनिबंधनम् ॥२
वैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ।
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया श्रुतैः ॥३
महायज्ञैश्च ब्राह्मीयं यज्ञैश्च क्रियते तनुः ।
शृणुष्वैकमना राजन्यथा सा क्रियते तनुः ॥४
प्राङ्नाभिकर्तनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मंत्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥५
नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छंति पार्थिवः ।
द्वादश्यामपरे राजन्मासि पूर्णे तथा परे ॥६
अष्टादशेऽहनि तथाऽन्ये वदन्ति मनीषिणः ।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते च नक्षत्रे च गुणान्विते ॥७

इस अध्याय में गर्भाधान संस्कार से लेकर संक्षेप से समस्त संस्कारों तथा आचमन आदि विधि का वर्णन किया जाता है। शतानोक ने कहा—हे द्विजोत्तम ! समस्त वर्णों के आनुपूर्वी से जातकर्म आदि संस्कारों तथा आश्रमों का जो धर्म है, वह मुझे कृपा पूर्वक सुनाइये ॥१॥ महर्षि सुमन्तु ने कहा—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जात कर्म, अन्न

प्राशन, चूड़ा, मौञ्जी निवन्धन, वैजिक और गार्भिक ये द्विजों के मन को अपभृष्ट किया करते हैं। स्वाध्याय से, व्रतों से, होमों से इज्या से, श्रुत से और महा यज्ञों से तथा यज्ञों से तनु ब्रह्मीय किया जाता है। हे राजन्! तुम एक मन वाले होकर श्रवण करो। जिस प्रकार से यह तनु ब्रह्मीय किया जाया करता है ॥२-४॥ नाभि के नाल के काटने से पूर्व ही पुरुष का जात कर्म किया जाता है। और इसका मन्त्र वाला हिरण्य-मधु और घृत का प्राशन होता है ॥५॥ हे पार्थिव! कुछ विद्वान् नामकरण संस्कार दशमी तिथि में अर्थात् दशवें दिन चाहते हैं, अन्य लोग बारहवें दिन में और कुछ लोग मास के पूर्ण होने पर नामकरण करना ठीक समझते हैं ॥६॥ अन्य मनीषी लोग अठारवें दिन में इस संस्कार का करना उचित बतलाते हैं। जबकि पुण्य तिथि हो, अच्छा मुहूर्त्त हो और गुणों से युक्त नक्षत्र हो, तभी नामकरण करना चाहिए ॥७॥

मंगल्यं तात विप्रस्य शिवशर्मेतिपार्थिव।
राजन्यस्य विशिष्टं तु इन्द्रवर्मेति कथ्यते ॥८
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य च जुगुप्सितम्।
धनवर्धनेति वैश्यस्य सर्वदासेति हीनजे ॥९
मनुना च तथा प्रोक्तं नाम्नो लक्षणमुत्तमम्।
शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ॥१०
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्।
स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थंमनोरमम् ॥११
मंगल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्।
द्वादशेऽहनि राजेन्द्र शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥१२
चतुर्थे मासि कर्तव्यं तथान्येषां मतं विभो।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यथेष्टं मंगलं कुले ॥१३
चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामनुपूर्वशः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं कुरुनन्दन ॥१४

से पार्थिव! विप्र का मङ्गल सूचक शिवशर्मा ऐसा नाम हो। क्षत्रिय का नाम कुछ विशेषता से युक्त इन्दु वर्मा जैसा नाम किया जाता है ॥८॥

वैश्य का नाम ऐसा होना चाहिए जो धन से संयोग रखने वाला हो तथा शूद्र का नाम जुगुप्सा पूर्ण होना चाहिए। जैसे वैश्य का नाम धनवर्धन यह हो और शूद्र के नाम में सर्वदास आदि प्रकार होना चाहिए ॥९॥ मनुमहर्षि ने उस प्रकार से कहा है कि नाम का उत्ताम लक्षण होता है। ब्राह्मण का नाम शर्म वाला होना चाहिए, राजा अर्थात् क्षत्रिय का नाम रक्षा से समन्वित होना चाहिए ॥१०॥ वैश्य का नाम पुष्टि से संयुक्त होना चाहिए। शूद्र का नाम प्रेष्य से संयुक्त होना चाहिए। स्त्रियों के नाम सुख और उद्यम से परिपूर्ण—स्पष्ट अर्थ वाला और सुन्दर होना चाहिए ॥११॥ नाम मंगल सूचक, दीर्घ वर्ण जिसके अन्त में हो ऐसा और आशीर्वाद के अभिधान वाला होना चाहिए। हे राजेन्द्र! बारहवें दिन में शिशु का गृह से बाहिर निष्क्रमण करना चाहिए ॥१२॥ इस शिशु के निष्क्रमण के विषय में अन्य विद्वानों का ऐसा भी मत है कि यह चौथे मास में करना चाहिए। छटे मास में अन्न प्राशन करे और कुल गत जो भी मांगलिक माना जाता हो उसके अनुसार यथेच्छया इसे करे ॥१३॥ द्विजातियों का चूड़ा कर्म संस्कार सब का आनुपूर्वशः प्रथम वर्ष में या तृतीय वर्ष में करना चाहिए ॥१४॥

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादिकादशे राजन्क्षत्रियस्य विनिर्दिशेत् ॥१५
द्वादशेऽब्देपि गर्भात्तु वैश्यस्य व्रतमादिशेत् ।
ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ॥१६
बलार्थिना तथा राज्ञः षष्ठेऽब्दे कार्यमेव हि ।
अर्थकामेन वैश्यस्य अष्टमे कुरुनन्दन ॥१७
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नीतिवर्तते ।
द्वाविंशतेः क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥१८
अत ऊर्ध्वं तु ये राजन्यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्यास्तोमादृते क्रतोः ॥१९
न चाप्येभिरपूतैस्तु आपद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मं यौनं च संबन्धमाचरेद्ब्राह्मणैः सह ॥२०

भवन्ति राजंश्चर्माणि व्रतिनां त्रिविधानि च ।
कार्ष्णारौरववास्तानि ब्रह्मक्षत्रविशां नृप ।।२१

ब्राह्मण का उपनयन संस्कार गर्भ से आठवें वर्ष में करना चाहिए। गर्भ से एकादश वर्ष में क्षत्रिय का उपनयन संस्कार निर्दिष्ट किया जाता है। गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य का व्रत कहा गया है। जो ब्रह्म वर्चस प्राप्त कराने की इच्छा वाला हो उसे ब्राह्मण का गर्भ से पाँचवें वर्ष में ही उपनयन कर्म कराना चाहिए। तथा बल के चाहने वाले क्षत्रिय का छटवें वर्ष में कराने और अर्थ की कामना वाले वैश्य का आठवें वर्ष में करना चाहिए ।।१५-१७।। सोलह वर्ष तक ब्राह्मण को सावित्री का अतिवर्त्तन नहीं होता है, बाईस वर्ष तक क्षत्रिय का और चौबीस वर्ष तक वैश्य का अतिवर्त्तन नहीं हुआ करता है। हे राजन् ! इस बताई हुई अवस्थाओं से ऊपर जो द्विजातिगण यथासमय संस्कृत न हों वे सावित्री से पतित व्रात्य हो जाया करते हैं और व्रात्य स्तोम नामक क्रतु के बिना ये अपूत होते हैं और कभी आपत्ति काल में भी इन अपूतों अर्थात् अपवित्रों के साथ ब्राह्म और यौन सम्बन्ध नहीं करना चाहिए। ऐसे ब्राह्मण आदि ब्राह्मण ही नहीं रहते हैं। हे नृप ! व्रतियों के तीन तरह के क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के चर्म कार्ष्ण, रौरव और बास्त हो जाया करते हैं ।।१८-२१।।

वसीरंश्चानुपूर्व्येण वस्त्राणि विविधानि तु ।
ब्रह्मक्षत्रविशो राजञ्छाणक्षौमादिकान च ।।२२
मौंजी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णाकार्या विप्रस्य मेखला ।
क्षत्रियस्य च मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतांतवी ।।२३
मुञ्जालाभे तु कर्तव्या कुशाश्मतकबल्वजैः ।
त्रिवृता ग्रंथिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव च ।।२४
कार्पासमुपवीतं स्वाद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ।
शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ।।२५
पुष्कराणि तथा चैषां भवंति त्रिविधानि तु ।
ब्रह्मणो बैल्वपालाशौ तृतीयं प्लक्षजं नृप ।।२६

वाटखादिरौ क्षत्रियस्तु तथान्यं वेतसोद्भवम् ।
पैलावोदुंबरौ वैश्यस्तथाश्वत्थजमेव हि ॥२७
दंडानेतान्महाबाहो धर्मतोऽर्हंति धारितुम् ।
केशांतिको ब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः ॥२८
ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तुनासांतिको विशः ।
ऋजवस्ते तु सर्वे स्युर्ब्राह्मणाः सौम्यदर्शनाः ॥२९

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य क्रम से शाण और क्षौम आदि विविध प्रकार के वस्त्रों को धारण करें ॥२२॥ त्रिवृत्समा अर्थात् तीन लड़ों वाली मौञ्जी ब्राह्मण की होती है ब्राह्मण की मेखला स्तोक्ष्णा होनी चाहिए। क्षत्रिय की मौर्वीज्या होती है और वैश्य की मेखला सन के तन्तुओं की होती है ॥२३॥ यदि मूंजे की प्राप्ति न हो तो कुश अश्मन्तक और वल्वजों की मेखला बनानी चाहिए। वह त्रिवृता हो, उसमें एक ग्रन्थि, तीन या पाँच हो सकती हैं ॥२४॥ विप्र का उपवीत कपास के सूत का होना चाहिए जोकि ऊर्ध्ववृत और त्रिवृत् होता है। क्षत्रिय का उपवीत सन के धागों के द्वारा निर्मित होना चाहिए और वैश्य का उपवीत आविक के धागों दारा निर्मित होना चाहिए ॥२५॥ इन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के पुष्कर (दण्ड) भी तीन प्रकार के हुआ करते हैं। ब्राह्मण का पुष्कर या तो विल्व वृक्ष का होना चाहिए या पलाश (ढाक) का होता है। ये दोनों यदि प्राप्त न हों तो तीसरा प्लक्ष का होता है ॥२६॥ क्षत्रिय का वटवृक्ष या खदिर का होता है और तीसरा वेतस का भी हुआ करता है। वैश्य का पुष्कर पँलव और गूलर का या तीसरा पीपल के वृक्ष का होता है ॥२७॥ हे महाबाहो ! तीन वर्ण वाले उक्त प्रकार के दण्डों को धारण करने के योग्य होते हैं। ब्राह्मण का दण्ड केशों के समीप तक पहुँचने वाला प्रमाण से बनाना चाहिए ॥२८॥ क्षत्रिय का दण्ड ऊँचाई में ललाट तक पहुंचने वाला और वैश्य का दण्ड नाक तक पहुंचने वाला लम्बा होना चाहिए। ये सभी दण्ड बिल्कुल सीधे होने चाहिए ब्राह्मण के दण्ड देखने में बहुत अच्छे होने चाहिए ॥२९॥

अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः ।
प्रगृह्य चेप्सितं दंडमुपस्थाय च भास्करम् ।।३०
सम्यग्गुरुं तथापूज्य चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि ।
भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ।।३१
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्य भवदुत्तरम् ।
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ।।३२
भिक्षेत भैक्ष्यं प्रथमं या चनं नावमानयेत् ।
सुवर्णं रजतं चान्नं सा पात्रेऽस्य विनिर्दिशेत् ।।३३
समाहृत्य ततो भैक्ष्यं यावदर्थममाय ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ।।३४
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुंक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुंक्ते ऋतं भुक्ते उदयङ्मुखः ।।३५

ये दण्ड मनुष्यों के हृदय में उद्वेग करने वाले नहीं हों। इन दण्डों की छाल भी उनके साथ रहनी चाहिए और अग्नि से ये दूषित नहीं होने चाहिए अर्थात् अग्नि से जले-भुने न हों। इस प्रकार के दण्ड को ग्रहण करके भास्कर भगवान् का उप स्थान करना चाहिए ।।३०।। अपने गुरु की भली-भाँति समर्चा करके उपनयन संस्कार के समय में विधि पूर्वक भिक्षाचरण करना चाहिए। उपनीत अर्थात् उपनयन संस्कार किये जाने वाले ब्राह्मण को भिक्षाचरण करने के समय में 'भवत्' शब्द का पहिले प्रयोग करना चाहिए अर्थात् 'भवति भिक्षां देहि' ऐसा प्रयोग करे ।।३१।। क्षत्रिय इस "भवत्" शब्द को मध्य में प्रयुक्त करे अर्थात् "भिक्षां भवति देहि"—इस तरह से कहे। वैश्य इसी भवत् शब्द का अन्त में प्रयोग करे अर्थात् 'भिक्षां देहि भवति'—ऐसा कहकर भिक्षा की याचना करे। भिक्षा माता से अथवा भगिनी से या माता की निज भगिनी से मांगे। माता को 'भो मातः !' इस प्रकार सम्बोधन करे तथा अन्य को भी ऐसे ही सम्बोधित करके भिक्षा की याचना करे ।।३२।। सर्वप्रथम जिससे भिक्षा की याचना करे उसे इस ब्रह्मचारी का अपमान नहीं करना चाहिए। उसे चाहिए

कि वह इस बटु के पात्र में सुवर्ण, चाँदी या अन्न भिक्षा के रूप में दे ।।३३।। जो भिक्षा प्राप्त हो और जितनी आवश्यक हो तथा उस भिक्षा पात्र में आ सके, उसे लाकर अपने आचार्य गुरुदेव को निवेदित करे। गुरु की आज्ञा प्राप्त कर पूर्व की ओर मुख करके तथा पवित्र होकर और आचमन करके उसे खावे ।।३४।। पूर्वमुख होकर जो खाता है वह आयुष्य की प्राप्ति करता है। दक्षिण मुख वाला यश का लाभ करता है। पश्चिम मुख श्री का लाभ प्राप्त करता है। जो उदङ्मुख होकर भोजन करता है, वह सत्य का भोजन किया करता है ।।३५।।

उपस्पृश्य द्विजो राजन्नन्नमद्यात्समाहितः।
भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ।।३६
तथान्नं पूजयेन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दर्शनात्तस्य हृष्येद्वै मुसीदेच्चापि भारतः ।।३७
अभिनन्द्य ततोऽश्नीवादित्येवं मनुरब्रवीत्।
पूजितं त्वशनं नित्यं बलमोजश्च यच्छति ।।३८
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्।
नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैतत्तथांतरा ।।३९
यस्त्वन्नमन्तरा कृत्वा लोभादत्ति नृपोत्तम।
विनाशं याति स नर इह लोके परत्र च।
यथाभवत्पुरा वैश्यो धनवर्द्धनसंज्ञितः ।।४०

हे राजन्! द्विज को उपस्पर्शन करके समाहित होते हुए अन्न को खाना चाहिए। जब भोजन समाप्त कर ले तब भी आचमन करना चाहिए और जल से भली-भाँति आकाश की ओर छींटे देवे ।।३६।। नित्य ही अन्न का पूजन करना चाहिए और इस अन्न की कोई भी बुराई नहीं करते हुए ही इसका भोजन करे। हे भारत! अन्न के दर्शन करके ही प्रसन्न होना चाहिए और मन में अधिक हर्ष करना चाहिए ।।३७।। महर्षि मनु ने कहा है पहिले अन्न का विशेष अभिनन्दन करके फिर इसका भोजन करना चाहिए। जो अन्न नित्य ही इस प्रकार से पूजित एवं सत्कृत होकर खाया जाता है वह बल और ओज दोनों प्रदान किया करता है ।।३८।। जो

पूजित न होकर ही खाया जाता है वह बल और ओज दोनों को नष्ट कर दिया करता है। उच्छिष्ट (झूटा) अन्न कभी किसी का नहीं खाना चाहिए और इसको तथान्तर नहीं खाना चाहिए ॥३९॥ हे नृपोत्तम ! जो अन्तरा करके लोभ से अन्न को खा लेता है वह मनुष्य इस लोक में और परलोक में दोनों ही जगह विनाश को प्राप्त होता है। जिस तरह पहिले समय में धनवर्द्धन नाम वाला वैश्य विनष्ट होगया था ॥४०॥

स कथमंतरं पूर्वमन्नस्य द्विजसत्तम ।
किमन्तरं तथान्नस्य कथं वा तत्कृतं भवेत् ॥४१
पुरा कृतयुगे राजन्वैश्यो वसति पुष्करे ।
धनवर्धननामावै समृद्धो धनधान्यतः ॥४२
निदाघकाले राजेन्द्र स कृत्वा वैश्वदेविकम् ।
सपुत्रभ्रातृभिः सार्धं तथा वै मित्रबन्धुभिः ।
आहारं कुरुते राजन्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ॥४३
अथ तद्भुञ्जतस्तस्य अन्नं शब्दो महानभूत् ।
करुणाः कुरुशार्दूल अथ तं स प्रधावितः ॥४४
त्यक्त्वा स भोजनं यावन्निष्क्रान्तो गृहबाह्यतः ।
अथ शब्दस्तिरोभूतः स भूयो गृहमागतः ॥४५
तमेव भाजनं गृह्य आहारं कृतवान्नृप ।
भुक्तशेषं महाबाहो आहारं स तु भुक्तवान् ॥४६
भुक्त्वा स शतधा जातस्तस्मिन्नेव क्षणे नृप ।
तस्मादन्नं न राजेन्द्र अश्नीयादंतरा क्वचित् ॥४७
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ।
रसो भवत्यत्यनशनाद्रसाद्रोगः प्रवर्तते ॥४८

शतानीक राजा ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! पहिले अन्न का अन्तर कैसे उसने किया था और अन्न का अन्तर क्या होता है तथा वह किस प्रकार से उसके द्वारा किया हुआ होता है ? ॥४१॥ सुमन्तु महर्षि ने कहा—प्राचीन समय में कृतयुग में धनवर्धन नाम वाला वैश्य जो कि धन-धान्य

से पूर्ण समृद्ध था, पुष्कर में रहता था ॥४२॥ हे राजेन्द्र ! ग्रीष्म में उसने वैश्वदेविक किया था और फिर वह अपने पुत्र भाइयों के तथा मित्र और बन्धुओं के साथ भक्ष्य भोज्य से युक्त भोजन कर रहा था ॥४३॥ इसके अनन्तर जब कि वह अन्न को खा रहा था तब एक महान् शब्द हुआ था। हे कुरुशार्दूल ! उस शब्द के पीछे वह कारुण्य से भरा हुआ दौड़ा ॥४४॥ भोजन का त्याग करके जैसे ही घर से बाहिर निकला था कि वह शब्द तिरोहित हो गया था। वह फिर घर में आ गया था ॥४५॥ हे नृप ! उस ही पात्र को लेकर उसने अपना आहार किया अर्थात् भोजन किया था। जो आहार पहिले खाने से बचा हुआ था उसी आहार को उसने खा लिया था ॥४६॥ हे नृप ! उस आहार को खाकर वह उसी क्षण में सौ टुकड़ों में नष्ट होगया था। इसलिए हे राजेन्द्र ! इस तरह अन्तरा वाले अन्न को कभी नहीं खाना चाहिए ॥४७॥ कभी अत्यधिक भोजन भी नहीं करे और उच्छिष्ट होकर अर्थात् झूठे मुँह वाला हो कर कहीं भी नहीं जाना चाहिए। अत्यशन से रस हो जाता है और रस से रोग की प्रवृत्ति हो जाया करती है ॥४८॥

स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् ।
न भवंति रसे जाते नराणां भरतर्षभ ॥४९
अनारोग्यमनायुस्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्ट तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥५०
यक्षभूतपिशाचानां रक्षसां च नृपोत्तम ।
गम्यो भवति वै विप्र उच्छिष्टो नात्र संशयः ॥५१
शुचित्वमाश्रयेत्तस्माच्छुचित्वान्मोदते दिति ।
सुखेन चेह रमते इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥५२

हे भरतर्षभ ! मनुष्यों को रस के उत्पन्न हो जाने पर स्नान, दान, जप, होम और पितृगण तथा देवों का पूजन यह सब कुछ भी नहीं होते हैं ॥४९॥ अतिभोजन आरोग्य, आपुण्य और स्वर्ग का देने वाला नहीं होता है। अधिक खाना अपुण्य है और लोक के विद्वेष रखने वाला होता है। इसलिये इसका सर्वथा त्याग ही कर देना चाहिए ॥५०॥ जो

विप्र उच्छिष्ट रहता है वह यक्ष, भूत, पिशाच और राक्षसों को गम्य होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।५१।। इस कारण से सर्वदा शुचिता का ही आश्रय लेना चाहिए अर्थात् पवित्र रहना चाहिए शुचित्व रखने से स्वर्ग में सुख एवं प्रसन्नता प्राप्त किया करता है । शुचिता शील पुरुष यहाँ लोक में भी सुख के साथ रमण किया करता है यह वैदिकी श्रुति है अर्थात् ऐसा वेद ने कहा है ।।५२।।

।। सावित्री-माहात्म्य ।।

केशांतः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबंधोर्द्वाविंशे वैश्यस्य त्र्यधिके ततः ।।१
अमंत्रिका सदा कार्या स्त्रीणां चूडा महीपते ।
संस्कारहेतोः कायस्य यथाकालं विभागशः ।।२
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो नैगमः स्मृतः ।
निवसेद्वा गुरोर्वापि गृहे वाग्निपरिक्रिया ।।३
एष ते कथितो राजन्नौपनायनिको विधिः ।
द्विजातीनां महाबाहो उत्पत्तिव्यंजकः परः ।।४
कर्मयोगमिदानीं ते कथयामि महाबल ।
उपनीय गुरुः शिष्यं प्रथमं शौचमादिशेत् ।।५
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ।
अध्यापयेत्तु सच्छिष्यान्सदाचांत उदङ्मुखः ।।६
ब्रह्मांजलिकरो नित्यमध्याप्यो विजितेंद्रियः ।
लघुवासास्तथैकाग्रः सुमान सुप्रतिष्ठितः ।।७

इस अध्याय में प्रणव के अर्थ के वर्णन के साथ सावित्री के माहात्म्य का वर्णन तथा उपनयन संस्कार की विधि का वर्णन किया जाता है । सुमन्तु महर्षि ने कहा—ब्राह्मण का केशान्त सोलहवें वर्ष में किया जाता है । क्षत्रिय का केशान्त बाईसवें वर्ष में तथा वैश्य का पच्चीसवें वर्ष में करना चाहिए । हे महीपते ! स्त्रियों की चूड़ा मन्त्रों से रहित ही

सर्वदा करनी चाहिए। शरीर के संस्कार के कारण समय के अनुसार विभाग करके इसे कर ले ।।१-२।। स्त्रियों के विवाह करने की जो विधि होती है वह निगम के अनुकूल अर्थात् वैदिक होती है। या तो गुरु के समीप में ही निवास करना या घर में ही अग्नि परिक्रिया करे ।।३।। हे राजन् ! यह उपनयन सम्बन्धित विधि तुमको बतादी है। हे महाबाहो ! यह द्विजातियों की पर उत्पत्ति की व्यञ्जक होती है ।।४।। हे महा बल वाले ! अब मैं तुम से कर्मयोग की विधि को बतलाता हूँ। गुरु का कर्तव्य है कि पहले अपने शिष्य का उपनयन करा कर शौच रखने का उसे आदेश देना चाहिए ।।५।। आचार उसे सिखाये, अग्नि कार्य बतावे और दोनों तीनों संध्याओं में उपासना करने की विधि को पढ़ा देवे। जो सत् शिष्य हों उनको आचान्त और उत्तर की ओर मुख वाला होकर ब्रह्माञ्जलि करने वाला और इन्द्रियों के जीतने वाला शिष्य नित्य हो पढ़ाना चाहिए। हलके, थोड़े वस्त्र धारण करने वाला, एकाग्र मन वाला, सुन्दर मन की दशा वाला एवं सुप्रतिष्ठित होकर अध्ययन करना चाहिए।।६-७।।

ब्रह्मारंभेऽवसाने च पादौ पूज्यौ गुरोः सदा ।
संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माजलिः स्मृतः ।।८
व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ।।९
अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतंद्रितः ।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति वारयेत् ।।१०
ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावंते च सर्वदा ।
स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ।।११
श्रूयतां चापि राजेंद्र यथोंकारं द्विजोऽर्हति ।
प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ।।१२
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्ततस्त्वोंकारमर्हति ।
ॐकारलक्षणं चापि शृणुष्व कुरुनन्दन ।।१३
अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ।
वेदत्रयात्तु निर्गृह्य भूर्भुवःस्वीरतीति च ।।१४

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥१५

वेदाध्ययन के आरम्भ में और अध्ययन के अन्त में सदा गुरु के चरणों की पूजा करनी चाहिए। दोनों अपने हाथों को संहत करके अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार हाथों के रखने हो को ब्रह्माञ्जलि कहा गया है ॥८॥ व्यत्यस्त हाथों वाले के द्वारा गुरु का उप संग्रहण करना चाहिए। सव्य के द्वारा सव्य (बाँयाँ) चरण स्पर्श करना चाहिए और दाहिने हाथ से दक्षिण चरण को छूना चाहिए ॥६॥ नित्य ही प्रत्येक समय में गुरु तन्द्रा से रहित होकर पढ़ने वाले अर्थात् जिसको पढ़ाया जावे उस शिष्य से यह कहे—'पढ़ना आरम्भ करो। जब पढ़ाना बन्द करें तब यह कहना चाहिए कि 'अब विराम कर दो'—इस प्रकार से पढ़ना निवारित करना चाहिए ॥१०॥ ब्रह्म अर्थात् वेद के अध्ययन के आरम्भ में और अन्त में सर्वदा प्रणव का उच्चारण करना चाहिए। जो आरम्भ में ओङ्कृत नहीं है अर्थात् जिसके आरम्भ में प्रणव नहीं कहा जाता है वह स्रवित होता है और परस्तात् में विशीर्ण हो जाता है ॥११॥ हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार से द्विज ओङ्कार के योग्य होता है उसका श्रवण कर लो। प्राक्कूलों को पर्युपासना करने वाला पवित्रों के द्वारा पावित हो जाता है ॥१२॥ तीन प्राणायामा के द्वारा पूत हो जाता है और फिर वह ओंकार के योग्य होता है। हे कुरुनन्दन ! अब ओङ्कार का लक्षण भी श्रवण करो ॥१३॥ प्रजापति ने तीनों वेदों से आकार, उकार और मकार का संग्रह करके और 'भू भुँवः स्वः' इनका संग्रह करके इसकी रचना की है ॥१४॥ तीनों वेदों से परम पितामह परमेष्ठी प्रजापति ने इस सावित्री ऋचा के पाद-पाद का दोहन किया था ॥१५॥

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
संध्ययोरुभयोर्विप्रो वेद पुण्येन युज्यते ॥१६

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य वहिरेतन्त्रिकं द्विजः ।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥१७

एतदृचा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया।
विप्रक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥१८
शृणुष्वैकमनाराजन्परमं ब्रह्मणो मुखम्।
ॐकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥१९
त्रिपदा चैव सावित्रीं विज्ञेया ब्रह्मणो मुखम्।
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतंद्रितः ॥२०
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्।
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परंतपः ॥२१

इस प्रणव का और व्याहृतियों से सम्पन्न इस सावित्री का दोनों सन्ध्याओं में जप करने वाला विप्र वेद के पाठ से पुण्य से युक्त होता है ॥१६॥ इस त्रिक का एक सहस्र बार ब्राह्मण अभ्यास करके एक मास में महान् पाप से छूट जाता है जिस प्रकार अपनी काँचली से सर्प छूट जाया करता है ॥१७॥ इसकी अर्चा से विसंयुक्त और समय पर क्रिया से रहित होने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य साधु पुरुषों में निन्दा को प्राप्त हुआ करते हैं ॥१८॥ हे राजन् ! तुम एक निष्ठ मन वाले होकर ब्रह्म के परम मुख का श्रवण करो। जिनके पूर्व में ओङ्कार होता है ऐसी तीनों महा व्याहृतियाँ अव्यय होती हैं ॥१९॥ तीन पदों वाली त्रिपदा सावित्री ब्रह्मा का मुख समझनी चाहिए। जो इसको प्रतिदिन तीन वर्ष तक अतन्द्रित होकर पढ़ता है वह वायुभूत आकाश की मूर्त्ति वाला होकर परम ब्रह्म को प्राप्त होता है। एक अक्षर अर्थात् ओम् यह एक अक्षर पर-ब्रह्म होता है और प्राणायाम सब से बड़ा तप होता है ॥२०-२१॥

सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते।
तपः क्रिया होमक्रिया तथा दानक्रिया नृप ॥२२
अक्षयांताः सदा राजन्यथाह भगवान्मनुः।
अवरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्मा चैव प्रजापतिः ॥२३
विधियज्ञात्सदा राजञ्जपयज्ञो विशिष्यते।
नानाविधैर्गुणोद्देशैः सूक्ष्माख्यातैर्नृपोत्तम ॥२४

उपांशुः स्याल्लक्षगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ।
ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञेन चान्विताः ॥२५
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
जपादेव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥२६
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥२७
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ।
दिनस्यादौ भवेत्पूर्वा शर्वर्यादौ तथा परा ॥२८
सनक्षत्रा परा ज्ञेया अपरा सदिवाकरा ।
जपंस्तिष्ठन्परां संध्या नैशमेनो व्यपोहति ॥२९

सावित्री से पर कुछ भी नहीं है । मौन से सत्य विशिष्ट होता है । तप की क्रिया, होम की क्रिया, होम करने का कर्म और दान की क्रिया ये सब अक्षय अन्त वाले होते हैं जैसा कि भगवान् मनु ने कहा है । अवर अक्षर जानना चाहिए ऐसा प्रजापति ब्रह्मा ने कहा है ॥२१-२३॥ हे राजन् ! विधि यज्ञ से जप यज्ञ सदा विशेषता वाला होता है । यह जप यज्ञ नाना प्रकार के गुणोद्देशों से सूक्ष्म एवं आख्यात से युक्त होता है ॥२४॥ जो उपांशु जप लाख गुना होता है । जो मानस जप सहस्र गुना फल वाला होता है । जो चार पाक यज्ञ होते हैं वे विधि यज्ञ से युक्त हुआ करते हैं ॥२५॥ ये सभी जप यज्ञ की सोलहवीं कला के योग्य भी नहीं होते । ब्राह्मण जप से ही संसिद्धि को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है ॥२६॥ जप यज्ञ के करने वाला ब्राह्मण अन्य कुछ भी करे या न करे । ऐसा ब्राह्मण मैत्र कहा जाता है जो सूर्य दर्शन से पूर्व सन्ध्या में सावित्री का जप करता हुआ स्थित रहा करता है ॥२७॥ पश्चिमा सन्ध्या नक्षत्र और तारागण के दर्शन होने से पूर्व भली भाँति समासीन होकर करनी चाहिए । दिन के आदि में अर्थात् सूर्योदय के पूर्व पहिली अर्थात् प्रातःकालीन सन्ध्या करनी चाहिए और रात्रि होने से परा सन्ध्या अर्थात् सायङ्कालीन सन्ध्योपासना करनी चाहिए ॥२८॥ नक्षत्रों के सहित होने वाली परा और दिवाकर के सहित किये जाने वाली को अपरा जाने ।

परा सन्ध्या का जाप करता हुआ पुरुष, जो अवस्थित होता है वह रात्रि में किए हुए पाप को दूर भगा देता है ।।२९।।

अपरां तु समासीनो मलं हंति दिवाकृतम् ।
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते पश्चिमां नृप ।।३०
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वं स्माद्द्विजकर्मणः ।
अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।।३१
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः ।
वेदोपकरणे राजन्स्वाध्याये चैव नैत्यके ।।३२
नात्र दोषोस्त्यनध्याये होममंत्रेषु वा विभो ।
नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् ।।३३
ब्रह्माहुति हुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ।
ऋगेकां यस्त्वधीयीत विधिना नियतो द्विजः ।।३४
तस्य नित्यं क्षरत्येषा पयो मेध्यं घृतं मधुः ।
अग्निशुश्रूषणं भैक्षमधः शय्यां गुरोर्हितम् ।।३५
आसमावर्तनात्कृतोपनयनो द्विजः ।
आचार्यपुत्रशुश्रूषां ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ।।३६

अपरा सन्ध्या की उपासना में समासीन होने वाला पुरुष दिन के किये हुए मल का हनन कर देता है । हे नृप ! जो पूर्वा सन्ध्या की और पश्चिमा सन्ध्या की उपासना नहीं किया करता है वह एक शूद्र की भाँति समस्त द्विजों के कर्मों से बहिष्कृत कर देना चाहिए । जल के समीप में नियत होकर जो नित्य की जाने वाली विधि से आस्थित होता है, किसी वन में जाकर जो समाहित होकर सावित्री का अध्ययन करता है । हे राजन् ! वेद के उपकरण में और नैत्यिक स्वाध्याय में अनाध्याय के समय में भी कोई दोष नहीं होता है तथा होम में कहे जाने वाले मन्त्रों के पढ़ने में भी अनध्याय को कोई दोष नहीं हुआ करता है । हे विभो ! किसी भी नित्य किये जाने वाले कर्म में कोई असाध्याय नहीं हुआ करता है । यह ब्रह्म सत्र कहा गया है । जो विप्र विधिपूर्वक नियत होकर केवल एक ही ऋचा का अध्ययन करता है उसने अनाध्याय वषट् कृत पुण्य

ब्रह्माहुति का हवन कर लिया है। यह अधीत् ऋचा उसको मेध्य पय—घृत और मधु का नित्य क्षरण किया करती है। अग्नि की शुश्रूषा उसका भैक्ष है और अधः शय्या गुरु का हित होता है। समावर्तन तक उपनयन किया हुआ द्विज जो आचार्य पुत्र की शुश्रूषा करता है वह ज्ञान देने वाला धार्मिक और शुचि होता है ॥३०-३६॥

आप्तः शक्तोऽन्नदः साधुः स्वाध्याद्यो दश धर्मतः।
नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ॥३७
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्।
अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ॥३८
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वा निगच्छति।
धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषां चापि तद्विधा।
न तत्र विद्या वप्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥३९
विद्ययैव समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनांमीरिणे वपेत् ॥४०
विद्या ब्राह्मणमित्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्।
असूयकाय मा प्रादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥४१
शेवं सुखमुशन्तीह केचिज्ज्ञानं प्रचक्षते।
तौ धारयति वै यस्माच्छेवधिस्तेन सोच्यते ॥४२

आप्त (यथार्थ वक्ता) शक्तोन्नह और साधु दश धर्म से युक्त स्वाध्याय करने के योग्य होता है। बिना पूछे हुए किसी से भी कुछ नहीं बोलना चाहिए और यदि कोई अन्याय पूर्वक पूछे तो भी कुछ नहीं कहना चाहिए ॥३७॥ जो मेधावी पुरुष होता है वह सभी कुछ का ज्ञान रखता है किन्तु सब जानते हुए भी उसे इस लोक में एक जड़ पुरुष की भाँति आचरण करना चाहिए। जो अधर्म से युक्त कुछ बोलता है या जो अधर्म से युक्त कुछ पूछता है उन दोनों में से अन्य तर नष्ट होता है अथवा विद्वेष को प्राप्त होता है। जहाँ धर्म और अर्थ ये दोनों नहीं होते हैं और उस प्रकार की शुश्रूषा भी नहीं होती है वहाँ विद्या का वपन नहीं करना चाहिए अर्थात् ऐसे व्यक्तियों को विद्या नहीं बतानी चाहिए। ऐसे पुरुषों

को विद्या का दान उसी प्रकार का होता है जैसे अच्छे बीज का ऊषर भूमि में बोना निष्फल हुआ करता है ॥३८-३९॥ ब्रह्मवादी पुरुष को अपनी विद्या को अपने ही साथ लेकर मरना चाहिए किन्तु घोर आपत्ति में भी इस विद्या को अयोग्य को नहीं देवे ॥४०॥ विद्या ने ब्राह्मण से कहा था कि मैं तेरा खजाना हूँ, मेरी तू रक्षा कर, जो कोई असूया करने वाला हो उसे मुझे कभी मत देना, तभी मैं अधिक वीर्य वाली होकर रहूँगी ॥४१॥ शेव सुख को यहाँ कहते हैं, कुछ विद्वान् ज्ञान को कहा करते हैं। उन दोनों को वह धारण किया करती है इसी कारण से वह शेवधि-इस नाम से पुकारी जाया करती है ॥४२॥

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम् ।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥४३
ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् ॥४४
लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
स याति नरकं घोरं रौरवं भीमदर्शनम् ॥४५
अणुमात्रात्मकं देहं षोडशार्धमिति स्मृतम् ।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥४६
सावित्रीसारमात्रोपि वरो विप्रः सुयंत्रितः ।
नायंत्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयीः ॥४७
शय्यासनेध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थाभिवादयेत् ॥४८
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आगते ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥४९

तुम जिसे परम पवित्र, नियत और ब्रह्मचर्य धारण करने वाला जानो, उसी पुरुष को मुझे बताना। ऐसे ही विप्र को विद्या कहती है कि मुझे देना चाहिए जो मुझ निधि की रक्षा करने वाला और प्रमाद से रहित हो ॥४३॥ जो ब्रह्म अनुज्ञात नहीं है उसे जो अधीयान पुरुष हो उससे प्राप्त करे ॥४४॥ लौकिक अथवा वैदिक और आध्यात्मिक

ज्ञान भी ऐसे ही अधीयान ज्ञाता से प्राप्त करना चाहिए। अन्यथा ऐसा पुरुष अति भयानक दिखाई देने वाले घोर रौरव नरक को वह जाया करता है ॥४५॥ यह अणुमात्र स्वरूप देह षोड़शार्धं कहा गया है। जिससे ज्ञान की प्राप्ति करे उसको पहिले अभिवादन अर्थात् प्रणाम करना चाहिए ॥४६॥ केवल सावित्री के सार को जानने वाला सुयन्त्रित रहने वाला विप्र श्रेष्ठ होता है। जो भली भाँति यन्त्रित नहीं है वह चाहे तीनों वेदों का ज्ञाता भी क्यों न हो, सब कुछ का अशन करने वाला और सबका विक्रय करने वाले के समान माना जाता है ॥४७॥ शय्या और आसन पर श्रेष्ठ पुरुष के साथ कभी नहीं बैठना चाहिए। शय्या और आसन पर स्थित हो तो भी उससे तुरन्त उठ कर ऐसे श्रेष्ठ पुरुष को अभिवादन करना चाहिए ॥४८॥ जब कोई स्थविर अर्थात् वय और ज्ञान में वृद्ध पुरुष आता है तो उसके सामने आते ही युवक के प्राण ऊपर की ओर क्रमण करने लगते हैं। जब वह उन्हें देखकर प्रत्युत्थान और अभिवादन करता है तभी इन दोनों के करने के पश्चात् उन ऊर्ध्वं क्रमण करने वाले प्राणों को यथा स्थान प्राप्त किया करता है ॥४९॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्यग्वर्धंचे आयुः प्रज्ञा यशो बलम् ॥५०
अभिवादपरो विप्रो ज्यायांसमभिवादयेत्।
असौ नामामस्मीति स्वनाम परिकीर्तयेत् ॥५१
नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते।
तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥५१
भोः शब्दं कीर्तयेदंते स्वस्य नाम्नोभिवादने।
नाम्नः स्वरूपभावो हि भो भाव ऋषिभिः स्मृतः ॥५३
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्योविप्रोऽभिवादने।
अकारश्चास्य नाम्नोंऽते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥५४
यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥५५

अभिवादे कृते यस्तु न करोत्यभिवादनम् ।
आशीर्वा कुरुशार्दूल स याति नरकं ध्रुवम् ।।५६

जो नित्य ही अपने से बड़ों के लिये अभिवादन करने के स्वभाव रखने वाला होता है और सदा बड़ों की सेवा-शुश्रषा करने वाला रहता है उसके आयु, प्रज्ञा, यश और बल ये चार बढ़ा करते हैं ।।५०।। जो विप्र अभिवादन करने में परायण हो उसे अपने से बड़ों का अभिवादन करना चाहिए और अभिवादन करने के समय में अमुक नाम वाला मैं हूँ जो कि आप को प्रणाम कर रहा हूँ, इस तरह से अपने नाम का उच्चारण करना चाहिए ।।५१।। जो कोई अभिवादन करने वाले के नाम को नहीं जानते हैं उनके आगे मैं प्राज्ञ हूँ, ऐसा ही बोलना चाहिए । इसी प्रकार से समस्त स्त्रियों को भी करना चाहिए ।।५२।। अपने नाम के अभिवादन में अन्त में 'भो'—इस शब्द का उच्चारण करना चाहिए । ऋषियों ने भो भाव को नाम का स्वरूप भाव कहा है ।।५३।। "हे सौम्य, आयुष्मान् भव" अर्थात् तू बड़ी आयु वाला हो ऐसा अभिवादन में ब्राह्मण को बोलना चाहिए । इसके नाम के अन्त में अकार बोलना चाहिए और पूर्व का अक्षर प्लुत स्वर वाला कहना चाहिए ।।५४।। जो ब्राह्मण अभिवादन का प्रत्यभिवादन करना नहीं जानता है ऐसे के लिये विद्वान् पुरुष को कभी भी अभिवादन नहीं करना चाहिए क्योंकि वह तो जैसा एक शूद्र होता है वैसा ही हुआ करता है ।।५५।। अभिवादन करने पर जो अभिवादन नहीं किया करता है अथवा आशीर्वाद के वचन नहीं कहता है, हे कुरुशार्दूल ! वह पुरुष निश्चय ही नरक में जाया करता है ।।५६।।

अभीति भगवान्विष्णुर्वादयामीति शंकरः ।
द्वावेव पूजितौ तेन यः करोत्यभिवादनम् ।।५७
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबंधुमनामयम् ।
वैश्वं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव तु ।।५८
न वाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ।
भो भवत्पूर्वकत्वेन इति स्वायंभुवोऽब्रवीत् ।।५९

परपत्नी तु या राजान्नसंबद्धा तु योनितः ।
वक्तव्या भवतीत्येव सुभगे भगिनीति च ।।६०
पितृव्यान्मातुलान्राजञ्छ्वशुरानृत्विजो गुरुन् ।
असावहमिति ब्रू यात्प्रत्युत्थाय जघन्यजः ।।६१
मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ।
संपूज्या गुरुपत्नी च समास्ता गुरु भार्यया ।।६२
ज्येष्ठस्य भ्रातुर्या भार्या सवर्णाहन्यहन्यपि ।
पूजयन्प्रयतो विप्रो याति विष्णुसदो नृप ।।६३

अभिवादन शब्द में 'अभि'—यह भगवान् विष्णु का स्वरूप है और "वादयामि"—यह शङ्कर का स्वरूप होता है । उसने इन दोनों का पूजन कर लिया है जो कि अभिवादन किया करता है ।।५७।। ब्राह्मण से मिलने पर कुशल पूछना चाहिए । जो क्षत्रिय हो उससे अनामय पूछे और वैश्य से क्षेम तथा समागम करके शूद्र से केवल आरोग्य ही पूछना चाहिए ।।५८।। जो दीक्षित हो चाहे वह अपने से छोटा ही हो उसे नाम लेकर नहीं बुलाना या बोलना चाहिए । उससे भी भवत् पूर्वकत्व के द्वारा बोलना चाहिए, ऐसा स्वायम्भुव ने कहा है ।।५९।। हे राजन् ! जो कोई दूसरे की पत्नी हो और योनि से सम्बद्ध न हो उससे—भवति, सुभगे और भगिनी —इस प्रकार के शब्दों द्वारा सम्बोधित करके ही बोलना चाहिए ।।६०।। जो पितृव्य हों अर्थात् पिता के भाई चाचा, ताऊ हों, मातुल हों, श्वशुर हों, ऋत्विज हों और गुरु हों उनके सामने उठकर यह मैं हूँ—ऐसा छोटे को बोलना चाहिए ।।६१।। मातृष्वसा (मौसी), मातुलानी (मामी), श्वश्रू (सास अर्थात् पत्नी की माता), हितृष्वसा (भूआ) और गुरुपत्नी ये सब गुरु की भार्या के तुल्य ही पूज्य होती हैं ।।६२।। अपने बड़े भाई की जो भार्या हो और सवर्ण भार्या हो उसका प्रतिदिन प्रयत होकर पूजन करने वाला विप्र विष्णु लोक को जाया करता है ।।६३।।

प्रवासादेत्य संपूज्या ज्ञातिसंबंधि योषितः ।
पितुर्या भगिनी राजन्मातुश्चापि विशांपते ।।६४

आत्मनो भगिनी या च ज्येष्टा कुरुकुलोद्वह ।
सदा स्वमातृवद्वृत्तिमातिष्ठेद्भारतोत्तम ॥६५
गरीयसी ततस्ताभ्यो माता ज्ञेया नराधिप ।
पुत्रमित्रभागिनेया द्रष्टव्या ह्यात्मना समाः ॥६६
दशाब्दाख्यं पौरसंख्यं पंचाब्दाख्यं कलाभृताम् ।
अब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥६७
ब्राह्मणं दशवर्षं च शतवर्षं च भूमिपम् ।
पितापुत्रौ विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥६८
इत्येवं क्षत्रियपिता वैश्यस्यापि पितामहः ।
प्रपितामहश्च शूद्रस्य प्रोक्तो विप्रो मनीषिभिः ॥६९
वित्तं बंधुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥७०

हे विशांपते ! जब कोई प्रवास से वापिस आवे तो उसे ज्ञाति से सम्बन्ध रखने वाली स्त्रियों का पूजन करना चाहिए । जो पिता की भगिनी हो उसका और माता का भी पूजन करे । हे भारतोत्तम ! अपनी बड़ी बहिन के साथ सर्वदा अपनी माता के तुल्य व्यवहार करे । हे नराधिप ! उन सबसे बड़ी माता को जाने । पुत्र, मित्र और भागिनेयों को सदा अपनी ही आत्मा के समान देखे । पौरसख्य दश वर्ष के नाम वाला होता है, जो कलाभृत् होते हैं उनका पञ्चाब्दाख्य सख्य होता है, श्रोत्रियों के एक वर्ष पहिला सख्य होता है और अपनी योनियों में स्पल्प समय से ही सख्य हुआ करता है । ब्राह्मण दश वर्ष की अवस्था वाला हो और क्षत्रिय राजा चाहे सौ वर्ष की उम्र वाला ही क्यों न हो ये दोनों पिता और पुत्र के समान जानने चाहिए । उन दोनों में ब्राह्मण पिता के तुल्य होता है । इसी प्रकार से क्षत्रिय वैश्य का पिता के समान होता है । मनीषियों ने विप्र को शूद्र का पितामह और प्रपितामह बताया है । धन, बन्धुता, अवस्था, कर्म और पाँचवीं विद्या ये मान्यता के स्थान हुआ करते हैं । इनमें जो उत्तर है वही अधिक मान्यता का स्थान माना जाता है ॥६४-७०॥

पंचानां त्रिषु वर्गेषु भूयांसि गुणवंति च ।
यस्य स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोपि दशमीं गतः ॥७१
चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ।
स्नातकस्य तु राज्ञश्च पंथा वरस्य च ॥७२
एषां समागमे तात पूज्यौ स्नातकपार्थिवौ ।
आभ्यां समागमे राजन्स्नातको नृपमानभाक् ॥७३
अध्यापयेद्यस्तु शिष्यं कृत्वोपनयनं द्विजः ।
सरहस्यं सकल्पं च वेदं भरतसत्तम ।
तमाचार्यं महाबाहो प्रवदंति मनीषिणः ॥७४
एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥७५
निषेकादीनि कार्याणि यः करोति नृपोत्तम ।
अध्यापयति चान्येन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥७६
अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥७७

तीनों वर्गों में पाँचों के बहुत से गुण वाले होते हैं । जिसको भी ये होते हैं वह यहाँ लोक में मान के योग्य होता है । दशमीं को प्राप्त हुआ शूद्र भी मान के योग्य है ॥७१॥ मार्ग में जब जा रहे हों तो चक्री को, दशमीस्थ को, रोगी को, भार वहन करने वाले को, स्त्री को, स्नातक को, राजा को और वर को मार्ग छोड़ देना चाहिए अर्थात् जाने के लिये मार्ग पहिले दे देना चाहिए । हे तात ! इन सबके समागम होने पर स्नातक और राजा पूजने के योग्य हुआ करते हैं । इन दोनों के समागम होने पर हे राजन् ! स्नातक राजा के मान का भाजन होता है । हे भरत सत्तम ! जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन संस्कार करके उसे रहस्य और कल्प के सहित वेद का अध्यापन किया करता है, हे महावाहो ! मनीषी लोग उसको आचार्य कहा करते हैं । जो वेद का एक भाग अथवा वेदों के अङ्गों का वृत्ति के प्राप्त करने के लिये पढ़ाया करता है वह उपाध्याय नाम से कहा

जाता है। हे नृपोत्तम ! जो निषेक आदि कार्यों को करता है और किसी अन्य के द्वारा अध्यापन कराता है वह गुरु कहा जाता है अग्न्याधेय-पाक-यज्ञ और अग्निष्टोम आदि मखों का जिसका वृत होकर जो किया करता है वह उसका यहाँ पर ऋत्विक् कहा जाया करता है ॥७१-७७॥

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कथंचन ।७८
उपाध्याया दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रेण पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥७९
उत्पादकब्रह्मगात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥८०
कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः।
संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥८१
आचार्यस्तस्य तां जातिं विधिवद्वेदपारगः।
उत्पायति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा ॥८२
उपाध्यायमादितः कृत्वा ये पूज्याः कथितास्तव।
महागुरुर्महाबातो सर्वेषामधिकः स्मृतः ॥८३

जो दोनों कानों को ब्रह्मा के द्वारा सत्य को आवृत करता है वह माता और पिता जानना चाहिए और उनसे किसी भी भाँति द्रोह नहीं करना चाहिए ॥७८॥ दश उपाध्यायों के समान एक आचार्य और सौ आचार्यों के तुल्य एक पिता तथा एक सहस्र पिताओं के समान माता गौरव में अधिक होती है ॥७९॥ उत्पादक अर्थात् उत्पन्न करने वाला और ब्रह्म गात्र इन दोनों में ब्रह्म का ज्ञान देने वाला पिता बड़ा होता है। ब्राह्मण का ब्रह्म जन्म यहाँ और मर कर शाश्वत रहा करता है ॥८०॥ माता और पिता परस्पर काम से अर्थात् काम वासना से इनको उत्पन्न किया करते हैं उसकी उस संभूति अर्थात् उत्पत्ति को जोकि योनि में होती है, जाने ॥८१॥ वेद का पारगामी आचार्य उसकी विधिपूर्वक उस जाति को उत्पन्न किया करता है जो कि सावित्री के द्वारा की जाती है। वह जाति सत्य है

और अजर तथा अमर होती है ॥८२॥ उपाध्याय से आदि लेकर जो भी कार्य किये जाते हैं वे सब पूज्य होते हैं । यह तुमको बतला दिया गया है। हे महाबाहो ! जो महा गुरु होता है वह इन सबसे अधिक कहा गया है ॥८३॥

गृहेषु येषां कर्तव्यं ताञ्छृणुष्व नृपोत्तम ।
स्वकर्मसु रता ये वै तथा वेदेषु ये रताः ।
यज्ञेषु चापि राजेन्द्र ये च श्रद्धासमाश्रिताः ॥८४
ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोन्वहम् ।
गुरोः कुले न भिक्षेत स्वज्ञातिकुलबन्धुषु ॥८५
अलाभे त्वन्यगोत्राणां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ।
सर्वं चापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे ।
अंत्यवर्जं महाबाहो इत्याह भगवान्विभुः ॥८६
वाचं नियम्य प्रयतस्त्वग्निं शस्त्रं च वर्जयेत् ।
चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्षमलाभे कुरुनन्दन ॥८७
आरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद्गृहोपरि ।
सायंप्रातस्तु जुहुयात्ताभिरग्निमतंद्रितः ॥८८
भैक्षाचरणमकृत्वा न तमग्निं समिध्य वै ।
अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥८९
वर्तनं चास्य भैक्षेण प्रवदंति मनीषिणः ।
तस्माद्भैक्षेण वै नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ॥९०
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ।
दैवत्ये व्रतवद्राजन्पित्र्ये कर्मण्यर्थषिवत् ।
काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते ॥९१

हे नृपोत्तम ! अब यह बताते हैं कि किन लोगों के घरों में भिक्षा चरण करे । तुम इसे श्रवण करो । उनके घरों में भिक्षा की याचना करनी चाहिए जो अपने कर्मों में रति रखने वाले तथा वेदों में जो रत रहा करते हैं । हे राजेन्द्र ! जो यज्ञादि करने में प्रेम रखने वाले पुरुष हैं तथा जो

श्रद्धा से समन्वित होते हैं उन्हीं के घरों में प्रतिदिन ब्रह्मचारी को प्रयत होकर भैक्ष करना चाहिए ।।८४-८५।। गुरु के कुल में तथा अपनी जाति-कुल और बन्धुओं में भिक्षाचरण नहीं करना चाहिए । जब अन्य गोत्र वालों के यहाँ से इनका लाभ न हो तो क्रम से पूर्व-पूर्व का वर्जन करना चाहिए ।।८६।। हे महाबाहो! ऊपर बताये गये व्यक्तियों के सम्भव न होने पर सम्पूर्ण ग्राम में भिक्षाचरण करे किन्तु ग्राम में जो अन्त्यज हों उनका त्याग कर देना चाहिए, ऐसा भगवान विभु ने आदेश दिया है ।।८६।। हे कुरुनन्दन ! वाणी का नियमन करके प्रयत होते हुए अग्नि और शस्त्र को त्याग देवे । जब लाभ न हो तो चारों वर्णों के यहाँ भैक्ष कर लेना चाहिए ।।८७।। समीप से समिधाऐं लाकर गृह के ऊपर रख देवे फिर उन समिधाओं से तन्द्रा रहित होकर सायङ्काल और प्रातःकाल हवन करना चाहिए ।।८८।। भिक्षाचरण और उस अग्नि का हवन न करके स्वस्थता की दशा में सात रात्रि तक अवकीर्णि व्रत करना चाहिए । रुग्णावस्था में कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है ।।८९।। मनीषीगण भिक्षा से इस ब्रह्मचारी के वर्त्तन के विषय में कहते है कि उस भैक्ष से एक ही अन्न को खाने वाला व्रती होता है ।।९०।। भिक्षा के द्वारा जो व्रती की वृत्ति होती है वह उपवास के तुल्य ही कही गई है । दैवत्य कर्म में और पित्र्य कर्म में व्रत की भाँति तथा ऋषि की तरह यदि अभ्यर्थना द्वारा बुलाया गया हो तो इच्छा पूर्वक भोजन करे । यह भी व्रत के ही तुल्य माना जाता है । इससे ब्रह्मचारी के व्रत का लोप नहीं होता है ।।९१।।

ब्राह्मणस्य महाबाहो कर्म यत्समुदाहृतम् ।
राजन्यवैश्ययोर्नैतत्पंडितैः कुरुनन्दन ।।९२
चोदितोऽचादितो वापि गुरुणा नित्यमेव हि ।
कुर्यादध्य ने योगमाचार्यस्य हितेषु च ।।९३
बुद्धींद्रियाणि मनसा शरीरं वाचमेव हि ।
नियम्य प्रांजलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।।९४
नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारस्तु संयतः ।
आस्यतामिति चोक्तःसन्नासीताभिमुखं गुरौः ।।९५

वस्त्रवेषैस्तथान्नैस्तु हीनः स्याद्गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य जघन्यं चापि संविशेत् ॥९६

प्रतिश्रवणसंभाषे तल्पस्थो न समाचरेत् ।
न चासीनो न भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥९७

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंश्च तिष्ठतः ।
प्रत्युद्गन्ता तु व्रजतः पश्चाद्धावंश्च धावतः ॥९८

पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ।
नमस्कृत्य शयानस्य निदेशे तिष्ठेत्सर्वदा ॥९९

हे महाबाहो ! ब्राह्मण का जो कर्म कहा है, वह पण्डितों ने क्षत्रिय और वैश्य का नहीं कहा है ॥९२॥ प्रेरित किया गया हो या गुरु के द्वारा प्रेरणा नहीं की गई हो नित्य ही अध्ययन में योग करे और अपने आचार्य के हितों में योग दे ॥९३॥ ज्ञानेन्द्रियों को मन से नियन्त्रित करके तथा अपने शरीर और वाणी का नियमन करके गुरु के मुख को देखता हुआ प्राञ्जलि होकर अवस्थित होवा चाहिए ॥९४॥ नित्य ही उद्धृत पाणि होकर रहे, साधु आचार वाला और संयत रहे। जब यह कहा जावे कि बैठ जाओ तो गुरु के मुख के सामने ही बैठ जाना चाहिए ॥९५॥ अपने गुरु की सन्निधि में अर्थात् समीप में वस्त्र वेषों से और अन्नों से हीन हो कर रहना चाहिए। जब अपने गुरु उठें तो उनसे पहिले ही स्वयं उठजाना चाहिए तथा गुरु से नीचे के स्थान में सदा बैठना चाहिए ॥९६॥ गुरु की बात का प्रतिश्रवण तथा उनके साथ सम्भाषण तल्प पर बैठे हुए कभी नहीं करना चाहिए। बैठे हुए, भोजन करते हुए और पराङ्मुख होकर भी गुरु की बात का श्रवण या उनके साथ भाषण न करे। जब गुरु बैठ जावें तो स्वयं भी स्थित हो जावे, वे चलें तो चलना चाहिए और स्थित होवें तो स्वयं भी स्थित हो जावे। जब गुरु गमन करें तो स्वयं प्रत्युद्गमन करने वाला हो जावे और वे दौड़ें तो उनके पीछे दौड़ लगानी चाहिए ॥९७-॥९८॥ यदि गुरु पराङ्मुख हों तो उनके अभिमुख हो जाना चाहिए

यदि गुरु दूर में स्थित हों तो उनके समीप में आकर नमस्कार करे और शयन करते हों तो उनके निदेश में सदा रहना चाहिए ॥९९॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥१००
नामोच्चारणमेवास्य परोक्षमपि सुव्रत ।
न चैनमनु कुर्वीत गतिभाषणचेष्टितैः ॥१०१
परीवादस्तथा निन्दा गुरोर्यत्र प्रवर्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥१०२
परीवादाद्रासभः स्यात्सारमेयस्तु निन्दकः ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥१०३
दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ।
यानासनगतो राजन्नवरुह्याभिवादयेत् ॥१०४
प्रतिकूले समाने तु नासीत गुरुणा सह ।
अशृण्वति गुरौ राजन्न किंचिदपि कीर्तयेत् ॥१०५

अपने गुरु की सन्निधि में सर्वदा इसका अर्थात् शिष्य का शय्यासन नीचा ही होना चाहिए । गुरु के चक्षु के विषय में अर्थात् दृष्टि जहाँ तक जाती हो वहां तक अपनी इच्छा के अनुसार आसन वाला नहीं हो । हे सुव्रत ! परोक्ष में भी गुरु के नाम का उच्चारण नहीं करना चाहिए । गुरु की गति, भाषण और चेष्टा का कभी अनुकरण नहीं करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि उनकी गत्यादि की नकल नहीं करे गुरु का परीवाद तथा निन्दा जहाँ पर कोई भी करता हो वहाँ उसे नहीं सुने और अपने दोनों कानों को बन्द कर लेवे अथवा उस स्थान का त्याग कर के दूसरे स्थान पर चले जाना चाहिए । गुरु के परीवाद करने से रासभ (गधा) की योनि मिला करती है । जो गुरु की निन्दा करने वाला कुत्ता होता है । गुरु के भाग का परिभोग करने वाला कृमि होता है और गुरु का मत्सरी होता है वह कीट हुआ करता है । जब दूर में स्थित होवे तो गुरु का अर्चन न करे । क्रुद्ध अवस्था में रहने वाला और स्त्री के समीप स्थित भी गुरु

अर्चन न करे। किसी यान में स्थित तथा आसन पर बैठा हुआ भी गुरु का अर्चन न करे। हे राजन्! रुक कर गुरु को अभिवादन करना चाहिए प्रतिकूल और समान आसन पर कभी भी गुरु के साथ नहीं बैठे। जब गुरु श्रवण नहीं कर रहे हों तो कुछ भी नहीं कहना चाहिऐ ॥१००-१०५॥

इत्येष कथितो धर्मः प्रथमं ब्रह्मचारिणः।
गृहस्थस्यापि राजेन्द्रः श्रृणु धर्ममशेषतः ॥१०६
काले प्राप्य व्रतं विप्र ऋतुयोगेन भारत।
प्रलापयन्व्रतं याति व्रह्मसालोक्यतां विभो ॥१०७
सदोपनयनं शस्तं वसंते ब्राह्मणस्य तु।
क्षत्रियस्य ततो ग्रीष्मे प्रशस्तं मनुरब्रवीत् ॥१०८
प्राप्ते शरदि वैश्यस्य सदोपनयनं परम्।
इत्येष त्रिविधः कालः कथितो व्रतयोजने ॥१०९

अब तक पहिले ब्रह्मचारी के धर्मों को बता दिया गया है। हे राजेद्र! अब गृहस्थ के भी समस्त धर्मों का श्रवण करो॥१०६॥ हे भारत! ब्राह्मण समय पर व्रत की प्राप्ति कर ऋतु के योग से व्रत का प्रलापन करता हुआ ब्रह्म की सालोक्यता को प्राप्त होता है ॥१०७॥ ब्राह्मण का उपनयन संस्कार सदा वसन्त ऋतु में ही प्रशस्त होता है। मनु महर्षि ने क्षत्रिय का उपनयन ग्रीष्म में अच्छा बतलाया है। शरद् ऋतु के प्राप्त होने पर वैश्य का उपनयन संस्कार श्रेष्ठ होता है। इस प्रकार से यह व्रत के योजन में तीन प्रकार का काल कहा गया है ॥१०८-१०६॥

॥ स्त्री शुभाशुभ लक्षण ॥

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणांतिकमेव च ॥१
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि नृपोत्तम।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥२

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं हितुः।
स्त्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ।।३
गुरुणा समनुज्ञातः समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।।४
लक्षणं द्विजशार्दूल स्त्रीणां वद महामुने।
कीदृग्लक्षणसंयुक्ता कन्या स्यात्सुखदा नृप ।।५
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं स्त्रीलक्षणमनुत्तमम्।
श्रेयसे सर्वलोकानां शुभाशुभफलप्रदम् ।।६
ततो वच्मि महाबाहो शृणुष्वैकमना नृप।
श्रुतेन येन जानीषे कन्यां शोभनलक्षणाम् ।।७

इस अध्याय में स्त्रियों के शुभ, अशुभ लक्षणों का निरूपण किया है। सुमन्तु महर्षि ने कहा—गुरु के समीप छत्तीस वर्ष तक त्रैवेदिक व्रत का आचरण करे। उससे आधा अथवा चौथाई ग्रहणान्तिक करे हे नृपोत्तम ! तीनों वेदों को, दो वेदों को अथवा एक वेद का अध्ययन करके अखण्डित ब्रह्मचर्य वाला पुरुष फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। पिता के ब्रह्मदाय के हरने वाले और अपने धर्म से पूर्णतया प्रतीति वाले उस गुरु को, जोकि स्रक् धारण करने वाले, तल्प आसीन हैं, सबसे पहिले गौके द्वारा समर्चित करे। गुरु के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर विधि पूर्वक समावर्त्तन करे और समावृत्त होकर ब्राह्मण को चाहिए कि सर्व सुलक्षणों से युक्त सवर्ण भार्या के साथ विवाह करे। राजा शतानीक ने कहा— हे द्विजशार्दूल ! हे महामुने ! आपने कहा है कि लक्षणों वाली भार्या बनावे सो आप स्त्रियों के लक्षणों के विषय में बताइये। कैसे लक्षणों से युक्त कन्या गार्हस्थ्य में सुख देने वाली होती है। सुमन्तु ने कहा--ब्रह्माजी ने पहिले स्त्रियों के उत्तम लक्षण जो बताये हैं जो कि शुभ और अशुभ फलों के देने वाले होते हैं उन्हें समस्त लोकों के कल्याण के लिये अब मैं तुमको बताता हूँ। हे नृप ! तुम अब एक मन होकर उनका श्रवण करो। जिनके सुनने से अच्छे लक्षण वाली कन्या का तुमको ज्ञान हो जायगा ।।१-७।।

सुखासीनं सुरश्रेष्ठमभिगम्य महर्षयः।
पप्रच्छुर्लक्षणं स्त्रीणां यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना ॥८
प्रणम्य शिरसा देवमिदं वचनमब्रुवन्।
भगवन्ब्रूहि नः सर्वं स्त्रीणां लक्षणमुत्तमम् ॥९
श्रेयसे सर्वलोकानां शुभाशुभफलप्रदम्।
प्रशस्तामप्रशस्तां च जानीमो येन कन्यकाम् ॥१०
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विरिंचो वाक्यमब्रवीत्।
शृणुध्वं द्विजशार्दूला वच्मि युष्मास्वशेषतः ॥११
प्रतिष्ठिततलौ सम्यग्रक्तांभोजसमप्रभौ।
ईदृशौ चरणौ धन्यौ योषितां भोगवर्धनौ ॥१२
करालैरति निर्मांसै रूक्षैरर्धशिरान्वितैः।
दारिद्र्यं दुर्भगत्वं च प्राप्नुवंति न संशयः ॥१३
अंगुल्यः संहता वृत्ताः स्निग्धाः सूक्ष्मनखास्तथा।
कुर्वंत्यत्यंतमैश्वर्यं राजभावं च योषितः ॥१४

एक बार समस्त महर्षियों ने सुख पूर्वक बैठे हुए सुरों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी के पास जाकर इसी भाँति स्त्रियों के लक्षण पूछे थे जैसा कि तुमने इस समय मुझ से पूछा है। ऋषियों ने ब्रह्माजी को शिर से प्रणाम करके यह वचन कहे थे। हे भगवान् ! आप स्त्रियों के समस्त उत्तम लक्षण कृपा कर हमें बताने का कष्ट करें। आप शुभ और अशुभ फलों के देने वाले समस्त स्त्रियों के लक्षण बताइये। इससे समस्त लोकों का कल्याण होगा। इस से हम सबको यह ज्ञान हो जायगा कि कौनसे लक्षणों वाली कन्या प्रशस्त होती है और किन लक्षणों से युक्त कन्या अप्रशस्त हुआ करती है। उन महर्षियों के इस वचन को सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—हे द्विजशार्दूलो ! आप सब सुनिये, मैं आप लोगों को सभी बतलाता हूँ। जिन स्त्रियों के पैरों के तले प्रतिष्ठित हों और रक्त कमल के समान लाल प्रभा वाले होते हैं ऐसे स्त्रियों के चरण धन्य हुआ करते हैं और भोग के बढ़ाने वाले होते हैं। कराल, मांस रहित, रूखे और अर्ध शिरा से युक्त चरणों

वाली स्त्रियाँ दरिद्रता और दुर्भाग्य को प्राप्त हुआ करती हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१३॥ जिनकी अंगुलियाँ संहत हों अर्थात् एक दूसरी से सटी हुई हों, वृत्त, स्निग्ध और बहुत सूक्ष्म नख वाली हों वे स्त्रियाँ अत्यन्त ऐश्वर्य और राजभाव को किया करती है ॥८-१४॥

ह्रस्वाः सुजीवितं ह्रस्वा विरला वित्तहानये ।
दारिद्रयं मूलमग्नासु प्रेष्यं च पृथुलासु च ॥१५
परस्पर समारूढैस्तनुभिर्वृत्तपर्वभिः ।
बहूनपि पतीन्हत्वा दासी भवति वै द्विजाः ॥१६
अंगुष्ठोन्नतपर्वाणस्तुंगाग्राः कोमलान्विताः ।
रत्नकांचनलाभाय विपरीता विपत्तये ॥१७
सुभगत्वं नखैः स्निग्धैरातम्रैश्च धनाढचता ।
पुत्राः स्युरुन्नतैरेभिः सुसूक्ष्मैश्चापि राजता ॥१८
पांडुरैः स्फुटितै रूक्षैर्नीलैर्धूम्रैस्तथा खरैः ।
निःस्वता भवति स्त्रीणां पीतैश्चाभक्ष्यभक्षणम् ॥१९
गुल्फाः स्निग्धाश्च वृत्ताश्च समारूढशिरास्तथा ।
यदि स्युर्नूपुरान्दध्युर्बांधवाद्यैः समाप्नुयुः ॥२०
अशिराः शरकांडाभाः सुवृत्ताल्पतनूरुहाः ।
जंघाः कुर्वंति सौभाग्यं यानं च गजवाजिभिः ॥२१

जो ह्रस्व अर्थात् बहुत छोटी होती हैं वे सुजीवित को किया करती हैं और बिरली ह्रस्व वित्त को हानि करने वाली हुआ करती हैं, अग्राग्रों में दारिद्रय मूल होता है और जो पृथुल होती हैं उनमें प्रेष्य होता है ॥१५॥ परस्पर में समारूढ तनु वृत्त पर्वों से युक्त जो स्त्रियाँ होती हैं वे बहुत-से पतियों का हनन करके दासी हुआ करती हैं ॥१६॥ जिनके अंगुष्ठ में उन्नत पर्व हों और अग्र भाग उन्नत हो तथा कोमलान्वित हों वे रत्न और सुवर्ण के लाभ करने वाली स्त्रियाँ होती हैं । इसके यिपरीत जिनके लक्षण होते हैं वे विपत्ति करने वाली होती हैं ॥१७॥ स्त्रियाँ अपने स्निग्ध नखों के द्वारा सुभगत्व को सूचित किया करती हैं । स्निग्ध और थोड़े से ताम्रवर्ण वाले नाखूनों से धनाढचता को प्रकट करती हैं । इनके

उन्नत होने से पुत्र होते है और सुसूक्ष्म होने से राजता प्रकट होती है ॥१८॥ पाण्डुर, स्फुटित, रूक्ष, नील, धूम्र तथा खर नखों से स्त्रियाँ निःस्वता अर्थात् निर्धनता बतलाती हैं तथा पीत नखों से अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने की सूचना देती हैं ॥१९॥ जिनके गुल्फ स्निग्ध, वृत और समारूढ शिरा वाले होते हैं तो वे नूपुरों को धारण किया करती हैं और बान्धव आदि के द्वारा उन्हें प्राप्त करना चाहिए। बिना शिराओं वाली शरकाण्ड की आभा वाली सुवृत्त और थोड़े तनूरुहों वाली जंघाऐं स्त्रियों के सौभाग्य को किया करती हैं तथा हाथी और घोड़ों वाले यान को भी प्राप्त करने की सूचना दिया करती हैं ॥२०-२१॥

क्लिश्यते रोम जंघा स्त्री भ्रमत्युद्धतपिंडिका।
काकजंघा पतिं हन्ति वाचाटा कपिला च या ॥२२
जानुभिश्चैव मार्जारसिंहजान्वनुकारिभिः।
श्रियमाप्यसुभाग्यत्वं प्राप्नुवंति सुतांस्तथा ॥२३
घटाभैरध्वगा नार्यो निर्मांसैः कुलटाः स्त्रियः।
शिरालैरपि हिंस्राः स्युर्विश्लिष्टैर्धनवर्जिताः ॥२४
अत्यंतकुटिलैः रूक्षैः स्फुटिताग्रैर्गुडप्रभैः।
अनेकजैस्तथा रोमैः केशैश्चापि तथाविधैः ॥२५
अत्यन्तपिंगला नारी विषतुल्येति निश्चितम्।
सप्ताहाभ्यन्तरे पापा पतिं हन्यान्न संशयः ॥२६
हस्तिहस्तनिभैर्वृत्तै रंभाभैः करभोपमैः।
प्राप्नुवंत्यरुभिः शश्वत्स्त्रियः सुखमनंगजम् ॥२७
दौर्भाग्यं बद्धमांसैश्च बन्धनं रोमशोरुभिः।
तनुभिर्वधमित्याहुर्मध्यच्छिद्रैष्वनीशता ॥२८

जिस स्त्री के जांघ पर रोम होते हैं वह स्त्री क्लेशित हुआ करती है। जिसकी पिंडिकाऐं उद्धत होती हैं वह स्त्री भ्रमण किया करती है। जिसको कौए की-सी जांघें होती हैं तथा बहुत वाचाट (बोलने वाली) और कपिला होती है वह पति का हनन किया करती है। मार्जार और

सिंह के जानुओं के अनुकरण करने वाले जिसके जानु (घुटने) होते हैं वह स्त्री श्री की प्राप्ति कर सुभाग्य की प्राप्ति किया करती है और सुतों को प्राप्त करती हैं ।।२२-२३।। घर की आभा वाले जानुओं से युक्त स्त्री मार्ग गामिनी हुआ करती है। जिनके घुटने निर्मास होते हैं वे कुलटा स्त्रियां होती हैं। शिरालों से भी हिंस्र होती हैं और विश्लिष्टों से धन वर्जित हुआ करती है ।।२४।। अत्यन्त कुटिल, रूखे, स्फुटित अग्र भाग वाले, गुड़ के तुल्य प्रभा वाले और अनेक स्थानों पर उत्पन्न रोमों से तथा उसी प्रकार के केशों से अत्यन्त पिङ्गला स्त्री निश्चित रूप से विष के समान त्याज्य हुआ करती है। ऐसी स्त्री एक ही सप्ताह के अन्दर पापिनी पति का हनन कर देती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।।२५-२६।। हाथी की सूँड के समान वृत्त और कदली के तुल्य आभा वाले करभ की भाँति ऊरुओं से स्त्रियां काम से उत्पन्न सुख को प्राप्त किया करती हैं ।।२७।। वद्ध मांसों से दुर्भाग्य और रोम शोरुओं से बन्धन तथा तनुओं से वध कहा गया है एवं मध्य छिद्रों से अनीशता होती है ।।२८।।

अरोमको भगो यस्याः समः सुश्लिष्टसंस्थितः ।
अपि नीचकुलोत्पन्ना राजपत्नी भवत्यसौ ।।२९
तिलपुष्पनिभो यश्च यद्यग्रे खुरसंनिभः ।
द्वावप्येतौ परप्रेष्यं कुर्वाते च दरिद्रताम् ।।३०
उलूखलनिभैः शोकं मरणं विवृताननैः ।
विरूपैः पूतिनिर्मांसैर्गंजसंनिभरोमभिः ।
दौःशील्यं दुर्भगत्वं च दारिद्र्यमधिगच्छति ।।३१
कपित्थफलसंकाशः पीनो वलिर्वजितः ।
स्फीतः प्रशस्यते स्त्रीणां निंदितश्चान्यथा द्विजाः ।।३२
कुब्जमद्रोणिकं पृष्ठं रोमशं यदि योषितः ।
स्वप्नांतरे सुखं तस्या नास्ति हन्यात्पतिं च सा ।।३३
विपुलैः सुकुमारैश्च कुक्षिभिः सुबहुप्रजाः ।
मण्डूककुक्षिर्या नारी राजानं सा प्रसूयते ।।३४

उन्नतैर्वलिभिर्वंध्याः सुवृत्तैः कुलटाः स्त्रियः ।
जारकर्मरतास्ताः स्युः प्रव्रज्यां च समाप्नुयुः ॥३५

हे द्विज ! सन्ध्या के वर्ण के समान सुन्दर तथा सूक्ष्म रोमों से युक्त और पृथु स्त्रियों के जघन रति के सौख्य के करने वाले प्रशंसनीय होते हैं जिसका भग रोम रहित, सम और सुश्लिष्ट संस्थित होता है वह स्त्री भले ही नीच कुल में क्यों न उत्पन्न हुई हो यह निश्चत राज पत्नी होती है ॥२९॥ जो भग तिल पुष्प के सम हो और यदि अग्रभाग में खुर के तुल्य हो तो ये दोनों पर प्रैष्य एवं दरिद्रता को किया करते हैं ॥३०॥ उलूखल के समान रोमों से शोक विवृताननों से मरण और विरूप तथा पूतिनिर्मांस हाथी के तुल्य रोमों से दुःशीलता, दुर्भाग्य और दरिद्रता को प्राप्त होती है ॥३१॥ हे द्विज वर्ग ! कपित्थ के फल के तुल्य पीन (स्थूल), वलियों से रहित और स्फीत स्त्रियों का प्रशसनीय होता है और इसके विपरीत निन्दित कहा गया है ॥३२॥ यदि स्त्रियों का पृष्ठ रोमों वाला, कुब्ज और अद्रोणिक होता है तो उसका सुख स्वप्नान्तर में नहीं होता है तथा वह स्त्री पति का हनन किया करती है ॥३३॥ विपुल और सुकुमार कुक्षियों से युक्त स्त्री सुन्दर बहुत सी सन्तानों को उत्पन्न करने वाली होती है और जो स्त्री मण्डूक के समान कुक्षि वाली होती है । वह निश्चित रूप से राजा को जन्म देने वाली होती है ॥३४॥ जिसकी वलियाँ उन्नत होती हैं वह वन्ध्या स्त्री होती है तथा सुवृत्त वलियों वाली कुलटा होती हैं । ऐसी स्त्रियाँ जार के कर्म में रत रहा करती हैं और प्रव्रज्या को प्राप्त हो जाती हैं अर्थात् घर का त्याग कर बाहिर निकल जाया करती हैं ॥३५॥

उन्नता च नतैः क्षुद्रा विषमैर्विषमाशया ।
आयुरैश्वर्यसंपन्ना वनिता हृदयैः समैः ॥३६
सुवृत्तमुन्नतं पीनमदूरोन्नतमायतम् ।
स्तनयुग्ममिदं शस्तमतोऽन्यदसुखावहम् ॥३७
उन्नतिः प्रथमे गर्भे द्वयोरेकस्य भूयसो ।
वामे तु जायते कन्या दक्षिणे तु भवेत्सुतः ॥३८

दीर्घे तु चूचुके यस्याः सा स्त्री धूर्ता रतिप्रिया ।
सुवृत्ते तु पुनर्यस्या द्वेष्टि सा पुरुषं सदा ॥३९
स्तनैः सर्पफणाकारैः श्वजिह्वाकृतिभिस्तथा ।
दारिद्र्यमधिगच्छंति स्त्रियः पुरुषचेष्टिताः ॥
अवष्टब्धघटीतुल्या भवंति हि तथा द्विजाः ॥४०
हिंस्रा भवति वक्रेण दौःशील्यं रोमशेन तु ।
निर्मांसेन तु वैधव्यं विस्तीर्णो कलहप्रिया ॥४१
चतस्रो रक्तगम्भीरा रेखाः स्निग्धाः करे स्त्रियाः ।
यदि स्युः सुखमाप्नोति विच्छिन्नाभिरनीशता ॥४२

नलों से उन्नत और क्षुद्र तथा विषमों से विषम आशय वाली होतीं हैं। जिस वनिता के हृदय सम होते हैं वह आयु और ऐश्वर्य से सम्पन्न हुआ करती हैं ॥३६॥ सुवृत्त अर्थात् गोलाकार वाला, उन्नत अर्थात् उठा हुआ, पीन (स्थूल) और अदूरोन्नत एवं आयत स्तन युग्म जिस नारी का होता है वह प्रशस्त अर्थात् बहुत ही अच्छा होता है तथा इसके विपरीति जो होता है वह सुख देने वाला नहीं होता है ॥३७॥ जिस नारी के प्रथम गर्भ में दोनों स्तनों में एक की अधिक उन्नति होती है उसके वाम स्तन में ऊँचाई होने से कन्या और दाहिने में उन्नति होने पर पुत्र उत्पन्न हुआ करता है ॥३८॥ जिस स्त्री के स्तनों के चूचुक अर्थात् कुचों के अग्रभाग की घुण्डी बहुत दीर्घ होते हैं वह स्त्री बहुत ही धूर्त्ता और रति से प्रेम करने वाली हुआ करती है। जिस नारी के चूचुक सुवृत्त होते हैं वह सदा पुरुष से द्वेष करने वाली होती है ॥३९॥ जिस नारी के स्तन सर्प के फन जैसे आकार वाले होते हैं तथा कुत्ता की जिह्वा के समान आकृति वाले हुआ करते हैं वे स्त्रियाँ पुरुषों की चेष्टा रखने वाली दरिद्रता को प्राप्त किया करती हैं और अवष्टब्ध घटी के समान हुआ करती हैं ॥४०॥ जिसका वक्षः स्थल वक्र होता है वह हिंस्रा अर्थात् हिंसा करने वाली होती है, जिसका रोमों से युक्त वक्ष होता है वह नारी दुःशीलता वाली होती है और जिसका वक्षःस्थल निर्मांस अर्थात् बिना मांस वाला होता है वह विधवा-पन भोगने वाली होती है तथा जिसका वक्ष विस्तीर्ण होता है वह कलह

से प्रेम करने वाली हुआ करती है ॥४१॥ जिस नारी के हाथ में रक्त से गम्भीर और स्निग्ध चार रेखाएं होती हैं वह परम सुख को प्राप्त किया करती है ॥४२॥

रेखाः कनिष्ठिकामूलाद्यस्याः प्राप्ताः प्रदेशिनीम् ।
शतमायुर्भवेत्तस्यास्त्रयाणामुन्नतौ क्रमात् ॥४३
संवृत्ताः समपर्वाणस्तीक्ष्णाग्राः कोमलत्वचः ।
समा ह्यंगुलयो यस्याः सा नारी भोगवर्धिनी ॥४४
बन्धुजीवारुणैस्तुंगैर्नखैरैश्वर्यमाप्नुयात् ।
खरैर्वक्रैर्विवर्णाभैः श्वेतपीतैरनीशता ॥४५
रक्तैर्मृदुभिरैश्वर्यं निश्छिद्रांगुलिभिर्द्विजाः ।
स्फुटितैर्विषमै रूक्षैः क्लेशं पाणिभिराप्नुयुः ॥४६
समरेखा यवा यासामंगुष्ठांगुलिपर्वसु ।
तासां हि विपुणं सौख्यं धनं धान्यं तथाऽक्षयम् ॥४७
मणिबन्धोऽव्यवच्छिन्नो रेखात्रयविभूषितः ।
ददाति न चिरादेव भोगमायुस्तथाक्षयम् ॥४८

जिस स्त्री के रेखाएं कनिष्ठिका अंगुलि के मूल से लेकर प्रदेशिनी अंगुलि तक प्राप्त होती हैं उस स्त्री की सौ वर्ष की आयु हुआ करती है किन्तु तीनों रेखाओं की उन्नति क्रम से होनी चाहिए ॥४३॥ संवृत्त और समान पर्वों वाली तथा जिनके अग्रभाग तीक्ष्ण हों और कोमल त्वचा वाली हों ऐसी समान अंगुलियां जिस स्त्री की होती हैं वह भोगों को बढ़ाने वाली होती हैं ॥४४॥ वन्धु जीव के समान अरुण, तुङ्ग नखों से युक्त अंगुलियों से नारी ऐश्वर्य को प्राप्त किया करती है। खर, वक्र, विवर्ण आभा वाले तथा श्वेत एवं पीत नखों से युक्त नारी अनीशता को प्राप्त किया करती है ॥४५॥ रक्त, मृदु (कोमल) और बिना छेद वाली अँगुलियों वाले हाथों से युक्त स्त्रियाँ ऐश्वर्य प्राप्त करती हैं और जिनके हाथ स्फुटित हों, विषम और रूखे होते हैं वे क्लेश प्राप्त करती हैं ॥४६॥ समान रेखा वाले यव जिनके अंगूठे और अँगुलियों के पर्वों में हुआ करते हैं उन नारियों का बहुत अधिक सुख, धन, धान्य अक्षय होता है ॥४७॥

जिनका मणिबन्ध अव्यवच्छिन्न और तीन रेखाओं से भूषित हुआ करता है वे बहुत काल तक भोग, आयु, अक्षय रूप से नहीं होती हैं ॥४८॥

॥ तृतीयाकल्पविधिवर्णनम् ॥

पतिव्रता पतिप्राणा पतिशुश्रूषणे रता ।
एवंविधापि या प्रोक्ता शुचिः संशोभना सती ॥१
सोपवासा तृतीयां तु लवणं परिवर्जयेत् ।
सा गृह्णाति च वै भक्त्या व्रतमामरणांतिकम् ॥२
गौरीददाति संतुष्टा रूपं सौभाग्यमेव च ।
लावण्यं ललितं हृद्यं श्लाघ्यं पुंसां मनोरमम् ॥३
पुंसो मनोरमा नारी भर्ता नार्या मनोरमः ।
गौरीव्रतेन भवति राजँल्लवणवर्जनात् ॥४
इदं व्रतं प्रति विभो धर्मराजस्य शृण्वतः ।
उमया च पुरा प्रोक्तं यद्वाक्यं तन्निबोध मे ॥५
मया व्रतमिदं सृष्टं सौभाग्यकरणं नृणाम् ।
मर्त्ये तु नियता नारी व्रतमेतच्चरिष्यति ।
सह भर्त्रा सामोदेत यथा भर्ता हरो मम ॥६
याच कन्या न भर्तारं विंदते शोभना सती ।
सा त्विदं व्रतमुद्दिश्य भवेदक्षारभोजना ।
मच्चित्ता मन्मनाः कुर्यान्मद्भक्ता मत्परिग्रहा ॥७

इस अध्याय में तृतीय कल्प विधि का वर्णन किया जाता है । धसुमंतु महर्षि ने कहा—जो स्त्री पतिव्रता अर्थात् एकमात्र पति के सेवाराधन के व्रत वाली हो, पतिप्राणा अर्थात् अपने पति को प्राणों की भाँति समझने वाली हो और पति की सेवा में रति रखने वाली है इस प्रकार की भी जो पवित्र और संशोभना होती है वह सती कही गई है ॥१॥ ऐसी सती स्त्री भी उपवास युक्त होती हुई तृतीया के दिन लवण का त्याग कर देवे और

वह मरण पर्यन्त इस व्रत का भक्ति पूर्वक ग्रहण किया करती है ॥२॥ उस स्त्री से भगवती गौरी परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होती है और उसे फिर वह देवी रूप, सौभाग्य, लावण्य जोकि पुरुषों को ललित, हृद्य, श्लाघ्य और मनोरम होता है, दिया करती है ॥३॥ हे राजन् ! वृत के दिन इस एक लवण के त्याग कर देने से पुरुष को मनोरम स्त्री और स्त्री को मन रमाने वाला पुरुष इस गौरी के व्रत से होता है ॥४॥ हे विभो ! इस व्रत के विषय में पहिले श्रवण करने वाले धर्मराज से भगवती उमा देवी ने जो वाक्य कहे थे उन्हें कृपा कर मुझसे सुनिये ॥५॥ उमा ने कहा था कि मैंने यह व्रत मनुष्यों के सौभाग्य का करने वाला सृजित किया है । अपने मानव में नियत रहने वाली नारी इस व्रत को किया करेंगी । और वे नारियाँ अपने स्वामी के साथ आनन्द का लाभ किया करेंगी जैसा कि मेरे स्वामी शिव हैं और मैं उनके साथ मुदित रहती हूँ ॥६॥ जो कन्या परम शोभन और सती अपना कोई समुचित स्वामी नहीं प्राप्त करती है वह कन्या इस व्रत को करके बिना क्षार वाले भोजन करने वाली रहा करती है । मुझमें चित्त लगाने वाली और मुझ में ही मन रखने वाली, मेरी परम भक्त और मेरे परिग्रह वाली होकर उसे यह व्रत करना चाहिए ॥७॥

गौरीं संस्थाप्य सौवर्णीं गन्धालंकारभूषिताम् ।
वस्त्रालंकारसंवीतां पुष्पमंडलमंडिताम् ।।८

लवणं गुडं घृतं तैलं देव्यै शक्त्या निवेदयेत् ।
कटुखण्डं जीरकं च पत्रशाकं च भारत ।.९

गुडघृष्टांस्तथापूपान्खंडवेष्ठांस्तथा नृप ।
ब्राह्मणे व्रतसंपन्ने प्रदद्यात्सुबहुश्रुते ।।१०

शुक्लपक्षे सदा देया यथा शक्त्या हिरण्मयी ।
धनहीने तु भक्त्या च मधुवृक्षमयी नृप ।।११

अर्च्या नित्यं संनिधानात्तत्र गौरी न संशयः ।
अक्षारलवणं रात्रौ भुंक्ते चैव सुवाग्यता ।।१२

गौरी सन्निहिता नित्यं भूमौ प्रस्तरशायिनी ।
एवं नियमयुक्तस्य देव्या यत्समुदाहृतम् ॥१३
तच्छृणु महाबाहो कथ्यमानं महाफलम् ।
भर्तारं तु लभेत्कन्या यं वांछति मनोनुगम् ॥१४
सुचिरं सह वै भर्त्रा क्रीडयित्वा इहैव सा ।
संततिं च प्रतिष्ठाप्य सह तेनैव गच्छति ॥१५

सुवर्ण से निर्मित गौरी की संस्थापना करके उसे गन्ध तथा अलंकारों से विभूषित करे और वस्त्र एवं आभूषणों से संवीत बना कर पुष्प मण्डल से मण्डित करना चाहिए ॥८॥ लवण, गुड़, घृत, तैल अपनी शक्ति के अनुसार देवी के लिये निवेदित करे। हे भारत ! कटुखण्ड, जीरा और पत्र-शाक उसे समर्पित करना चाहिए ॥९॥ गुड़ से घृष्ट अथवा खाँड से घृष्ट पूओं को भली भांति बहुश्रुत एवं व्रत सम्पन्न ब्राह्मण को हे नृप ! दान करके देना चाहिए ॥१०॥ शुक्ल पक्ष में अपनी शक्ति के अनुसार सर्वदा हिरण्मयी का दान करना चाहिए। यदि धनहीन हो तो भक्ति के सहित मधुवृक्ष मयी का दान करना चाहिए ॥११॥ वहाँ सन्निधान से नित्य ही गौरी की पूजा करनी चाहिए इसमें कोई भी संशय नहीं है। रात्रि में अक्षार लवण अर्थात् क्षार और लवण से रहित भोजन जो किया करती है और सुवाग्यता रखती है, जो भूमि में प्रस्तरों पर शयन किया करती है उसके नित्य ही गौरी सन्निहित रहती है। इस प्रकार से देवी के नियमों से युक्त का जो फल कहा गया है हे महाबाहो ! उस मेरे द्वारा कहे जाने वाले महाफल का तुम श्रवण करो। इस तरह नियम से समन्वित अर्चनोपवास करने वाली कन्या अपने मन के अनुकूल जिस स्वामी को चाहती है उसे ही वह प्राप्त किया करती है। इस संसार में उस अपने स्वामी के साथ चिरकाल तक आनन्दोपभोग करके और अपनी सन्तान को प्रतिष्ठापित करके अन्त में उसी के साथ स्वर्ग लोक की प्राप्ति किया करती है ॥१२-१५॥

———

।। चतुर्थीकल्पवर्णनम् ।।

चतुर्थ्यां तु सदा राजन्निराहारव्रतान्वितः ।
दत्वा तिलान्नं विप्रस्य स्वयं भुंक्ते तिलौदनम् ।।१
वर्षद्वये समाप्तिर्हि व्रतस्य तु यदा भवेत् ।
विनायकस्तस्य तुष्टो ददाति फलमीहितम् ।।२
याति भाग्यनिवासं हि क्रीडते विभवैः सह ।
इह चागत्य पुण्यांते दिव्यो दिव्यवपुर्यशः ।।३
मतिमान्धृतिमान्वाग्मी भाग्यवान्कामकारवान् ।
असाध्यान्यपि साद्ध्वेह क्षणादेव महांत्यपि ।।४
हस्त्यश्वरथसंपन्नः पत्नीपुत्रसहायवान् ।
राजा भवति दीर्घायु। सप्तजन्मान्य सौ नृपः ।
एतद्ददाति सन्तुष्टो विघ्नहंता विनायकः ।।

इस अध्याय में चतुर्थी व्रत के कल्प का वर्णन किया जाता है । सुमंतु ऋषि ने कहा—हे राजन् ! चतुर्थी तिथि के दिन सदा जो निराहार रहकर व्रत से युक्त होता है वह ब्राह्मण को तिलों से युक्त अन्न का दान करके स्वयं ही तिल और ओदन का भोजन किया करता है । इस प्रकार के व्रत की समाप्ति दो वर्ष में करे । जब यह व्रत पूर्ण समाप्त हो जाता है तब भगवान् विनायक इस पर सन्तुष्ट हो जाते हैं और जो भी अभीष्ट फल होता है उसे प्रदान कर देते हैं ।।१-२।। वह व्रत करने वाला भाग्य के निवास को प्राप्त होता है और वैभवों के साथ आनन्द की क्रीड़ा करता है । यहाँ संसार में जन्म लेकर इस महापुण्य के अन्त हो जाने पर वह दिव्य-दिव्य शरीर धारी और दिव्य यश वाला होता है ।।३।। वह मतिमान्, धृति वाला, वाग्मी, भाग्य वाला, कामकार वाला होता है तथा जो कुछ असाध्य भी कार्य होते हैं और महान् कार्य होते हैं उन्हें क्षण मात्र में साध्य कर लेता है ।।४।। चतुर्थी के व्रत करने वाला हाथी, घोड़े और रथों से सम्पन्न हो जाता है तथा पत्नी और पुत्रों की सहायता से युक्त होता है । वह राजा होता है ! हे नृप ! वह सात जन्म पर्यन्त दीर्घायु

और राजा होता है। समस्त विघ्नों के हनन करने वाले भगवान् विनायक परम सन्तुष्ट होकर यह सभी कुछ उसे दिया करते हैं ।।५।।

विघ्नः कस्य कृतस्तेन येन विघ्नविनायकः ।
तद्वदस्व विघ्नेशविघ्नकारणमद्य मे ।।६
कौमारे लक्षणे पुंसां स्त्रीणां च सुकृते कृते ।
विघ्नं चकार विघ्नेशो गांगेयस्य विनायकः ।।७
तं तु विघ्नं विदित्वासौ कार्त्तिकेयो रुषान्वितः ।
उत्कृष्य दंतं तस्यास्याद्धंतुं तं च समुद्यतः ।।८
निवार्यापृच्छद्देवेशे रोषः कार्यः कृतस्त्वया ।
तं चाचख्यो स पित्रे वै कृतं पूरुषलक्षणम् ।
तत्र विघ्नकृते मह्यं योषिता न च लक्षणम् ।।९
अथोवाच महादेवः प्रहसन्त्स्वसुतं किल ।
मम किं लक्षणं पुत्रः पश्यसे त्वं वदस्व मे ।।१०
स चोवाच करे तुभ्यं कपाल द्विजलक्षितम् ।
अविचारेण संस्थाप्यं कपाली तेन चोच्यसे ।
स तल्लक्षणमादाय समुद्रे प्राक्षिपद्रुषा ।।११
अथ देवसमाजे वै प्रवृत्ते ब्रह्मरुद्रयोः ।
अहं ज्यायानहं ज्यायान्विवादोऽभूत्तयोर्द्वयोः ।
तव संभूत्यभिज्ञोऽस्ति मां तु वेद न कश्चन ।।१२

राजा शतानीक ने कहा—उसने किसका विघ्न किया था जिससे यह विघ्नों के विनायक हुए। विघ्नों के स्वामीके विघ्नोंके इस कारण को आप कृपाकर मुझे बतलाइये ।।६।। पुरुषों के कौमार लक्षण में तथा स्त्रियों के सुकृत करने में विनायक विघ्नेश ने गाङ्गेय का विघ्न किया था ।।७।। स्वामी कार्तिकेय ने उस विघ्न को जान कर क्रोध से युक्त होकर उनके दाँत को उखाड़ कर उनको मारने के लिये वह उद्यत्त होगये थे ।।८।। उस समय देवेश ने कात्तिकेय का निवारण किया और उनसे पूछा कि तुमने क्रोध क्यों किया है। तब कार्त्तिकेय ने अपने पिता से कहा कि

इसने पुरुष के लक्षण को विकृत कर दिया है। उस विघ्न के करने पर मुझे योषिता हो गई है और पुरुष लक्षण नहीं है ॥६॥ इसके अनन्तर महादेव ने हँसते हुए अपने पुत्र से कहा—हे पुत्र ! तुम मुझे बताओ कि मेरा क्या लक्षण देख रहे हो ? ॥१०॥ तब कात्तिकेय ने कहा—आपके हाथ में द्विज का लक्षित कपाल है जोकि अविचार से सस्थापित है। इसीलिये आप 'कपाली'—इस नाम से कहे जाया करते हैं। उन्होंने उस लक्षण को लेकर क्रोध से समुद्र में फैंक दिया था ॥११॥ इसके अनन्तर देवों के समाज के प्रवृत्त होने पर उन दोनों ब्रह्मा और रुद्र में बड़ा विवाद हो गया था। दोनों आप-आप को कहते थे कि मैं बड़ा हूँ। तुम्हारी सम्भूति (उत्पत्ति) का अभिज्ञ है। मुझे तो कोई नहीं जानता था ॥१२॥

एवं शिवेऽति ब्रुवति ब्रह्मणः पंचमं शिरः।
मुक्ताट्टहासं प्रोवाच त्वामहं वेदिता भव ॥१३
एवं ब्रुवत्तु रुद्रेण ब्राह्मं हयशिरो महत्।
नखाग्रेण निकृतं च तस्यैव च करे स्थितम् ॥१४
करस्थेनैव तेनासावागच्छद्यत्र वै हरिः।
तपस्तेपे तदा मेरौ तत्रासौ भगवान्वशी ॥१५
कृते हयशिरे तस्मिन्स्थानात्तस्मात्तु ब्रह्मणः।
रोषाद्विनिः सृतस्त्वन्यः पुरुषः श्वेतकुंडली ॥१६
कवची सशिरस्कश्च सशरः सशरासनः।
अनिर्देश्यवपुः स्रग्वी किं करोमि स चाब्रवीत् ॥१७
अथोवाच रुषा ब्रह्मा हन्यतां स सुर्मतिः।
स तु मार्गेण रुद्रस्य आगच्छद्रोषतो द्रुतम् ॥१८
रुद्रोपि विष्णुतेजोभिः प्रविष्टः स त्वधिष्ठितः।
स प्रविश्य तदापश्यत्तपंतं चोत्तमं तपः।
हरो नारायणं देवं वैकुंठमपराजितम् ॥१९
हरं दृष्ट्वाथ संप्राप्तं कार्यं चास्य विचिंत्य च।
उवाच शूलिनं देवो भिन्धि शूलेन मे भुजम् ॥२०

स बिभेद महातेजा भुजं शूलेन तं हरः ।।२१

इस प्रकार शिव के बोलने पर ब्रह्मा का जो पाँचवाँ शिर था वह बड़ा भारी अट्टहास करते हुए बोला—हे भव! तुमको मैं जानता हूँ ।।१३।। इस प्रकार से बोलने वाले ब्रह्मा के महान् हय शिर को रुद्र ने अपने नख के अग्रभाग से कुतर लिया और वह फिर उनके हो हाथ में स्थित है ।।१४।। उस काटे हुए शिर को हाथ में लिये हुए ही यह वहाँ चले गये जहाँ हरि थे। उस समय वहाँ पर मेरु पर्व में इन वशी भगवान् ने तपस्या की थो ।।१५।। उस हय शिर के कट जाने पर उस ब्रह्मा के स्थान से रोष से एक अन्य श्वेत कुण्डलों वाला पुरुष निकला था ।।१६।। वह पुरुष कवच धारी, शिर के सहित, शर से युक्त, धनुष लिये हुए, अनिर्देश्य शरीर वाला तथा माला धारण किये हुए था और उसने कहा—क्या करूँ ? ।।१७।। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने क्रोध से कहा—उस दुष्ट बुद्धि वाले को मार दो। वह रुद्र के मार्ग से शीघ्र क्रोध में आया था। रुद्र भी विष्णु के तेज से प्रविष्ट था। वह अधिष्ठित हो गया। तब उसने प्रवेश करके उसको उत्ताम तप करते हुए देखा। हर ने नारायण देव को और अपराजित वैकुण्ठ को देखा ।।१८-१९।। सम्प्राप्त हर को देख कर और इसके कार्य का विचार करके देव शूली से बोले कि मेरी भुजा को शूल से काट दो ।।२०।। उस महान् तेजस्वी हर ने उस भुजा को शूल से भिन्न कर दिया था ।।२१।।

शूलभेदादसृक्चोर्ध्वं जगामावृत्य रोदसी ।
विनिवृत्य ततः पश्चात्कपाले निपपात ह ।।२२

असृक्कपाले पतितं प्रदेशिन्या व्यवर्द्धयत् ।
यदा हि विनिवृत्तिः स्याद्देवस्य रुधिरं प्रति ।।२३

तदा तु व्यसृजतोयं कृत्वा वारुणीं तनुम् ।
तोये प्रवृत्तेऽसृग्भूते कपाले यत्र तच्छिरः ।।२४

कपाले तु प्रदेशिन्या रुद्रोऽसौ रुधिरेऽसृजत् ।
आमुक्तकवचं रक्तं रक्तकुंडलिनं नरम् ।।२५

अथोवाच भवं देवं किं करोमीति मानद ।
असावपि ससर्जाथ श्वेतकुंडलिनं नरम् ॥२६
तावुभौ समयुध्येतां धनुष्प्रवरधारिणौ ।
यथा राजन्बलीयांसौ कुजकेतू युगात्यये ।।२७
तयोस्तु युध्यतोरेवं संवत्सरश्चाधिको गतः ।
न चादृश्यत विजय एकस्यापि तदा तयोः ।२८

शूल के द्वारा भेदन करने से उसका रक्त इस रोहसी को आवृत कर ऊपर की ओर चला गया था और फिर वहां से वापिस होकर कपाल में गिर पड़ा ॥२२॥ कपाल में पतित रक्त को प्रदेशिनी में विवधित किया था। जब देवकी रुधिर के प्रति विनिवृत्ति हो गई तब वारुणी तनु करके जल को छोड़ा था। कपाल में असृग्भूत (रक्तस्वरूप) तोप के प्रवृत्त होने पर जहाँ कि वह शिर था, कपाल में प्रदेशिनी के द्वारा इस रुद्र ने रुधिर में सृजन किया था। जिसका सृजन किया था वह नर आयुक्त कवच और रक्त कुण्डलों वाला तथा रक्त वर्षा का था ॥२३-२५॥ इसके पश्चात् वह भवदेव से बोला—हे मानद ! मैं क्या करूँ। इसके अनन्तर इसने भी श्वेत कुण्डली नर का सृजन किया था ॥२६॥ वे दोनों धनुष्प्रवर धारी युगात्यय बलवान् कुज केतु की भाँति युद्ध करने लगे ॥२७॥ इस प्रकार से उन दोनों के युद्ध करते हुए एक वष से भी अधिक समय हो गया था। उस समय उन दोनों युद्ध करने वालों में एक का भी विजय नहीं दिखलाई देता था ॥२८॥

अथांतरिक्षे तौ दृष्ट्वा वागुवाचाशरीरिणो ।
अवतारोऽथ भविता युवयोर्हि मया सह ।।२९
भारापनोदः कर्तव्यः पृथिव्यर्थे सुरः सह ।
तदाश्चर्यो हि भविता देवकार्यार्थसिद्धये ॥३०
भूलोकभावं निर्धूय भूयो गंता सुरालयम् ।
एदमुक्त्वा तु वैकुण्ठो ददावेकं रवेस्तदा ।।३१
श्वेतकुंडलिनं दृप्तं तं जग्राह रविर्मुदा ।
इंद्रस्यापि ततः पश्चाद्रक्तकुंडलिनं ददौ ।।३२

जग्राह च मुदा युक्त इंद्र स्वं च पुरं ययौ ।
गतौ रवीन्द्रो प्रगृह्य पुरुषौ क्रोधसंभवौ ।।३३
अथोवाच तदा रुद्रं देवः कमलसंस्थितः ।
गच्छ त्वमपि कापाले कपालव्रत चर्यया ।
अवतारो व्रतस्यास्य मर्त्यलोके भविष्यति ।।३४
ये च व्रतं त्वदीयं वै धारयिष्यंति मानवाः ।
न तेषां दुर्लभं किंचिद्भवितेह परत्र च ।।३५

इसके अनन्तर अन्तरिक्ष में युद्ध करते हुए उन दोनों को देख कर बिना शरीर वाली वाणी ने कहा–तुम दोनों का मेरे साथ अवतार होगा ।।२६।। पृथिवी के लिये देवों के सहित भार अपनोद करना है ! उस समय देवों के कार्य की सिद्धि के लिये बड़ा ही एक आश्चर्य होगा ।।३०।। भूलोक के भाव को निवृंत करके फिर सुरालय को चले जाओगे । इस तरह कहकर वैकुण्ठ ने उस समय एक को रवि के लिये दे दिया था ।।३१।। रवि ने बड़ी ही प्रसन्नता से दृप्त श्वेत कुण्डलों वाले को ग्रहण कर लिया था । इसके पश्चात् जो रक्त कुण्डली था उसको इन्द्र को दे दिया ।।३२।। इन्द्र ने बहुत खुशी से उसको ग्रहण करके अपने पुर को प्रस्थान किया था ।।३३।। इन्द्र और रवि दोनों इन क्रोध से उत्पन्न होने वाले पुरुषों को ग्रहण करके चले गये । इसके पश्चात् कमल पर स्थित देव रुद्र से बोले–तुम भी कपाल में जाओ और कपाल व्रत की चर्या से वहाँ स्थित रहो । मनुष्य लोक में इस व्रत का अवतार होगा ।।३४।। जो मनुष्य तुम्हारे इस व्रत को धारण करेंगे उनको इस लोक में और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।।३५।।

एवं संलप्य बहुशः सुमुखं प्रतिनंद्य च ।
आहूय च समुद्रं स प्रत्युवाचाविचारयन् ।।३६
कुरुष्वाभरणं स्त्रीणां लक्षणं यद्विलक्षणम् ।
कार्त्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ।।३७
स चाह मम नाम्नेदं भवेत्पुरुषलक्षणम् ।
देवेन तत्प्रतिज्ञातमेवमेतद्भविष्यति ।।३८

कार्त्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ।।३९
प्रयच्छास्य विषाणं वै निष्कृष्टं यत्त्वयाऽधुना ।
जवश्यमेव तद्भूतं भवितव्यं तु कस्यचित् ।।४०
ऋते विनायकं तद्वै दैवयोगान्न कामतः ।
गृहाण एतत्सामुद्रं यत्त्वया परिकीर्तितम् ।।४१
स्त्रीपुंसोर्लक्षणं श्रेष्ठं सामुद्रमिति विश्रुतम् ।
इमं च सविषाणं वै कुरु देवविनायकम् ।।४२

इस प्रकार से बहुत बार संलाप करके और सुमुख अभिनन्दन करके उसने समुद्र को बुलाकर कुछ भी विचार न करते हुए कहा ।।३६।। स्त्रियों का जो विलक्षण लक्षण आभरण है वह करो । जो कार्तिकेय ने कहा है उसे विचार न करते हुए बतलाओ ।।३७।। उसने कहा—मेरे नाम से यह पुरुष लक्षण होता है । देव ने यह प्रतिज्ञा की है । यह इसी प्रकार से होगा ।।३८।। कार्तिकेय ने जो कहा है उसे विचार न करते हुए कहो ।।३९।। जो तुमने अभी इसका विषाण निकाल लिया है उसे इसको देदो अवश्य ही वही हुआ जो किसी का भवितव्य होता है ।।४०।। विनायक के विना उसे दैव योग से, इच्छा से नहीं, ग्रहण करो यह सामुद्र है जोकि तुमने कीर्तित किया है ।।४१।। स्त्री और पुरुष का लक्षण श्रेष्ठ सामुद्र प्रसिद्ध है । इस देव विनायक को विषाण से युक्त करदो ।।४२।।

अथोवाच च देवेशं बाहुलेयः समत्सरम् ।
विषाणं दद्मि चास्याहं तव वाक्यान्न संशयः ।।४३
यदा त्वयं विषाणं च मुक्त्वा तु विचरिष्यति ।
तदा विषाणमुक्तः सन्भस्म ऐतं करिष्यति ।।४४
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा विषाणं तत्करे ददौ ।
विनायकस्य देवेशः कार्त्तिकेयमते स्थितः ।।४५
सविषाणकरोद्यापि दृश्यते प्रतिमा नृप ।
भीमसूनोर्महाबाहोर्विघ्नं कर्तुं महात्मनः ।।४६

एतद्रहस्यं देवानां मया ते समुदाहृतम् ।
यत्र देवो न वै वेद देवानां भुवि दुर्लभम् ॥४७
मया प्रसन्नेन तव गुह्यमेतदुदाहृतम् ।
कथितं तिथिसंयोगे विनायककथामृतम् ॥४८
य इदं श्रावयेद्विद्वान्ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
क्षत्रियांश्च स्ववृत्तिस्थान्विट् शूद्रांश्च गुणान्वितान् ॥४९
न तस्य दुर्लभं किंचिदिह चामुत्र विद्यते ।
न च दुर्गतिमाप्नोति न च याति पराभवम् ॥५०
निर्विघ्नं सर्वकार्याणि साधयेन्नात्र संशयः ।
ऋद्धिं वृद्धिं श्रियं चापि विंदेत भरतोत्तम ॥५१

इसके अनन्तर बाहुलेय मात्सर्य के साथ देवेश से बोले—मैं इसको अब इस विषाण को दे देता हूँ क्योंकि जैसा भी आपका वचन है मैं उसका पालन करूँगा इससे कुछ भी संशय नहीं है ॥४३॥ जिस समय भी यह इस विषाण का त्याग करके यह विचरण करेगा तभी यह इस विषाण से मुक्त होता हुआ यह इसको भस्म कर देगा ॥४४॥ इसी प्रकार से होवे—यह उससे कहकर उसके हाथ में कार्त्तिकेय ने विषाण दे दिया था। विनायक के देवेश कार्त्तिकेय के मत में स्थित हो गये थे ॥४५॥ हे नृप ! आज भी विषाण के सहित कर वाली विनायक की प्रतिमा दिखाई देती है। और वह महावाहु तथा महात्मा भीम के पुत्र का विघ्न करने के लिये है ॥४६॥ यह देवों का रहस्य है जोकि मैंने तुम को बता दिया है। जहाँ देव हैं वहाँ देवों को भी यह ज्ञात नहीं है और इस भूमन्डल में तो यह दुर्लभ ही है। मैं तुमसे परम प्रसन्न होकर ही यह कहता हूँ और तुमसे यह समस्त गोपनीय रहस्य मैंने बता दिया है। तिथि के संयोग में यह विनायक की कथा रूपी अमृत कहा गया है। इसको जो कोई विद्वान् वेद के पारगामी ब्राह्मणों को सुनाता है तथा अपनी वृत्ति में स्थित क्षत्रियों को और गुणों से युक्त वैश्यों एवं शूद्रों को जो इसका श्रवण करता है ॥४७-४६॥ उस महा मनीषी को इस भूमण्डल में और परलोक में कुछ भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है। वह पुरुष न तो कभी किसी प्रकार की दुर्गति

को प्राप्त करता है और कभी वह कहीं भी कोई पराभव ही पाता है ॥५०॥ सभी कार्यों को वह पुरुष बिना किसी विघ्नों की बाधा के साधन कर लेता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे भरतोत्तम ! वह पुरुष ऋद्धि, वृद्धि और श्री की भी प्राप्ति किया करता है ॥५१॥

॥ पंचमी कल्पे नागपंचमी व्रत वर्णनम् ॥

पंचमी दयिता राजन्नागानां नंदिवर्धिनी ।
पञ्चम्यां किल नागानां भवतीत्युत्सवो महान् ॥१
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालियो मणिभद्रकः ।
ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनंजयौ ॥
एते प्रयच्छंत्यभयं प्राणिनां प्राणजीविताम् ॥२
पंचम्यां स्नपयन्तीह नागान्क्षीरेण ये नराः ।
तेषां कुले प्रयच्छंति तेऽभयप्राणदक्षिणाम् ॥३
शप्ता नागा यदा मात्रा दह्यमाना दिवानिशम् ।
निर्वापयंति स्नपनैर्गवां क्षीरेण मिश्रितैः ।४
ये स्नापयंति वै नागान्भक्त्या श्रद्धासमन्विताः ।
तेषां कुले सर्पभयं न भवेदिति निश्चयः ॥५
दशंति नरं विप्र नागाः क्रोधसमन्विताः ।
भवेत्किं तस्य दष्टस्य विस्तराद्ब्रूहि मे द्विज ॥६
नागदष्टो नरौ राजन्प्राप्य मृत्युं व्रजत्यथः ।
अधोगत्वा भवेत्सर्पो निर्विषो नात्र संशयः ॥७

इस अध्याय में नाग पञ्चमी कल्प की नाग पञ्चमी के व्रत का वर्णन किया जाता है। सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! यह पञ्चमी नागों की नन्दि वर्द्धिनी दयिता है। पञ्चमी में नागों का निश्चय ही एक महान् उत्सव हुआ करता है ॥१॥ वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्रक, ऐरावत, घृतराष्ट्र कर्कोटक, धनञ्जय ये प्राणों के जीवित वाले प्राणियों को अभय

देते हैं ।।२।। जो मनुष्य इस पञ्चमी तिथि में जो मनुष्य नागों को दूध से स्नपन किया करते हैं उनके कुल में वे नाग अभय की दक्षिणा दिया करते हैं ।।३।। रातदिन नाग माता के द्वारा शाप पाकर दह्य मान होते हैं तब वे गायों के दूध से मिश्रित स्नपनों से निर्वापन किया करते हैं अर्थात् शाप से प्राप्त दाह को शान्त करते हैं ।।४।। जो पुरुष श्रद्धा से समन्वित हैं और भक्ति से नागों का स्नपन किया करते हैं उनके कुल में कभी भी सर्पों का का भय नहीं होता है, यह परम निश्चित है ।।५।। राजा शतानीक ने कहा—हे विप्र ! जो क्रोध से समन्वित नाग मनुष्य को काट लेते हैं उस कटे हुए मानव की क्या गति होती है । हे द्विज ! मुझे आप इसे विस्तार के साथ बताइये ।।६।। सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! नाग से दष्ट मानव मृत्यु को पाकर अधोलोक में जाया करता है और वहाँ जाकर बिना विष वाला सर्प होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।७।।

नागदष्टः पिता यस्य भ्राता वा दुहितापि वा ।
माता पुत्रोथ वा भार्या किं कर्तव्यं वदस्व मे ।।८
मोक्षाय तस्य विप्रेंद्र दानं व्रतमुपोषणम् ।
ब्रूहि तद्दिवजशार्दूल येन तद्वै करोम्यहम् ।।९
उपोष्या पंचमी राजन्नागानां पुष्टिवर्धिनी ।
त्वमेवमेकं राजेंद्र विधानं शृणु भारत ।।१०
मासि भाद्रपदे या तु कृष्णपक्षे महीपते ।
महापुण्या तु सा प्रोक्ता ग्राह्यापि च महीपते ।।११
ज्ञेया द्वादश पंचम्यो हायने भरतर्षभ ।
चतुर्थ्यां त्वेकभक्तं तु तस्या नक्तं प्रकीर्तितम् ।।१२
भुवि चित्रमयान्नागानथ वा कलधौतकान् ।
कृत्वा दारुमयान्वापि अथ वा मृन्मयान्नृप ।।१३
पंचम्यामर्चयेद्भक्त्या नागानां पंचकं नृप ।
करवीरैः शतपत्रैर्जातीपुष्पैश्च सुव्रत ।।१४
तथा गंधैश्च धूपैश्चपूज्यं पञ्चकमुत्तमम् ।
ब्राह्मणं भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ।।१५

शतानीक ने कहा—जिसका पिता, भाई, पुत्र, भार्या, पुत्री और माता नाग के द्वारा दष्ट हो उसे क्या करना चाहिए, यह मुझे कृपया बताइये ॥८॥ हे विप्रेन्द्र ! उस के मोक्ष के लिये दान, व्रत, उपोषण क्या करना चाहिए। हे द्विजों में शार्दूल ! जिससे उसका मोक्ष हो वह मुझे बताइये, वही मैं करूं ॥९॥ सुमन्तु ने कहा—नागों के पुष्टि की बढ़ाने वाली पंचमी तिथि का उपवास करना चाहिए। हे राजेन्द्र ! हे भारत ! तुम इस तरह का एक विधान है उसका श्रवण करो ॥१०॥ हे महीपते ! भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष में जो पंचमी तिथि है वह महान् पुण्य वाली कही गई है। उसे ग्रहण भी करना चाहिए ॥११॥ हे भरतर्षभ ! वर्ष में बारह पंचमी जाननी चाहिए। चौथ में तो एक वक्त और उसमें तो रात्रि का समय बताया गया है ॥१२॥ हे नृप ! भूमि में चित्रमय अथवा सुवर्ण रचित, अथवा लकड़ी के विरचित या मिट्टी के बने हुए नागों को बनवाना चाहिए ॥१३॥ इन नागों के पंचक में पंचमी तिथि में भक्ति के साथ अर्चना करनी चाहिए। हे सुव्रत ! नागों का पूजन करवीर के पुष्प, शतपत्र पुष्प और जाति पुष्पों से करना चाहिए ॥१४॥ पूजन में पुष्पों के अतिरिक्त गन्ध (चन्दन) और धूप भी होना चाहिए। उपर्युक्त नागों के उत्तम पंचक का गन्धाक्षत पुष्प धूपादि से उपचारों से पूजन करे। इस अर्चन के पश्चात् घृत मिश्रित पायस और मोदकों से ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ॥१५॥

अनंतो वासुकिः शंखः पद्मः कंबल एव च।
तथा कर्कोटको नागो नागो ह्यश्वतरो नृप ॥१६
धृतराष्ट्रः शंखपालः कालियस्तक्षकस्तथा।
पिंगलश्च तथा नागो मासिमासि प्रकीर्तिताः ॥१
वत्सरांते पारणं स्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्बहून्।
इतिहासविदे नागं गैरिकेण कृतं नृप।
तथार्चना प्रदातव्या वाचकाय महीपते ॥१८
एष वै नागपञ्चम्यां विधिः प्रोक्तो बुधैर्नृप।
तव पित्राकृतश्चैव पितुर्मोक्षाय भारत ॥१९

अन्येपि ये करिष्यंति इदं व्रतमनुत्तमम् ।
दष्टको मोक्ष्यते तेषां शुभं स्थानमवाप्स्यति ।।२०
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं नरः श्रद्धासमन्वितः ।
कुले तस्य न नागेभ्यो भयं भवति कुत्रचित् ।।२१

अनन्त, वासुकि, शख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक, पिंगल ये बारह नाग एक-एक मास में बताये गये हैं ।।१६-१७।। जब बारह मासों में उपर्युक्त नामों वाले नागों का समर्चन होकर एक वर्ष पूण हो जावे तो वर्ष के अन्त में व्रत का पारण करे और बहुत-से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । हे महीपते ! इतिहास के ज्ञाता ब्राह्मण के लिये गैरिक से विरचित नाग तथा उसकी अर्चना वाचन करने वाले को दान में देने चाहिए ।।१८।। हे नृप ! नाग-पंचमी की यह विधि विद्वानों के द्वारा कही गई है । हे भारत ! और यही विधि पिता की मुक्ति के लिये आपके पिता के द्वारा की गई है ।।१६।। और अन्य भी जो लोग इस सर्वश्रेष्ठ व्रत को करेंगे उनका भी दष्टक मोक्ष प्राप्त कर शुभ स्थान का लाभ प्राप्त करेगा ।।२०।। जो कोई मनुष्य श्रद्धा से युक्त होकर इस व्रत की कथा को नित्य श्रवण करता है उसके कुल में किसी भी समय में तथा किसी भी स्थान में नागों से भय नहीं होता है ।।२१।।

।। तत्तद्धातुगतविषलक्षणानि वर्णयित्वा तत्तत्त्र देयानामौषधीनां वर्णनम् ।।

सविषा दंष्ट्रयोर्मध्ये यमदूती तु वै भवेत् ।
न चिकिसा बुधैः कार्या तं गतायुं विनिर्दिशेत् ।।१
प्रहरार्धं दिवारात्रावेकैकं भुञ्जते बहिः ।
एकस्य च समानं च द्वितीयं षोडशं तथा ।।२
नागोदयो यमुद्दिश्य हतो विद्धो विदारितः ।
कालदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ।।३

यन्मात्रं पतते बिंदुर्वालाग्रं सलिलोद्धृतम् ।
तन्मात्रं स्रवते द्रंष्ट्रा विषं सर्पस्य दारुणम् ॥४
नाडीशते तु सम्पूर्णे देहे संक्रमते विषम् ।
यावत्संक्रामयेद्बाहुं कुञ्चितं वा प्रसारयेत् ॥५
अनेन क्षणमात्रेण विषं गच्छति मस्तके ।
वेपते विषवेगे तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥६
वर्धते रक्तमासाद्य ततो वातैः शिखी यथा ।
तैलबिंदुर्जलं प्राप्य यथा वेगेन वर्धते ॥७

इस अध्याय में जिस-जिस धातु में प्राप्त होने वाले विष के लक्षणों का वर्णन कर वहाँ-वहाँ पर देने के योग्य औषधों का वर्णन किया है। कश्यक मुनि ने कहा—दाढ़ों में सविषा जो दाढ़ होती है वह यमदूती है, उसकी चिकित्सा बुध लोगों को कभी नहीं करनी चाहिए। उस दाढ़ से जो काट लिया गया, उसे आयु के समाप्त हो जाने वाला निर्दिष्ट कर दे ॥१॥ दिन रात में आधे प्रहर तक एक-एक को बाहिर भोग करता है उसी तरह एक के समान द्वितीय और षोडश होता है ॥२॥ नागादि जिसका उद्देश्य करके काटते हैं वह हत-विद्ध और विदारित होता है। ऐसे पुरुष को काल से ही दष्ट समझें। कश्यप मुनि का यह वचन सत्य है ॥३॥ जितना बाल के अग्रभाग जैसा सलिल से उद्धत विन्दु गिरता है उतना ही सर्प की दाढ़ दारुण विष का स्रवण किया करती है ॥४॥ शत नाड़ी वाले सम्पूर्ण शरीर में वह विष संक्रमण किया करता है जब तक वह विष बाहु को संक्राम्त करता है अथवा कुंचित को प्रसारित होता है ॥५॥ इस से एक ही क्षण में विष मस्तक में चला जाता है। विष के वेग में मनुष्य सैकड़ों और सहस्रों बार कम्पित होता है ॥६॥ वातों के द्वारा एक शिखी के समान वह विष रक्त को प्राप्त होकर बढ़ जाता है जिस प्रकार से तेल की बूंद जल में पड़कर वेग से बढ़ा करती हैं वैसे ही यह भी बढ़ता है ॥७॥

शिखण्डी आश्रयं प्राप्य मारुतेन समीरितः ।
ततः स्थानशतं प्राप्य त्वचास्थानं विचेष्टितम् ॥८

त्वचासु द्विगुणं विद्याच्छोणितेषु चतुर्गुणम् ।
पित्ते तु त्रिगुणं याति श्लेष्मे वै षोडशं भवेत् ।।९
वायौ त्रिंशद्गुणं चैव मज्जाषष्टिगुणं तथा ।
प्राणे चैकार्णवीभूते सर्वगात्राणि संधयेत् ।।१०
श्रोत्रे निरुध्यमाने च याति दष्टस्त्वसाध्यताम् ।
ततोऽसौ म्रियते जन्तुर्निःश्वासोच्छवासवर्जितः ।।११
निष्क्रांते तु ततो जीवो भूते पञ्चत्वमागते ।
तानि भूतानि गच्छंति यस्ययस्य यथातथम् ।।१२
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
इत्येषामेव संघातः शरीरमभिधीयते ।।१३
पृथिवी पृथिवीं याति तोयं तोयेषु लीयते ।
तेजो गच्छति चादित्यं मारुतो मारुतं व्रजेत् ।।१४
आकाशं चैवमाकाशे सह तेनैव गच्छति ।
स्वस्थानं ते प्रपद्यंते परस्परनियोजिताः ।।१५

मारुत के द्वारा समीरित शिखण्डी आश्रय की प्राप्ति कर फिर संकड़ों स्थानों को प्राप्त करता है वैसे ही त्वचा स्थान में इसका विचेष्टित होता है ।।८।। त्वचा में द्विगुण और रक्त में चतुर्गुण हो जाता है । पित्त में तिगुना और कफ में सोलह गुना होता है ।।९।। वायु में जब विष पहुँच जाता है तो वह तीस गुना और मज्जा में साठ गुना हो जाता है । प्राण में जो एकार्णवीभूत है पहुंचने पर समस्त गात्रों को पीड़ित करने लगता है ।।१०।। कानों के निरुध्यमान हो जाने पर दष्ट पुरुष असाध्य दशा में पहुँच जाया करता है । इसके पश्चात् वह जीव मर जाता है और उसके उच्छवास) ऊपर को आने वाला साँस) और निःश्वास (नीचे की ओर जाने वाला श्वास) बन्द हो जाते हैं ।।११।। जीवात्मा के निकल जाने पर और भूतों (पंचतत्वों) के पंचत्व प्राप्त हो जाने पर वे पाँचों भूत जिस-जिस के होते हैं उनमें जाकर मिल जाया करते हैं ।।१२।। पृथिवी जल, तेज, वायु,और आकाश इन पाँचों का जो एकत्र संघात होता है वही शरीर इस नाम से कहा जाया करता है । पृथिवी पृथ्वी में

चला जाता है, जल जलमें मिल जाता है, तेज सूर्य में चला जाया करता है, मारुत मारुत में मिल कर चला जाता है तथा आकाश महाकाश में मिल जाया करता है। ये सब उस जीवात्मा के साथ ही चले जाया करते हैं। ये सब परस्पर में नियोजित हैं और अपने-अपने स्थान को जाकर प्राप्त हो जाते हैं॥१३-१५॥

न जीवेदागतः कश्चिदिह जन्मनि सुव्रत।
विषार्तं न उपेक्षेत त्वरितं तु चिकित्सयेत् ॥१६
एकमस्ति विषं लोके द्वितीयं चोपपद्यते।
यथा नानाविधं चैव स्थावरं तु तथैव च ॥१७
प्रथमे विषवेगे तु रोमहर्षोऽभिजायते।
द्वितीये विषवेगे तु स्वेदो गात्रेषु जायते ॥१८
तृतीये विषवेगे तु कम्पो गात्रेषु जायते।
चतुर्थे विषवेगे तु श्रोत्रांतरनिरोधकृत् ॥१९
पञ्चमे विषवेगे तु हिक्का गात्रेषु जायते।
षष्ठे च विषवेगे तु प्राणेभ्योऽपि प्रमुच्यते।
सप्तधातुवहा ह्येते वैनतयेन भाषिताः ॥२०
वचः स्थाने विषे प्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु।
अंगानि तिमिरायंते तपंते च मुहुर्मुहः ॥२१

हे सुव्रत ! इस जन्म में कोई भी आया हुआ यहाँ संसार में सदा जीवित नहीं रहा करता है। यह समझकर विष से आर्त्त मानव की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और शीघ्र से शीघ्र उसकी चिकित्सा अवश्य करनी चाहिए॥१६॥ यह विष एक में होता है और दूसरे को प्राप्त हो जाया करता है। उसी प्रकार से यह विष स्थावर और नाना प्रकार का होता है॥१७॥ प्रथम विष के वेग में रोमांच हो जाता है। दूसरे विष के वेग होने पर गात्रों में पसीना आने लगता है। जब तीसरा विष का वेग होता है तो शरीर के अङ्गों में कंपनी होती है। चौथे विष वेग में श्रोत्रान्तर का निरोध हो जाता है॥१८-१९॥ पांचवें विष के वेग होने पर गात्रों में हिचकी उत्पन्न हो जाती है। छटे विष के वेग में

तो मानव अपने प्राणों से भी विमुक्त हो जाया करता है। ये विष सातों धातुओं में पहुँचने वाले होते हैं ऐसा वैनतेय के द्वारा कहे गये हैं ॥२०॥ वाणी के स्थान पर विष के प्राप्त हो जाने पर उसके रूपों को मुझसे सुनो। उस समय समस्त अङ्ग तिमिरायमाण हो जाते हैं और बार-बार तपा करते हैं ॥२१॥

एतानि यस्य चिह्नानि तस्य त्वचि गतं विषम् ।
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते सुखम् ॥२२
अर्कमूलमपामार्गं प्रियंगुं तगरं तथा ।
एतदालोड्य दातव्यं ततः संपद्यते सुखम् ॥२३
ततस्तस्मिन्कृते विप्र निवर्तेत चेद्विषम् ।
त्वचः स्थानं ततो भित्त्वा रक्तस्थानं प्रधावति ॥२४
विषे च रक्तं संप्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु ।
दह्यते मुह्यते चैव शीतलं बहु मन्यते ॥२५
एतानि यस्य रूपाणि तस्य रक्तगतं विषम् ।
तत्रागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२६
उशीरं चन्दनं कुष्ठमुत्पलं तगरं तथा ।
महाकालस्य मूलानि सिंदुवारनगस्य च ।
हिंगुलं मरिचं चैव पूर्ववेगे तु दापयेत् ॥२७
बृहती वृश्चिका काली इंद्रवारुणिमूलकम् ।
सप्तगन्धघृतं चैव द्वितीये परिकीर्तितम् ॥२८

जिसके ये इतने चिह्न होते हैं उसके त्वचा में गया हुआ विष होता है। अब उसके अगद को कहता हूँ जिसके द्वारा सुख प्राप्त हो जाता है ॥२॥ आक की जड़, अपामार्ग (औंघा), प्रियङ्गु और तगर इन सबको आलोड़ित करके दष्ट को देना चाहिए। इससे सुख उत्पन्न होता है ॥२३॥ हे विप्र ! इस प्रकार से करने पर यदि विष निवृत्त हो जाता है तो फिर त्वचा के स्थान का भेदन करके रक्त के स्थान को वह दौड़ा करता है ॥२४॥ जब विष रक्त में पहुंच जाता है तो उस समय में उसके जो रूप होते हैं उन्हें अब तुम मुझसे श्रवण करो। वह दाह वाला

और मोह (मूर्च्छा) वाला हो जाया करता है और बहुत शीतल मानता है ।।२५।। ये जिसके रूप होते हैं उसको समझलो कि विष रक्तगत हो गया है । अब उस समय का अगद कहता हूँ जिसके द्वारा सुख हो जाता है ।।२६।। उशीर, चन्दन, कुष्ठ, उत्पल, तगर, महाकाल तथा सिन्धु वार नग के मूल, हिंगुल, मिर्च इन सबको दिलाना चाहिए किन्तु ये पूर्व वेग मे ही दिलवावे । द्वितीय वेग में वृहती, वृश्चिका, काली, इन्द्र वारुणी जड़ी का मूल और सप्त गन्ध घृत ये सब देना बताया गया है ।२७-२८।

सिन्दुवारं तथा हिंगुं तृतीये कारयेद्बुधः ।
तस्य पानं च कुर्वीत अंजनं लेपनं तथा ।।२९
एतेनैवोपचारेण ततः संपद्यते सुखम् ।
रक्तस्थानं ततो गत्वा पित्तस्थानं प्रधावति ।।३०
पित्तस्थानगते विप्र विषरूपाणि मे शृणु ।
उत्तिष्ठते निपतते दह्यते मुह्यते तथा ।।३१
गात्रतः पीतकः स्याद्वै दिशः पश्यति पीतिकाः ।
प्रबला च भवेन्मूर्च्छा न चात्मानं विजानते ।
विषक्रियां तस्य कुर्याद्यया सम्पद्यते सुखम् ।।३२
पित्तस्थानमतिक्रम्य श्लेष्मस्थानं च गच्छति ।।३३
पिप्पल्यो मधुकं चैव मधुखण्डं घृतं तथा ।
मधुसारमलाबूं च जातिं शंकरवालुकाम् ।
इन्द्रवारुणिकामूलं गवां मूत्रेण पेषयेत् ।।३४
नस्यं तस्य प्रयुंजीत पानमालेपनांजनम् ।
एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ।।३५

तीसरे वेग में बुध पुरुष को सिन्धुवार और हिंगु कराना चाहिए । उसका पान करे तथा अंजन और लेपन भी करे ।।२९।। इस उपचार से ही फिर सुख उत्पन्न हो जाता है । इसके पश्चात् रक्त के स्थान को पहुँच कर फिर वह विष पित्त स्थान को दौड़ा करता है ।।३०।। हे विप्र ! जब विष पित्त के स्थान पर पहुंचता है तब विष के जो रूप होते

हैं उन्हें मुझ से सुनो। दष्ट व्यक्ति कभी तो उठकर खड़ा होता है, कभी वह नीचे गिर पड़ता है, उसके समस्त शरीरमें दाह होता है और मोह को प्राप्त हो जाता है अर्थात् बेहोश होता है ।।३१।। वह शरीर से पीला हो जाता है और समस्त दिशाओं को भी पीली देखा करता है। उसे बड़ी भारी जबर्दस्त मूर्च्छा होती है कि स्वयं अपने आपको भी नहीं जाना करता है। उस समय उसकी विष की क्रिया करनी चाहिए जिससे सुख उत्पन्न हो जावे ।।३२।। पित्त के स्थान का अतिक्रमण करके फिर वह कफ को प्राप्त हो जाता है ।।३३।। पीपल, मधुक, मधुखण्ड, घृत, मधुसार, अलाबू, जातिशंकर बालुका और इन्द्रवारुणी का मूल इन सबको गाय के प्रश्राब से पीसना चाहिए ।।३४।। उसके नस्य का प्रयोग करना चाहिए तथा पान, आलेपन और अंजन भी करे। इतने ही उपचार से सुख उत्पन्न हो जाया करता है ।।३५।।

श्लेष्मस्थागं ततः प्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु ।
गात्राणि तस्य रुध्यंते निःश्वासश्च न जायते ।
लाला च स्रवते तस्य कण्ठो घुरुघुरायते ।।३६
एतानि यस्य रूपाणि तस्य श्लेष्मगतं विषम् ।
तस्यागदं प्रवक्ष्यापि येन सम्पद्यते सुखम् ।।३७
त्रिकटुकी श्लेष्मातको लोध्रं च मधुसारकम् ।
एतानि समभागानि गवां मूत्रेण प्रेषयेत् ।।३८
तस्य पानं च कुर्वीत अञ्जनं लेपनं तथा ।
एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ।।३९
श्लेष्मस्थानमतिक्रम्य वायुस्थानं च गच्छति ।
तत्र रूपाणि वक्ष्यामि वायुस्थानगते विषे ।।४०
आध्मायते च जठरं बाधबांश्च न पश्यति ।
ईदृशं कुरुते रूपं दृष्टिभंगश्च जायते ।।४१
एतानि यस्य रूपाणि तस्य वायुगतं विषम् ।
तस्यागतं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ।।४२

जब विष श्लेष्मा (कफ) चे स्थान पर पहुँच जाता है उस समय जो उस विष के प्रभाव से रूप होते हैं उन्हें मैं अब बताता हूँ उन्हें तुम श्रवण करो। उस समय दुष्ट के गात्र रुद्ध हो जाते हैं और निःश्वास नहीं हुआ करता है। उसके मुख से लार टपकने लगती है और उसका कण्ठ घुटघुटाने लगता है ॥३६॥ इस प्रकार के जिसके रूप होते हैं उसके श्लेष्मा में प्राप्त होने वाला विष होता है। उसका अगद अब मैं बतलाता हूँ जिसके करने से सुख होता है ॥३ ॥ श्लेष्मातक, त्रिकुटी, लोध्र, मधुसारक इन सब वस्तुओं को समभाग लेकर गाय के मूत्र के साथ पीसे। उसका पान करे तथा इसका अंजन और लेपन भी करना चाहिए। इतने ही उपचार के करने से सुख उत्पन्न हो जाता है ॥३८-३९॥ श्लेष्मा के स्थान का अतिक्रमण करके फिर विष वायु के स्थान में पहुँचा करता है। वायु के स्थान पर विष के पहुँचने पर जो उसके रूप हुआ करते हैं उन्हें अब बतलाया जाता है ॥४०॥ उस अवस्था में पेट आध्यायमान हो जाता है और वह व्यक्ति अपने बन्धवों को भी नहीं देखता है। इस प्रकार का रूप वह विष कर देता है और उसका दृष्टि भंग भी हो जाता है ॥४१॥ ये जिसकी रूप-रेखाएँ बन जाती हैं उसको समझ लेना चाहिए कि विष वायु के स्थान में पहुँच गया है। अब उसका अगद भी बतलाते हैं जिसके द्वारा सुख उत्पन्न हो जाता है ॥४२॥

शोणामूलं प्रियालं च रक्तं च गजपिप्पलीम्।
भार्ङ्गीं वचां पिप्पलीं च देवदारुं मधूककम् ॥४३
मधूकसारं सहसिन्दुवारं
हिंगुं च पिष्ट्वा गुटिकां च कुर्यात्।
दद्याच्च तस्यांजनलेपनादि
एषोऽगदः सर्पविषाणि हन्यात् ॥४४
अञ्जनं चैव नस्यं च क्षिप्रं दद्याद्विषान्विते।
वायुस्थानं ततो मुक्त्वा मज्जास्थानं प्रधावति ॥४५
विषे मज्जागते विप्र तस्य रूपाणि मे शृणु।
दृष्टिश्च हीयते तस्य भृशमंगानि मुञ्चति ॥४६

एतानि यस्य रूपाणि तस्य मज्जागतं विषम् ।
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ।।४७
घृतमधुशर्करान्वितमुशीरं चन्दनं तथा ।
एतदालोड्य दातव्यं पानं नस्यं च सुव्रत ।।४८
ततः प्रणश्यते दुःखं ततः संपद्यते सुखम् ।
अथ तस्मिन्कृते योगे विषं तस्य निवर्तते ।।४६

शोणा का मूल, प्रियाल, रक्त, गज पिप्पली, भारंगी, वच, पीपल, देवदारु, मधूकक मधूकसार, सहसिन्धु, शर और हींग इन सबका पेषण कर गुटिका बना लेनी चाहिए उन्हें सेवन करावे और इसका अंजन तथा लेपन भी करे। यह ऐसा अगद है कि सब तरह के विषों का हनन कर देता है ।।४३-४४।। इस अंजन और नस्य विषान्वित को बहुत ही शीघ्र देना चाहिए। फिर वह विष वायु स्थान को छोड़ कर मज्जा में प्रविष्ट हो जाता है ।।४ ।। हे विप्र ! मज्जागत विष के हो जाने पर जो रूप प्रकट हुआ करते हैं, उन्हें मुझसे सुनो। उसकी दृष्टि तो बिलकुल ही नष्ट हो जाती है और वह बहुत अधिक अंगों को पटकने लगता है ।।४६।। इस तरह की रूप-रेखा जिसकी दिखाई देती है वह मज्जागत विष समझ लेना चाहिए। अब उत अवस्था में जो अगद होता है उसका वर्णन किया जाता है जिसके करने से स्वास्थ्य का सुख प्राप्त हो जाता है ।।४७।। घृत, मधु, शर्करा से युक्त उशीर तथा चन्दन इन सबको घोट-पीस कर देना चाहिए। हे सुव्रत ! उसका पान और नस्य भी देवे ।।४८।। इसके करने से सारा दुःख नष्ट हो जाया करता है और फिर स्वस्थता का सुख उत्पन्न होता है। इस प्रकार से इस योग के करने पर उस पीड़ित का विष दूर हो जाया करता है ।।४६।।

मज्जास्थानं ततो गत्वा मर्मस्थानं प्रधावति ।
विषे तु मर्म संप्राप्ते शृणु रूपं यथा भवेत् ।।५०
निश्चेष्टः पतते भूमौ कर्णाभ्यां बधिरो भवेत् ।
वारिणा सिच्यमानस्य रोमहर्षो न जायते ।।५१

दंडेन हन्यमानस्य दंडराजी न जायते।
शस्त्रेणाच्छिद्यमानस्य रुधिरं न प्रवर्तते ॥५२
केशेषु लुच्यमानेषु नैव केशान्प्रवेदत।
यस्य कर्णौ च पार्श्वे च हस्तपादं च सधयः।
शिथिलानि भवंतीह स गतासुरिति श्रुतिः ॥५३
एतानि यस्य रूपाणि विपरीतानि गौतम।
मृतं तु न विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥५४
वैद्यास्तस्य न पश्यंति ये भवंति कुशिक्षिताः।
विचक्षणास्तु पस्यंति मन्त्रौषधिसमन्त्रिताः ॥५५
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि स्वयं रुद्रेण भाषितम्।
मयूरपित्तं मार्जारपित्तं गन्धनाडीमूलमेव च ॥५६

मज्जा के स्थान से चल कर वह विष मर्म स्थान की ओर दौड़ता है और मर्म स्थान में पहुँच जाता है तब जो दशा होती है उसका श्रवण करो। वह व्यक्ति चेष्टा से हीन होकर भूमि में गिर जाया करता और कानों से बहिरा हो जाता है। उस अवस्था में उसके ऊपर जल के गहरे छींटे भी दिये जावे तो भी उसे रोमांच नहीं होते हैं अर्थात् उसके शरीर पर जल के पड़ने पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। यदि उसे दण्ड से भी पीटा जावे तो उसके शरीर पर दण्डे की रेखा नहीं पड़ती है। यदि किसी शस्त्र से उसका छेदन किया जावे तो उसके शरीर से रुधिर भी नहीं निकलता है। उसके यदि केश भी लुंचित किये जावे तो भी उसे इसका कुछ भी अनुभव नहीं होता है। जिसके कान, पार्श्व, हाथ, पैर और समस्त सन्धियाँ शिथिल हो जाया करती हैं और यहाँ उसे मृत हो गया है ऐसा ही कहा जाता है। हे गौतम ! जिसके इस तरह के बिल्कुल विपरीत रूप होते हैं उसे मृत (मरा हुआ) तो नहीं समझ लेना चाहिए क्योंकि कश्यप महर्षि के ऐसे वचन हैं। वे वैद्य इस बात को नहीं समझ पाते हैं जो कुशिक्षित होते हैं। जो विचक्षण वैद्य होते है और मन्त्र तथा औषधियो के जानने वाले होते हैं वे इस अवस्था को भली भाँति देख लिया करते हैं। अब मैं इस दशा में जो अगद

होता है उसे बतलाता हूँ जिसको कि स्वयं भगवान् रुद्र ने कहा था ॥५०-५६॥

कुंकुमं तगरं कुष्ठं कासमर्दंत्वचं तथा ।
उत्पलस्य च किंजल्कं पद्मस्य कुमुदस्य च ॥५७
एतानि समभागानि गोमूत्रेण तु पेषयेत् ।
एषोऽगदो यस्य हस्ते दष्टो न म्रियते स वै ।
कालाहिनापि दष्टेन क्षिप्रं भवति निर्विषः ॥५८
क्षिप्रमेव प्रदातव्यं मृतसंजीवनौषधम् ।
अंजनं चैव नस्यं च क्षिप्रं दद्याद्विचक्षणः ॥५९

मयूर का पित्ता, मार्जार का पित्त, गन्ध नाड़ी का मूल, कुंकुम तगर, कुष्ठ, कासमर्द की छाल, उत्पल का किंजल्क, पद्म और कुमुद का किंजल्क इन समस्त वस्तुओं को समान भाग में लेकर गोमूत्र के साथ सबको पीसना चाहिए। यह अगद जिसके हाथ में होता है वह दंशन किया हुआ भी व्यक्ति नहीं मरा करता है। चाहे काल सर्प भी उसे क्यों न काट लेवे, वह शीघ्र ही विष रहित हो जाता है। यह मृत संजीवनी औषध है उसे शीघ्र ही देना चाहिए। इसका अंजन और नस्य भी विचक्षण को शीघ्र देना चाहिए ॥५७-५९॥

॥ षष्ठीकल्पे कार्तिकषष्ठ्यां स्कन्दपूजावर्णनम् ॥

षष्ठ्यां फलाशनो राजन्विशेषात्कार्तिके नृप ।
राज्यच्युतो विशेषेण स्वं राज्यं लभतेऽचिरात् ॥१
षष्ठी तिथिर्महाराज सर्वदा सर्वकामदा ।
उपोष्या तु प्रयत्नेन सर्वकालं जयार्थिना ॥२
कार्त्तिकेयस्य दयिता एषा षष्ठी महातिथिः ।
देवसेनाधिपत्यं हि प्राप्तं तस्यां महात्मना ॥३
अस्यांहि श्रेयसा युक्तो यस्मात्स्कंदो भवाग्रणीः ।
तस्मात्षष्ठ्यां नक्तभोजी प्राप्नुयादीप्सितं सदा ॥४

दत्वार्घ्यं कार्त्तिकेयाय स्थित्वा वै दक्षिणामुखः ।
दध्ना घृतोदकैः पुष्पैर्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥५
सप्तर्षिदारज स्कन्द स्वाहापतिसमुद्भव ।
रुद्रार्यमाग्निज विभो गंगागर्भ नमोऽस्तु ते ।
प्रीयतां देवसेनानीः संपादयतु हृद्गतम् ॥६
दत्वा विप्राय चात्मान्नं यच्चान्यदपि विद्यते ।
पश्चाद्भुङ्क्ते त्वसौ रात्रौ भूमिं कृत्वा तु भाजनम् ॥७

इस अध्याय में षष्ठी कल्प में कार्त्तिक की षष्ठी में स्कन्द की पूजा का वर्णन किया है । सुमन्तु ऋषि ने कहा—हे नृप ! षष्ठी तिथि मे फलों का अशन करने वाला पुरुष और विशेष रूप से कार्तिक मास में फलों का अशन करने वाला यदि राज्य भी च्युत हो गया हो तो, शीघ्र ही राज्य की प्राप्ति कर लिया करता है । हे महाराज ! यह षष्ठी तिथि सर्वदा समस्त कामनाओं के देने वाली हुआ करती है । जो अपने जय की इच्छा रखता है उसे इस षष्ठी तिथि का सभी समयों में प्रयत्न पूर्वक उपवास करना चाहिए । यह षष्ठी महातिथी स्वामी कार्तिकेय की प्रिया है । इस महान् आत्मा वाले देव ने इसमें देवताओं की सेना का आधिपत्य प्राप्त किया था । इस तिथि में शिव का ज्येष्ठ पुत्र भगवान् स्कन्द परम श्रेय से समन्वित हुए थे इसी कारण से षष्ठी तिथि में उपवास एक बार रात्रि में भोजन करने वाला मनुष्य सदा अपने अभीष्ट की प्राप्ति किया करता है । स्वामी कार्त्तिकेय को अर्घ्य देकर दक्षिण दिशा की ओर मुख करके स्थित होवे और दधि, घृत, उदय और पुष्पों के द्वारा निम्नलिखित मन्त्र से स्कन्द का समर्चन करे । मन्त्र का स्वरूप यह है—हे सप्तर्षिदारज ! हे स्कन्द ! हे स्वाहापति समुद्भव ! हे रुद्रार्यमाग्निज ! हे विभो ! हे गङ्गागर्भ ! आपके लिये मेरा नमस्कार है । देव सेना के अधिपति आप मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे हृदय के मनोरथ को पूर्ण करिये अपने अन्न को ब्राह्मण को दान करके तथा अन्य जो कुछ भी हो उसका भी दान देकर फिर रात्रि में भूमि में पात्रको रखकर स्वयं भोजन करे।१-७।

एवं षष्ठ्यां व्रतं स्नेहात्प्रोक्तं स्कन्देन यत्नतः ।
तन्निबोध महाराज प्रोष्यमानं मयाखिलम् ॥८
षष्ठ्यां यस्तु फलाहारो नक्ताहारो भविष्यति ।
शुक्लाकृष्णासु नियतो ब्रह्मचारी समाहितः ॥६
तस्य सिद्धि धृतिं तुष्टि राज्यमायुर्निरामयम् ।
पारत्रिकं चैहिकं च दद्यात्स्कन्दो न संशयः ॥१०
यो हि नक्तोपवासः स्यात्स नक्तेन व्रती भवेत् ।
इह वामुत्र सोत्यंतं लभते ख्यातिमुत्तसाम् ।
स्वर्गे च नियतं वासं लभते नात्र संशयः ॥११
इह चागत्या कालांते यथोक्तफलभाग्भवेत् ।
देवानामपि वंद्योऽसौ राज्ञां राजा भविष्यति ॥११
यश्चापि शृणुयात्कल्पं षष्ठ्याः कुरुकुलोद्वह ।
तस्या सिद्धिस्तथा तुष्टिर्वृ तिःस्यात्ख्यातिसंभवा ॥१३

इस प्रकार से इस षष्ठी तिथि में व्रत स्कन्द ने यत्न से स्नेह के कारण कहा है । महाराज ! मेरे द्वारा सम्पूर्ण यह कहा जा रहा है उसे आप भली-भाँति समझ लो । षष्ठी तिथि में जो कोई फलों का आहार करने वाला और रात्रि में आहार करने वाला रहेगा, वह षष्ठी कृष्ण पक्ष की और शुक्ल पक्ष की सभी हैं, उसमें नियत, समाहित और ब्रह्मचर्य व्रत वाला होकर रहे उसकी सिद्धि, तुष्टि, धृति, राज्य, आयु और निरामयता इन सबको उस व्रत करने वाले व्यक्ति के लिये स्कन्द देते हैं । स्कन्द उसे इस लोक और परलोक दोनों का ही सुख दिया करते हैं इसमें संशय नहीं है । जो नक्त (रात्रि) के उपवास वाला होता है वह रात्रि से व्रत वाला होता है । वह पुरुष यहां और परलोक में दोनों जगह अत्यन्त ही उत्तम ख्याति (प्रसिद्धि) को प्राप्त किया करता है और उसका अन्त में स्वर्ग में नियत निवास होता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इस संसार में आकर वह कालान्त में यथोक्त फल का भोगने वाला हो जाता है । यह पुरुष देवों का भी वन्दना करने के योग्य होता है और राजाओं का भी राजा हुआ करता है । हे कुरु कुलोद्वह ! जो कोई भी इस षष्ठी के

कल्प को सुनता है उसको सिद्धि, तुष्टि, धृति जोकि ख्याति से उत्पन्न होने वाली हैं, हुआ करती हैं ॥८-१३॥

॥ षष्ठीकल्पे ब्राह्मण्यविवेकवर्णनम् ॥

वेदाध्यनमप्येतद्ब्राह्मण्यं प्रतिपद्यते ।
विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणादयः ॥१
श्वादचांडालदासाश्च लुब्धकाभीरधीवराः ।
येन्येऽपि वृषलाः केचित्तेपि वेदानधीयते ॥२
शूद्रा देशांतरं गत्वा ब्राह्मण्यं क्षत्रियं श्रिताः ।
व्यापाराकारभाषद्यैर्विप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः ॥३
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
प्रोद्वहति शुभां कन्यां शुद्धब्राह्मणजां नराः ॥४
अथ वाधीत्य वेदांस्तु क्षत्रवैश्यैस्तु वा नराः ।
गोडपूर्वां कृतामेयुर्जाति वा दक्षिणात्यजाम् ॥५
अपरिज्ञातशूद्रत्वाद्ब्राह्मण्यं यांति कामतः ।
तस्मान्न ज्ञायते भेदो वेदाध्यायक्रियाकृतः ॥६
शास्त्रकारैस्तथा चोक्तं न्यायमार्गानुसारिभिः ।
ते साधु मतमाकर्ण्य संतः संति विमत्सराः ॥७

इस अध्याय में षष्ठी कल्प में ब्राह्मण के विवेक का वर्णन किया जाता है । ब्रह्माजी ने कहा—ब्राह्मण की भांति क्षत्रिय और वैश्य भी वेद के अध्ययन से ही इस ब्राह्मण्य को प्राप्त किया करते हैं । रावण आदि राक्षस, श्वाद, चाण्डाल, दास, लुब्धक, आभीर, धीवर जो भी अन्य कोई वृषल हैं वे भी वेदों का अध्ययन किया करते हैं ॥१-२॥ शूद्र लोग दूसरे देशों में जाकर और क्षत्रिय का आश्रय प्राप्त करके ब्राह्मण के तुल्य व्यापार, आकार और प्रकल्पित भाषा आदि के द्वारा ब्राह्मण्य प्राप्त किया करते हैं । समस्त वेदों, दो वेद या एक ही वेद को यथाक्रम अध्ययन करके मनुष्य शुद्ध ब्राह्मण से उत्पन्न होने वाली कन्या से विवाह किया करते हैं ॥३-४॥ अथवा वेदों का अध्ययन करके क्षत्रिय वैश्य

जाति के मनुष्य दक्षिणात्यजा गौड पूर्वी जाति को प्राप्त हुए हैं ॥५॥ शूद्रत्व का परिज्ञान न होने से स्वेच्छया ब्राह्मण्य को प्राप्त किया करते हैं। इस कारण से वेदों के अध्ययन की क्रिया से किया हुआ भेद नहीं जाना जाता है ॥६॥ न्याय मार्ग के अनुसरण करने वाले शास्त्रों के रचयिताओं ने इस प्रकार से कहा है। वे साधुमत का श्रवण कर सन्त पुरुष मात्सर्य से सहित हुआ करते हैं ॥७॥

आचारहीनान्न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरंगैः।
शिल्पं हि वेदाध्ययनं द्विजानां वृत्तं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणं तु॥८
अधीत्य चतुरो वेदान्यदि वृत्तं न तिष्ठति।
न तेन क्रियते कार्यं स्त्रीरत्नेनेव षंढकः ॥९

शिखाप्रणवसंस्कारसंध्योपासनमेखलाः।
दंडाजिनपवित्राद्याः शूद्रेष्वपि निरंकुशाः ॥१०
प्रसंगोपि हि शूद्राणां न शक्यो विनिवारितुम्।
देवोत्तमत्रयेणापि निवर्तंते नराः स्वयम् ॥११
तस्मान्नैतेऽपि लक्ष्यंते विलक्षणतया नृणाम्।
यज्ञोपवीतसंस्कारमेखलाचूलिकादयः ॥१२
आभिचारिकमंत्राद्यैर्दुर्लभत्वादिभाषणैः।
ब्राह्मणस्यैव शक्तिश्चेत्केनास्य विनिहन्यते ॥१३
तपःसत्यादिमाहात्म्याद्देवतासमयस्मृतिः।
मंत्रशक्तिर्नृणामेषां सर्वेषामपि विद्यते ॥१४

छैओं अंगों सहित समस्त वेदों का अध्ययन कर लेने पर भी जो आचार से हीन होते हैं उन्हें वेद पवित्र नहीं बनाते। वेदों का अध्ययन कर लेना तो द्विजों का एक शिल्प कला की ही भाँति है। वस्तुतः ब्राह्मण का लक्षण तो चरित्र ही कहा है ॥८॥ चारों वेदों का अध्ययन करके भी यदि कोई ब्राह्मण चरित्रवान् नहीं रहता तो उसके द्वारा कोई कर्म नहीं किया जाना चाहिए। जैसे स्त्री रत्न के समान है किन्तु

उससे कोई नपुंसक कुछ भी कार्य सम्पादन नहीं किया करता है ॥९॥ शिखा, प्रणव, संस्कार, संध्योपासना, मेखला धारण, दण्ड, अंजिन और पवित्रा आदि शूद्रों में बिना किसी अंकुश के हुआ करते हैं ॥१०॥ शूद्रों का प्रसंग भी विनिवारित नहीं किया जा सकता है। देवोत्तम त्रय से भी मनुष्य स्वयं निवृत्त हो जाया करते हैं ॥११॥ इस कारण से यज्ञोपवीत संस्कार और मेखला चूलिका आदि ये सब मनुष्यों के विलक्षणता से नहीं दिखाई दिया करते हैं ॥१२॥ आभिचारिक मन्त्र आदि के दुर्लभत्वादि भाषणों के द्वारा यदि केवल ब्राह्मण की ही शक्ति होती है तो इसकी इस शक्ति का विशेष हनन किस के द्वारा किया जाता है ॥१३॥ तप और सत्य आदि के माहात्म्य से देवता के समय की स्मृति तथा मन्त्र की शक्ति इन सभी मानवों की रहा करती है ॥१४॥

वंचनं दुर्वचस्यापि क्रियते सर्वमानवैः ।
शूद्रब्राह्मणयोस्तस्मान्नास्ति भेदः कथंचन ॥१५
शापानुग्रहकारित्वं शक्तिभेदो न विद्यते ।
चौरचाटादिराजन्यदुर्जनाभिहते नृणाम् ॥१६
आत्मदुःखोदयापायं स्वेषु जंतुषु रक्षणम् ।
कर्तुं न प्रभवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तद्वदेव हि ॥१७
मा भूद्युगे कलावेतद्देशे चाकार्यकृद्द्विजे ।
स्यादन्यदेशकालादौ द्विजानामतिशायिनाम् ॥१८
शापानुग्रहसामर्थ्यमन्यद्वाध्यात्मगोचरम् ।
ब्रह्मसाधनमेतद्धि लिंगं केचित्प्रचक्षते ॥ ९
संसाराक्तचेतस्का मोहांधतमसावृताः ।
पतंत्युन्मार्गगर्तेषु प्रत्यग्नि शलभा यथा ॥२०
जातिधर्मः स्वयं किंचिद्विशेषः श्रुतिसंगमात् ।
असिद्धः शूद्रजातीनां प्रसिद्धो विप्रजातिषु ॥२१

दुर्वचन बोलने वाले का वञ्चन सभी मनुष्यों द्वारा किया जाता है। इसलिये शूद्र और ब्राह्मण में कोई किसी प्रकार का भेद नहीं रह जाता। शाप देना या अनुग्रह करना यह शक्ति का भेद नहीं होता, जबकि मनुष्यों

में चौर चार आदि क्षत्रिय दुर्जनों के द्वारा कुछ कह दिया जाता है ।।१५-१६।। आत्म-दुःख के उदय का अपाप और अपने जीवों में रक्षण करना इस कार्य में शूद्र समर्थ नहीं होता है। उसी प्रकार से ब्राह्मण भी असमर्थ हुआ करता है ।।१७।। इस कलिकाल के समय में अकार्यों के करने वाले द्विज में यह नहीं होता है। इसके अतिरिक्त देश और काल में अतिशय शक्तिशाली द्विजों में यह हो सकता है ।।१८।। शाप देना या अनुग्रह करना—इनकी सामर्थ्य अथवा अध्यात्म विषय का ज्ञान यह ब्रह्म साधन है और कुछ विद्वान् इसको ही इसका लिंग कहा करते हैं ।।१९।। संसार में संसक्त चित्त वाले और मोह के अन्धकार से घिरे हुए लोग अग्नि के प्रति शलभों की भाँति उन्मार्ग के गर्तों में गिरा करते हैं ।।२०।। यह जाति का धर्म स्वयं श्रुति के सङ्गम से एक कोई विशेष वस्तु हुआ करती है जोकि शूद्र जाति वालों का सिद्ध नहीं होता है और केवल विप्र जाति में ही प्रसिद्ध होता है ।।२१।।

संस्कारो योनिसाध्यो वा सामग्री प्रभवोऽथ वा ।
शूद्रेभ्योऽतिशय धत्ते यः साधारणतागुणाः ।।२२
विप्राणां पंचधा भेदः कल्पनीयस्तु पंडितैः ।
न जातिजस्त्रयीजो वा विशेषो युक्तिबाधकात् ।
क्रमाक्रमक्रियाः संति न सनातनवस्तुनः ।।२३
नित्यो न हेतुर्विगतक्रियत्वात् हेतुभवेद्वेदविणेषतः सः ।
स तत्समस्तत्प्रनिसन्निधानात् कालात्ययेक्षित्वमयुक्तमेव।।२४
स्वांतःशरीरवृत्तिस्थः श्रुतियोगादुदेति यः ।
सोनन्यवेदविज्ञातस्वभावोन्यैर्न गम्यते ।।२५
विशिष्टावीतिधर्मत्वे कृत्रिमा ब्रह्मसगतिः ।
यस्यास्स्यतिशयस्तस्य नान्यो नाश्रयते यदि ।।२६
दृश्यस्वभावं किमभीष्टमेतद् ब्राह्मण्यमाहोस्विददृष्टरूपम् ।
सर्वैःप्रतीयेतहिदृश्यरूपं ततोन्यथावद्गतिरेवनस्यात् ।।२७
सामग्र्यभावात्परमं विशेषं भूदेवगात्रस्थमभूमिदेवाः ।
स्मरंति तेनात्मनि पुण्यपापं यथा तथेत्येतदयुक्तमुक्तम् ।।२८

यह संस्कार योनिसाध्य होता है अथवा सामग्री से उत्पन्न होने वाला होता है जोकि साधारणता का गुण शूद्रों से कोई विशेष अतिशय धारण किया करता है ॥२२॥ विप्रों का पाँच प्रकार का भेद पण्डितों के द्वारा कल्पना करने के योग्य होता है। युक्तियों के बाधक होने से जाति से उत्पन्न तथा वेदत्रयी से प्रभूत होने वाला भेद कुछ भी विशेषता नहीं रखता है। सनातन वस्तु की कोई भी क्रम और अक्रम की क्रिया नहीं होती है ॥२३॥ विगत क्रिया के होने के कारण से हेतु नित्य नहीं है। वेद विशेष से वह हेतु होता है। वह उसके प्रतिपन्निधान होने से उसी के तुल्य है और कालात्यपेक्षित्व अयुक्त ही होता है ॥२४॥ अपने अन्तःकरण और शरीर की वृत्ति में स्थित रहने वाला जो श्रुति के योग को पाकर उदित हुआ करता है वह अनन्य वेद विज्ञात स्वभाव अन्यों के द्वारा नहीं जाना जाया करता है ॥२५॥ विशेषता से युक्त अध्ययन करने वाले के धर्म होने में ब्रह्म की संगति कृत्रिम होती है। जिसको उसका अतिशय है उसको यदि अन्य आश्रय नहीं करता है ॥२६॥ क्या यह दृश्य स्वभाव ही अभीष्ट माना जाता है अथवा ब्राह्मण कोई अदृष्ट स्वरूप वाला रूप होता है? सबके द्वारा तो दृश्य रूप की प्रतीति हुआ करती है। उसके सिवाय अन्य प्रकार से कोई गति ही नहीं होती है ॥२७॥ सामग्री के अभाव से भूदेव के शरीर में स्थित उस परम विशेष को जो अभूमिदेव अर्थात् अब्राह्मण हैं वे स्मरण किया करते हैं। इससे आत्मा में यथा तथा पुण्य पाप है यह सब कथन अयुक्त ही है ॥२८॥

सामग्र्यनुष्ठानगुणैः समग्रा शूद्रा यतः संति समा द्विजानाम्।
तस्माद्विशेषोद्विजशूद्रनाम्नोर्नाध्यात्मिकोब्राह्मनिमित्तकोवा॥२९

संस्कारतः सोऽतिशयो यदि
स्यात्सर्वस्य पुंसोस्त्यतिसंस्कृतस्य।
यः संस्कृतो विप्रगणप्रधानो
व्यासादिकैस्तेन न तस्य साम्यम् ॥३०
हेतुत्वं घटते नैषां जात्यादीनामसंभवात्।

जातेरकृतकत्वाच्च अधीते न विशेषतः ।।३१
संस्कारातिशयाभावादंतरस्यागते परैः ।
भौतिकत्वाच्छरीरत्य समस्तानामसंहतैः ।।३२
किं चान्यनास्तिकम्लेच्छयवनादिजनेष्वलम् ।।३३
वेदोदितबहिर्दुष्टचरितेषु दुरात्मसु ।
धर्मादतिशयो दृष्टः क्रूरसाहसिकादिषु ।
तस्माद्विप्रेषु जात्यादिसामग्रीप्रभवो न सः ।।३४
तस्मान्न च विभेदोस्ति न बहिर्नांतरात्मनि।
न सुखादौ न चैश्वर्ये नाज्ञायां नामयेष्वपि ।।३५

अनुष्ठान के गुणों द्वारा जो सामग्री है वह जिनमें सम्पूर्ण है वे शूद्र द्विजों के ही समान हैं। इस कारण द्विज और शूद्र नाम का जो कुछ भी विशेष है वह आध्यात्मिक नहीं है अथवा वाह्य निमित्तिक भी नहीं है। संस्कार से ही यदि वह अतिशय होता है तो सभी मनुष्यों को जिनका कि अत्यधिक रूप से सस्कार किया गया है, हो जायगा। जो विप्रगण प्रधान संस्कृत है तो व्यासादिक के द्वारा उससे उसका साम्य नहीं होता है। जात्यादि के असम्भव होने से इनका हेतुत्व नहीं घटता और जाति के अकृतक होने से विशेषता से अध्ययन नहीं करता है। संस्कारों के अतिशय के अभाव से दूसरों के द्वारा अन्तरके आगन होने पर असंहतों से समस्तों के शरीर के भौतिक होने से क्या अन्य नास्तिक, म्लेच्छ और यवन जन आदि में समाप्त है ? वेद में कहे हुए धर्मों से बाहिर दुष्ट चरित्र वाले दुरात्माओं में और क्रूर साहसिक आदि में धर्म से अतिशय देखा गया है। इससे विप्रों में वह जात्यादि सामग्री से उत्पन्न नहीं है। इससे कोई विभेद नहीं होता। न बाहिर और न अन्तरात्मा में कोई भेद है। सुखादि में, ऐश्वर्य में, आज्ञा में और अभयों में कोई विशेष भेद नहीं है ।।२९-३५।।

न वीर्ये नाकृतौ नाक्षे न व्यापारे न चायुषि ।
नांगे पुष्टे न दौर्बल्ये न स्थैर्ये नापि चापले ।।३६
न प्रज्ञायां न वैराग्ये न धर्मे न पराक्रमे ।

न त्रिवर्गे न नैपुण्ये न रूपादौ न भेषजे ।।३७
न स्त्रीगर्भेण गमने न देहमलसंप्लवे ।
नास्थिरन्ध्रे न च प्रेम्णि न प्रमाणे न लोमसु ।।३८
शूद्रब्राह्मणयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः ।
नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु संहतैस्त्रिदशैरपि ।।३९
उक्तमात्रा विसंभूतिर्विचारक्रमकारिभिः ।
वृद्धवृन्दारकाधीशैरप्रधृष्यमिदं वचः ।।४०
न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुभ्रा न क्षत्रियाः किंशुकपुष्पवर्णाः
नचेहवैश्याहरितालतुल्याःशूद्रानचांगारसमानवर्णाः।।४१
पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन ।
त्वङ्मांसमेदोस्थिरसैःसमानाश्चतुष्प्रभेदाहिकथंभवंति।।४२

न वीर्य में, न आकृति में, न व्यापार में, न अक्ष में, न आयु में, न अंग में, न पुष्ट में और न दुर्बलता में तथा न स्थिरता में और न चपलता में ही कोई विभेद होता है ।।३६।। प्रज्ञा, वैराग्य, धर्म, पराक्रम, त्रिवर्ग, नैपुण्य, रूपादि और भेषज में कुछ भेद होता है ।।३७।। स्त्री के गर्भ से कोई भेद नहीं है, गमन में, देह के मल, सप्लव में, स्त्री रन्ध्र में, प्रेम में, प्रमाण में और लोमों में मृग्यमाण भी शूद्र और ब्राह्मण का भेद बड़े यत्न से संहत हुए देवों के द्वारा भी समस्त धर्मों में नहीं देखा जाता है ।।३८-३९।। विचार के क्रम को करने वालों के द्वारा उक्त मात्रा की विसम्भूति होती है । वृद्ध देवों के अधीशों के द्वारा यह वचन अप्रधृष्य होता है ।।४०।। ब्राह्मण चन्द्रमा की किरणों के समान शुभ्र नहीं होते हैं और क्षत्रिय ढाक के पुष्प के तुल्य लाल वर्ण वाले नहीं होते हैं । इस संसार में वैश्य हरिताल की भाँति पीत-वर्ण के नहीं हैं और शूद्र अंगार के समान रंग वाले नहीं हुआ करते हैं ।।४१।। पादों के प्रचार, शरीर का वर्ण, केश, सुख और दुःख तथा रक्त, त्वचा, मांस, भेद और अस्थि के द्वारा ये चारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समान ही होते हैं फिर ये चार प्रभेद कैसे होते हैं ? ।४२।

वर्णप्रमाणाकृतिगर्भवास, वाग्बुद्धिकर्मेन्द्रियजीवितेषु ।

बलत्रिवर्गामयभेषजेषु, न विद्यते जातिकृतो विशेषः ।।४३
स एक एवात्र पतिः प्रजानां कथं पुनर्जातिकृतः प्रभेदः ।
प्रमाणदृष्टांतनयप्रवादैः परोक्ष्यमाणो विघटत्वमेति ।।४४
चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका ।
एवंप्रजानांहिपितैकएवपित्रैकभावान्नचजातिभेदः ।।४५
फलान्यथोदुंबरवृक्षजातेर्यथाग्रमध्यांतभवानि यानि ।
वर्णाकृतिस्पर्शरसैः समानि तथैकतो जातिरतिप्रचिन्त्या ।।४६
ये कौशिकाः काश्यपगौतमाश्च कौंडिन्यमांडव्यवशिष्ठगोत्राः ।
आत्रेयकौत्सांगिरसःसगर्गामौद्गल्यकात्यायनभार्गवाश्च।।४७
गोत्राणि नानाविधजातयश्च भ्रातृस्नुषामैथुनपुत्रभावाः
वैवाहिकंकर्मनवर्णभेदाःसर्वाणिशिल्पानिभवतितेषाम् ।।४८

वर्ग, प्रमाण, आकृति, गर्भवास, वाणी, बुद्धि, कर्म, इन्द्रिय और जीवित मे तथा बल, त्रिवर्ग, आभय, भेषज में इन चारों में जाति के द्वारा किया हुआ कोई विशेष नहीं होता है। यहाँ संसार में समस्त प्रजाओं का वह एक ही स्वामी है फिर किस प्रकार से जाति के द्वारा किया गया यह प्रभेद होता है ? प्रमाण, दृष्टान्त और नय के प्रवादों के द्वारा परीक्षा किया गया यह विघटत्व को प्राप्त होता है। एक ही पिता के चारों पुत्र होते हैं। उन पुत्रों की एक ही सबकी जाति होती है। इसी प्रकार प्रजाओं का जब एक ही पिता होता है तो इस भाव से कोई भी जाति का भेद नहीं होता है। उदुम्बर (गूलर) आदि जाति वाले वृक्षों के फल आगे के भाग में, मध्य में और अन्त में होने वाले जो भी हैं वे सब वर्ण, आकृति, स्पर्श और रस आदि से समान होते हैं उसी भाँति एकसे ही होने वालों की भिन्न जाति का होना भी अत्यन्त चिन्ता का विषय होता है। जो भी कौशिक हैं तथा कश्यप और गौतम हैं और कौण्डिन्य, माण्डव्य और वसिष्ठ गोत्र वाले होते हैं तथा आत्रेय, कौत्स, अंगिरस, गर्ग, मौद्गल्य, कात्यायन और भार्गव आदि गोत्र तथा अनेक प्रकार की जातियाँ हैं वे सब भ्रातृ स्नुषा के मैथुन से पुत्र भाव वाले हैं। वैवाहिक कर्म व वर्ण भेद नहीं है उनके सब शिल्प होते हैं।४३-४८।

ये चान्ये पंडिताः प्राहुर्देहब्राह्मणतां नराः ।
तेषां दुर्दृष्टितिमिरमपनीयानुकंप्य च ।.४९
न्यायाञ्जनौषधैर्दिव्यैः परिणामसुखावहैः ।
उपनीतैः प्रयत्नेन सुदृष्टिं संविदध्महे ।।५०
मूर्तिमत्त्वाच्च नाशित्वं नाशित्वाच्छेषभूतवत् ।
देहाधारनिर्विष्टानां ब्राह्मण्यं न प्रकल्प्यते ।।५१
एकैकोवयवस्तेषां न ब्राह्मण्यं समश्नुते ।
न चानेकसमूहेपि सर्वथातिप्रसंगतः ।।५२
पृथिव्युदकवाय्वग्निपरिणामाविशेषतः ।
देहतः सर्वभतानां ब्राह्मणत्वप्रसंगतः ।।५३
देहस्य ब्राह्मणत्वं यैरतत्त्वज्ञैः प्रकल्प्यते ।
संस्कर्तॄणां शरीरस्य तेषां न ब्रह्मता भवेत् ।।५४
मृग्यमाणे प्रयत्नेन देहे तन्नोपलभ्यते ।
तस्मान्न देहे ब्राह्मण्यं नापि देहात्मकं भवेत् ।।५५
वर्णापसदचांडालश्वादादीनां प्रसज्यते ।
यदि देहस्य विप्रत्वं भवद्भिरुपगम्यते ।।५६
देहशक्तिगुणैः क्षीणैः कायभस्मादिरूपवत् ।
तस्माद्देहात्मकेनैतद्ब्राह्मण्यं नापि कर्मजम् ।।५७

और जो अन्य पण्डित मनुष्य देह से ब्राह्मणता कहते हैं उनकी इस दुर्दृष्टि के अन्धकार को हटा कर तथा अनुकम्पा करके परिणाम में सुख देने वाली दिव्य न्यायाञ्जन की औषधियों के द्वारा प्रयत्न से उपनीत सुदृष्टि हम देते हैं ।।४९-५०।। मूर्तिमान् होने से नाश होने वाला धर्म होता है और विनाशशीलता होने से शेष भूतों की भाँति हैं । जो देह के आधार पर निविष्ट हैं उनका ब्राह्मण्य नहीं प्रकल्पित किया जाता है ।।५१।। उनका एक-एक अवयव ब्राह्मण्य का उपभोग नहीं करता है और सर्वथा अति प्रसंग से अनेकों के समूह में भी ब्राह्मण्य नहीं होता है ।।५२।। पृथिवी, जल, वायु, अग्नि के परिणामों में कोई

भी विशेषता का भाव न होने से समस्त प्राणियों का देह से ब्राह्मणत्व का प्रसंग होता है ।।५३।। जो तत्वों के ज्ञान न रखने वाले देह को ब्राह्मणत्व की प्रकल्पना किया करते हैं उनके शरीर के संस्कार करने वालों की ब्रह्मता नही होती है ।।५४।। बड़े प्रयत्नों के द्वारा खूब खोज करने पर भी देह में वह प्राप्त नहीं होता है। इससे देह में ब्राह्मण्य नहीं होता है और न वह देहात्मक ही होती है ।।५५।। यदि आप सब लोग इस देह का ही विप्रत्व मान लेते ; तो फिर वर्णापसद चाण्डाल और श्वादादि को भी यह विप्रत्व हो जाया करेगा अर्थात् फिर तो ये सभी चाण्डालादि ब्राह्मण हो जायेंगे ।।५६।। क्षीण होने वाले देह की शक्ति के गुणों के द्वारा काय के भस्म आदि रूप की भाँति हैं। इस कारण से देहात्मक से यह ब्राह्मण्य नहीं होता है और न कर्मों से उत्पन्न होने वाला ब्राह्मण्य हुआ करता है ।।५७।।

।। सप्तमी कल्प व्रत ।।

सप्तम्यां सोपवासस्तु रात्रौ भुञ्जीत यो नरः ।
कृत्वोपवासं षष्ठ्यां तु पञ्चम्यामेककालभुक् ।।१
दत्त्वा सुसंस्कृतं शाकं भक्ष्यभोज्यैः समन्वितम् ।
देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च रात्रौ भुञ्जीत वाग्यतः ।।२
यावज्जीवं नरः कश्चिद्व्रतमेतच्चरेदिति ।
तस्य श्रीर्विजयश्चैव त्रिवर्गश्चापि वर्धते ।।३
मृतश्च स्वर्गमायाति विमानवरमास्थितः ।
सूर्यलोके स रमते मन्वंतरगणान्बहून् ।
इह चागत्य कालांते नृपः शांतिसमन्वितः ।।४
पुत्रपौत्रैः परिवृतो दाता स्यान्नृपतिश्चिरम् ।
भुनक्ति हि धरां राजन्विग्रहैश्चाजितः परः ।।५
ये नरा राजशार्दूल शाकाहारेण सप्तमीम् ।
उपोष्य लब्धं तत्तीर्थं पित्र्यं वै राजसंज्ञिकम् ।।६

कुरुणा तव पूर्वेण शाकाहारेण सप्तमीम् ।
धर्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं कृतं तस्य विवस्वता ॥७

इस अध्याय में सप्तमी कल्प के व्रतोपवासादि का निरूपण किया जाता है । सप्तमी तिथि में जो मनुष्य उपवास करके रात्रि में भोजन किया करता है और पहिले पंचमी तिथि में एक ही समय में खाकर फिर षष्ठी तिथि का उपवास किया करता है ॥१॥ भक्ष्य और भोज्यों से युक्त भली-भांति संस्कार किया हुआ शाक ब्राह्मणों को और देवों का समर्पित करके रात्रि में मौन होकर खाता है और यह व्रत जब तक वह जीवित रहे बराबर किया करता है उस मनुष्य की श्रीविजय और त्रिवर्ग बढ़ाते हैं ॥२-३॥ वह व्यक्ति मृत होकर एक श्रेष्ठ विमान पर चढ़ा हुआ स्वर्ग लोक को चला जाता है और फिर वह बहुत से मन्वन्तरों तक सूर्यलोक में रमण किया करता है और जब यहाँ भूमण्डल में आता है तो कालान्त में शान्ति से समन्वित नृप होता है ॥४॥ पुत्र और पौत्रों से परिवृत होकर वह नृपति चिरकालपर्यन्त दानशील रहा करता है । हे राजन् ! वह दूसरे शत्रुओं से अजित होकर बहुत समय तक इस पृथ्वी के सुखों का पूर्ण उपभोग किया करता है ॥५॥ हे राजशार्दूल ! जो मनुष्य शाकाहार के द्वारा सप्तमी तिथि का उपवास करते हैं उन्होंने पित्र्य तीर्थ जो कि राजसंज्ञा वाला है, प्राप्त कर लिया है ॥६॥ तुम्हारे पूर्व कुरु ने शाकाहार से इस सप्तमी का व्रत करके उसकी विवस्वता से कुरुक्षेत्र का धर्म का क्षेत्र कर दिया है ॥७॥

सप्तमी नवमी षष्ठी तृतीया पञ्चमी नृप ।
कामदास्तिथयो ह्येता इहैव नरयोषिताम् ॥८
सप्तमी माघमासे तु नवम्याश्वयुजेमता ।
षष्ठीभाद्रपदे धन्या वैशाखे तु तृतीयिका ॥९
पुण्या भाद्रपदे प्रोक्ता पञ्चमी नागपञ्चमी ।
इत्येतास्तेषु मासेषु विशेषास्तिथयः स्मृताः ॥१०
शाकं सुसंस्कृतं कृत्वा यश्च भक्त्या समन्वितः ।
दत्त्वा विप्रे यथाशक्त्या पश्चाद्भुंक्ते निशि व्रती ॥११

कार्तिके शुक्लपक्षस्य ग्राह्यं यंकुरुनंदन ।
चतुर्भिर्वापि मासैस्तु पारणां प्रथमं स्मृतम् ॥१२
अगस्त्यकुसुमैश्चात्र पूजा कार्या विभावसोः ।
विलेपनं कुंकुमं तु धूपश्चैवापराजितैः ॥१३
स्नानं च पञ्चगव्येन तमेव प्राशयेत्ततः ।
नैवेद्यं पायसं चात्र देवदेवस्य कीर्तितम् ॥१४

हे नृप ! सप्तमी, नवमी, षष्ठी-तृतीया और पंचमी ये तिथियां कामनाओं के प्रदान करने वाली होती हैं इस भूमण्डल में ही ये तिथियाँ पुरुष तथा स्त्रियों की मनोकामना पूर्ण कर देती हैं ॥८॥ अब उक्त तिथियों में विभिन्न मासों में कुछ विशेषतायें होती हैं यह बताते हुए कहते हैं—'माघ मास की सप्तमी, अश्विन मास की नवमी, भाद्रपद की षष्ठी वैशाख मास की तृतीया तथा भाद्रपद में ही नागपंचमी एक परम पुण्या पंचमी कही गई है । इस तरह से ये उपर्युक्त मासों की उक्त विशेष तिथियां बताई गई हैं ॥९-१०॥ जो व्यक्ति शाक को भली-भांति संस्कार युक्त करके परम भक्ति से युक्त होकर पहिले यथाशक्ति ब्राह्मण को देकर पश्चात रात्रि में व्रती भोजन करता है वह उसके पुण्य का लाभ प्राप्त करता है ॥११॥ कार्तिक में हे कुरुनन्दन ! यह तिथि शुक्ल पक्ष की ग्रहण करनी चाहिये । चारों मासों में पारण प्रथम कहा गया है ॥१२॥ इसमें आगस्त्य के पुष्पों से विभावसु की पूजा करनी चाहिये । कुङ्कुम का विलेपन और अपराजित धूप के द्वारा आघ्रापन करे ॥१३॥ पंचगव्य से स्नान कराने और उसी को फिर अशन करें । देवों के देव का नैवेद्य यहाँ पर पायस कहा गया है ॥१४॥

तदेव देयं विप्राणां शाकं भक्ष्यमथात्मना ।
शुभशाकसमायुक्तं भक्ष्यपेयसमन्वितम् ॥१५
द्वितीये पारणे राजञ्छुभगन्धानि यानि वै ।
पुष्पाणि तानि देवस्य तथा श्वेतं च चन्दनम् ॥१६
अगुरुश्चापि धूपोऽत्र नैवेद्यं गुडपूपकाः ।
नानं कुशोदकेनात्र प्राशनं गोमयस्य तु ॥१७

तृतीये करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् ।
धूपानां गुग्गुलश्चात्र प्रियो देवस्य सर्वदा ।।१८
इत्येषा सप्तमी पुण्या शाकाह्वा गोपतेः सदा ।
यामुपोष्य नरो भक्तया भाग्यवांश्च प्रजायते ।।१९

वही शाक ब्राह्मणों को देना चाहिये जिसे पीछे आपको खाना है। शुभ शाक से समायुक्त भक्ष्य और पेय भी उसमें होना चाहिये ।।१५।। हे राजन् ! द्वितीय पारण में जो भी शुभ गन्ध हों उन्हें भी देवे अर्थात् सुन्दर गन्ध वाले पुष्पों को देव को समर्पित करना चाहिये । चन्दन श्वेत होना चाहिये ।।१६।। यहाँ पर अगुरु का धूप है और गुड़ के बने हुये पूआ नैवेद्य होते हैं । यहाँ पर कुशोदक से स्नान करावे और गोमय का प्राशन है ।।१७।। तृतीय पारण में करवीर के पुष्प होते हैं और चन्दन रक्त होता है । धूप के स्थान में गूगल होता है जो कि देव को सर्वदा प्रिय होता है ।।१८।। यह सप्तमी परम पुण्या तिथि है जो कि गोपति की सदाशाक नाम वाली होती है । जिस तिथि को मनुष्य भक्ति पूर्वक व्रतोपवास करके अत्यन्त भाग्यवान् हो जाता है ।।१९।।

।। सप्तमीकल्पवर्णने कृष्णसांबसंवादः ।।

विस्तराद्वद विप्रेंद्र सप्तमीकल्पमुत्तमम् ।
महाभाग्यं च देवस्य भास्करस्य महात्मनः ।।१
अत्रैवाहुर्महात्मानः संवादं पुण्यमुत्तमम् ।
कृष्णेन सह सत्त्वेन स्वपुत्रेण महीपते ।।२
भक्तया प्रणम्य विधिवद्वासुदेवं जगद्गुरुम् ।
इहामुत्र हितं शांबः पप्रच्छ ज्ञानमुत्तमम् ।।३
जातो जंतुः कथं दुःखैर्जन्मनीह न बाध्यते ।
प्राप्नोति विविधान्कामान्कथं च मधुसूदन ।।४
परत्र स्वर्गमाप्नोति सुखानि विविधानि च ।
अनुभूयोचितं कालं कथं मुक्तिमवाप्नुते ।।५

दृष्ट्वैवं मम निर्वेदो जातो व्याधिर्जनार्दन ।
दृष्ट्वेमं जीविताशापि रोचते न हि मे क्षणम् ॥६
किं त्वेवमकृतार्थोऽस्मि यन्मे प्राणा न यांति हि ।
संसारे न पतिष्यामि जराव्याधिसमन्विते ॥७
येनोपायेन तन्मेऽद्य प्रसादं कुरु सुव्रत ।
आधिव्याधिविनिर्मुक्तो यथाहं स्यां तथा वद ॥८

इस अध्याय में सप्तमी कल्प के वर्णन में कृष्ण और साम्ब का संवाद, रुद्र और ब्रह्म का सम्वाद तथा आदित्य के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । राजा शतनीक ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप इस परम-श्रेष्ठ सप्तमी कल्प को विस्तार के साथ बतलाइये और महात्मा भास्कर देव के महाभाग्य का भी वर्णन कीजियेगा ॥१॥ सुमन्त महर्षि ने कहा—इस विषय में महात्मा लोग एक अत्युत्तम सम्वाद कहा करते हैं । हे महीपते ! जो सम्वाद अपने पुत्र सत्त्व के साथ कृष्ण से हुआ था ॥२॥ यहां एक बार शाम्ब ने जगत् के गुरू वासुदेव को विधि के सहित भक्ति-पूर्वक प्रणाम करके इस लोक और परलोक का उत्तम ज्ञान पूछा था ॥३॥ हे मधुसूदन ! इस संसार में उत्पन्न होने वाला जन्तु किस तरह दुःखों से इस जन्म में वाधित नहीं होता और कौन सी रीति है जिससे यह अपनी अनेक कामनाओं की प्राप्ति करता है ॥४॥ किस प्रकार से यह परलोक में स्वर्ग का निवास करता है तथा विविध प्रकार के सुखों का उपभोग करता है । तथा उचित समय तक सबका आनन्दानुभव करके किस तरह अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करता है ? ॥५॥ हे जनार्दन! इस प्रकार से देखकर मुझे निर्वेद (वैराग्य) होता है और एक व्याधि उत्पन्न हो गई है । इसे देखकर मुझे एक क्षण के लिये भी जीवन की आशा अच्छी नहीं लगती है ॥६॥ इस तरह मैं अकृतार्थ हूँ कि मेरे प्राण नहीं जाते हैं । इस जरा (बुढ़ापा) और व्याधि से युक्त संसार में नहीं पड़ूँगा ॥७॥ हे सुव्रत ! इसका जो भी उपाय हो उससे आज मेरे पर प्रसन्नता करिये, जिससे मैं इन आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि से से विनिर्मुक्त हो जाऊँ । कृपा कर वह मुझे बताइये ॥८॥

देवतायाः प्रसादोऽन्यः सर्वस्य परमो मतः ।
उपायः शाश्वतो नित्य इति मे निश्चिता मतिः ॥९
अनुमानागमाद्यैश्च सम्यगुत्पादितामया ।
कदाचिदन्यथा कर्तुं धीयते केनचित्क्वचित् ॥१०
प्रसादो जायते तस्य सम्यगाराधनक्रिया ।
यदा तां च समुद्दिश्य कृता तद्वेदिना तथा ॥११
विशिष्टः देवता सम्यग्विशिष्टेनैव देहिना ।
आराधिता विशिष्टं च ददाति फलमीहितम् ॥१२
अस्तित्वे न च संदेहः केषांचिद्देवतां प्रति ।
नास्तीति निश्चयोऽन्येषां विशिष्टास्त्वं कथाः कुरु ॥१३

भगवान् वासुदेव ने कहा—देवता का अन्य प्रसाद सबके लिये परम श्रेष्ठ माना गया है और यही एक शाश्वत एव नित्य उपाय होता है यही मेरी निश्चित मति है ॥९॥ अनुमान और आगम आदि के द्वारा मैंने यह बुद्धि भली-भाँति उत्पन्न की है। किसी के भी द्वारा कभी भी और कहीं भी इसे अन्यथा धारण किया जा सकता है ॥१०॥ उस देवता के सम्यक् प्रकार से आराधना की क्रिया से उसका प्रसाद हो जाता है। जिस समय उसके ज्ञाता के द्वारा उस देवता का उद्देश्य करके वह क्रिया उसी तरह की जाया करती है ॥११॥ एक विशिष्ट देवता विशेषता से युक्त देहधारी के द्वारा भली-भाँति जब आराधित होता है तो वह विशिष्ट ही अभिष्ट फल दिया करता है ॥१२॥ शाम्ब ने कहा—कुछ लोगों का तो देवता के प्रति उसके अस्तित्व में कुछ भी सन्देह नहीं होता है और अन्य लोगों का यह निश्चिय होता है कि कोई देवता है ही नहीं। आप इस सम्बन्ध में विशिष्ट कथा कहिये ॥१३॥

सिद्धं तु देवतास्तित्वमागमेषु बहुष्वथ ।
प्रमाणमागमो यस्य तस्यास्तित्वं च विद्यते ॥१४
अनुमानेन वाप्यद्य तदस्तित्वं प्रसाध्यते ।
प्रमाणमस्ति यस्येदं सिद्धा यस्येह चास्तिता ॥१५

प्रत्यक्षेणापि चास्तित्वं देवतायां प्रसाध्यते ।
तच्चावश्यं प्रमाणं च दृष्टं सर्वशरीरिणाम् ।।१६

यदि नामा विविक्तास्तु तिर्यग्योनिगता अपि ।
नोत्पद्यते तथा ह्यस्तिव्यवहारो यथा स्थितः ।।१७

प्रत्येक्षेणोपलभ्यन्ते सम्यग्वै यदि देवताः ।
अनुमानागमाभ्यां च तदर्थं न प्रयोजनम् ।। ८

प्रत्यक्षेणोपलभ्यन्ते न सर्वा देवता क्वचित् ।
अनुमानागमगम्याः संति चान्याः सहस्रशः ।।१९
या चाक्षगोचरा काचिद्विशिष्टेफलप्रदा ।
तामेवादौ ममाचक्ष्व कथायिष्यस्यथापराम् ।।२०

भगवान वासुदेव ने कहा—बहुत से आगमों में देवताओं के अस्तित्व की सिद्धि हो गई है जिसका प्रमाण आगम होता है उसका अस्तित्व तो अवश्य ही होता है ।।१४।। अनुमान के द्वारा भी उसका अस्तित्व सिद्ध किया जाया करता है । जिसका यह अनुमान भी प्रमाण होता है उसकी भी यहां पर आस्तिता सिद्ध होती है ।।१५।। प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा भी देवता के अस्तित्व को प्रसाधित किया जाता है । जो समस्त शरीर-धारियों का देखा है वह अवश्य ही प्रमाण है ।।१६।। यदि नाम वाला विविक्त है और तिर्यग्योनिगत भी है तो जिस प्रकार से अस्ति-व्यवहार स्थित है उस प्रकार से उत्पन्न नहीं होता है ।।१७।। शाम्ब ने कहा—यदि देवता प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ही ठीक-ठीक उपलब्ध हो जाते हैं तो उसके अस्तित्व के सार के लिये अनुमान, प्रमाण और आगमों का कोई भी प्रयोजन ही नहीं रह जाता है ।।१८।। वासुदेव ने कहा—समस्त देवता कहीं भी प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा उपलब्ध नहीं हुआ करते हैं । अनुमान और आगमों के द्वारा अन्य सहस्रों का अस्तित्व सिद्ध होता है ।।१९।। शाम्ब ने कहा—जो देवता नेत्रों को गोचर हो और विशिष्ट अभिष्ट के प्रदान करने वाला हो उसी देवता के विषय में पहिले मुझे बताइये इसके अनन्तर अन्य देवताओं के विषय में वर्णन करने की कृपा करेंगे ।।२०।।

प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः ।
तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती ।।२१
यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च ।
कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षाद्दिवाकरः ।।२२
ग्रहनक्षत्रयोगाश्च राशयः करणानि च ।
आदित्यावसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलः ।।२३
शक्रः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवः स्वस्तथैव च ।
लोकाः सर्वे नगाः नागाः सरितः सागरास्तथा ।
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्वयं हेतुर्दिवाकरः ।।२४
अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ।
स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानुप्रवर्तते ।।२५
प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टामानः प्रदृश्यते ।
अस्मिन्नभ्युदिते सर्वमुदेदस्तमिते सति ।
अस्तं यातीत्यदृश्येन विमेतत्कथ्यते मया ।।२६
तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ।
यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते ।।२७
इतिहासपुराणेषु अंतरात्मेति गीयते ।
बाह्यात्मेतिसुषुम्णास्थः स्वप्नस्थो जाग्रतः स्थितः ।।२८

भगवान् श्री वासुदेव ने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो भगवान् सूर्य हैं जो इस समस्त जगत् के नेत्र हैं और दिन के सृजन करने वाले होते हैं। इससे भी अधिक निरन्तर रहने वाला कोई भी देवता नहीं है ।।२ ।। जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह जगत् अन्त समय में लय को प्राप्त होता है। कृतादि लक्षण वाला यह काल भी साक्षात् दिवाकर ही कहा गया है ।।२२।। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग हैं तथा राशियाँ करण आदित्यावसव, रुद्र, अश्विनी कुमार, वायु, अनल, शक्र, प्रजापति, समस्त भूर्भुवः स्व, लोक, सर्वनग, नाग, नदियाँ समुद्र और समस्त भूतों का समुदाय इन सभी का हेतु स्वयं एक दिवाकर ही होते हैं ।।२३-२४।।

इसी की इच्छा से यह सम्पूर्ण जगत् जो चर और अचर से युक्त है, उत्पन्न हुआ है। इसी की इच्छा से यह जगत् स्थित रहता है और अपने अर्थ में प्रवृत्त भी इसकी इच्छा से हुआ करता है ॥२५॥ इसके प्रसाद से ही यह लोक चेष्टाशील होता हुआ दिखलाई दिया करता है। इसके उदय होने पर सभी का उदय होता है और इसके अस्त हो जाने पर सब अस्तङ्गत हो जाया करते हैं क्योंकि जब यह अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ नहीं सूझा करता है। यह मेरे द्वारा क्या कहा जावे। तात्पर्य यह है कि यह प्रत्यक्ष से सिद्ध ही है। इस कारण से इससे अधिक कोई नहीं है, न हुआ और न भविष्य में भी कोई होगा। जो कि समस्त वेदों में 'परमात्मा' इस नाम से पुकारा जाता है ॥२६-२७॥ इतिहास और पुराणों में इसे 'अन्तरात्मा'—इस नाम से गाया जाता है। यह बाह्य आत्मा, सुषुम्नास्थ, स्वप्नस्थ और जाग्रत स्थित होकर जाता है ॥२८॥

अस्तं यातीत्यदृष्टेन किमेतत्कथ्यते मया।
तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥२९
यन्न वाह इति ख्यातः प्रेरकः सर्वदेहिनाम्।
नानेन रहितं किंचिद्भूतमस्ति चराचरम् ॥३०
यो वेदैर्वेदविद्भिश्च विस्तरेणेह शक्यते।
वक्तुं वर्षशतैर्नासौ शक्यः संक्षेपतो मया ॥३१
तस्माद्गुणाकरः ख्यातः सर्वत्रायं दिवाकरः।
सवशः सर्वकर्तायं सर्वभर्तायमव्ययः ॥३२
जाता मत्स्यादयः सम्यग्गतिसन्तो महेश्वरात्।
मडलव्यतिरिक्तं च जानामि परमार्थतः ॥३३
तथास्य मंडलं कृत्वा यो ह्यनेमुपतिष्ठते।
प्रातः सायं च मध्याह्ने स याति परमां गतिम् ॥३४
किं पुनर्मंडलस्थं यो जपते परमार्थतः।
विविधाः सिद्धयस्तस्य भवन्ति न तदद्भुतम् ॥३५

जब यह अदृष्ट होता है तो वह अस्तावल को चला जाया करता है। इसमें मेरे द्वारा क्या कहा जावे। इससे यह सिद्ध है कि इससे परे कोई देवता नहीं है न हुआ ही है ओर न आगे कभी भविष्य में होगा ।।२६।। जहाँ पर वाह-इस नाम से ख्यात है और जो समस्त देहधारियों को प्रेरणा देने वाला होता है। इससे रहित कुछ भी नहीं है। यह समस्त चराचर में रहने वाला है ।।३०।। यह ऐसा है कि समस्त वेदों के द्वारा और वेद के द्वारा और वेद के महा मनीषियों के द्वारा यहाँ विस्तार पूर्वक सो वर्ष में भी कहा नहीं जा सकता है। और मेरे द्वारा तो यह संक्षेप में भी नहीं कहा जा सकता है ।। १।। इस कारण से यह दिवाकर देव सर्वत्र गुणाकर नाम से ख्यात होते हैं। यह सबके ईश, सबके करने वाले सबके भरण करने वाले और अव्यय हैं ।।३२।। मत्स्य आदि सब महेश्वर से भली-भाँति गति वाले उत्पन्न हुए और मंडल व्यतिरिक के परमार्थ में नहीं जानता हूँ। सो इनका मण्डल करके जो कोई इपका उपस्थान किया करता है और इसकी उपासना प्रातःकाल-मध्यान्ह काल और प्रातःकाल में जो भी कोई करता है वह परम गति को प्राप्त हो जाता है ।।३३-३४।। इसको मण्डल में स्थित रहने वाले को परमार्थ से जप करता है उसका तो कहना ही क्या है। उसे विविध प्रकार की सिद्धियां हो जाया करती है और यह कोई अद्भुत बात नहीं है ।।३५।।

मंडले च स्थितं देवं देहे चौनं व्यवस्थितम् ।
स्वबुद्ध्यैवसंमूढो यः पश्यति स पश्यति ।।३६
ध्यान्वैवं पूजयेद्यस्तु जपेद्यो जुहुयाच्च यः ।
स सर्वान्प्राप्नुयात्कामान्गच्छेद्धर्मध्वजं तथा ।।३७
तस्मात्त्वमिह दुःखानामंतं कर्तुं यदीच्छसि ।
इहामुत्र च भोगानां भुक्ति मुक्ति च शाश्वतीम् ।।३८
आराधयार्कमर्कस्थो मंत्रैरिह तदात्मनि ।
अंगैर्वृतं वृते चैव स्थाने शास्त्रेण शोधिते ।।३९
कवचेन च संगुप्ते सर्वतोऽस्त्रेण रक्षिते ।
एवं प्राप्स्यसि यत्नेन सर्वदा फलमोप्सितम् ।।४०

दुःखमाध्यात्मिकं नेह तथा चैवाधिभौतिकम् ।
आधिदैविकमत्युग्रं न भविष्यति ते सदा ।।४१
न भयं विद्यते तेषां प्रपन्ना ये दिवाकरम् ।
इहामुत्र सुखं तेषामच्छिद्रं जायते सुखम् ।।४२
मूर्येणेदं ममोद्दिष्टं साक्षाद्यज्ज्ञानमुत्तमम् ।
आराधितेन विधिवत्कालेन बहुना तथा ।।४३
प्राप्यते परमं सथनं यत्र धमध्वजः स्थितः ।
एतत्संक्षिप्तमुद्दिष्टं क्षिप्रसिद्धिकरं परम् ।
यथा नान्यदतोऽस्तीति स्वयं सूर्येण भाषितम् ।।४४
उपायोयं समाख्यातस्तव संक्षेपतस्त्विह ।
यस्मात्परतरो नास्ति हितोपायः शरीरिणाम् ।।४५

मण्डल में स्थित इस देव को और इसको अपने देह में व्यवस्थित इस प्रकार से अपनी बुद्धि से जो विद्वान देखा करता है वही वस्तुत देखता है ।।३६।। इस प्रकार से अच्छी तरह ध्यान करके जो पूजा किया करता है, जाप किया करता है और जो हवन करता है वह मनुष्य समस्त अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति किया करता है और वह धर्म ध्वज को उस प्रकार से चला जाता है ।।३७।। इस कारण से तुम यदि अपने दुःखों का अन्त करना चाहते हो और इस लोक में सुखों का उपभोग करने की इच्छा रखते हो तथा परलोक में शाश्वती मुक्ति अर्थात् संसार के जन्म मरण के आवागमन से छुटकारा चाहते हो तो अर्क में स्थित होकर अर्क अर्थात् सूर्य की आराधना करो । यहां मन्त्र के द्वारा तदात्मायें अंगों से व्रत करो । स्थान के वृत होने पर और शास्त्र के द्वारा शोधित हो जाने पर एव कवच के द्वारा संरक्षित करने पर और सब ओर से अस्त्र के द्वारा रक्षित होने पर आराधन करने से इस प्रकार से सर्वदा यन्त्र पूर्वक करने पर जो भी कोई अभीष्टफल होगा उसे अवश्य ही प्राप्त कर लोगे ।।३८-४०।। इस प्रकार की आराधना से तुमको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख सर्वदा अत्युग्र रूप में नहीं होगा ।।४१।। जो पुरुष भगवान् दिवाकर की शरण में प्राप्त हो गये हैं उनको

कोई भी भय नहीं होता है। उन सूर्यदेव के उपासक भक्तों को इस लोक में और परलोक से दोनों जगह छिद्र रहित सुख हुआ करता है ॥४२॥ भगवान् सूर्यदेव ने यह उत्तम ज्ञान मुझे साक्षात् रूप से बतलाया था विधि के साथ बहुत काल पर्यन्त इस तरह आराधना करने से उस परम स्थान को मानव प्राप्त किया करता है जहाँ कि धर्मध्वज स्थित है। इस प्रकार से मैंने तुमको यह शीघ्र ही परम सिद्धि करने वाला विधान संक्षेप में बतला दिया है। क्योंकि उस प्रकार का अन्य कोई भी विधान नहीं है—ऐसा भगवान् सूर्यदेव ने स्वयं मुझे बताया था ॥४३-४४॥ इस संसार में यह उपाय मैंने अत्यन्त संक्षेप में तुमको बतला दिया है। शरीरधारियों के लिए इससे परतर अन्य कोई भी हित प्रदान करने वाला उपाय नहीं है ॥४५॥

॥ आदित्यस्य नित्याराधनविधि वर्णनम् ॥

अथार्चनविधिं वक्ष्ये धर्मकेतोरनुत्तमम् ।
सर्वकामप्रदं पुण्यं विघ्नघ्नं दुरितापहम् ॥१

सूर्यमंत्रै पुरः स्नातो यजेत्तेनैव भास्करम् ।
यतस्ततः प्रवक्ष्यामि स्नानमादौ समासतः ॥२

आचांतस्तमुपालभ्य मुद्रया शूचिशुद्धया ।
कृत्वा नीराजनं पुत्र संशोध्य च जलं ततः ॥३

स्नानाद्धृदयपूतेन मन्त्रेण मत्कुलोद्वह ।
उत्थायाचम्य तेनैव वाससी परिधाय च ॥४

द्विराचम्याथ संप्रोक्ष्य तनुं सप्ताक्षरेण च ।
उत्थायाचम्य तेनैव रवेः कृत्वार्घ्यमेव च ॥५

दत्त्वा तेन जपित्वा तं स्वकं ध्यात्वार्कवद्धृदि ।
गत्वा चायतनं शुभ्रमार्कमार्कीं तनुं यजेत् ॥६

पूरकं कुंभकं कृत्वा रेचकं च समाहितः ।
कृत्वोंकारेण दोषांस्तु हन्यात्कायादिसंभवान् ॥

इस अध्याय में आदित्य के नित्य आराधन करने का विधि का वर्णन और सूर्य के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेव ने कहा—इसके अनन्तर अब हम धर्मकेतु के उत्तम अर्चना की विधि को बतलाते हैं। जो कि विधान सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करने वाला, पुण्य, विघ्नों के हनन करने वाला और पापों के अपहरण करने वाला होता है ॥१॥ सबसे पहले सूर्य के मन्त्रों के द्वारा स्नान करके फिर उससे ही भास्कर का यजन करना चाहिये। आदि में संक्षेप से जहाँ तहाँ से स्नान के विषय में बतलाया जाता है ॥२॥ आचान्त होकर शुचि शुद्ध मुद्रा से उसको उपालब्ध करके, हे पुत्र ! नीराजन करे। इसके पश्चात् जल का संशोधन करे। हे मत्कुलोद्वह ! स्नान से हृदय पूत मन्त्र से उठकर आचमन करे और उसी के वस्त्रों का परिधान करना चाहिये ॥३-४॥ दो बार आचमन करके सम्प्राक्षेण करना चाहिए। फिर उठकर तथा आचमन करके उसी मन्त्र से रवि के लिए अर्घ्य देवे ॥५॥ अर्घ्य देकर उसका जप करे और अर्क वाले हृदय में अपने आपको उसका ध्यान करे और शुभ्र आर्क आयतन में पहुंच कर आर्कीतनु का यजन करना चाहिये ॥६॥ फिर अति समाहित होकर पूरक, कुम्भक और रेचक ये तीनों प्राणायाम की क्रियायें करे। इसे करके फिर ओंकार से कायादि में होने वाले समस्त दोषों का हनन करना चाहिए ॥७॥

वायव्याग्नेयमाहेन्द्रवारुणीभिर्यथाक्रमम् ।
किल्बिषं वारुणाद्भिश्च हन्यात्सद्धयर्थमात्मनः ॥८
शोषणं दहनं स्तंभं प्लावनं च यथाक्रमात् ।
वाय्वग्नींद्रजनख्याभिर्धारणाभिः कृते सति ॥९
ध्यात्वा विशुद्धमात्मानं प्रणमेदर्कमास्थितम् ।
देहं तेनैव संचिन्त्य पञ्चभूतमय परम् ॥१०
सूक्ष्म स्थूलं तथाक्षाणि स्वस्थानेषु प्रकल्प्य च ।
विन्यस्यांगानि खादीनि हृदाद्यानि हृदादिषु ॥११
खस्वाहा हृदयं भानोः खमर्काय शिरस्तथा ।
उल्का स्वाहा शिखार्कस्य यैं च हुं कवचं परम् ।

खां फडस्त्रं च संहारश्चादितः प्रणवः कृतः ॥१२
स पूर्वे प्रणवस्याथो मन्त्रकर्मप्रसिद्धये।
एभिर्जल त्रिधा जप्त्वा स्नानद्रव्याणि तेन च ॥१३
संप्रोक्ष्य पूजयेत्सूर्यं गंधपुष्पादिभिः शुभैः।
ततो मूर्तिषु सर्वासु रात्रावग्नौ प्रपूजयेत् ॥१४

इसके पश्चात् आत्मा की सिद्धि के लिए वायव्यआग्नेय, माहेन्द्र और वारुणी दिशाओं में यथाक्रम वारुण जल से अपने किल्विष्ट का नाश करे ॥८॥ वायु, अग्नि, इन्द्र और जल नाम वाली धारणाओं के द्वारा यथा-क्रम शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन करने पर विशुद्ध आत्मा का ध्यान करके समास्थित भगवान् अर्क को प्रणाम करना चाहिए और उसके द्वारा ही पंचभूतमय इस पर देह का संचिन्तन करे ॥९-१०॥ सूक्ष्म तथा स्थूल को एवं अक्षों को अपने स्थानों पर प्रकलित करके हृदय आदि में खादि और हृदादि अंगों का विन्यास करना चाहिये ॥११॥ भानु के हृदय को 'खस्वाहा' ऐसा न्यास करे, अर्काय शिरः खम् अर्कस्य शिखा उल्का स्वाहा, यैं हुं कवचम्, खां फट् अस्त्रम्—इस तरह संहार करे और आदि में प्रणव को करे ॥१२॥ प्रणव के पूर्व में उसे करे। इसके अनन्तर मन्त्र कर्म की सिद्धि के लिए इनसे तीन बार जल को जप करके और उस मन्त्र से स्नान के द्रव्यों का सम्प्रोक्षण करके शुभ गन्धाक्षत पुष्प आदि के द्वारा सूर्य का पूजन करना चाहिये। इसके पश्चात् समस्त मूर्तियों का रात्रि में अग्नि में पूजन करना चाहिए ॥१३-१४॥

प्राक्पश्चिमोगगभ्यग्रां प्रातः सायं निशासु वै।
सप्ताक्षरेण सन्मन्त्रं ध्यात्वा च पद्मकर्णिकाम् ॥१५
आदित्यमन्डलान्तस्थं तत्र देहं प्रकल्पयेत्।
प्रभामंडलमध्यस्थं ध्यात्वा देहं यथा पुरा।
सर्वलक्षणसंपूर्णं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् ॥१६
रक्तैर्गंधैश्च पुष्पैश्च चरुभिर्बलिभिस्तथा।
रक्तचन्दनमिश्रैर्वा वस्त्रैरावरणैः शुभैः ॥१७

आवाहनादिकर्माणि रक्षां तु हृदयेन च ॥
तच्चित्तश्च सदा कुर्याज्ज्ञात्वा कर्मक्रमं बुधः ॥१८
कृत्वा चावाहनं मन्त्रैरेकत्र स्थापनं ततः ।
यावद्यागावसानं तु सान्निध्यं तत्र कल्प्य च ॥१६
दत्त्वा पाद्यादिकां पूजां शक्त्या वार्घ्यं निवेद्य च ।
जपित्वा विधिवद्ध्यात्वा ततो देवीं विसर्जयेत् ॥२०
एष कर्म क्रमः प्रोक्तः सर्वेषां यजनक्रमात् ।
प्रवक्ष्यामि जपस्थानं पद्मेशावरणे तथा ॥२१

प्रातःकाल सायंकाल और रात्रि में पूर्व, पश्चिम और उत्तराभ्यग्रा पद्मकर्णिका तथा सप्ताक्षर द्वारा सन्मन्त्र का ध्यान करे और आदित्य-मण्डल के अन्दर स्थित वहां देह की कल्पना करे। प्रभामण्डल के मध्य में स्थित पहिले की भाँति देह को प्रकल्पित करना चाहिए जोकि देह समस्त लक्षणों से परिपूर्ण और सहस्त्र किरणों से परमोज्ज्वल है ॥१५-१६॥ जो रक्त गन्ध, पुष्प, चरु और बलियों से तथा रक्त चन्दन से मिश्रित वस्त्रों से और शुभ आवरणों से युक्त है ॥१७॥ आवाहन आदि कर्मों को और हृदय से रक्षा को उसी में अपना चित्त लगाकर बुध को सम्पूर्ण कार्यक्रम का ज्ञान करके सदा करना चाहिये ॥१८॥ मन्त्रों से आवाहन करके फिर एक स्थान में स्थापन करे और जब तक याग की पूर्णता हो तथा समाप्ति हो तब तक वहाँ पर उसके सन्निधान की कल्पना करे ॥ ६॥ पाद्य आदि की पूजा को देकर शक्ति से अर्घ्य निवेदित करे। विधि पूर्वक जप करके और ध्यान करके इसके पश्चात् देवी का विसर्जन करे ॥२०॥ यह कर्म का क्रम मैंने बता दिया है जो कि सबका यजन के क्रम से होता है। अब पद्मेशावरण में जप का स्थान बतलाऊँगा ॥२१॥

आदित्यं कर्णिकासंस्थं दलेष्वंगानि पूर्वशः ।
सोमादीन्राहुपर्यंतान्ग्रहाश्चैवोदगादितः ॥२२
मूर्तिमल्लोकपालांश्च क्रमादावरणेष्वथ ।
तदस्त्राणि च रक्षार्थं स्वमन्त्रैः पूजयेत्क्रमात् ॥२३

प्रणवैश्चाभिधानैश्च चतुर्थ्या ह्यभियोजितैः ।
सर्वेषां कथिता मन्त्रा मुद्राश्च कथयाम्यतः ।।२४
व्योममुद्रा रतिः पद्मा महाश्वेतास्त्रमेव च ।
पञ्चमुद्राः समाख्याताः सर्वकर्मप्रसिद्धये ।।२५
उत्तानौ तु करौ कृत्वा अंगुल्यो ग्रंथिताः क्रमात् ।
तर्जनीं यंति यावत्ताः समे वाधोमुखे स्थिते ।।२६
तर्जन्यौ मध्यमस्यैव ज्येष्ठाग्रे वानुगोपरि ।
मुद्रेयं सर्वमुद्राणांव्योम मुद्रेति कीर्तिता ।
सर्वकर्मसु योगोयं तथा स्थानं प्रकल्पते ।।२७
पद्मवत्प्रसृताः सर्वा महाश्वेता रवेः स्मृता ।
जवसंनिहितो नित्यं रथारूढो रविः स्मृतः ।।२८

भगवान् आदित्य को पद्मेशावरण में कर्णिद्रा स्थित करे और उस पद्म के दलों में अङ्गों को संस्थित करना चाहिए । पूर्व से सोम से आदि लेकर राहु पर्यन्त ग्रहों को संस्थापित करे । उत्तर से आदि लेकर मूर्तिमान लोकपालों को संस्थित करना चाहिये । क्रम से आवरणों में उनके अस्त्रों को रक्षा के लिए अपने मन्त्रों के द्वारा क्रम से पूजन करना चाहिये ।।२२-२३।। प्रणव और अभिधानों से युक्त चतुर्थी विभक्ति लगाकर अभियोजित किये हुए सबके मन्त्र कह दिये गये हैं । अब आगे जो मुद्रायें हैं उन्हें कहते हैं ।।२४।। समस्त कर्मों को प्रसिद्धि के लिए व्योम मुद्रा, रात, पद्मा, महाश्वेता और अस्त्र मुद्रा ये पाँच ही मुद्रा कही गई हैं ।।२५।। दोनों हाथों को ऊँचे करके क्रम से अंगुलियों को ग्रन्थित करे । जब तक वे तर्जनी को जाती हैं। सम अथवा अधोमुख स्थित होने पर दोनों तर्जनी मध्यम की ही ज्येष्ठा के आगे या अनुग के ऊपर होती हैं । यह समस्त मुद्राओं में व्योम मुद्रा कही गई है । सब कर्मों में यह योग होता है तथा स्थान प्रकल्पित होता है ।।२६-२७।। पद्म की भाँति जब सभी प्रसृत होती हैं वह रवि की महाश्वेता कही गई है। वेग से संनिहित नित्य रथ पर आरूढ़ रहने वाला रवि बताया गया है ।।२८।।

हस्तावूर्द्ध मुखौ कृत्वा वामागुष्ठेन योजितौ ।
द्रव्याणां शोधने योज्या रक्षार्थं च विशेषतः ।।२९
अनया मुद्रया सर्वं रक्षितं शोधितं भवेत् ।
अर्घ्यं दत्वा प्रयोक्तव्या पूजांते च विशेषतः ।।३०
जपध्यानावसाने च यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ।
अनेन विधिना नित्यं जपेदब्दमतंद्रितः ।।३१
स लभेतेप्सितान्कामानिहामुत्र न संशयः ।
रोगार्तो मुच्यते रोगाद्धनहीनो धन लभेत् ।।३२
राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यमपुत्रः पुत्रमाप्नुयात् ।
प्रज्ञामेधासमृद्धीश्च चिरंजीवति मानवः ।
सुरूपां लभते कन्या कुलीनां पुरुषो ध्रुवम् ।।३३
सौभाग्यं स्त्री कुलीनापि कन्या च पुरुषात्तमम् ।
अविद्यो लभते विद्यामित्युक्तं भानुना पुरा ।।३४
नित्ययागः स्मृतो ह्येष धनधान्यसुखावहः ।
प्रजापशुविवृद्धिश्च निष्कामस्यापि जायते ।।३५
तदैकः स्तूयते स्वर्गे शब्द्यते च नरोत्तमः
भक्त्या तं पूजयेद्यस्तु नरः पुण्यतरः सदा ।। ६
इह वै कामिकं प्राप्य ततो गच्छेन्मनोः पदम् ।
द्विजास्तस्य प्रसादेन तेजसा बुधसन्निभः ।।३७

दोनों हाथ अर्द्ध मुख करके वाम अंगुष्ठ के साथ योजित करे । यह मुद्रा द्रव्यों के शोधन करने में और विशेष करके रक्षा के लिए योजित करनी चाहिये ।।२९।। इस मुद्रा के द्वारा वस्तु शोधित तथा रक्षित होती है । अर्घ्य देकर विशेष करके पूजा के अन्त में यह मुद्रा प्रयुक्त करनी चाहिये ।।३०।। जप और ध्यान के अन्त में यदि अपनी आत्मा की सिद्धि की इच्छा रखता है तो इसी विधि से अतन्द्रित होकर एक वर्ष तक जप करना चाहिये ।।३१।। वह मनुष्य अपनी अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति किया करता है और इस लोक में तथा परलोक में उसको सबकी प्राप्ति होती है इस में कुछ भी संचय नहीं है ।

जो रोगों से पीड़ित होता है वह रोग से मुक्ति पा जाता है और जो निर्धन होता है वह धन का लाभ किया करता है ।।३२।। जो राज्य से भ्रष्ट हो जाता है वह राज्य की प्राप्ति करता है अपुत्र पुत्र पाता है इसके करने से प्रज्ञामेधा और समृद्धि की प्राप्ति होती है और मानव बहुत समय तक जीवित रहा करता है । पुरुष कुलीन और सुन्दर रूप वाली कन्या का लाभ निश्चय ही किया करता है । कुलीना कन्या भी श्रेष्ठ पुरुष को प्राप्त किया करती है तथा स्त्री सौभाग्य का लाभ प्राप्त करती है । जो विद्या से हीन होता है वह विद्या को पा जाता है ऐसा भानु-देव ने पहिले कहा था ।।३३-३४।। यह नित्य ही करने वाला भाग बताया गया है और तभी यह धन तथा धान्य के सुख को देने वाला होता है । जो बिल्कुल निष्काम होता है उसको भी प्रजा और पशुओं की विशेष वृद्धि होती है ।।३५। उस समय वह एक ही स्वर्ग में प्रस्तुत किया जाता है और नरों में उत्तम कहा जाया करता है । जो उसकी भक्ति के साथ पूजा करता है वह मनुष्य सदा अधिक पुण्यात्मा होता है ।।३६।। इस लोक में अपना समग्र अभीष्ट प्राप्त करके उसके पश्चात् वह मनु के पद की प्राप्ति किया करता है । हे द्विजगण ! उसके प्रसाद से ऐसा तेज प्राप्त होता है कि वह उस तेज से बुध के समान होता है ।।३७।।

।। रथसप्तमीमाहात्म्यवर्णनम् ।।

नैमित्तिकं ततो वक्ष्ये यज्ज्ञात्वा च समासतः ।
सप्तम्यां ग्रहणे चैव संक्रांतिषु विशेषतः ।।१
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां हविर्भुक्त्वैकदा दिवा ।
सम्यगाचम्य संध्यायां वारुणं प्रणिपत्य च ।।२
इन्द्रियाणि च संयम्य कृतं ध्यात्वा स्वपेदधः ।
दर्भशय्यागतो रात्रौ प्रातः स्नातः सुसंयतः ।।३
ततः संध्यामुपास्याथ पूर्वोक्तं च मनुं जपेत् ।
जुहुयाच्च तदा वह्नि सूर्याग्नी परिकल्प्य च ।।४

सूर्याग्निकरणं वक्ष्ये तर्पणं च समासतः ।
अर्चनागारमुल्लिख्य प्रविश्यार्च्यं जनैर्जनम् ॥५
प्रक्षिप्यास्तीर्य दर्भैश्च पात्राद्यालभ्य च क्रमात् ।
पवित्रं द्विकुशं कृत्वा साग्रं प्रादेशसंमितम् ॥६
तेन पात्राणि संप्रोक्ष्य संशोध्याथ विलोक्य च ।
उदगग्रे स्थिते पात्रे प्रज्वाल्याथोल्मुकेन च ॥७
पर्य्यग्निकरणं कृत्वा तथाज्योत्यवनं त्रिधा ।
परिमृज्य स्रुवादींश्च दर्भैः संप्रोक्षयेत्ततः ॥८

इस अध्याय में आदित्य के नैमित्तिक आराधन के क्रम का तथा रथ सप्तमी के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । भगवान् वासुदेव ने कहा—इसके पश्चात् मैं नैमित्तिक आराधन के विषय में बतलाता हूँ जिसको कि संक्षेप में जान लेना चाहिए । सप्तमी में, ग्रहण में और विशेष कर संक्रान्तियों में तथा शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में दिन में एक बार हवि का भोजन करे भली-भाँति आचमन करके सन्ध्या के समय में वारुण को प्रणाम करे । इन्द्रियों को संयम में करके किए हुए का ध्यान करे और भूमि पर नीचे शयन करना चाहिये । रात्रि में दर्भों की शय्या पर रहे और प्रातःकाल में स्नान करके सुसंयत हो जाना चाहिए ॥१-३॥ इसके अनन्तर सन्ध्योपासन करके पूर्वोक्त मन्त्र का जाप करे । सूर्याग्नि परिकल्पित करके तब अग्नि में हवन करना चाहिये ॥४॥ सूर्याग्निकरण को मैं बताऊँगा तथा तर्पण को भी संक्षेप में बताया जायगा । अर्चना के घर का उल्लेख करके अर्चन करने के योग्य जनों के साथ वहाँ पर प्रवेश करके जन को प्रक्षिप्त करे और दर्भों से आस्तरण करे तथा क्रम से पात्रादि का आलम्भन करना चाहिये । दो कुशाओं की पवित्री बना लेवे जो कि साग्र और प्रादेश संमित्त हों ॥५-६॥ उसके पात्रों का सम्प्रोक्षण संशोधन और विलोकन करे । उदग्रस्थित पात्र में उत्सुक से प्रज्वलित करना चाहिये । फिर पर्याग्निकरण करके तथा तीन प्रकार से आज्योत्यवन करे । स्रुवा आदि का परिमार्जन करके फिर दर्भों से सम्प्रोक्षण करना चाहिए ॥७-८॥

जुहुयात्प्रोक्ष्य तान्वह्नौ तत्रार्कं पूर्ववद्व्रजेत् ।
अभूमौ स्थितपात्रेण विष्टरेण तु पाणिना ॥
दानेन यदुशार्दूल नान्तरिक्षे स्थले क्वचित् ॥९
दक्षिणेन स्रुवं गृह्य जुहुयात्पावकं बुधः ।
हृदयेन क्रियाः सर्वाः कर्तव्याः पूर्वचोदिताः ॥१०
अर्कादारभ्य संज्ञार्थं दद्यात्तूष्णीं हुतिं स्थितः ।
वरुणाय शतैर्माघे सप्तम्यां वरुणं यजेत् ॥११
यथाशक्त्या तु विप्रेभ्यः प्रदद्यात्खण्डवेष्टकान् ।
दद्याच्च दक्षिणां शक्त्या प्राप्नोति याचितं फलम् ॥१२
एवं वै फाल्गुने सूर्यं चैत्रे वैशाख एव च ।
वैशाखे मासि धातारमिद्रं ज्येष्ठे यजेद्रविम् ॥१३
आषाढे श्रावणे मासि नभं भाद्रपदे यमम् ।
तथाश्वयुजि पर्जन्यं त्वष्टारं कार्तिके यजेत् ॥१४
मार्गशीर्षे च मित्रं च पौषे विष्णु तजेद्यदि ।
संवत्सरेण यत्प्रोक्तं फलमिष्टं दिनेदिने ।
तत्सर्वमाप्नुयात्क्षिप्रं भक्त्या श्रद्धान्वितो व्रती ॥१५

उनका प्रोक्षण करके अग्नि में हवन करना चाहिये । वहाँ पर अर्क को पूर्व की भाँति जावे । अभूमि में स्थित पात्र से, विष्टर से, पाणि से और दान से हे यदुशार्दूल ! अन्तरिक्ष में और स्थल में कहीं नहीं है दक्षिण हाथ से स्तुवा कर ग्रहण कर बुध को पावक में हवन करना चाहिए । पूर्वनोदित समस्त क्रिया हृदय से करनी चाहिए ॥९-१०॥ अर्क से आरम्भ करके संज्ञार्थ चुपचाप स्थित होकर आहुतियाँ देनी चाहिए । वरुण के लिए एक शत आहुतियाँ देवे । माघ मास में सप्तमी तिथि के दिन वरुण का यजन करे ॥११॥ अपनी शक्ति के अनुसार विप्रों के लिए खण्ड वेष्टकों का दान करना चाहिए । शक्ति पूर्वक दक्षिणा भी देवे तो जो भी चाहे वह फल प्राप्त किया करता है ॥१२॥ इसी प्रकार से फाल्गुन मास में तथा चैत्र और वैसाख के महीने में सूर्य का यजन करे । वैसाख मास में धाता इन्द्र का तथा ज्येष्ठ में रवि का यजन

करना चाहिये ।।१३।। आषाढ़ और श्रावण मास में नभ का, भाद्रपद में यम का, मार्गशीर्ष में मित्र का और पौष में विष्णु का यजन करे। आश्विन में पर्जन्य का और कार्तिक में त्वष्टा का यजन करे। इस तरह एक वर्ष पर्यन्त यजनार्जन करने से जो कि बताया गया है, तो दिन दिन में अभीष्टफल होता है। भक्ति के साथ श्रद्धा से युक्त व्रती वह सभी कुछ प्राप्त कर लेता है ।।१४-१५।।

माघस्य शुक्लपक्षे तु पञ्चम्यां मत्कुलोद्वह ।
एकभक्तं सदाख्यातं षष्ठ्यां नक्तमुदाहृतम् ।।१६
सप्तम्यामुपवासं तु केचिदिच्छंति सुव्रत ।
षष्ठ्यां केचिद्वदंतीह सप्तम्यां पारणं किल ।।१७
कृतोपवासः षष्ठ्यां तु पूजयेद्भास्करं बुधः ।
रक्तचन्दनमिश्रैस्तु करवीरैश्च सुव्रत ।।१८
गुग्गुलेन महाबाहो संयावेन च सुव्रत ।
पूजयेद्देवदेवेशं शंकरं भास्करं रविम् ।।१९
तुरो मासान्माघादीन्पूजयेद्रविम् ।
आत्मनश्चापि शुद्ध्यर्थं प्राशनं गोमयस्य च ।।२०
स्नानं च गोमयेनेह कर्तव्यं चात्मशुद्धये ।
ब्राह्मणान्दिव्यभौमांश्च भोजयेच्चापि शक्तितः ।।२१

इस अध्याय में माघ शुक्ल सप्तमी में महा सप्तमी के व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेव ने कहा—हे मत्कुलोद्वह ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में एक भक्त सदा कहा गया है और षष्ठी में रात्रि में कहा गया है ।।१६।। हे सुव्रत ! कुछ लोग सप्तमी में उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान षष्ठी में उपवास का करना बतलाते हैं और सप्तमी तिथि में उस उपवास का विधान कहा करते हैं ।।१७।। षष्ठी में जिसने उपवास किया है उसे भास्कर की पूजा करनी चाहिए। हे सुव्रत ! भास्कर का अर्चन रक्त चन्दन से मिश्रित तथा करवीर के पुष्पों से करना चाहिये ।।१८।। हे महान् बाहुओं वाले ! गुग्गल और संयाव से देवदेवेश शंकर भास्कर

रवि का पूजन करे ॥१९॥ इसी प्रकार से माघ आदि चार मासों में रवि का पूजन करना चाहिये। और अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये भी गोमय का प्राशन करे ॥२०॥ यहाँ पर गोमय (गोबर) से ही आत्मा की शुद्धि के सम्पादन करने के वास्ते स्नान करना चाहिये। और ब्राह्मणों को तथा दिव्य भौमों को अपनी शक्ति के अनुसार भोजन भी कराना चाहिये ॥२१॥

ज्येष्ठादिष्वथ मासेषु श्वेतचन्दनमुच्यते ।
श्वेतानि चापि पुष्पाणि शुभगन्धान्वितानि वै ॥२२
कृष्णागरुस्तथा धूपो नैवेद्यं पायसं स्मृतम् ।
तेनैव ब्राह्मणांस्तुष्टान्भोजयेच्च महामते ॥२३
प्राशयेत्पञ्चगव्यं तु स्नानं तेनैव पुत्रक ।
कार्तिकादिषु मासेषु अगस्तिकुसुमैः स्मृतम् ॥२४
पूजयेन्नरशार्दूल धूपैश्चैवापराजितैः ।
नैवेद्यं गूडपूपास्तु तथा चेक्षुरसं स्मृतम् ॥२५
तेनैव ब्राह्मणांस्तात भोजयस्व स्वशक्तितः ।
कुशोदकं प्राशयेथाः स्नानं च कुरु शुद्धये ॥२६
तृतीये पारणास्यांते माघे मासि महामते ।
भोजनं तत्र दानं च द्विगुणं समुदाहृतम् ॥२७
देवदेवस्य पूजा च कर्तव्या शक्तितो बुधैः ।
रथस्य चापि दानं तु रथयात्रा तु सुव्रत ॥२८
इत्येषा कथिता पुत्र रथाह्वा सप्तमी शुभा ॥२९
महासप्तमी विख्याता महापुण्या महोदया ।
यामुपोष्य धनं पुत्रान्कीर्ति विद्यातवाप्नुयात् ।
तथाखिलं कुवलयं चन्द्रेण च समोर्चिषा ॥३०

ज्येष्ठ आदि मासों में श्वेत चन्दन कहा जाता है। पुष्प भी श्वेत होने चाहिए जो कि बहुत उत्तम गन्ध वाले हैं ॥२२॥ कृष्ण अगुरु का धूप हो तथा नैवेद्य के लिए पायस बताया गया है। हे महामते ! उसी देव समर्पित नैवेद्य के स्थान में जो पायस है उससे ब्राह्मणों को बहुत

तुष्ट करते हुए भोजन कराना चाहिए ।।२३।। हे पुत्र ! पञ्चगव्य का प्राशन करावे और उसी से स्नान भी कराना चाहिये । कार्तिक आदि मासों में तो अगस्त्य के पुष्प बताये गए हैं ।।२४।। हे नरशार्दूल ! अपराजित धूप के द्वारा पूजन करना चाहिए । नैवेद्य के स्थान में गुड़ के बनाये हुए पूए होवें तथा ईख का रस कहा गया है ।।२५।। हे तात ! उसी समर्पित नैवेद्य के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे । कुशोदक का प्राशन करावे और शुद्धि के लिए स्नान भी कुशोदक से करे ।।२६।। हे महान् मति वाले ! तृतीय पारणः के अन्त में माघ मास में भोजन और दान दुगना कहा गया है ।।२७।। विद्वान पुरुषों के द्वारा शक्ति के अनुसार देवदेव की पूजा करनी चाहिए । हे सुव्रत ! रथ का भी दान और रथ यात्रा भी करनी चाहिए ।।२८।। हे पुत्र ! रथाह्वा अर्थात् रथ के नाम वाली सप्तमी का यह वर्णन किया गया है । यह महासप्तमी विख्यात है । यह महान् उदय वाली होती है जिसके दिन उपवास करके मनुष्य धन, पुत्र, कीर्त्ति और विद्या को प्राप्ति किया करता है तथा समस्त भूमण्डल को प्राप्त करता है और चन्द्रमा के समान अर्चि वाला हो जाता है ।।२९-३०।।

।। सूर्ययोगमहात्म्यवर्णनम् ।।

तमेकमक्षरं धाम परं सदसतोर्महत् ।
भेदाभेदस्वरूपस्थं प्रणिपत्य रविं नृप ।।१

प्रवक्ष्यामि यथापूर्वं विरिंचेन महात्मना ।
ऋषीणां कथितं पूर्वं तं निबोध नराधिप ।।२

आराधनाय सवितुर्महात्मा पद्मसंभवः ।
योगं ब्रह्मपरं प्राह महर्षीणां यथा प्रभुः ।।३

समस्तवृत्तिसंरोधात्कैवल्यप्रतिपादकम् ।
तदा जगत्पतिर्ब्रह्मा प्रणिपत्य महर्षिभिः ।।४

सर्वैः किलोक्तो भगवानात्मयोनिः प्रजाहितम् ।
योयं योगो भगवता प्रोक्तो वृत्तिनिरोधजः ॥५
प्राप्तुं शक्यः स त्वनेकैर्जन्मभिर्जगयः पते ।
विषया दुर्जया नृणामिंद्रियाकर्षिणः प्रभो ॥६
वृत्तयश्चेतसश्चापि चञ्चलस्यापि दुर्धराः ।
रागादतः कथं जेतुं शक्या वर्षशतैरपि ॥७

इस अध्याय में सूर्य के योग के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। सुमन्तु महर्षि ने कहा—हे नृप ! उस एक, अक्षर, सद् और असत् में महान्, भेद और अभेद के स्वरूप में स्थित, पर धाम रवि का प्रणिपात्त करना चाहिए और मैं रवि को प्रणाम करके तुमको बताता हूँ जेसा कि महात्मा विरञ्चि ने पहिले ऋषियों के आगे कहा था। हे नराधिप ! अब तुम उसको समझ लो ॥१-२॥ सविता की आराधना करने के लिए महान् आत्मा वाले पद्म सम्भव (ब्रह्मा) प्रभु ने महर्षियों को जैसा ब्रह्म पर योग कहा था ॥३॥ वह समस्त वृत्तियों के संरोध से कैवल्य का प्रतिपादक योग है। उस समय में जगत् के स्वामी ब्रह्माजी से समस्त महर्षियों ने कहा था जो कि भगवान् हैं और प्रजा के लिए आत्मयोनि थे। ऋषियों ने कहा—आपने जो वृत्तियों के निरोध से होने वाला योग बताया है वह तो हे जगत् के स्वामी ! अनेकों जन्म बीत जाने पर कहीं बड़ी कठिनाई से प्राप्त किया जा सकता है। हे प्रभो ! ये जो विषय हैं वे बहुत कठिनाई से भी नहीं जीते जाया करते हैं। ये तो मनुष्यों की इन्द्रियों को हठात् खींच लेने वाले हुआ करते हैं ॥४-६॥ वृत्तियाँ जो हैं वे इस चंचल चित्त से भी अधिक कठिन होती हैं। ये राग आदिक वृत्तियाँ सैकड़ों वर्षों में भी किस तरह जीती जा सकती हैं ? ॥७॥

न योगयोग्यं भवति मन एभिरनिर्जितैः ।
अल्पायुषश्च पुरुषा ब्रह्मन्कृतयुगेप्यमी ॥८
त्रेतायां द्वापरे चैव किमु प्राप्ते कलौ युगे ।
भगवंस्त्वामुपासीनान्प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥९

अयायासेन येनैव उत्तरेम भवार्णवम् ।
दुःखांवुमग्नाः पुरुषाः प्राप्य ब्रह्मन्महाप्लवम् ।।१०
उत्तरेम भवांभोधि तथा त्वमनुचिंतय ।
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा क्रियायोगं महात्मनाम् ।।११
तेषामृषीणामाजष्ट नराणां हितकाम्यया ।
आराधयत विश्वेशं दिवाकरमतंद्रिताः ।।१२
बाह्यालंबनसापेक्षास्तमजं जगतः पतिम् ।
इज्यापूजानमस्कारशुश्रूपाभिरहर्निशम् ।।१३
व्रतोपवासैर्विविधैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ।
तैस्तैश्चाभिमतैः कामैर्ये च चेतसि तुष्टिदाः ।।१४

इन अनिर्जितों के द्वारा मन इस योग के योग्य नहीं होता है। हे ब्रह्मन् ! इस कृतयुग में भी ये पुरुष अल्प आयु वाले होते हैं ।।८।। त्रेता और द्वापर तथा कलियुग में तो आयु के विषय में कहने की बात ही क्या है । हे भगवन् ! आपकी उपासना करने वालों को आप प्रसन्न होकर बताने के योग्य होते हैं ।।९।। हे ब्रह्मन् ! जिसके द्वारा अनायास से ही इस संसार रूपी महान् सागर के पार हो जावें ऐसा कोई योग बताइये । मनुष्य विचारे सांसारिक दुःख रूपी जल में डूबे हुए हैं, आपके द्वारा बताये हुए महान् प्लव की प्राप्ति कर ये पार हो सकते हैं ।।१०।। जिस प्रकार से संसार समुद्र से पार हो जावे—ऐसा कोई योग आप विचारिये । इस तरह से जब ब्रह्माजी से कहा गया तो उनने मानवों के हित की कामना से महात्माओं के क्रिया योग को उन ऋषियों से कहा था कि समस्त इस विश्व के स्वामी दिवाकर की तन्द्रा रहित होकर आराधना करो ।।११-१२।। बाह्य आलम्बन की अपेक्षा वाले उस जगत् के पति अज की इज्या, पूजा नमस्कार और शुश्रूषा से रात-दिन आराधित्त की आराधना करने लगे ।।१३।। व्रत, उपवास जो कि अनेक प्रकार के थे उनके द्वारा तथा ब्राह्मणों के तर्पणों द्वारा और उन-उन कामनाओं से जो कि चित्त में तुष्टि के देने वाले थे, भगवान् भास्कर की आराधना करो ।।१४।।

अपरिच्छेद्यमाहात्म्यमाराधयत भास्करम् ।
तन्निष्टास्तद्गतधियस्तत्कर्माणस्तदाश्रयाः ॥१५
तद्दृष्टयस्तन्मनसः सर्वस्मिन्त्स इति स्थिताः ।
समस्तान्यथ कर्माणि तत्र सर्वात्मनात्मनि ॥१६
संन्यसध्वं स वः कर्ता समस्तावरणक्षयम् ।
एतत्तदक्षरं ब्रह्मा प्रधानपुरुषावुभौ ॥१७
यतो यस्मिन्यथा चोभौ सर्वव्यापिन्यवस्थितौ ।
परः पराणां परमः सैकः सुमनसां परः ॥१८
यस्माद्भिन्नमिदं सर्वं यच्चेदं यच्च नेंगति ।
मोक्षकारणमव्यक्तमचिन्त्यमपरिग्रहम् ।
समाराध्य जगन्नाथं क्रियायोगेन मुच्यते ॥१९
इति ते ब्रह्मणः श्रुत्वा रहस्यमृषिसत्तमाः ॥२०
नराणामुपकाराय योगशास्त्राणि चक्रिरे ।
क्रियायोगपराणीह मुक्तिकारीण्यनेकशः ॥२१

जिस भगवान् भास्कर का माहात्म्य अपरिच्छेद है उसकी आराधना करे और तनिष्ट होकर उसी में अपनी बुद्धि को लगाने वाले बनकर तथा उनके ही कर्मों को करके और एक मात्र भास्कर का आश्रय ग्रहण करके एवं उसकी ही दृष्टि वाले और मन वाले होकर तथा सबमें वह ही स्थित है-ऐसा विचार करके स्थित हो अपने समस्त कर्मों को सबकी आत्मा उसमें ही त्याग करदो अर्थात् उसे ही समर्पित कर देना चाहिये। वह आपका समस्तावरण क्षय का कर्त्ता है। यह अक्षर ब्रह्म है। दोनों ही प्रधान पुरुष हैं ॥१५-१७॥ जिससे जिसमें जिस प्रकार से सर्वव्यापी में दोनों ही अवस्थित हैं। परों का भी पर-परम और सुमनसों का पर वह एक ही है ॥१८॥ जिससे यह भिन्न है और जो यह सब है और जो इङ्गित नहीं होता है उस मोक्ष के कारण स्वरूप, अव्यक्त, अचिन्त्य और परिग्रह से रहित रहने वाले जगत् के नाथ की समाराधना करके क्रिया के योग से मुक्ति प्राप्त की जाया करती है ॥१९॥ इस प्रकार उन श्रेष्ठ ऋषियों ने इस रहस्य को ब्रह्माजी से सुनकर मनुष्यों की भलाई के लिए

योगशस्त्रों का करने लगे। यहीं पर क्रिया योग में परायण ऐसे मुक्ति करने वाले अनेक हैं ॥२०-२१॥

आराध्यते जगन्नाथस्तदनुष्ठानतत्परैः।
परमात्मा स मार्तंडः सर्वशः सर्वभावनः ॥२२
यान्युक्तानि पुरा तेन ब्रह्मणा कुरुनन्दन।
तानि ते कुरुशार्दूल सर्वपापहराण्यहम् ॥२३
वक्ष्यामि श्रूयतामद्य रहस्यमिदमुत्तमम्।
संसारार्णवमग्नानां विषयाक्राँतचेतसाम् ॥२४
हंसपोतं विना नान्यत्किंचिदस्ति परायणम्।
उत्तिष्ठंश्चितय रविं व्रजंश्चितय गोपतिम् ॥२५
भुंजंश्चितय मार्तंडं स्वपंश्चितय भास्करम्।
एवमेकाग्रचित्तस्त्वं संश्रितः सततं रविम् ॥२६
जन्ममृत्युमहाग्राहं संसारांभस्तरिष्यसि ॥२७
ग्रहेशमीशं वरदं पुराणं,
जगद्विधातारमजं च नित्यम्।
समाश्रिता ये रविमीशितारं,
तेषाँ भवो नास्ति विमुक्तिभाजाम् ॥२८

उसके अनुष्ठान में तत्पर रहने वालों के द्वारा उस जगत् के स्वामी की आराधना की जाती है। पर परमात्मा मार्त्तण्ड सबका ईश और सर्वभावन होता हैं ॥२२॥ हे कुरुनन्दन ! उन ब्रह्माजी ने जो पहिले कहे थे हे कुरुशार्दूल ! वे तुम्हारे समस्त पापों के हरण करने वाले हैं। उन्हें मैं बताऊँगा। आज तुम इस परम श्रेष्ठ रहस्य का श्रवण करो। जो इस संसार रूपी समुद्र में मग्न हैं और जिनके मन सांसारिक विषयों में आक्रान्त हो रहे हैं उनके लिए यह सर्वोत्तम है ॥२३-२४॥ हंसपोत के अतिरिक्त अन्य कोई भी परायण नहीं है। अतः उठकर रविका चिन्तन करो और चलते हुए भी उस गोपति का ही चिन्तन करो ॥२५॥ भोजन करते हुए मार्त्तण्ड की चिन्ता करो और शयन करते हुए भी भास्कर की चिन्ता करो। इस प्रकार से तुम एकाग्र चित्त होकर निरन्तर रविका

संश्रय करने वाले रहो ।।२६।। जन्म और मृत्यु जिसमें महान ग्राह हैं ऐसे इस संसार रूपी सागर को तुम रवि का समाश्रय ग्रहण करके तैर जाओगे ।।२७।। जो इस ग्रहों के स्वामी, वरदान देने वाले पुराण पुरुष, जगत् के विधाता, अजन्मा, ईशिता रवि हैं उनका समाश्रय जिन्होंने ग्रहण किया है उन विमुक्ति के सेवन करने वालों के लिए यह संसार कुछ भी नहीं है अर्थात् उन्हें इस संसार से छुटकारा पाना एक अत्यन्त साधारण सी बात है ।।२८।।

।। सूर्यस्य विराट्रूपवर्णनम् ।।

विस्तरेणानुपूर्व्या च सूर्यं निगदतः शृणु ।
ततः शेषान्प्रवक्ष्येऽहं नमस्कृत्य विवस्वते ।।१
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिंतकाः ।।२
गंधवर्णं रसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।।३
निग्रंह सर्वभूतानामव्यक्तमभवत्किल ।
अनाद्यंतमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवोप्ययम् ।।४
अनाकारमविज्ञेय तमाहुः पुरुषं परम् ।
तस्यात्मना सर्वमिद जगद्व्याप्तं महात्मनः ।।५
तस्येश्वरस्य प्रतिमा ज्ञानवैराग्य लक्षणा ।
धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी तस्याभिमानिनः ।।६
अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदिच्छति ।
चतुर्मुखस्य ब्रह्मत्वे कालत्वे चाँतकृद्भवेत् ।।७

इस अध्याय में सूर्य के विराट् रूप का वर्णन किया जाता है। श्रीनारद ऋषि ने कहा—विस्तार से और आनूपूर्वी से सूर्य को बताने वाले मुझसे तुम श्रवण करो। इस अनन्तर विवस्वान को नमस्कार करके मैं शेषों को बतलाऊँगा ।।१।। जो अव्यक्त कारण है वह नित्य और

सत् एवं असत् स्वरूप वाला है। जो तत्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष हैं वे उसको प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं ॥२॥ गन्ध, वर्ण और रस से हीन तथा शब्द एवं स्पर्श से विवर्जित, जगत् की योनि और महद्भूत एवं सनातन परब्रह्म है ॥३॥ समस्त भूतों का निग्रह अव्यक्त हुआ था। आदि और अन्त से रहित, सूक्ष्म, त्रिगुण अर्थात् सत्व, रज और तम इन तीन गुणों वाला प्रभाव भी यह है ॥४॥ जिसका कोई आकार नहीं है और जो विशेष रूप से जानने योग्य नहीं है उसको पर-पुरुष कहते हैं। उस महान् आत्मा वाले की आत्मा से यह समस्त जगत् व्याप्त हो रहा है ॥५॥ उस ईश्वर की प्रतिमा ज्ञान और वैराग्य के लक्षण वाली होतो है। अभिमानी उसकी धर्मैश्वर्य से कीं हुई बुद्धि ब्राह्मी कही जाती है ॥६॥ उसके मन से जो कुछ भी वह इच्छा किया करता है वह अव्यक्त से उत्पन्न हुआ करता है। चतुर्मुख के ब्रह्मत्व में और कालत्व में अन्तकृत् होता है ॥७॥

सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्रोवस्थाः स्वयंभुवः।
सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः ॥८
सात्त्विकं पुरुषत्वे च गुणवृत्तं स्वयंभुवः।
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्कालत्वे चापि संक्षिपेत् ॥९
पुरुषत्वे उदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रिकालं संप्रवर्तते ॥१०
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिः स्वयम्।
अग्रे हिरण्यगर्भस्तु प्रादुर्भूतः स्वयंभुवः ॥११
आदित्यस्यादिदेवत्वादजातत्वादजः स्मृतः।
देवेषु समहान्देवो महादेवः स्मृतस्ततः ॥१२
सर्वेशत्वाच्च लोकस्य अधीशत्वाच्च ईश्वरः।
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भवत्वाद्भव उच्यते ॥१३
पातियस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरतः स्मृतः।
पुरे शेते च वै यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥१४

पुरुष सहस्र मूर्धावाला है। उस स्वयम्भू की तीन अवस्थायें होती

हैं। ब्रह्मत्व में सत्व और रज, और कालत्व में रज और तम होता है। स्वयम्भू के पुरुषत्व में सात्विक गुण वृत्त होता है। वह ब्रह्मत्व में लोकों का सृजन किया करता है और कालत्व की दशा में उसका संक्षेप करता है ॥८-६॥ जब वह पुरुषत्व की अवस्था में स्थित रहता है तो उदासीन रहा करता है। इस तरह प्रजापति की तीन अवस्थायें होती हैं। वह अपनी आत्मा अर्थात् स्वरूप को तीन प्रकार से विभाजित करके तीन काल में संप्रवृत्त रहता है ॥१०॥ इन तीनों से वह स्वयं ही सृजन करता है ग्रसन करता है और वीक्षण किया करता है। सबसे पहले स्वयम्भू से हिरण्यगर्भ प्रादुर्भूत हुआ था ॥११॥ आदित्य के आदि देव होने से और अजात होने से वह 'अज' इस नाम से कहा गया है। देवों में वह सबसे बड़ा देव है इसीलिए 'महादेव' इस नाम से कहा गया है ॥१२॥ लोक का सर्वेश होने से और अधीश होने के कारण से उसे 'ईश्वर'—इस नाम से कहा गया है। वृहत् होने से उसको ब्रह्मा पुकारा गया है और भवत्व होने के कारण उसका भव यह नाम पड़ गया है ॥१३॥ क्योंकि वह समस्त प्रजा की रक्षा तथा पालन करता है इसी कारण से वह प्रजापति कहा गया है ॥१४॥

नोत्पाद्यत्वादपर्वत्वात्स्वयंभूरिति विश्रुतः ॥१५
हिरण्यांडगतो यस्माद्ग्रहेशो वै दिवस्पतिः।
तस्माद्धिरण्यगर्भोऽसौ देवदेवो दिवाकरः ॥१६
आपो नारा इति प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
अयनं तस्य ता आपस्तेने नारायणः स्मृतः ॥१७
अर इत्येष शीघ्रार्थो निपातः कविभिः स्मृतः।
आप एवार्णवा भूत्वा न शीघ्रास्तेन ता नराः ॥१८
एकार्णवे पुरा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे।
नारायणाख्यः पुरुषः सुष्वाप सलिले तदा।
सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्त्राक्षः सहस्रपात् ॥१९
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापति-
स्त्रयीपथे यः पुरुषो निगद्यते।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता-
अपूर्व एकः पुरुषः पुराणः ।।२०
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा ।
संपद्यते वै तमसः परस्तात् ।।२१

उत्पाद्यत्व न होने से और अपूर्व होने से स्वयम्भू—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है ।।१५।। हिरण्य अण्ड में रहने वाला है और दिवस्पति ग्रहों का स्वामी है इसी कारण से यह हिरण्यगर्भ तथा देवों का भी देव दिवाकर कहा गया है ।।१६।। तत्वों को देखने वाले महर्षियों ने जलों का 'नारा' इस नाम से कहा है । वे ही जल उसके अयन अर्थात् निवास के स्थान हैं इस कारण से वह नारायण कहे जाते हैं ।।१७।। "अर" यह शब्द शीघ्रता के अर्थ वाला कवियों ने निपात बनाया है । जल ही अर्णव होकर शीघ्र नहीं है, इस कारण से वे नर हुए हैं ।।१८।। पहिले कुछ एकार्णव में स्थावर और जंगम सबके नष्ट हो जाने पर नारायण नाम वाला पुरुष उस समय उस जल में शयन करता था । वह सहस्र शीर्षों वाला—सहस्र नेत्रों वाला और सहस्र पैरों वाला एवं सुन्दर मन वाला है ।।१९।। प्रथम प्रजापति सहस्र बाहुओं वाला है जो कि त्रयी पथ में पुरुष कहा जाता है । आदित्य के समान वर्ण वाला इस भुवन का रक्षक एक पुराण पुरुष अपूर्व ही है ।।२०।। महात्मा हिरण्य-गर्भ पुरुषोत्तम से परे होता है ।।२१।।

।। आदित्यवारमाहात्म्य ।।

ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन्पूजयंति दिवाकरम् ।
स्नानदानादिकं तेषां किं फलं स्यावद्ब्रवीतु मे ।।१
पुण्या सा सप्तमी प्रोक्ता युक्ता तेन पितामह ।
विजयेति तथा नाम वर्ण्यतामस्य पुण्यता ।।२
ये त्वादित्यदिने ब्रह्मञ्छ्राद्धं कुर्वंति मानवाः ।
सप्तजन्मासु ते जाताः संभवंति विरोगिणः ।।३

नक्तं कुर्वंति ये तत्र मानवाः स्थैर्यमाश्रिताः ।
जपमानाः परं जाप्यमादित्यहृदयं परम् ॥४
आरोग्यमिह वै प्राप्य सूर्यलोकं व्रजंति ते ।
उपवासं च ये कुर्यु रादित्यस्य दिने सदा ॥५
जपंति च महाश्वेतां ते लभंते यथेप्सितम् ।
अहोरात्रेण नक्तेन त्रिरात्रनियमेन वा ॥६
जपमानो महाश्वेतामीप्सितं लभते फलम् ।
विशेषतः सूर्यदिने जपमानो गणाधिप ॥७

इस अध्याय में आदित्य वार के माहात्म्य का वर्णन तथा नन्दाख्य आदित्य वार के व्रत कल्प के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । दिण्डि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य आदित्य वार के दिन में दिवाकर का पूजन किया करते हैं और स्नान तथा दान आदि के कर्म करते हैं उनका क्या फल होता है ? कृपा कर यह आप मुझे बतलावें ॥१॥ हे पितामह ! उस आदित्य वार से युक्त सप्तमी तिथि परम पुण्य तिथि आपने बतलाई थी तथा उसका नाम विजया—यह भी कहा था सो कृपया इसकी पुण्यता का वर्णन कीजिये ॥२॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् जो मानव रवि के वार वाले दिन में श्राद्ध करते हैं वे सात जन्मों तक उत्पन्न होकर रोगों से रहित हुआ करते हैं ॥३॥ जो उस दिन स्थिरता का आश्रय लेकर रात्रि के समय में किया करते हैं और पर जाप्य आदित्य हृदय का जाप करते रहते हैं वे इस लोक में पूर्ण आरोग्य प्राप्त करके अन्त में सूर्य-लोक में चले जाते हैं । आदित्य के दिन में सदा उपवास किया करते हैं वे भी सूर्यलोक की प्राप्ति करते हैं ॥४-५॥ जो महाश्वेता को जपते हैं वे अपने इच्छित की प्राप्ति किया करते हैं जो भी वे कुछ चाहते हैं वही उन्हें मिल जाता है । एक अहोरात्र में, केवल रात्रि के समय में अथवा तीन रात्रियों में नियम से महाश्वेता के जप करने वाले अपने ईप्सित फल पाते हैं । हे गणाधिप ! विशेष रूप से सूर्य के दिन में जाप करने से पूर्ण फल की प्राप्ति होती है ॥६-७॥

षडक्षरं तथा श्वेतां गच्छेद्वै रोचनं पदम् ।
द्वादशेह स्मृता वारा आदित्यस्य महात्मनः ॥८
नंदो भद्रस्तथा सौम्यः कामदः पुत्रदस्तथा ।
जयो जयंतो विजय आदित्याभिमुख स्थितः ॥९
हृदयो रोगहा चैव महाश्वेतप्रियोऽपरः ।
शुक्लपक्षस्य षष्ठ्यां तु माघे मासि गणाधिप ॥१०
यः कुर्यात्स भवेद्भूपः सर्वपापभयापहः ।
अत्र नक्तं स्मृतं पुण्यं घृतेन स्नपनं रवेः ॥११
अगस्त्यकुसुमानीह भानोस्तुष्टिकराणि तु ।
विलेपनं सुगंधस्तु श्वेतचंदनमुत्तमम् ॥१२
धूपस्तु गुग्गुलः श्रेष्ठो नैवेद्यं पूपमेव हि ।
दत्त्वा पूपं तु विप्रस्य ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥१३
नक्षत्रदर्शनान्नक्तं केचिदिच्छंति मानद ।
मुहूर्तोनं दिनं केचित्प्रवदंति मनीषिणः ॥१४

षडक्षर तथा श्वेता का जाप करने वाला वैरोचन पद को पाता है । इस संसार में महात्मा आदित्य के द्वादशवार कहे गये हैं ॥८॥ नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रत, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिख, हृदय रोगहा, महाश्वेत प्रिय ये बारह उनके नाम होते हैं । हे गणाधिप ! माघ मास में शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि में जो किया करता है वह समस्त प्रकार के पापों के भय का अपहरण करने वाला राजा होता है । इसमें रात्रि के समय में घृत से रविका स्नपन करना परम पुण्य बताया गया है ॥९-११॥ अगस्त्य वृक्ष के पुष्प सूर्य को अत्यन्त तुष्टि के करने वाले होते हैं अर्थात् इन पुष्पों से सूर्य देव बहुत ही विशेष प्रसन्न हुआ करते हैं । सुगन्ध का विलेपन करने में श्वेत चन्दन अति उत्तम माना गया है ॥१२॥ धूपों में गूगल का धूप अति श्रेष्ठ होता है और नैवेद्य के स्थान में पूप (पूआ) ही विशेष प्रिय कर होते हैं । इसके पश्चात् मौन व्रती होकर पूओं से ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ॥१३॥ हे मानद ! कुछ विद्वान लोग नक्षत्रों के दर्शन हो जाने पर रात्रि मानते हैं और दूसरे मनीषी

गण एक मुहूर्त्त कम दिन के समय को ही नक्त कहा करते हैं। दो घड़ी का एक मुहूर्त्त होता है ॥१४॥

नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहम्मन्ये गणाधिप।
प्रस्थमात्रं भवेत्पूपं गोधूममयमुत्तमम् ॥१५
यवोद्भवं वा कुर्वीत सगुडं सर्पिषान्वितम्।
सहिरण्यं च दातव्यं ब्राह्मणे सेतिहासके ॥१६
भौमे दिव्येऽथ वा देयं न्यसेद्वा पुरतो रवेः।
दातव्यो मन्त्रतश्चायं मंडको ग्राह्य एव हि ॥१७
भूत्वादित्येन वै भक्तया आदित्यं तु नमस्य च।
आदित्यतेजसोत्पन्न यज्ञीकरविनिर्मितम्।
श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतींच्छापूपमुत्तमम् ॥१८
कामदं सुखदं धर्म्यं धनदं पुत्रदं तथा।
सदास्तु ते प्रतीच्छामि मंडकं भास्करप्रियम् ॥१९
एतौ चैव महामंत्रौ दानादाने रविप्रियौ।
अपूपस्य गणश्रेष्ठ श्रेयते नात्र संशयः ॥२०

हे गणाधिप ! मैं तो नक्षत्रों का जिस समय दर्शन हो जावे उस समय को ही नक्त मानता हूँ। पूप (पूआ) एक प्रस्थ प्रमाण के उत्तम गोधूम (गेहूं) चून के होने चाहिये। यदि गोधूम का अभाव हो तो विकल्प में जौ के चून के ही गुड़ और घृत से पूप बना लेने चाहिये। इतिहास के वेत्ता ब्राह्मण को सुवर्ण की दक्षिणा के सहित पूओं का दान करना चाहिए। अथवा दिव्य भौम में देने चाहिये। अथवा सूर्य के आगे रख देवे। यह मन्त्र से देना चाहिये। मण्डक ग्राह्य ही होता है। भक्ति पूर्वक आदित्य को नमस्कार करके आदित्य के तेज से उत्पन्न तथा राज्ञी के हाथ द्वारा विशेष रूप से बनाये हुए हे विप्र ! मेरे कल्याण करने के लिए इन उत्तम पूपों को ग्रहण करो। कामनाओं के प्रदान करने वाले, सुख देने वाले, धर्म से समन्वित, धन के दाता और पुत्र प्रदान करने वाले भास्कर भगवान् के प्रिय मंडक देता हूँ जो सदा तुम्हारे लिए होवे ॥१५-१९॥ हे गणश्रेष्ठ ! ये दोनों ही दान और आदान रवि के

परम प्रिय महा मन्त्र हैं जो कि अपूप के होते हैं। ये कल्याण के लिए हैं इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥२०॥

एष नन्दविधिः प्रोक्तो नराणां श्रेयसे विभो।
अनेन विधिना यस्तु नरः पूजयते रविम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥२१

न दारिद्र्यं न रोगश्च कुले तस्य महात्मनः।
योऽनेन पूजयेद्भानुं न क्षयः संततस्तथा ॥२२
सूर्यलोकाच्च्युतश्चासौ राजा भवति भूतले।
बहुरत्नसमायुक्तस्तेजसाद्विजसंनिभः ॥२३
पठतां श्रृण्वतां चेदं विधानं त्रिपुरांतक।
कं ददात्यचलं दिव्यमन्बुजामचलां तथा ॥२४

हे विभो! मानवों के श्रेय सम्पादन करने के लिए यह नन्द की विधि बतादी है। इस विधान से जो मनुष्य रवि का पूजन करता है वह समस्त प्रकार के पापों से विशेष रूप से छुटकारा पाकर सूर्यलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उस महान् आत्मा वाले पुरुष को न कभी दरिद्रता होती है और न उसके कुल में कभी कोई रोग ही होता है। जो इस रीति से भानु का पूजन करता है उसके कभी सन्तति का क्षय नहीं होता। जब यह सूर्यलोक से च्युत होकर भूमण्डल में आता है तो यहां राजा होता है और बहुत से रत्नों से समायुक्त होकर तेज से विप्र के तुल्य होता है। इस विधान को पढने, सुनने वालों को त्रिपुरान्तक अचल दिव्य और अचल लक्ष्मी देते हैं ॥२१-२४॥

॥ सौरधर्ममाहात्म्यवर्णनम् ॥

पुनर्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र सौरं धर्ममनुत्तमम्।
समासात्कथितं ब्रह्मन्विस्तरेण प्रकीर्तय ॥१
साधुसाधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि भारत।
त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्सौरः पार्थिवसत्तम ॥२

कीर्तयाम्यद्य तं पुण्यं संवादं पापनाशनम् ।
गरुडारुणयो राजन्पुरावृत्तं नराधिप ॥३
सुखासीनं पुरा राजन्नरुणं सूर्यसारथिम् ।
उपगम्य महाबाहो गरुडो वाक्यमब्रवीत् ॥४
धर्माणामुत्तमं धर्मं सर्वपापप्रणाशनम् ।
सोरधर्मं खगश्रेष्ठ ब्रूहि मे कृत्स्नशोनघ ॥५
साधु वत्स महात्मासि धन्यस्त्वं पापवर्जितः ।
श्रोतुकामोऽसि यत्पुत्र सौरधर्ममनुत्तमम् ॥६
श्रृणु त्वं कीर्तयाम्येष सुखोपायं महाफलम् ।
परमं सर्वधर्माणां सौरधर्ममनुत्तमम् ॥७

इस अध्याय में सौरधर्म के प्रस्ताव के वर्णन में गरुड़ और अरुण के सम्वाद का आरम्भ तथा सौरधर्म के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। राजा शतानीक ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप परपोत्तम जो सौरधर्म हैं उसे कृपया पुनः मुझे बतलाइये। अब तक आपने इस धर्म को बहुत ही संक्षेप में कहा था। अब मेरी प्रार्थना है कि इतना पूर्वक निरूपित कीजिए ॥१॥ सुमन्तु ऋषि ने कहा—हे महाबाहो ! बहुत अच्छा तुमने मुझसे पूछा है। हे भारत इस लोक में तुम्हारे समान अन्य कोई भी राजा सौरधर्म में अनुराग रखने वाला नहीं है ॥२॥ आज मैं उस परम पुण्य और पापों के नाश करने वाले सम्वाद को तुमसे कहता हूँ। हे नराधिप ! पहिले यह गरुड़ और अरुण का सम्वाद हुआ था ॥३॥ हे महाबाहो ! पहिले किसी समय में सूर्य के सारथि अरुण के पास, जब कि वह सुख पूर्वक बैठे हुए थे, गरुड़ पहुँचे और उनसे यह वचन कहने लगे ॥४॥ हे खगश्रेष्ठ ! निष्पाप ! धर्मों में सबसे उत्तम धर्म और समस्त पाप राशियों के नाश कर देने वाले सौरधर्म को आप मुझे पूर्ण रूप से बताने की कृपा करें ॥५॥ अरुण ने कहा—हे वत्स ! बहुत अच्छा, तुम महान् आत्मा वाले हो और परम धन्य हो तथा पापों से भी रहित हो। हे पुत्र ! तुम इस परम श्रेष्ठ सौर धर्म के सुनने की इच्छा वाले हो रहे हो। यह इच्छा ही तुम्हारी धन्यता और निष्पापता

प्रकट कर रही है ॥६॥ अब तुम श्रवण करो, मैं सुख के उपाय स्वरूप और महान् फल वाले तथा समस्त धर्मों में पर इस अत्युत्तम सौरधर्म को बतलाता हूँ ॥७॥

अज्ञानार्णवमग्नानाँ सर्वेषाँ प्राणिनामयम् ।
सौरधर्मो ह्ययं श्रीमान्परतीरप्रदो यत: ॥८
ये स्मरंति रविं भक्त्या कीर्तयन्ति च ये खग ।
पूजयन्ति च ये नित्यं ते गता: परमं पदम् ॥९
आत्मद्रोह: कृतस्तेत जाते नेह खगाधिप ।
नार्चितो येन देवेश: सहस्रकिरणो रवि: ॥१०
सुचिरं संभ्रमत्यस्मिन्दु:खदे च भवार्णवे ।
जराभूतमहाग्राहे तृष्णावेलाकुलापरे ॥११
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य येऽर्चयन्ति दिवाकरम् ।
तेषां हि सकलं जन्मकृतार्थन्ते नरोत्तमा: ॥१२
सूर्यभक्तिपरा ये च ये च तद्गतमानसा: ।
ये स्मरंति सदा सूर्यं न ते दु:खस्य भागिन: ॥१३
विविधानि मनोज्ञानि विविधाभरणा: स्त्रिय: ।
धनंवा दृष्टपर्यतं सूर्यपूजाविधे: फलम् ॥१४

अज्ञान के सागर में निमग्न समस्त प्राणियों को यह श्री मान् सौ धर्म दूसरे तट पर लगा देने वाला होता है अर्थात् अज्ञानियों का य उद्धार कर देने वाला है ॥८॥ हे खग ! जो लोग भक्ति भाव से रविका स्मरण करते हैं और उसका कीर्तन किया करते हैं तथा नित्य ही उसका भजन किया करते हैं वे परम पद को चले जाते हैं ॥९॥ हे खगाधिप ! जिसने यहाँ लोक में जन्म ग्रहण करके इस देवेश का अर्चन नहीं किया है जो कि सहस्त्र किरणों वाला भगवान् रवि है, उसने आत्मा से ही द्रोह किया है ॥१०॥ भगवान रवि की अर्चना न करने वाला पुरुष बहुत अधिक समय तक इस दु:ख देने वाले संसार रूपी सागर में जिसमें जरा (बुढ़ापा) भूत महान् ग्रह रहते हैं और जो तृष्णा की वेला से आकुल हैं। भ्रमण किया करता है अर्थात् संसार में ही पड़ा हुआ चक्कर काटा

करता है और महान् दुःख भोगता है ॥११॥ यह मनुष्य जीवन परम दुर्लभ होता है क्योंकि अत्यधिक पुण्य पुंज से ही यह मिला करता है। ऐसे मनुष्य जीवन को प्राप्त करके जो भगवान् दिवाकर का पूजन सदा किया करते हैं उनका ही जन्म लेना सफल है और नर श्रेष्ठ कृतार्थ होते हैं ॥१२॥ जो लोग भगवान् सूर्य देव की भक्ति में परायण होते हैं और सूर्यदेव के चरणों में अपना मन लगा देने वाले हैं तथा जो सदा सूर्य का स्मरण किया करते हैं वे कभी भी किसी प्रकार के दुःख के भागी नहीं होते हैं ॥१३॥ अनेक प्रकार के सुन्दर पदार्थ और नाना-भांति के आभूषणों से भूषित स्त्रियाँ तथा अटूट धन ये सभी भगवान् सूर्यदेव की पूजा के फल हुआ करते हैं ॥१४॥

ये वाँछन्ति महाभोगान्राज्यं वा त्रिदशालये ।
सौभाग्यं कान्तिमतुलां भोगं त्यागं यशः श्रियम् ॥१५
सौन्दर्यं जगतः ख्यातिः कीर्तिर्धर्मादयः स्मृताः ।
फलान्येतानि वै पुत्र सूर्यभक्तिविधेर्बुध ॥१६
तस्मात्संपूजयेत्सूर्यं सर्वदेवगणार्चितम् ।
दुर्लभा भास्करे भक्तिर्दुर्लभं च तदर्चनम् ॥१७
दानं च दुर्लभं तस्मै तद्धोमश्च सुदुर्लभः ।
दुर्लभं तस्य विज्ञानं तदभ्यासोऽपि दुर्लभः ॥१८
सदुर्लभतरं ज्ञेयं तदाराधनमुत्तमम् ।
लोभस्तेषां मनुष्याणां ये रविं शरणं गताः ॥१९
येषामिहेश्वरे भानौ नित्यं सूर्ये गतं मनः ।
नमस्कारादिसंयुक्तं रविरित्यक्षरुद्वयम् ॥२०

जो लोग महान् भोगों के सुखों को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं—जो राज्यासन पाना चाहते हैं अथवा स्वर्ग में सौभाग्य प्राप्त करने की इच्छा करते हैं एवं अतुल कान्ति, भोग, त्याग, यश, श्री, सौन्दर्य जगत् की ख्याति, कीर्त्ति और धर्म आदि चाहते हैं उन्हें सूर्य की भक्ति करनी चाहिये क्योंकि ये सब सूर्य-भक्ति के विधि के ही फल हुआ करते हैं। अतः हे पुत्र ! सूर्य की भक्ति अवश्य ही करो ॥१५-१६॥ इस

कारण से समस्त देवगणों के द्वारा समर्चित सूर्यदेव का पूजन करना चाहिये। भगवान् भास्कर में भक्ति का करना इस लोक में से परम दुर्लभ है और सूर्य का यजनार्चन करता भी महादुर्लभ होता है ॥१७॥ उसके लिए दान देना अति दुर्लभ होता है तथा उसके लिए होम करना महान् दुर्लभ है। उसका विज्ञान प्राप्त करना भी कठिन है और फिर उसका अभ्यास करना भी दुर्लभ होता है ॥१८॥ उसके उत्तम आराधन का विधान जान लेना कठिन होता है। इसका लाभ उन्हीं मनुष्यों को होता है जो भगवान् रविदेव की शरण में चले जाया करते हैं ॥१९॥ इस लोक में जिनका मन नित्य ही ईश्वर भानुदेव सूर्य में चला गया है और 'रवि' ये दो अक्षर जिसको नमस्कार आदि से संयुक्त होते हैं वह सफल जीवन वाला पुरुष है ॥२०॥

जिह्वाग्रे वतते यस्य सफलं तस्य जीवितम् ।
य एवं पूजयेद्भानुं श्रद्धया परयान्वितः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स नरो नात्र संशयः ॥२१
डाकिन्यो विविधाकारा राक्षसाः सपिशाचकाः ।
न तस्य पीडां कुर्वंति तथान्याश्च विभीषणाः ॥२२
शत्रवो नाशमायान्ति सग्रामे जयमाप्नुयात् ।
न रोगैः पीडचते वीर आपदो न स्पृशंति तम् ॥२३
धनमायुर्यशो विद्या प्रभावोह्यतुलं तथा ।
शुभेनोपचयं यान्ति नित्यं पूर्णमनोरथाः ॥२४

जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर भगवान् रवि के नाम के दो अक्षर स्थान प्राप्त करता कर लेते हैं उसका जीवन सार्थक हो जाता है। जो इस प्रकार से परम श्रद्धा के भाव से युक्त होकर भगवान् भानुदेव की पूजा किया करता है वह समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है—इसमें तनिक संशय नहीं है ॥२१॥ विविध आकार वाली डाकिनियों, पिशाच और राक्षस ये सब उसको कुछ भी पीड़ा नहीं करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भीषण जीव भी उसे नहीं सताते हैं ॥२२॥ सूर्य की उपासना करने वाले मनुष्य के शत्रुगण नाश को प्राप्त हो जाते हैं और

वे संग्राम में विजय प्राप्त किया करते हैं । हे वीर ! उसे कोई भी रोग-पीड़ा नहीं देता है और आपत्तियाँ उसका कभी भी स्पर्श तक नहीं किया करती हैं ।।२३।। सूर्योपासक मनुष्य धन, आयु, यश, विद्या, अतुल, प्रभाव और शुभ से उपचय प्राप्त करते हैं । तथा सदा उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ।।२४।।

।। ब्रह्मकृतसूर्यस्तुतिवर्णनम् ।।

पूजयित्वा रविं भक्त्या ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः ।
विष्णुत्वं चापि देवेशो विष्णुराप तदर्चनात् ।।१
शंकरोऽपि जगन्नाथः पूजयित्वा दिवाकरम् ।
महादेवत्वमगमत्तत्प्रसादात्खगाधिप ।।२
सहस्राक्षोपि देवेश इन्द्रो भानुं तपोमहम् ।
इन्द्र त्वमगमद्देवं पूजयित्वा दिवाकरम् ।।३
मातरो देवगंधर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
पूजयंति सदा भानुमीशानं सुरनायकम् ।।४
सर्वमेतज्जगन्नित्य भानौ देवे प्रतिष्ठितम् ।
तस्मात्सं पूजयेद्भानुं य इच्छेत्स्वर्गमक्षयम् ।।५
यो न पूजयते सूर्यं भास्करं तमसूदनम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां न नरो भाजनं भवेत् ।।६
तस्मात्कार्यं हि तद्ध्यानं यावज्जीवं प्रतिज्ञया ।
अर्चयेत सदा भानुमापन्नोऽपि सदा खग ।।७

इस अध्याय में अन्य समस्त देवताओं की अपेक्षा सूर्य की श्रेष्ठता का वर्णन तथा ब्रह्म के द्वारा की हुई स्तुति का वर्णन किया जाता है। अरुण ने कहा—ब्रह्माजी ने जो ब्रह्मत्व की प्राप्ति की थी वह भक्ति के साथ रविदेव की पूजा करके ही की थी । देवों के ईश भगवान् विष्णुजी विष्णुत्व के पद को सूर्य के अर्चन से ही प्राप्त हुए हैं ।।१।। भगवान् शङ्कर भी समस्त जगत् नाथ दिवाकर की पूजा करके ही हुए हैं । हे खगाधिप ! सूर्य के प्रसाद से ही शंकर महादेवत्व को प्राप्त हुए हैं ।।२।।

एक सहस्र नेत्रों वाला भी देवों का स्वामी इन्द्र है उसने भी तपोमह दिवाकर भानुदेव की पूजा करके इन्द्रत्व को प्राप्त किया है ॥३॥ मातृ-वर्ग, देवगण, गन्धर्व, पिशाच, उरग और राक्षस सभी सुरों के नायक ईशान भानु की सदा पूजा किया करते हैं ॥४॥ यह समस्त जगत् देव-भानु में ही नित्य प्रतिष्ठित रहता है। इसलिए यदि स्वर्ग के अक्षय निवास की इच्छा रखते हो तो भानु की पूजा भली भांति से करनी चाहिये ॥५॥ जो तम के सूदन करने वाले भास्कर सूर्य की पूजा नहीं करता है वह मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने का पात्र नहीं होता है ॥६॥ इससे प्रतिज्ञा करके जब तक जीवित रहे उसका ध्यान करना चाहिये। हे खग ! आपत्ति ग्रस्त होकर भी सदा भानु का अर्चन करते रहना चाहिये ॥७॥

यस्तु सन्तिष्ठते नित्यं विना सूर्यस्य पूजनात् ।
वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाथ च्छेदनम् ॥८
सूर्यं संपूज्य भुञ्जीत त्रिदशेशं दिवाकरम् ।
इत्थं निर्वहते यस्य यावज्जीवं तदर्चनम् ।
मनुष्यचर्मणा नद्धः स रविर्नात्र संशयः ॥९
नहि अर्कार्चनादन्यत्पुण्यमभ्यधिकं भवेत् ।
इति विज्ञाय यत्नेन पूजस्व दिवाकरम् ॥१०
सूर्यभक्तागमाश्चैव सूर्यार्चनपरायणाः
संयता धर्मसंपन्ना धर्मादीन्साधयति ते ॥११
सर्वद्वन्द्वसहा वीरा नीतिविध्युक्तचेतसः ।
परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः ॥१२
अमानिनो बुद्धिमन्तोऽव्यक्तस्पर्धा गतस्पृहाः ।
शांता स्वांतगता भद्रा नित्यं स्वागतवादिनः ॥१३
स्वल्पवाचः सुमनसः शूराः शास्त्रविशारदाः ।
शौचाचारसुसंपन्ना तयादाक्षिण्यगोचराः ॥१४

जो मनुष्य बिना सूर्य की पूजा के नित्य रहता है इससे तो उसको

अपने प्राणों का त्याग कर देना ही अच्छा है अथवा अपने शिर का छेदन कर लेना चाहिए ॥८॥ देवों के स्वामी दिवाकर सूर्य की पूजा करके सदा भोजन करना चाहिये । जो इस प्रकार से अपने क्रम का निर्वाह करता है और जब तक जीवित रहता है तब तक बराबर सूर्य का यजनार्चन किया करता है वह मनुष्य केचर्म से नद्ध रवि ही है अर्थात् मनुष्य के थोला में रहने वाला साक्षात् सूर्य ही होता है—इसमें तनिक भी संशय की बात नहीं हैं ॥६॥ अर्क अर्थात् सूर्य देव की अर्चना से अधिक कोई भी पुण्य नहीं होता है, ऐसा जान, समझकर यत्न पूर्वक दिवाकर की पूजा करो ॥१०॥ सूर्य की भक्ति करने वालों में आगम जो कि सूर्य की अर्चना से परायण होते हैं, संयत एवं धर्म से सम्पन्न है वे धर्मादि का साधन करते हैं ॥११॥ जो सूर्यभक्त हैं वे समस्त द्वन्द्वों के सहन करने वाले, वीर, नीति की विधि से युक्त चित्त वाले, परोपकार करने निरत रहने वाले, गुरु की सेवा में अनुराग वाले होते हैं ॥१२॥ वे अमानी, बुद्धिमान, अव्यक्त स्पर्धा वाले, गतस्पृह, शान्त, स्वान्तगत, भद्र और नित्य स्वागत वादी हुआ करते हैं ॥१३॥ सूर्यभक्त थोड़ा बोलने वाले, अच्छे मन वाले, शूर, शास्त्रों के पंडित, शौच और आचार से सुसम्पन्न और दाक्षिण्य से गोचर अर्थात् प्रकट होने वाले होते हैं ॥१४॥

दंभमत्सरनिर्मुक्तास्तृष्णालोभविवर्जिताः ।
संविभागपराः प्रोक्ता न शठाश्चाप्यकुत्सिताः ॥१५
विषयेष्वपि निर्लेपाः पद्मपत्रमिवांभसा ।
न दीना मानिनश्चैव न च रोगवशानुगाः ॥१६
भंवति भावितात्मानः सुस्निग्धाः साधुसेविताः ।
न पाणिपादवाक्चक्षुः श्रोत्रशिश्नोदरे रताः ॥१७
चपलानि न कुर्वंति सर्वव्यासंगवर्जितः ।
सूर्यासनरतः शांताः षडक्षरमनोगताः ॥१८
इत्याचारसमायुक्ता भवंति भुवि मानवाः ।
एकांतभक्तिमास्थाय धर्मकामार्थसिद्धये ॥१६
पूजनीयो रविर्नित्यं गुणेष्वेतेषु वर्तते ।

सर्वेषामेव पात्राणामतिपात्रं दिवाकरः ।
पतन्तं त्रायते यस्मादतीव नरकार्णवात् ॥२०
तस्य प्रात्रातिपात्रस्य महात्म्यं दानमण्वपि ।
अनेन फलमादिष्टमिहलोके परत्र च ॥२१

सूर्य के भक्त दम्भ और तत्सरता से रहित होते हैं, तथा तृष्णा और लोभ से वर्जित हुआ करते हैं। वे सविभाग परायण कहे गए हैं। वे शठ और कुत्सिग नहीं होते हैं ॥१५॥ सूर्य भक्त मनुष्य विषयों में कभी लिप्त नहीं रहते हैं जिस तरह पदिमनी के पत्र जल से निर्लिप्त रहते हैं। वे कभी दीन और मानी नहीं होते हैं तथा कभी रोगवशानुगमी नहीं होते हैं ॥१६॥ सूर्यभक्त भावित आत्मा वाले, सुस्निग्ध और साधु सेवित हुआ करते हैं। वे पाणि, पाद, वाणी, चक्षु, श्रोत्र, शिश्न और उदर में राग रखने वाले नहीं होते हैं। सूर्यभक्त कभी चापल्य नहीं दिखाया करते हैं। वे सदा सबके व्यासंग से वर्जित होते हैं। सूर्यभक्त सूर्य की उपासना में आसन में रति करने वाले, शान्त और षडक्षर मन्त्र को मन में धारण करने वाले होते हैं ॥१७-१८॥ इस प्रकार के आचार से युक्त जो मानव इस भूमण्डल में होते हैं वे एकान्त भक्ति में स्थित होकर धर्म काम और अर्थ की सिद्धि के लिए योग्य होते हैं ॥१९॥ इन गुणों से होने पर रवि देव नित्य ही पूजा करने के योग्य होते हैं। समस्त पात्रों में दिवाकर अति पात्र होते हैं। जिस नरक रूपी समुद्र से अत्यन्त पतन होने वाले की रक्षा करते हैं ॥२०॥ उस पात्राति पात्र का अणु मात्र भी दान का बड़ा अधिक माहात्म्य होता है। इससे इस लोक और परलोक में फल बताया गया है ॥२१॥

द्रव्येणापि हि यः कुर्यान्नरः कर्म तदालये ।
सोऽपि देहक्षये ज्ञानं प्राप्य शांतिमवाप्नुयात् ॥२२
सर्वद्विजकदंबेषु कश्चिज्ज्ञानमवाप्नुयात् ।
कश्चिदेतत्तु मे दिव्यं लब्ध्वा ज्ञानं विमुच्चति ॥२३
तावद्भ्रमंति संसारे दुःखशोकपरिप्लुताः ।
न भवंति रवेर्भक्ता यावत्सर्वेऽपि देहिनः ॥२४

सूर्यस्यालेपनं पुण्यं द्विगुणं चन्दनस्य तु ।
चन्दनादगुरौ ज्ञेयं पुण्यमष्टगुणोत्तरम् ॥२५
कृष्णागुरौ विशेषेण द्विगुणं फलमिष्यते ।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं कुंकुमस्य विधीयते ॥२६
सूर्ययज्ञोपकरणं कृत्वाल्पं यदि वा बहु ।
भावाद्वित्तानुसारेण सूर्यलोके महीयते ॥२७
यदपीष्टमनिष्टं च न्यायेनोभयमागतम् ।
तत्सूर्याय निवेद्यं सद्भक्त्यानन्तफलार्थिना ॥२८

जो कोई मानव द्रव्य के द्वारा भी उसके आलय में कर्म करता है वह भी देह के क्षय हो जाने पर ज्ञान की प्राप्ति कर परम शान्ति को प्राप्त किया करता है ॥२२॥ समस्त द्विजों के समूह में कोई ही एक ज्ञान की प्राप्ति किया करता है और उनमें भी कोई एक ही मेरे दिव्य ज्ञान का लाभ कर विमुक्त होता है ॥२३॥ उस समय तक इस संसार में दुःख और शोक से परिप्लुत होते हुए ये देहधारी भ्रमण किया करते हैं जब तक समस्त देही भगवान् रवि के भक्त नहीं हुआ करते हैं ॥२४॥ चन्दन का आपेलन भगवान् सूर्यदेव को करना दुगना पुण्य होता है और चन्दन लेपन से भी आठ गुना पुण्य अगुरु में समझ लेना चाहिये ॥२५॥ कृष्ण अगुरु में विशेष रूप से द्विगुण फल कहा है । इससे कृष्णागुरु से सौ गुना पुण्य कुंकुम का लेपन का है ॥२६॥ भगवान् सूर्यदेव के यज्ञ के इन उपकरणों को, चाहे थोड़े हों या बहुत हों, करके किन्तु भक्ति के भाव से करने से और अपनी वित्त की शक्ति के अनुसार करने से यह मानव अन्त में सूर्यलोक में जाकर प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥२७॥ जो भी इष्ट और अनिष्ट हो तथा न्याय से दोनों आगत हों वह सद्भक्ति से फल के चाहने वाला सूर्य के लिए निवेदन कर दे ॥२८॥

कर्मशाठ्येन यः कुर्याद्दुःखेनापि तदर्चनम् ।
सोऽपि द्विजो दिवं याति कर्मणा पापवर्जितः ॥२९
सर्वमन्यत्परित्यज्य सर्यो चैकमनाः सदा ।
सूर्यपूजाविधिं कुर्याद्य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥३०

त्वरितं जीवितं याति त्वरितं यौवनं तथा।
त्वरितं व्याधिरप्येति तस्मान्नित्यं रविं व्रजेत् ॥३१
यावन्नाभ्येति मरणं यावन्नाक्रमते जरा।
यावन्नेंद्रियवैकल्यं तावदर्चेद्दिवाकरम् ॥३२
न सूर्यार्चनतुल्योपि न धर्मोन्यो जगत्त्रये।
इत्थं विज्ञाय देवेशं पूजयस्व दिवाकरम् ॥३३
ये भक्त्या देवदेवेशं सूर्यं शांतमजं प्रभुम्।
इह लोके सुखं प्राप्य ते गताः परमं पदम् ॥३४
गोपतिं पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनांतरात्मना।
कृतांजलिपुटो भूत्वा पुरा ब्रह्माब्रवीदिदम् ॥३५

जो कोई कर्म की शठता से दु:ख रहित होकर भी उसकी अर्चना करता है वह द्विज भी कर्म के द्वारा पाप से रहित होकर स्वर्गलोक को चला जाता है। अन्य सबका परित्याग करके सदा एक मन वाला सूर्य देव में रहे और यदि अपने आपका श्रेय चाहता है तो सूर्य की पूजा की विधि को करे। यह जीवन तथा यह यौवन शीघ्र ही चला जाता है। शीघ्र ही व्याधियां इस शरीर को घेर लिया करती हैं इसलिए नित्य ही भगवान् रवि की शरण में चले जाना चाहिये। जब तक मौत नहीं प्राप्त होती है और जिस समय तक वृद्धावस्था आकर शरीर को नहीं घेर लेती है तथा जिस वक्त तक इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं होती है तब तक ही दिवाकर की अर्चना का कर्म कर लेना चाहिए क्योंकि फिर इसे यह मान व असमर्थ होकर नहीं कर सकता है और यह मानव-जीवन यों ही व्यर्थ निकल जाया करता है। भगवान् सूर्य देव की पूजा के समान इस जगत् त्रय में अन्य कोई भी धर्म का कार्य नहीं होता है। इस प्रकार से समझकर देवेश दिवाकर का पूजन करो। जो मानव भक्ति पूर्वक शान्त, अज, प्रभुदेव देवेश सूर्य की पूजा किया करते हैं वे इस लोक में सुख प्राप्त करके परम पद को प्राप्त हो जाते हैं। अपनी परम प्रहृष्ट अन्तरात्मा से गोपति की पूजा करके और अपनी अंजलि बांधकर पहिले ब्रह्माजी ने यह कहा था ॥२९-३५॥

भगवन्तं भगकरं शांतचित्तमनुत्तमम् ।
देवमार्गप्रणेतारं प्रणतोस्मि रविं सदा ॥३६

शाश्वतं शोभनं शुद्धं चित्रभानुं दिवस्पतिम् ।
देवदेवेशमीशेशं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥३७

सर्वदुःखहरं देवं सर्वदुःखहरं रविम् ।
वराननं वरांगं च वरस्थानं वरप्रदम् ॥३८

वरेण्य वरदं नित्यं प्रणयोऽस्मि विभावसुम् ।
अर्कमर्यमणं चेन्द्रं विष्णुमीशं दिवाकरम् ॥३९

देवेश्वरं देवरतं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् ।
यो इदं शृणुयान्नित्यं ब्रह्मणोक्तं स्तवं परम् ।
स हि कीर्ति परां प्राप्य पुनः सूर्यपुरं व्रजेत् ॥४०

ब्रह्माजी ने कहा—भग अर्थात् षडैश्वर्यं के करने वाले—शान्त चित्त से युक्त, सर्व श्रेष्ठ, भगवान् देवों के मार्ग के प्रणेता रविदेव को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ जो देवदेवेश शाश्वत, शोभन शुद्ध, दिवस्पति, चित्रभानु,दिवाकर और ईशों के भी ईश हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३७॥ समस्त प्रकार के दुःखों को हरण करने वाले देव तथा सर्व दुःख हर रवि वर आनन वाले, श्रेष्ठ अङ्गों वाले, वर के स्थान और वर प्रदान करने वाले, वरेण्य, नित्य ही वरद ऐसे भगवान् विभा वसु को मैं प्रणाम करता हूँ । अर्क,अर्यम्णा, इन्द्र,विष्णु,ईश, दिवाकर, देवेश्वर देवरत और विभा वसु को मैं प्रणाम करता हूं । इस प्रकार की ब्रह्मा के द्वारा की हुई इस स्तुति का जो नित्य श्रवण किया करता है वह परम कीर्ति का लाभ लेकर फिर सूर्यपुर में चला जाया करता है ॥३८-४०॥

॥ विवाह विधिवर्णनम् ॥

असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनाँ दारकर्मणि मैथुने ॥१

सहजो न भवेद्यस्या न च विज्ञायते पिता ।
नोपयच्छेत ताँ प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया ।।२
ब्राह्मणानां प्रशस्ता स्यात्सवर्णा दारकर्मणि ।
कामशस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽवराः ।।१
क्षत्रस्यापि सवर्णा स्यात्प्रथमा द्विजसत्तमाः ।
द्वे चावरे तथा प्रोक्ते कामतस्तु न धर्मतः ।।४
वैश्यस्यैका वरा प्रोक्ता सवर्णा चैव धर्मतः ।
तथावरा कामतस्तु द्वितीया न तु धर्मतः ।।५
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य धर्मतो मनुरब्रवीत ।
चतुर्णामपि वर्णानां परिणेता द्विजोत्तमः ।।६
न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ।
कस्मिंश्चिदपि वृत्तांते शूद्रा भार्योपदिश्यते ।।७
हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहंतो द्विजातयः ।
कुलान्येव नयंत्याशु ससंतानानि शूद्रताम् ।।८

इस अध्याय में विवाह की विधि का वर्णन किया गया है। ब्रह्माजी ने कहा—जो नारी अपनी माता की सपिण्ड न हो और पिता के गोत्र वाली न हो वही स्त्री द्विजातियों के यहाँ स्त्री के कर्म मैथुन में प्रशस्त मानी गई है ।।१।। जिस नारी का सहज अर्थात् सगा भाई न हो और जिसके पिता का भी कोई ज्ञान न हो इसका पिता कौन है उसको प्राज्ञ पुरुष को पुत्रिका धर्म का शंका से उपयम नहीं करना चाहिये ।२। ब्राह्मणों को सवर्णा नारी दारकर्म में प्रशस्त मानी गई है । जो काम की वासना शान्त करने के लिए रक्खी जावें वे इन निम्न कथितों में क्रम से अवर होती हैं ।।३।। हे द्विजश्रेष्ठो ! क्षत्रिय के लिए जो सवर्णा अर्थात् उसके ही अपने वर्ण वाली स्त्री होती है वह उत्तम होती है और दो वैश्य एवं शूद्र की कन्यायें उसी उक्त क्रम से अधम होती हैं ये काम वासना की ही पूर्ति करने वाली होती हैं धर्म के काम के लिए नहीं हैं ।।४।। इसी प्रकार से वैश्य को भी एक सवर्णा स्त्री ही धर्म के कर्म में श्रेष्ठ कही गई है और दूसरी जो असवर्णा होती है वह काम के लिए ही होती है, धर्म के लिए नहीं है

॥५॥ शूद्र की एक ही शूद्राभार्या धर्म से मनुमहर्षि ने बतलाई है द्विजोत्तम चारों वर्णों की कन्याओं का परिणेता होता है ॥६॥ ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए चाहे वे कितनी भी आपत्तियों में स्थित क्यों न हों किसी भी वृत्तान्त में शूद्रभार्या का उपदेश नहीं दिया जाता है ॥६॥ जो द्विजाति मोह से हीन जाति वाली स्त्री के साथ विवाह कर लेते हैं वे सन्तान के सहित अपने कुलों को शूद्र बना दिया करते हैं ॥८॥

शूद्रमारोप्य वेद्यां तु पतितोत्रिर्बभूव ह।
उतथ्यः पुत्रजननात्पतितत्वमवाप्तवान् ॥९
शूद्रस्य पुत्रमासाद्य शौनकः शूद्रतां गतः।
भृग्वादथोप्येवमेव पतितत्वमवाप्नुयुः ॥१०
शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥१२
दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु।
नादन्ति पितरो देवाः स च स्वर्गं न गच्छति ॥१२
वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥१३
चतुर्णामपि विप्रेन्द्राः प्रेत्येह च हिताहितम्।
समासतो ब्रवीम्येष विवाहाष्टकमुत्तमम् ॥१४
ब्राह्मो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१५

पहले समय में अत्रि ने वेदी पर शूद्र स्त्री को आरोपित किया था और पतित हो गया था। उतथ्य ऋषि ने शूद्रा में पुत्र उत्पन्न किया था इसी कारण वह पतित हो गया था ॥९॥ शूद्र के पुत्र को प्राप्त कर शौनक मुनि भी शूद्रत्व को प्राप्त हो गये थे। इसी प्रकार से भृगु आदि अन्य मुनिगण भी पतितत्व को प्राप्त हो चुके हैं ॥१०॥ ब्राह्मण शूद्रा नारी को अपनी शय्या में सुलाकर अधोगत को प्राप्त हो जाता है और उसी शूद्र वर्ण की स्त्री में यदि कोई पुत्र उत्पन्न कर लेता है तब तो वह अपने ब्राह्मणत्व को भी खो बैठा करता है ॥११॥ दैव कर्म, पितृकर्म

और आतिथेय कर्म जो कि ब्राह्मण के लिए सब में प्रधान बताये गये हैं। उनमें फिर ऐसे ब्राह्मण के पितर-देव आदि अन्न ग्रहण नहीं किया करते हैं जो शूद्रा स्त्री के साथ भोग या सन्तानोत्पादन किया करता है और वह स्वर्ग में भी जाने का अधिकारी नहीं रहता है ।।१२।। वृषली अर्थात् शूद्रा के फेन को पीने वाले और निश्वासों से उपहृत होने वाले तथा शूद्रा में उत्पन्न होने वाले का कोई भी प्रायश्चित नहीं होता है ।।१३।। हे विप्रेन्द्रगण ! अब मैं चारों वर्णों के इस संसार में और यहाँ से मरने के पश्चात् जो हित और अहित होता है संक्षेप में बतलाता हूँ और आठ प्रकार के विवाह तथा उनमें कौन सा विवाह उत्तम होता है यह भी बतला रहा हूँ ।।१४।। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवाँ अधम पैशाच विवाह होता है। ये उपर्युक्त आठ प्रकार के विवाह हुआ करते हैं ।।१५।।

विद्वद्भिःसेवितं धर्मं शास्त्रोक्तं च सुरोत्तम ।
वदास्मासु सुरश्रेष्ठ कौतुकं परमं हि नः ।।१६
विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ।।१७
कामात्मता न प्रशस्ता न वेहास्त्याप्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ।।१८
संकल्पाज्जायते कामो यज्ञाद्याति च सर्वशः ।
व्रता नियमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ।।१९
कामादृते क्रियाकारी दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते कश्चित्तत्तत्कामस्यचेष्टितम् ।।२०
निगमो धर्ममूलं स्यात्स्मृतिशीले तथैव च ।
तथाचारश्च साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ।।२१

ऋषियों ने कहा—हे सुरोत्तम ! जो धर्मशास्त्र में कहा गया है और जिस धर्मका विद्वान पुरुषों ने सेवन किया है, हे सुरश्रेष्ठ ! वह धर्म हमको आप बताइये, हमारे हृदय में बहुत अधिक इसके जानने का कुतूहल होरहा है।१६।ब्रह्माजी ने कहा—जिस धर्म का विद्वानों ने सेवन किया है और सत्पु-

रुष और द्वेष तथा राग से रहित पुरुषों ने सेवन किया है एवं जो हृदय के द्वारा भी अभ्यनुज्ञात धर्म है उसे तुम भली-भाँति समझ लो ।।१७।। इस संसार में कामात्मता का होना प्रशंसनीय नहीं होता है और वेदों की अकामता भी प्रशस्त (अच्छी) नहीं होती है क्योंकि वेदों का ज्ञान प्राप्त करना तो अत्यन्त काम्य होता है और जो वैदिक कर्मयोग है वह भी जानने के योग्य होता है ।।१८।। मन के संकल्प से काम की उत्पत्ति हुआ करती है और भी कामों की पूर्ति यज्ञ से होती है । व्रत, नियम और धर्म सभी संकल्प से उत्पन्न होने वाले कहे गये हैं ।।१९।। इस संसार में काम के बिना कोई भी कर्म करने वाला किसी भी समय में दिखलाई नहीं देता है कोई भी पुरुष जो-जो भी कुछ यहाँ किया करता है वह सभी काम का ही चेष्टित होता है अर्थात् हृदय में कुछ न कुछ इच्छा को लेकर ही सब लोग कर्मों में प्रवृत्त हुआ करते हैं ।।२०।। जो पुरुष स्मृति कथित कर्म करने के स्वभाव वाला है उसमें निगम ही एक धर्म का मूल होता है । साधु पुरुषों का आचार और स्वयं अपनी आत्मा की संतुष्टि का होना भी धर्म का मूल कहा गया है ।।२१।।

सर्वं तु समवेक्षेत निश्चयं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्राधान्यतो विद्वान्स्वधर्मे निवसेत वै ।।२२
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्सदा नरः ।
प्राप्य चेह परां कीर्तिं याति शक्रसलोकताम् ।।२३

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेषु मीमान्स्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ।।२४
योऽवमन्येत ते चोभे हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ।।२५

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं विप्राः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।२६

धर्मज्ञानं भवेद्विप्रा अर्थकामेष्वसज्जताम् ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणान्नैगमं परम् ।।२७

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ।
अधिकारो भवेत्तस्य वेदेषु च जपेषु च ।।२८

अपनी ज्ञान की चक्षु से इन सभी का भली-भाँति अवेक्षण करना चाहिये और निश्चय पूर्वक करना चाहिए । विद्वान पुरुष का कर्तव्य है कि श्रुति की प्रधानता से ही अपने धर्म में निवास करे अर्थात् स्थित रहे ।।२२।। श्रुति और स्मृतियों में हुए धर्म का अनुष्ठान करता हुआ मनुष्य यहाँ इस लोक में सदा परम कीर्ति को प्राप्त किया करता है और अन्त में इन्द्र में जाता है ।।२३।। श्रुति से वेद जानना चाहिए और स्मृति धर्मशास्त्र होता है । समस्त कर्मों में इहीं दोनों का विचार करना चाहिए । इन दोनों से ही धर्म प्रकाशित हुआ था ।।२४।। जो ब्राह्मण हेतुशास्त्र का आश्रय लेकर इन दोनों का अपमान किया करता है वह ईश्वर की सत्ता का न मानने वाला नास्तिक और वेद की बुराई करने वाला है । साधु पुरुषों के द्वारा इसका बहिष्कार कर देना चाहिये ।२५। वेद, स्मृति सदाचार और जो अपनी आत्मा को प्रिय लगना हो यह चार प्रकार का साक्षात् धर्म का लक्षण होता है ।।२६।। अर्थ में असज्जत धर्म की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) करने वालों को धर्म का ज्ञान होता है । प्रमाण से नैगम सब पर होता है ।।२७।। निषेक से आदि लेकर श्मशान के अन्त तक मन्त्रों के द्वारा जिसको विधि कही गई है, वेदों में और जपों से उसका ही अधिकार होता है ।।२८।।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तदेव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ।।२६
यस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सांतरालानां स सदाचार उच्यते ।।३०
कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनयः ।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरम् ।।३१
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षन्ति पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।३२

हिमवद्विंध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ।।३३

आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ।।३४

अटते यत्र कृष्णा गौर्मृगो नित्यं स्वभावतः ।
स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ।।३५

एतान्नित्यं शुभान्देशान्सन्श्रयेत द्विजोत्तमः ।
यस्मिन्कस्मिश्च निवसेत्पादजो वृत्तिकर्शितः ।।३६
प्रकीर्तितेयं धर्मस्य बुधैर्योनिर्द्विजोत्तमाः ।
संभवश्चास्य सर्वस्य समासान्न तु विस्तरात् ।।३७

सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों देव नदियों का जो अन्तर होता है वह ही निर्मित्त देश ब्रह्मावर्त्त के नाम से प्रसिद्ध होता है ।।२९।। जिस देश में जो परम्परा के क्रम से चला आया आचार होता है अर्थात् अन्तराल सहित वर्णों का आचार है वही सदाचार कहा जाता है ।।३०।। कुरुक्षेत्र मत्स्य, पंचाल और शूरसेन ये ब्रह्मर्षियों के केश हैं जो कि ब्रह्मावर्त्त के अनन्तर हैं ।।३१।। इन देशों में जो उत्पन्न हुआ है उस अग्रजन्मा अर्थात् ब्राह्मण के सकाश से पृथिवी में समस्त मनुष्य अपना-अपना चरित्र सीखा करते हैं ।।३२।। हिमाचल और विन्ध्यगिरि के मध्य में जो विनशन से भी प्राक् और प्रयाग से प्रत्यक् में है वह मध्य देश के नाम से कहा है ।।३३।। पूर्व सागर से लेकर पश्चिम सागर तक उन दोनों पर्वत का जो अन्तर भाग है उसे पण्डित लोग आर्यावर्त्त कहते हैं ।।३४।। जहाँ पर श्यामा गौ और मृग स्वभाव से ही अटन किया करते हैं वह याज्ञिक देश समझना चाहिये । इससे अन्य देश मलेच्छ देश हैं ।।३५।। श्रेष्ठ ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है कि इन शुभ देशों का अपना निवास स्थान बनायें । जिस किसी भी देश में तो वृत्ति से कर्शित शूद्र को निवास करना चाहिये ।।३६।। हे श्रेष्ठ द्विजगण ! महा पण्डितों ने यह धर्म की योनि बताई है। इस सबका सम्भव संक्षेप से कहा है विस्तार से नहीं बताया गया है ।३७।

॥ स्त्रीणांगृहधर्म विधिवर्णनम् ॥

या पतिं दैवतं पश्येन्मनोवाक्कायकर्मभिः ।
तच्छरीरार्धजातेव सर्वदा हितमाचरेत् ॥१
तत्प्रियां प्रियवत्पश्येत्तद्द्वेष्यां द्वेष्यवत्सदा ।
अधर्मानर्थयुक्तेभ्योऽयुक्ता चास्य निवर्तते ॥२
प्रियं किमस्य किं पथ्यं साम्यं चास्य कथं भवेत् ।
ज्ञात्वैवं सर्वभृत्येषु न प्रमाद्येत वै द्विजाः ॥३
देवतापितृकार्येषु भर्तुः स्नानन्शनादिषु ।
सत्कारेऽभ्यागतानां च यथौचित्यं न हापयेत् ॥४
वेश्मात्मा च शरीरं हि गृहिणीनां द्विधा कृतम् ।
संस्कर्तव्यं प्रयत्नेन प्रथमं पश्चिमादपि ॥५
कृत्वा वेश्म सुसंमृष्टं त्रिकालविहिताचानम् ।
वृत्तकर्मोपभोगानां संस्कर्तव्य यथोचितम् ॥६
प्रातर्मध्यापराह्णेषु बहिर्मध्यांतरेषु च ।
गृहसंमार्जनं कृत्वा निष्कारान्न निशिक्षिपेत् ॥७

इस अध्याय में स्त्रियों के गृह के धर्मों की विधि का वर्णन किया जाता है ब्रह्माजी ने कहा—स्त्री का कर्तव्य है कि वह अपने पति को मन, वाणी और शरीर से पूर्णतया देवता के समान समझ ा चाहिये । पत्नी को चाहिये कि वह अपने आपको पति के आधे शरीर से उत्पन्न होने की भाँति ही सर्वदा पति के हित का आचरण करे ॥१॥ पति के प्रिय को प्रिय देखे और उसके द्वेष्य को द्वेष्य के समान सदा देखना चाहिये । उसके अधर्म एवं अनर्थों से, युक्तों से अयुक्त निवृत्त हो जाती है ॥२॥ हे द्विजगण ! इसका प्रिय क्या है और हितकर क्या है तथा इसका साम्य किस प्रकार से होता है इस तरह भली-भाँति ज्ञान प्राप्त कर ही समस्त भृत्यों में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये ॥३॥ गृहस्थाश्रम में पत्नी का कर्तव्य है कि उसे देवता और पितरों के कार्यों में तथा पति के स्नान और भोजन आदि कार्यों में एवं अभ्यागतों के सत्कार में जो

भी औचित्य हो उसे नहीं त्यागना चाहिये ।।४।। वेश्म (घर) और आत्मा यह गृहिणियों का दो प्रकार का शरीर बताया गया है। अतः जो प्रथम अर्थात् घर है उसका पिछले भी पहिले प्रयत्न पूर्वक संस्कार करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि शरीर से अधिक घर का संस्कार होना चाहिये ।।५।। तीनों काल में जहां अर्जन का विधान होता है उसे (घर को) भली-भांति स्वच्छ एवं सुसंस्कृत करना चाहिये। वृत्त कर्म और उपभोगों का यथोचित संस्कार करना चाहिये ।।६।। प्रातःकाल, और अपराह्नकाल में बाहिर, मध्य में और अन्दर के भागों में घर का समाजन करके जो निष्कार अर्थात् झाड़कर निकले हुए पदार्थ हैं उन्हें रात्रि में नहीं फैंकना चाहिये ।।७।।

गोमहिष्यादिशालानां तत्पुरीषादिमात्रकम् ।
व्यपनेयं तु यत्नेन संमार्जन्या प्रसाधनम् ।।८
दासकर्मकरादीनां बाह्याभ्यंतरचारिणाम् ।
पोषणादिविधिं विद्यादनुष्ठानं च कमसु ।।९
शाकमूलफलादीनां वल्लीनामौषधस्य च ।
संग्रहः सर्वबीजानां यथाकालं यथाबलम् ।।१०
ताम्रकांस्यायसादीनां काष्टवेणुमयस्य च ।
मृन्मयानां च मान्डानां विविधानां च संग्रहम् ।।११
कुन्डकादिजलद्रोण्या कलशोदन्चतालुकाः ।
शाकपात्राण्यनेकानि स्नेहानां गोरसस्य च ।।१२
मुसलं कंडनीयं तु यन्त्रकं चूर्णचालनी ।
दोहन्यो नेत्रकं मन्था मन्डन्यः शृंखलानि च ।।१३
सन्दन्शः कुंडिका शूलाः पट्टपिप्पलको दृषत् ।
डाविका हस्तको दर्वी भ्राष्टस्फुटलकानि च ।।१४
तुलाप्रस्थादिमानानि मार्जन्यः पिटाकानि च ।
सर्वमेतत्प्रकुर्वीत प्रयत्नेन च सर्वदा ।।१५

गाय-भैंस आदि के रहने की जो शाखायें हैं उनकी सफाई करने से वहाँ से उनके पुरीष आदि का ही व्यवनयन करना चाहिए और बड़े यन्त्र

से समार्जनी के द्वारा वहाँ का प्रसाधन करे ॥८॥ जो दास कर्मों के करने वाले नौकर आदि हैं और जो बाहिर तथा अन्दर चरण किया करते हैं उन सबकी पोषण की विधि को अच्छी तरह जान लेना चाहिये तथा यह भी ज्ञान रखना एक ग्रहिणी का कर्तव्य है कि उनसे क्या-क्या कर्म कराने चाहिये ॥९॥ शाक-मूल और फल आदि का, बल्लियों और औषधों का तथा सब प्रकार के बीजों का काल के अनुसार यथा बल संग्रह करना चाहिए ॥१०॥ तामें, कांसे और लोहे आदि धातुओं के तथा लकड़ी और बाँस के एवं मिट्टी के बिविध प्रकार के पात्रों का संग्रह भी स्त्रियों को रखना चाहिए ॥११॥ कुण्डक आदि जल द्रोणी का, कलशोद और तालुक, अनेक शाक पात्रों, स्नेहों का एवं गोरस का संग्रह करना चाहिये ॥१२॥ मूसल, कण्डनी (ओखली) यन्त्र और चून छानने की चलनी, दूध दुहने का दोहनी पात्र, मठ्ठा चलाने की नेती, मथनी, मण्डनी और शृंगला, संदश कुण्डिका, शूल,पट्टपिप्पलक पत्थर, डानिका हस्तक और दर्वी (कढाई) तथा भ्राष्ट स्फुटलक, तुला (तराजू) के प्रस्थ आदि मान (बाट) बुहारी और नित्य ही घर में काम में आने वाली वस्तुयें हैं ॥१३-१५॥

हिंग्वादिकमथो जाजी पिपल्यो मरिचानि च ।
राजिका धान्यकं शुंठी त्रिचतुर्जातकानि च ॥१६

लवणं क्षारवर्गश्च सौवीरकपरूषकौ ।
द्विदलामलकं विचा सर्वाश्च स्नेहजातयः ॥१७

शुष्ककाष्ठानि वल्लूरमरिष्टा पिष्टमाषयोः ।
विकाराः पयसश्चापि विविधाः कन्दजातयः ॥१८

नित्यनैमित्तिकानां हि कार्याणामुपयोनतः ।
सर्वमित्यादि संग्राह्यं यथावद्विभवोचितम् ॥१९

यत्कार्याणां समुत्पत्तावुपाहर्तुं न दृश्यते ।
तत्प्रागेव यथायोगं संगृह्णीयात्प्रयत्नतः ॥२०

धान्यानां घृष्टपिष्टानां क्षुण्णोपहतयोरपि ।
भृशं शुष्कार्द्र सिद्धानां क्षयवृद्धी निरूपयेत् ।।२१

अब तक पात्र तथा अन्य साधनों के संग्रह के विषय में बताया गया है। अब मसाले आदि उपस्कर जो भोजन बनाने में आवश्यक होते हैं उनके संग्रह के विषय में बताते हैं—हींग आदि पदार्थ, जाजी, पीपल,मरिच, राई, धनियाँ, सौंठ, तीन और चार जातक, लवण तथा क्षारवर्ग, सौवीरक और परूषक, द्विदल (दाक), आमलक (आंवला) चिंचा और सब प्रकार के स्नेह जाति वाले तैल आदि पदार्थों का संग्रह करना चाहिए ।।१६-१७।। सूखी लकड़ियाँ, वल्लूर अरिष्टा जो पिष्ट और माष (उर्द) के हैं। दूध के विकार (दही, खोआ, मलाई आदि) और अनेक प्रकार कन्द की जातियों का संग्रह, गृहणी को घर में रखना आवश्यक है। यह स्त्री का ही कर्तव्य होता है ।।१८।। इसमें नित्य के काम के उपयोग में आने वाले तथा नैमित्तिक कार्यों के उपयोग के वास्ते सभी का संग्रह होना चाहिये और वह अपनी आर्थिक स्थिति के अनुकूल ही होना चाहिये ।।१६।। जब कार्य उपस्थित हो जाते हैं तो उसी समय पर इन सबको प्रस्तुति नहीं किया जा सकता है। इसलिए पहिले से ही कार्य के आने के पूर्व यथायोग इनका प्रयत्त पूर्वक संग्रह कर लेना चाहिए ।।२०।। घृष्ट और पिष्ट धान्यों का तथा जो क्षुण्गा और उयहत हों उनका भी बहुत शुष्क, आर्द्र (गीले) और सिद्धों की क्षय तथा वृद्धि को भी बराबर देखते रहना आवश्यक है ।।२१।।

।। स्त्रीधर्मवर्णनम् ।।

व्रीहीणां कोद्रवाणां च सारधर्ममुदारकः ।
कंगुकोद्रवयोर्ज्ञेयो वरटः पंचभागकः ।।१
पंचभागान्प्रियन्गूनां शालीनां च त्रयोऽष्ट च ।
चणकानां तृतीयान्शः समक्षुण्णं त्रयं विदुः ।।२
पानीययवगोधूमं पिष्टधान्यचतुष्टयम् ।
तुल्यमेवावगन्तव्यं मुद्गा माषास्तिला यवाः ।।३

पन्चभागादिका घृष्टा गोधूमाः सक्तवस्तथा ।
कुल्माषाः पिष्टमांसं च सम्यगर्धादिकं भवेत् ।।४
सिद्धं तदेव द्विगुणं पुन्नाको यावकस्तथा ।
कगुकोद्रवयोरन्नं चणकोदारकस्य च ।।५
द्विगुणं चीनकानां च व्रीहीणां च चतुर्गुणम् ।
शालेः पन्चगुणं विद्यात्पुराणे त्वतिरिच्यते ।।६
क्रियापाकविशेषास्तु वृद्धिरेवोपदिश्यते ।
निमित्तस्य वरान्नस्य तद्वृद्धिर्द्विगुणा भवेत् ।।७

उप अध्याय में स्त्रियों के धर्म का वर्णन किया जाता है । ब्रह्माजी ने कहा—व्रीहि और कोद्रवों का सार धर्म को उदारक कहते है । कंगु और कोद्रव का पाँच भाग वाला वरट समझना चाहिए ।।१।। प्रियंगु के पाँच भागों का और शालियों के ग्यारह भागों का तथा चणकों (चनों) का तीसरा अंश इन सबको एक साथ क्षुण्ण किया हुआ त्रय जानना चाहिये ।।२।। यमनी, यव और गोधूम ये पिसे हुए चारों प्रकार के धान्य मूंग, उर्द, तिल और यव ये सब तुल्य ही समझने चाहिये ।।३।। पंच भागादिक घृष्ट गेहूँ तथा सक्तु (सतुआ) कुल्माष और पिष्टमाष ये भली-भांति अर्धादिक होने चाहिये ।।४।। वह ही सिद्ध दुगुनापुन्नाक तथा यावक कङ्गु (काँगनी) और कोद्रव का और चणकोदारक का अन्नचीनकों का द्विगुण और व्रीहियों का चौगुना तथा शाली का पांच गुना जानना चाहिए जो कहीं ये पुराने हों तो और भी अधिक होता है ।।५-६।। ये पाक क्रिया की विशेषतायें हैं । इनकी वृद्धि का ही उपदेश दिया जाता है । श्रेष्ठ अन्न के निमित्त की ऋद्धि के गुण वाली वृद्धि हुआ करती है ।।७।।

तस्माद्भूयो विरूढस्य चतुर्भागो विवर्धते ।
लाजा धानाः कलायाश्च भृष्टाद्विगुणवृद्धयः ।।८
भ्रष्टव्यानामतोऽन्येषां पन्चभागोऽधिको मतः ।
चापकानाँ च पिष्टानाँ पादहीनाः कलायजाः ।।९
मुद्गमाषमसूराणामर्धपादावरोभवेत् ।
क्लिन्नशुष्कवरान्नाना हानिर्वृद्धिर्विशिष्यते ।।१०

तथार्धेन तु शोध्यानामढक्या मुद्गमाषयोः ।
मसूराणां च जानीयात्क्षयं पंचमभागकम् ॥११
षड्भागेनातसीतैलं सिद्धार्थककपित्थयोः ।
तथा निंबकदंबादौ विद्यात्पन्चसभागकम् ॥१२
तिलेंगुदीमधूकानां नक्तमालकुसुंभयोः ।
जानीयात्पादकं तैलं खलमन्यत्प्रचक्षते ॥१३
क्षेत्रकालक्रियादिभ्यः क्षयादेर्व्यभिचारतः ।
प्रत्यक्षीकृत्य तान्सम्यगनुमित्यावधारयेत् ॥१४

इस कारण से जो पुनः विरूढ़ होता है उसका चतुर्भाग विवृद्ध हुआ करता है। लाज (खील), धान और कला इनके भ्रष्ट होने पर अर्थात् भूने जाने पर दुगुनी वृद्धियाँ होती हैं ॥८॥ इसलिए अन्य भृष्टव्यों (भूनने के योग्यों) का पाँच भाग अधिक माना गया है। चापकों और पिष्टों के कलायजपाद हीन अर्थात् चौथाई भाग से कम होते हैं ॥९॥ मूंग, उर्द और मसूरों का अर्धपाद अर्थात् चौथाई का आधा भाग अबर होता है अर्थात् कम होता है। क्लिन्न और शुष्क नरान्नों की हानि और वृद्धि की विशेषता हुआ करती है। अर्थात् जो भिगोकर सुखाये जाते हैं उनकी हानि तथा वृद्धि विशिष्ट होती है ॥१०॥ शोध्यों का आधा, मुद्ग और माष का एक आढ़ की प्रमाण तथा मसूरों की पाँचवां भाग वाला क्षय जानना चाहिये ॥११॥ अलसी का तेल षड्भाग होता है। इसी प्रकार से सिद्धार्थक और कपित्थ का होता है। नीम और कदम्ब आदि में पाँचवाँ भाग तैल होता है ॥१२॥ तिल, इङ्गुदी, मधूक, नक्तमाल और कुसुम्भ का तैल एक पाद होता है अर्थात् चौथा भाग ही हुआ करता है शेष सब खल नाम से प्रसिद्ध पदार्थ होता है ॥१३॥ क्षेत्रकाल और क्रियादि से क्षय आदि का व्यभिचार के द्वारा प्रत्यक्षीकरण करना चाहिए। उन सबका अनुमान करके अवधारण करे ॥१४॥

क्षीरदोषे गवां प्रस्थं महिषीणां च सर्पिषः ।
पादाधिकमजावीनामुत्पादं तद्विदो विदुः ॥१५
सुभूमितृणकालेभ्यो वृद्धिर्वा क्षीरसर्पिषाम् ।

अतस्तेषां विधातव्यो ह्यर्थादेव विनिश्चय: ।।१६
प्रत्यक्षीकृत्य यत्नेन पक्षमासान्तरे तथा ।
पयोवृ त्तौर्गवादीनां कुर्यात्संभवनिर्णयम् ।।१७
कार्पासकृमिकोशौमौर्णक क्षौमादिकर्तनम् ।
कुणिपन्ग्व ध्योषाभिर्विधवाभिश्च कारयेत् ।। ८
बालवृद्धान्धकार्पण्ये यत्क तव्यमवश्यत: ।
विनियोग नयेत्सवं प्रियोपग्रहपूर्वकम् ।।१९
कर्म्मणामन्तरालेषु प्रोषिते चापि भर्तरि ।
स्वयं वै तदनुष्ठे यं नित्यानां चाविरोधतः ।।२०
शूद्राणां स्थूलसूक्ष्मत्वं बहुत्वं च व्ययाव्ययौ ।
मत्वा विशेष कुर्वीत चेतनप्रतिपत्तिषु ।।२१

क्षीर के दोषों में गौओं का और भैंसों का एक प्रस्थसर्पि (घृत) का होता है । अजावियों का पाद से अधिक घृत इस विद्या के विद्वान् बताया करते हैं ।।१५।। अच्छी भूमि, अच्छा तृण और अच्छे काल से क्षीर और घृत की वृद्धि भी हो जाती है इसलिए उनका विशेष निश्चय अर्थ से ही करना चाहिये ।।१६।। यत्न के द्वारा छै मास के अन्दर प्रत्यक्ष करके गौ आदि के दूध और वृत्त का जो भी निर्णय सम्भव हो वह करना चाहिए ।।१७।। कपास, कृमिकोश, ऊर्ण और क्षौम आदि का कर्तन का कार्य कुणि, पंगु और अन्धी स्त्रियों से और विधवा स्त्रियों से करवाना चाहिये ।।१८।। बालक, वृद्ध, अन्ध और कृपण के विषय में जो भी कर्त्तव्य होता है उसका विनियोग प्रिय के उपग्रह पूर्वक अवश्य ही सब करना चाहिए ।।१९।। कार्यों के मध्य में अपने स्वामी के बाहिर कहीं परदेश में चले जाने पर नित्य के करने वाले कार्यों के अविरोध से उन्हें स्वयं ही स्त्री को कर डालना चाहिए ।।२०।। शूद्रों की स्थूलता, सूक्ष्मता और बहुत्व तथा खर्चा और बचत की विशेषता को मानकर चेतन की प्रतिपत्तियों में करना चाहिये ।।२१।।

कारयेद्वस्त्रधान्यादि स्वाप्तवृद्ध रधिष्ठितम् ।
शूद्राणां क्षयवृद्धयादि मन्तव्यं वेतनानि च ।।२२

क्षौमकार्पासयोर्विद्यात्सूत्रं पञ्चमभागकम् ।
देशकालादिभागात्तु प्रत्यक्षादेव निर्णयः ॥२३
अवघातेन तूलस्य क्षयो विंशतिभागकः ।
छन्नां व्याप्तां तु वातेन तद्वदूर्णा प्रचक्षते ॥२४
पञ्चाशद्भागिकीं हानिं सूत्रे कुर्वीत लक्षणात् ।
वृद्धिस्तु मण्डसंपर्काद्दशकादशिका भवेत् ॥२५
श्लक्ष्णमध्यमसूत्राणामर्धाधिकसमं भवेत् ।
स्थूलानां तु पुनर्मूल्यात्पादोनं वालचेतनम् ॥२६
कर्मणो भूरिभेदत्वाद्देशकालप्रभेदतः ।
तद्विद्भ्य एव बोद्धव्यो वालचेतननिश्चयः ॥२७
स्थूलं दितत्रय देयं मध्यमं च त्रिरात्रिकम् ।
सूक्ष्ममापक्षतो मृष्टं मासात्तत्परिकर्मकम् ।
यदत्र क्षयवृद्धयादि तदुत्सर्गात्प्रदर्शितम् ॥२८

अपने से बड़े और आप्तों के द्वारा अधिष्ठित वस्त्र तथा धान्य आदि का कार्य कराना चाहिये । शूद्रों के वेतन, क्षय और वृद्धि को भी मानना चाहिये ॥२२॥ क्षौम और कपास के सूत्र को पाँचवाँ भाग जानना चाहिये । देश और काल के विभाग से प्रत्यक्ष होने से ही इसका निर्णय हुआ करता है ॥२३॥ तूल (रूई) के अवघात से बीसवें भाग का क्षय होता है । वायु से व्याप्त और छन्न ऊन भी उसी प्रकार से प्रसिद्ध होता है ॥२४॥ सूत्र में लक्षण से पचासवाँ भाग का क्षय करना चाहिये मांड के सम्पर्क कर देने से उसमें दश तथा एकादश भाग की वृद्धि होती है ॥२५॥ जो श्लक्षण मध्यम सूत्र होते हैं उनका अर्धाधिक सम होता है। जो स्थूल होते हैं उनका पुनर्मूल्यन होने से वालचेतन एक पाद कम होता है ॥२६॥ इस कर्म के बहुत से भेद होने के कारण से तथा देश और काल के भेद-अभेद होने के कारण वालचेतन का ठीक निश्चय इसके विद्वान पुरुषों के द्वारा ही जानने के योग्य होता है ॥२७॥ जो स्थूल हो उसे तीन दिन देना चाहिये, जो मध्यम हो अर्थात् न स्थूल हो और न सूक्ष्म ही हो उसे तीन दिन और तीन रात्रि तक देना चाहिये,

जो सूक्ष्म हो उसे एक पक्ष से एक मास तक तत्परिकर्मक मृष्ट देना चाहिये। जो इसमें क्षय और वृद्धि आदि होती है वह उसके स्वभाव से दिखलाई गई है ॥२८॥

कालकर्त्रादिभेदेन व्यभिचारोपि दृश्यते।
शय्यासनान्यनेकानि कंबलाश्चतुराश्रिकाः ॥२९
कंबुकाश्चावकोषाश्च मध्या रक्ताश्च भूरिशः।
गुरुबालादि वृद्धानामभ्यागतजनस्य च ॥३०
भोगायानुगतो भर्त्ता कुर्याद्विविधमात्रकम्।
यदस्य वशुरादीनां कल्पितं शयनादिकम् ॥३१
भर्तुश्चैव विशेषेण तदन्येव न कारयेत्।
वस्त्रं माल्यमलंकारं विधृतं देवरादिभिः ॥३२
न धारयेन्न चैतेषामाक्रमेच्छयनानि वा।
पिण्याकनककुट्टाश्च कालरूक्षाणि यानि च ॥३३
हेयं पर्युषिताद्यन्नं गोभक्तेनोपयोजयेत्।
कुलानां बहुधेनूनां गोध्यक्षव्रजजीविनाम् ॥३४
किलाटगविकादीनां भक्तार्थमुपयोजनम्।
दध्नः समाहरेत्सर्पिर्दुहेद्वत्सान्न पीडयेत् ॥३५

समय और इसके करने वाले कर्त्ता के भेद से जो कुछ भी कहा गया है इसमें व्यभिचार भी दिखलाई देता है। शय्या और आसन अनेक तरह के होते हैं। कम्बल चतुराश्रिक, कम्बुक, चावकोष, मध्य और बहुत से रक्त होते हैं। गुरु, बालक, वृद्ध आदि के तथा अभ्यागत जन के भोग के लिए अनुगत स्वामी को विविध मात्रा वाले करने चाहिए। जो श्वसुर आदि के लिए शयन आदि कल्पित किए गऐ हों ॥२९-३१ उन्हें और स्वामी के लिए विशेष रूप से किए हों उन्हें किसी भी अन्य के उपयोग करने के लिए नहीं कराने चाहिए। देवर आदि के द्वारा धारण किए गए वस्त्र, माल्य और अलंकारों को नहीं धारण करे और इनके शयनों का कभी आक्रमण भी नहीं करना चाहिए। पिण्याकनक और कुट्ट अर्थात् कोद्र जो कि काल पर सूक्ष्म हो गये हैं तथा

पर्युषित (वासी) अन्न आदि देय होता है। इन्हें गौओं को देकर उपयोग कराना चाहिये। जिन कुलों में बहुत सी गौएँ होती हैं और जो गायों के व्रज के स्वामी होकर उपजीवित रहते हैं तथा किलाट गविकादि का भक्तार्थ उपभोजन होता है। दही से घृत को प्राप्त करे और जब दोहन करे तो उनके वत्सों का पीड़ित नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि गाय आदि के वत्सों को पीने के लिए दूध छोड़ दे ॥३२-३५॥

वर्षाशरद्वसन्तेषु द्वौ कालावन्यदा सकृत्।
तक्रं वाप्युपयुञ्जीत श्ववराहादिपोषणे ॥३६
पिण्याकक्लेदनार्थं वा विक्रेयं वा तदर्हयेत्।
वृत्तिं धान्यहिरण्येन गोपादीनां प्रकल्पतेत् ॥३७
ते हि क्षीरव्रता लोभादुपहन्युस्तदन्वयान्।
दोहकालं गवां दोग्धा नातिवर्तेत वै द्विजाः ॥३८
प्रसरोदकयोर्गोपा मन्थकस्य च मन्थकाः।
मासमेकं यथा स्तन्यं मासमेकं स्तनद्वयम् ॥३९
सततं पाययेद्वत्सं स्तनमेकं स्तनद्वयम्।
तिलपिष्टाभिः पिण्डाभिस्तृणेन लवणेन च।
वारिणा च यथाकालं पुरणीयादिति वत्सकान् ॥४०
जगद् गुर्गर्भिणी धेनुर्वत्सा वत्सतरी तथा।
पञ्चानां समभागेन घासं यूथे प्रकल्पयेत् ॥४१
एको गोपालकस्तस्य त्रयाणामथ वा द्वयम्।
पञ्चानां वत्सकश्चैकः प्रवरास्तु पृथक्पृथक् ॥४२

कुत्ता और वराह आदि के पोषण में वर्षा-शरद और वसन्त में दो समय और इसके अतिरिक्त एक बार तक्र का उपयोग करना चाहिए ॥३६॥ अथवा पिण्याक के क्लेदन करने के लिए अथवा विक्रय के लिए वह योग्य होता है। गोपादि की वृत्ति धान्य हिरण्य से प्रकल्पित करानी चाहिये ॥३७॥ क्षीर के व्रत वाले वे लालच के कारण उनके वंशों का हनन किया करते हैं। गौओं के दोहन करने वाले को दोहन के काल का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए ॥३८॥ गोप प्रसर और उदक के

मन्थक के मन्थक होते हैं। गोदोहन करने वालों को चाहिए कि एक मास तक गो के व्या जाने पर एक ही स्तन का दूध लेवें और इसके पश्चात् एक मास तक दो स्तनों का दूध लेना चाहिये ॥३९॥ तिल पिष्ट पिण्डों से, तृण से, लवण से, और जल से समय के अनुसार वत्सों का पोषण करना चाहिए ॥४०॥ जगद्जुर्गभिणी, धेनु, वत्स और वत्सतरी इन पाँचों को यूथ में समभाग घास देनी चाहिये ॥४१॥ एक गोपालक है उसके तीनों के दो अथवा पांचों के एक वत्सक है तो वे प्रथक्-प्रथक् प्रवर होते हैं ॥४२॥

गोचरस्यानयनार्थं व्यालानां त्रासनाय च ।
घण्टाः कर्णेषु बध्नीयुः शोभारक्षार्थमेव च ॥४३
पशव्ये व्यालनिर्मुक्ते देशे भूरितृणोदके ।
अभूत दुष्टे वारण्ये सदा कुर्वीत गोकुलम् ॥४४
सगुप्तमटवीवासं नित्यं कुर्यादजाविकम् ।
ऊर्णां वर्षद्विरा दद्याच्चैत्राश्वयुजमासयोः ॥४५
यूथे वृषा दशैतासां चत्वारः पञ्च वा गवाम् ।
अश्वोष्ट्रमहिषाणां च यथा स्युः सुखसेविताः ॥४६
विद्यात्कृषीवलादीनां योगं कृषिककर्मसु ।
भक्तवेतनलाभं च कर्मकालानुरूपतः ॥४७
क्षेत्रकेदारवाटेषु भृत्यानां कर्म कुर्वताम् ।
खलेषु च विजानीयात्क्रियायोग प्रतिक्षणम् ॥४८
योग्यतातिशयं मत्वा कर्मयोगेषु कस्यचित् ।
ग्रासच्छादशिरोभ्यंगंर्विशेषं तस्य कारयेत् ॥४९

गोचर भूमि से आनयन के लिए तथा व्यालों के त्रासन के वास्ते और शोभा की रक्षा करने के लिए कानों में घण्टे बाँध देने चाहिये ॥४३॥ पशुओं के हित करने वाले व्यालों से रहित, बिना भूत दुष्टों वाले तथा बहुत तृण और जल वाले वन में सदा गोकुल बनाना चाहिये अर्थात् गायों के रहने का स्थान करे ॥४४॥ अजाविकों (भेड़ों) का

नित्य गुप्त (सुरक्षित) इन का निवास बनाना चाहिए। एक वर्ष में चैत्र तथा आश्विन मासों में दो बार उनसे ऊन लेना चाहिए ॥४५॥ इन के यूथ में दश वृष, गौओं के यूथ में चार या पाँच वृष होने चाहिये। अश्व, ऊँट और महिषों के जैसे सुख सेवित हों होने चाहिये ॥४६॥ कृषिक कर्मों में किसानों के योग का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। उनके काम और काल के अनुकूल ही उनके भक्त और वेतन के लाभ को भी जानना चाहिए ॥४७॥ खेत, केदार और वाटों में काम करने वाले भृत्यों का तथा खलियानों में काम करने वाले नौकरों का प्रतिक्ष किया के योग को जानना चाहिए ॥४८॥ इन कर्मों के योगदान में किसी भृत्य की अत्यधिक योग्यता को था मानकर उसको ग्रास (भोजन) अच्छाद (वस्त्र) और शिरोभ्यङ्गों के द्वारा विशेष सम्मानित कराना चाहिए ॥४९॥

पद्मशाकदिवापानां कन्दबीजादिजन्मनाम्।
संग्रहः सर्वबीजानां काले वापः सुभूमिषु ॥५०
जातानां रक्षणं सन्यग्रक्षितानां च संग्रहः।
तेषां च संगृहीतानां यथावन्निवपक्रिया ॥५१

गृहमूलं स्त्रियश्चैव धान्यमूलो गृहाश्रमः।
तस्माद्धान्येषु भक्तेषु न कुर्यान्मुक्तहस्तताम् ॥५२
धान्यं तु संचितं नित्यं मितो भक्तपरिव्ययः।
न चान्ने मुक्तहस्तत्वं गृहिणीनाँ प्रशस्यते ॥५३

अल्पमित्येव नावज्ञाँ चरेदन्नेषु व द्विजाः।
मधुवल्मीकयोर्वृद्धि क्षयं दृष्ट्वान्जनस्य च ॥५४
ये केचिदिह निर्दिष्टा व्यापाराः पुरुषोचिताः।
दंपत्योरैक्यमास्थाय तद्विदानप्रसंगतः ॥५५

संत्येव पुरुषा लोके स्त्रीप्रधानाः सहस्रशः।
तेषु तासां प्रयोक्तृत्वाददोष इति गृह्यताम् ॥५६
एव योग्यतया युक्ता सौभाग्येनोद्यमेन च।
सम्यगाराध्य भर्तारं तत्रैनं वशमानयेत् ॥५७

पद्म और शाक आदि वापों के तथा कन्द और बीज आदि से उत्पन्न होने वाले पदार्थों के समय पर सब प्रकार के बीजों का संग्रह करना चाहिये जिससे सुन्दर भूमि में ठीक समय पर वपन (बोना) हो सके ।।५०।। जो उत्पन्न हुए हों उनका अच्छी तरह से संरक्षण करना और भली-भाँति संरक्षित हों उनका संग्रह करना तथा जो अच्छी तरह संग्रहीत हों उनका यथावत् वपन की क्रिया करना, सब जानना चाहिए ।।५१।। स्त्रियाँ ही ग्रह का मूल हुआ करती हैं और यह ग्रहाश्रम जो होता है इसका मूल धान्य होता है। इसलिए धान्यों में भक्तों में कभी भी मुक्त हस्तता (हाथ का खुला रखना) नहीं करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि धान्य को खुले हाथ से नहीं लुटाना चाहिये ।।५२।। धान्य का नित्य हा सञ्चय किया जाना चाहिये और उसका भक्त परिव्यय भी मित्त ही होना चाहिए अर्थात् खाने-पीने का खर्चा सीमा के अन्दर ही रहना चाहिये। अच्छी गृहणियों की अन्न के विषय में मुक्त हस्तता प्रशंसनीय नहीं कही जाया करती है ।।५३।। यह बहुत ही कम है— इस प्रकार से अन्नों के विषय में कभी अवज्ञा नहीं करे और मधु और बाल्मीक को एवं अंजन की क्षय तथा वृद्धि का विचार करके ही ऐसा नहीं करना चाहिये ।।५४।। यहाँ पर जो भी पुरुषों के योग्य व्यापार निर्दिष्ट किए गए हैं वे दान के प्रसंग से दम्पत्ति के ऐक्य में आस्थित होकर ही किये हैं ।।५५।। लोक में सहस्रों पुरुष ऐसे हैं जिनके यहाँ स्त्रियों की प्रधानता हुआ करती है। उन में उन स्त्रियों के प्रयुक्त करने वाले होने से कोई दोष नहीं है इसी से ग्रहण करना चाहिए ।।५६।। इस प्रकार से योग्यता से युक्त तथा सौभाग्य एवं उद्यम से स्त्रियों को चाहिए कि वे भली-भांति अपने स्वामी की आराधना करके इसको अपने वश में ले आवें ।।५७।।

———

।। ब्राह्म पर्व समाप्त ।।

भविष्य पुराण

प्रथम पर्व

।। धर्मस्वरूपवर्णनम् ।।

स्वच्छं चन्द्रावदातं कविकरमकरक्षोभसंजातफेनं ।
ब्रह्मोद्भूतिप्रसूक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवित विप्रमुख्यैः ।।१
ॐकारालंकृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टपूतं ।
संभोगाभोगगम्यं जनकलुषहरं पौष्करं वःपुनातु ।।२
नमस्कृत्य जगद्योनिं ब्रह्मरूपधरं हरिम् ।
वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्याँ कथाँ पापप्रणाशिनीम् ।।३
यच्छ्रुत्वा पापकर्माणि स गच्छेत्परमाँ गतिम् ।
पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः ।।४

इस प्रथम अध्याय में सर्व प्रथम मङ्गलाचरण है और फिर भविष्य-पुराण की प्रशंसा है तथा इसके पश्चात् धर्म के स्वरूप का वर्णन किया जाता है। मंगलाचरण, स्वच्छ, चन्द्रमा के समान अवदात (शुभ्र), कविकर मकर के क्षोभ से फेन उत्पन्न होने वाला, ब्रह्म की उत्पत्ति के प्रसूतों से व्रत और नियमों में परायण प्रमुख विप्रों के द्वारा सेवित, ओंकार से अलंकृत तीनों भुवनों के गुरु ब्रह्मा के द्वारा दृष्ट पूत, संभोगा-भोग से जानने के योग्य मनुष्यों के पापों को हरण करने वाले पौष्कर आप सबकी पवित्रता करें ।।१-२।। श्री सूत जी ने कहा—ब्रह्मा के रूप को धारण करने वाले इस जगत् की योनि अर्थात् उत्पत्ति के स्थान

भगवान हरि को प्रणाम करके पापों का प्रणाश करने वाली दिव्य पौराणिकी कथा को कहता हूँ। जिस कथा का श्रवण करके पाप कर्मों का त्यागकर मानव परम गति को प्राप्त किया करता है। यह परम पुण्य, पवित्र और आयु के बढ़ाने वाली कथा है। हे द्विजगण! अब तुम इसे सुनो ॥३-४॥

भविष्यपुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः।
मध्यपर्व ह्यथो वक्ष्ये प्रतिष्ठादिविनिर्णयम् ॥५
धर्मप्रशंसनं चात्र ब्रह्मणादिप्रशंसनम्।
आपद्धर्मस्य कथनं विद्यामाहात्म्यवर्धनम् ॥६
प्रतिमाकरणं चैत्र स्थापनाचित्रलक्षणम्।
कालव्यवस्थासर्गादिप्रतिसर्गादिलक्षणम् ॥७
पुराणलक्षणं चैव भूगोलस्य च निर्णयम्।
निरूपणं तिथीनां च श्राद्धसंकल्पमन्तरम् ॥८
मुमूर्षोरपि यत्कर्म दानमाहात्म्यमेव च।
भूतं भव्यं भविष्यं च युगधर्मानुशासनम् ॥९
त्रयाणामाश्रमाणाँ च गृहस्थो योनिरुच्यते।
अन्येऽपि सूपजीवन्ति तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥१०
एकाश्रमं गृहस्थस्य त्रयाणा सूतिदर्शनम्।
तस्माद्गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मशासनम् ॥११

गदाधर ने जो यह सम्पूर्ण भविष्यपुराण कहा था उसका अब मध्य पर्व वर्णित किया जाता है जिसमें प्रतिष्ठा आदि का विशेष निर्णय किया गया है ॥५॥ इसमें धर्म की प्रशंसा की गई है। इसमें आपद्धर्म का कथन है और वि.ा के माहात्म्य का वर्णन बताया गया है ॥६॥ प्रतिभा का कराना, स्थापना चित्र का लक्षण, काल की व्यवस्था और सर्गादि प्रतिसर्गादि का लक्षण बताया गया है ॥७॥ पुराण का लक्षण तथा भूगोल का विशेष निर्णय, तिथियों निरूपण और श्राद्ध संकल्प अन्तर कहा गया है ॥८॥ जो मरने वाला है उसका कर्म और दान का माहात्म्य तथा भूत, भव्य और भविष्य युगधर्म का अनुशासन इस पुराण

में बताये गये हैं ॥९॥ तीनों आश्रमों का उत्पत्ति स्थान गृहस्थ कहा जाता है। गृहस्थ के सहारे ही अन्य सब आश्रम उपजीवित होते हैं। इस कारण से गृहाश्रमी सबसे श्रेष्ठ माना जाता है ॥१०॥ एक गृहस्थ का आश्रम अन्य तीनों का सूतिदर्शन होता है। इसलिये एक गार्हस्थ्य आश्रम ही को धर्म का शासन समझना चाहिए ॥११॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
सर्वलोकविरुद्धं च धर्ममप्याचरेन्न तु ॥१२
तडागस्य च सान्निध्ये तडागं परिवर्जयेत्।
प्रपास्थाने प्रपा वर्ज्या मठस्थाने मठं त्यजेत् ॥१३
धर्मात्संजायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते।
धर्म एवापवर्गोऽयं तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥१४
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः।
सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥१५
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१६
यस्मिन्धर्मः समायुक्तो ह्यर्थकामौ व्यवस्थितौ।
इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते ॥१७
तस्मादर्थं च कामं च युक्त्वा धर्मं समाश्रयेत्।
धर्मात्संजायते कामो धर्मादर्थोऽभिजायते ॥१८

जो धर्म से रहित अर्थ और काम हैं उनको त्याग देना चाहिए और जो समस्त लोक के विरुद्ध धर्म हैं उसका भी कभी आचरण नहीं करना चाहिए ॥१२॥ तड़ाग के सान्निध्य में तड़ाग को परिवर्जित कर देना चाहिए। प्रपा (प्याऊ) के स्थाने प्रपा वर्जनीय होती है और मठ के स्थान में मठ का त्याग कर देना चाहिए ॥१३॥ धर्म से अर्थ उत्पन्न होता है और धर्म से ही काम अभिजात हुआ करता है। धर्म से ही अपवर्ग हुआ करता है इसलिए धर्म का समाश्रय अवश्य ही करना चाहिए ॥१४॥ धर्म, अर्थ और काम इनका त्रिवर्ग माना गया है। इन

तीनों के क्रम से सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण हैं। इससे धर्म का ही समाश्रय करना चाहिए ।।१५।। जो सत्त्व में स्थित होते हैं वे ऊर्ध्व भाग में जाया करते हैं, जो राजस होते हैं वे मध्य में रहते है तथा सबसे जघन्य गुण तमोगुण है उसमें जो स्थित रहा करते हैं वे तामस लोग अधोभाग में जाया करते हैं ।।१६।। जिस मानव में धर्म समायुक्त होता है वहाँ अर्थ और काम तो स्वयं व्यवस्थित हुआ करते हैं। ऐसा मानव इस लोक में सुखोपभोगों का अनुभव प्राप्त करके मरने के पश्चात् अनन्त्य के लिये कल्पित हो जाता है।।१७।। इसलिए अर्थ और काम को युक्त करके धर्म का समाश्रय करना चाहिए। धर्म से काम और धर्म ये दोनों ही हो जाया करते हैं ।।१८।।

।। ब्रह्माण्डोत्पत्तिविस्तारवर्णन ।।

इदानीं विस्तरं चैव विभाग रूपमैश्वरम् ।
वक्ष्ये कल्पानुसारेण मन्वन्तरशतानुगम् ।।१
आसीत्तमोमयं सर्वमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
तत्र चैको महानासीद्रुद्रः परमकारणम् ।।२
आत्मना स्वयमात्मानं सञ्चिन्त्य भगवान्विभुः ।
मनः संसृजते पूर्वमहंकारं च पृष्ठतः ।।३
अहंकारात्प्रजानाति महाभूतानि पञ्च च ।
अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराश्चैव षोडश ।।४
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ।
प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च ।।५
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणाः प्रोक्तास्तु ते त्रयः ।
तस्माद्भागवतो ब्रह्मा तस्माद्विष्णुरजायत ।।६
ब्रह्मविष्णुमोहनार्थं ततः शंभुस्तु तेजसा ।
अशरीरो वासुदेवो ह्यनुत्पत्तिरयोनिजः ।।७

इस अध्याय में विराट् ब्रह्माण्डोत्पत्ति के विस्तार का वर्णन किया जाता है। श्री सूत जी ने कहा—अब मैं इस विराट् ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति

विस्तार, विभाग और ऐश्वर रूप को बतलाता हूँ और कल्प के अनुसार मन्वन्तर शत के अनुकूल चलने वाला बतलाऊंगा ।।१।। आरम्भ में यह सम्पूर्ण तपोमयअप्रज्ञात और बिना लक्षण वाला था। वहाँ पर एक महान परम कारण रुद्र थे ।।२।। विभु भगवान ने अपनी ही आत्मा से अपने आपको स्वयं सञ्चित करके वे पहले मन का सृजन करते हैं और उसके पीछे अहकार की सृष्टि किया करते है ।।३।। अहंकार से पाँच महाभूत समुत्पन्न करते हैं। इस तरह ये आठ प्रकृतियां कहीं गई हैं और षोडत विकार कहे जाते हैं ।।४।। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध तथा प्राण अपान, समान, उदान और व्यान होते हैं ।।५।। सत्त्व, रज और तम ये गुण कहे गये हैं और वे तीन होते हैं। उससे भागवत ब्रह्मा और उससे विष्णु उत्पन्न हुए ।।६।। ब्रह्मा और विष्णु के मोहन के लिये इसके अनन्तर तेज से शम्भु हुए थे। भगवान वासुदेव बिना शरीर वाले, बिना उत्पत्ति वाले और अयोनिज होते हैं ।।७।।

व्यामोहयित्वा तत्सर्वं तेजसाऽमोहयज्जगत् ।
तस्मात्परतरं नास्ति तस्मात्परतरं न हि ।।८
ब्रह्मा विष्णुश्च द्वावेतावुद्भूतौ भगवत्सुतौ ।
कल्पेकल्पे तु तत्सर्वं सृजतेऽसौ जनं जगत् ।।९
उपसंहरते चैव नानाभूतानि सर्वशः ।
द्वासप्ततियुगान्येव मन्वतर इति स्मृतः ।।१०
चतुर्दश तु तान्येवं कल्प इत्यभिधीयते ।
दिनैकं ब्रह्मणः प्रोक्तं निशि कल्पस्तथोच्यते ।।११
एवं मासश्च वर्षश्च तथा चाष्टशतं द्विजाः ।
एवं बुद्धीन्द्रियस्यास्य विष्णोश्च निमिषः स्मृतः ।।१२
ब्रह्मादिस्तबपर्यंतं निमेषश्च ध्रुवस्य वै ।
निमेषजीवनं सर्वं सर्वलोकचराचरम् ।।१३
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च प्रकीर्तितः ।
जनस्तपश्च सत्यं च ब्रह्मलोकश्च सप्तमः ।।१४

उस सबको व्यामोहित करके तेज से इस जगत् को मोहित किया था उस परतर कोई नहीं है और उससे ऊपर अन्य कुछ भी नहीं होता है ।।८।। ब्रह्मा और विष्णु दोनों ये भगवान के पुत्र उद्भूत हुए थे। यह कल्प में इस सबका जन जगत् सृजन किया करते हैं ।।९।। अनेक प्रकार के प्राणियों का सब ओर से यही उपसंहार भी किया करते हैं। बहत्तर युगों का एक मन्वन्तर कहा गया है ।।१०।। चौदह मन्वन्तर जब समाप्त हो जाते हैं तो एक कल्प होता है। यह कल्प ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है और इसी प्रकार से अन्य दूसरा कल्प ब्रह्मा की रात्रि होती है ।।११।। इसी प्रकार से मास और वर्ष होते हैं। हे द्विजगण ! इसी तरह से आठशत होते हैं। इसी प्रकार इसकी बुद्धि और इन्द्रियाँ हैं। यह इतना समय भगवान विष्णु का एक निमिष होता है ।।१२।। ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त उस ध्रुव का निमेष है। यह समस्त चराचर लोक निमेष मात्र जीवन वाला होता है ।।१३।। भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक कहा गया है। जन लोक, तपोलोक, स्यलोक और सातवाँ ब्रह्मलोक होता है ।।१४।।

पाताल वितलं तद्धि अतलं तलमेव च।
पञ्चमं विद्धि सुतलं सप्तमं च रसातलम् ।।१५

एतेषु सप्त विख्याया अधःपातालवासिनः।
तेषामादौ च मध्ये च अन्ते रुद्रः प्रकीर्तितः ।।१६

ग्रसते जायते लोकान्क्रीडार्थं तु महेश्वरः।
ब्रह्मलाकपरीप्सूनां गतिरूर्ध्वं प्रकीर्तिता ।।१७
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च विदिशस्तथा।
समुद्राणां गिरीणां च अधस्तियक्प्रसंख्यया ।।१८

समुद्राणां च विस्तारं प्रमाणं च ततः शृणु।
स्थावराणां च शैलानां देवानां च दिवौकसाम् ।।१९
चतुष्पदानां द्विपदां तथा धर्मैकभाषिणाम्।
सहस्रगुणमाख्यातं स्थाबराण प्रकीर्तितम् ।।२०

सहस्त्रगुणशीलाश्च इत्याह भगवान्मुनिः ।
ऋषिस्तु प्रथमं कुर्वन्प्रकृतिं नाप नामतः ॥२१

नीचे के लोकों के नाम पाताल, वितल, अतल, तल, पाँचवाँ सुतल और साँतवा रसातल होता है ॥१५॥ इनमें नीचे पाताल वासी सात विख्यात हैं । उनके आदि में, मध्य में और अन्त में रुद्र कहे गये हैं ॥१६॥ महेश्वर भगवान क्रीड़ा के लिये लोकों को उत्पन्न करते हैं और इनका ग्रसन भी किया करते हैं । जो ब्रह्म लोक के परीप्सु होते हैं उनकी ऊर्ध्वं बताई गई है ॥१७॥ पृथवी, अन्तरिक्ष, दिशाऐं और विदिशाऐं, समुद्र और पर्वतों की प्रसख्या से अधः और तिर्यक् गति होती है ॥१८॥ अब समुद्रों का विस्तार और इसके पश्चात् उनका प्रमाण मुझसे श्रवण करो । स्थावरों का, शैलों का, देवों का और दिवौकसों का, चतुष्पदों का, द्वि दों का तथा धर्मैक भाषियों का स्थावरों का सहस्त्र गुण कहा गया है ॥१९-२०॥ भगवान मुनि ने यह कहा है कि ये सहस्त्र गुण शील होते हैं । ऋषि ने नाम से प्रकृति कही जाने वाली को सबसे पहले किया था ॥२१॥

तस्या ब्रह्मा प्रकृत्यास्तु उत्पन्नः सह विष्णुना ।
तस्माद्बुद्धया प्रकुरुते सृष्टिं नैमित्तिकीं द्विजाः ॥२२
तस्मात्स्वयंभुवो ब्रह्मा ब्राह्मणान्समकल्पयत् ।
पादहीनान्क्षात्रियान्श्च तस्माद्धीनान्स्तु वैश्यकान् ॥२३
चतुर्थपादहीनान्श्च अचारेषु बहिष्कृताम् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैवाप्यकल्पयत् ॥२४
लोकालोकस्य संस्था च द्वीपानामुदधेस्तथा ।
सरितां सागराणां च तीर्थान्यायतनानि च ॥२५
मेघस्तनितनिर्घोषरोहितेंद्रधनूंषि च ।
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्यायतनानि च ॥२६
उत्पन्नं तस्य देहेषु भूयः कालेन पीडयेत् ॥२७

उस प्रकृति से विष्णु के साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। हे द्विजगण ! उससे बुद्धि के द्वारा नैमित्ति को सृष्टि को किया करते हैं। उस स्वयम्भू से ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की रचना की थी। पाद से हीन क्षत्रियों को उनसे हीन वैश्यों का रचा था। चौथे पाद हीन और आचारों में बहिष्कृत शूद्रों की रचना की थी। पृथिवी, अन्तरिक्ष और दिशाओं की कल्पना की थी। लोका लोक पर्वत की सस्था, द्वीपों की और समुद्र की तथा सरिताओं और सागरों की संस्थापना की। तीर्थ और आयतन उसके देहों में उत्पन्न हुए और फिर काल के द्वारा पीड़ित होते हैं ॥२२-२७॥

॥ पुराण इतिहास श्रवण माहात्म्य ॥

समाख्यामीह विप्रेंद्रा इतिहासं पुरातनम् ।
श्रवणेपि च धर्मात्मञ्छ्रूयतां यन्मया पुरा ॥१

पृष्ठोवोचन्महातेजा विरिंचो भगवान्प्रभुः ।
हन्त तं कथयाम्येष पुराणश्रवणे विधिम् ॥२

इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या द्विजोत्तमाः ।
मुच्यते सवपापेभ्यो ब्रह्महत्याशतं च यत् ॥३

सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः ।
तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शंकरस्तथा ॥४

प्रत्यूषे भगवान्ब्रह्मा दिनान्ते तुष्यते हरिः ।
महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वतां पठतां नृणाम् ॥५

शुक्लवस्त्रधरश्चैव चैलाजिनकुशोत्तरः ।
प्रदक्षिणत्रयं कुर्याद्या तस्मिन्देवता गुरौ ॥६

नायुच्छ्रितं नातिनीचं स्वासनं भजते ततः ।
दिक्पतिभ्यो नमस्कृत्य ॐकाराधिष्ठितानपि ॥७

इस अध्याय में पुराण, इतिहास का अर्चन और श्रवण का माहात्म्य वर्णित किया है। सूतजी ने कहा—हे विप्रेन्द्र गण ! यहाँ पर मैं

एक बहुत पुराना इतिहास बतलाता हूँ। हे धर्मात्मन् ! उसके श्रवण में भी कल्याण होता है। मैंने यह पहिले सुना था अब तुम इसे श्रवण करो ॥१॥ जब पूछा गया तो महान् तेज वाले भगवान् विरञ्चि ने कहा-मैं तुमसे यह पुराण के श्रवण करने की विधि कहता हूँ ॥२॥ हे द्विजोत्तमो! भक्ति के भाव से इतिहास पुराणों को सुनकर समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। यदि सौ भी ब्रह्म हत्याओं का पाप हो तो उससे भी छुटकारा हो जाया करता है ॥३॥ जो मनुष्य प्रातः काल और सायंकाल में शुद्ध होकर श्रवण करता है उससे ब्रह्मा विष्णु और शंकर बहुत ही सन्तुष्ट होते हैं ॥४॥ प्रातःकाल में भगवान ब्रह्मा और दिन के अन्त में विष्णु तुष्ट होते हैं। महादेव रात्रि में श्रवण करने वालों तथा पपढ़ने वालों से प्रसन्न हुआ करते हैं ॥५॥ शुक्ल वस्त्रों के धारण करने वाला, चैल, अजिन या कुशा के उत्तरीय वाला जो भी उसमें देवता हो उसे और गुरु की तीन प्रदक्षिणा करे ॥६॥ आसन ऐसा होना चाहिए जो न तो अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा ही हो, उस आसन पर बैठना चाहिए। पहले दिशाओं के पतियों को नमस्कार करे और ओंकाराधिष्ठितों को भी प्रणाम करना चाहिए ॥७॥

पुस्तकं धर्मशास्त्रस्य धर्माधिष्ठानशाश्वतम् ।
आगमानां शिवो देवस्तन्त्रादीनां च शारदा ॥८

जामलानां गणपतिर्डामराणां शतक्रतुः ।
नारायणो भारतस्य तथा रामायणस्य च ॥९

वासुदेवो भवेद्देवः सप्तानां शृणु सत्तम ।
आदित्यो वासुदेवश्च माधवो रामकेशवौ ॥१०

वनमाली महादेवः सप्तानां सप्तर्गसु ।
विष्णधर्मादिकानां च शिवो ज्ञेयः सनातनः ।
अथ चादिपुराणस्य विरिंचिः परिकीर्तितः ॥११

शुद्धौदनं यवक्षीरं पायसं कृशरं तथा ।
कृशरान्नं च वा दद्यात्क्रमाद्वलिगणं विदुः ॥१२

शालिभक्तं सगोधूमं तिलाक्षतविमिश्रितम् ।
गव्यं च सफलं चैव देयश्चैभ्यस्त्वयं बलिः ।।१३
पृथक्पृथक्चैव कान्स्ये विन्यसेद्दिक्षु मध्यतः ।
पठेच्चापि विधानेन स यागः षण्मयः परः ।।१४

धर्म शास्त्र की पुस्तक शाश्वत धर्म का अधिष्ठान है । आगमों का देवता शिव होते हैं और तन्त्र आदि का देवता भगवती शारदा होती है ।।८।। जामलों का देव गणपति है और डामरों का देवता शतक्रतु इन्द्र होते हैं । भारत के देव नारायण हैं और रामायण के देवता भी नारायण होते हैं । हे सत्तम !सप्तों के देव श्री वासुदेव हैं । आदित्य,वासुदेव,माधव, राम, केशव,वनमाली, महादेव सप्त पर्वों में सप्तों के देव होते हैं । विष्णु धर्मादि का सनातन शिव जानना चाहिए । आदि पुराण का विरञ्चि देव बतलाया गया है ।।६-११।। अब इन देवों को समर्पित करने की बलि के विषय में बताते हैं, शुद्धौदन,यवक्षीर,पायस,कृशर अथवा कृशरान्न क्रम से इनको बलि देनी चाहिए ।।१२।। गोधूम के सहित शालिभक्त जो कि तिल और अक्षतों से विशेष रूप से मिश्रित हो, फलों के सहित गव्य इन देवों के लिये बलि देनी चाहिए ।।१३।। काँसे के पात्र में पृथक्-पृथक् दिशाओं में मध्य भाग में बलि का विन्यास करना चाहिए । विधान के साथ पढ़ना चाहिए । यही याग षण्मय और पर होता है ।।१४।।

शीतोदकं मधु क्षीरं सितेक्ष्वोश्च रसो गुडः ।
सगर्भाश्च परो ज्ञेयः षण्मयश्चापरो बलिः ।।१५
शालितंडुलप्रस्थं तु तदर्धं वा तदर्धकम् ।
क्षीरेण पि च संभक्तं यवक्षीरमिदं स्मृतम् ।।१६
क्षीरं भागाष्टकं ग्राह्यं सप्तभागेन संस्थितम् ।
हैमन्तिकं सियाख्यं च ताण्डुलं प्रपचेच्चरुम् ।।१७
गुडामश्रेण यो दद्यात्संपर्को जायते क्वचित् ।।१८
सपृक्तं माक्षिकेणापि दद्यादिक्षुरसं बुधः ।
गृहीत्वा याचकः शुद्धः शृणुत द्विजसत्तमाः ।।१६

शृणुते वाधीयानो यो दद्याद्धस्ते च पुस्तकम् ।
समुत्थाय च गृह्णीयात्प्रणम्य विनिवेदयेत् ।।२०
पूर्वस्थः श्रावको विप्रो विख्यातस्तस्यदक्षिणे ।
पश्चिमाशामुखेनैव तर्जन्यान्गुष्ठया सह ।।२१
प्रस्तरेणापि हस्तेन विन्यासः पंडितैः सदा ।
इतोन्यथा न कर्तव्यः कृत्वा न्यासमथाप्नुयात् ।।२२

शीत जल, मधु, क्षीर और सित ईख का रस तथा गुड़ और सगर्भ पर समझना चाहिए । यह दूसरा षण्मय बलि होती है ।।१५।। शालि तण्डुल एकप्रस्थ या इससे अर्ध भाग अथवा उसका भी आधा भाग क्षीर के साथ संभक्त किया हुआ हो, इसको यवक्षीर कहा गया है ।।१६।। आठ भाग क्षीर लेना चाहिए जोकि सात भाग से संस्थित रहे। हैमन्तिक और सिताख्य तण्डुल का पाक करे यह चरु हुआ ।।१७।। जब अस्सी पल के मान वाला रहकर सिद्ध होवे तो उसे प्राप्त करना चाहिए । फिर आधा भाग माक्षिक अथवा मिश्री देना चाहिए । गुड़ के मिश्र से जो कोई देवे और कहीं सम्पर्क हो जाता है तो बुध को माक्षिक से संपृक्त में भी ईख का रस देना चाहिए । शुद्ध याचक ग्रहण करे, हे द्विजश्रेष्ठो ! तुम श्रवण करो ग्रहण करके याचक शुद्ध होता है ।।१८-१९।। श्रवण करने वाले के लिये अथवा पढ़ने वाला जो हाथ में पुस्तक देता है तो उठकर ग्रहण करना चाहिए और प्रणाम करके निवेदन करना चाहिए ।।२०।। श्रावक विप्र पूर्व में स्थित विख्यात है उसके दक्षिण में पश्चिम दिशा की ओर मुख से तर्जनी और अंगुष्ठ से,प्रस्तर हाथ से भी पण्डितों को सदा विन्यास करना चाहिए । इससे अन्यथा नहीं करना चाहिए न्यास करके प्राप्त करना चाहिये ।।२१-२२।।

असकृद्वित्यसेद्विप्राः पावमानीं जले जपेत् ।
वेदान्तागमवेदान्तविधिरेष स्मृतो बुधैः ।।२३
यमदिक्संमुखे श्रोता वाचकश्चोत्तरामुखः ।
पुराणभारताख्यान एष वै कथितो विधिः ।।२४

वैपरीत्येन विधिना विज्ञेयो द्विजसत्तमाः ।
रामायणे धर्मशास्त्रे हरिवंशे च सत्तमाः ।।२५
इतोऽन्यथा यातुधानाः प्रलुंपन्ति फलं यतः ।
तस्माद्विधिविधानेन श्रृणुयादथवा पठेत् ।।२६
श्रुत्वा प्रति पुण्यविद्यां योऽश्नीयान्मांसमेव तु ।
स याति गार्दभीं योनिं यदि मैथुनिनः क्वचित् ।।२७
यदि देवालये तीर्थे वाचयेच्छृणुयादथ ।
यस्य देवगृहे तस्त तस्य तीर्थस्य वर्णनम् ।।२८

हे विप्रो ! वार-वार विन्यास करे और पावमानी का जल में जाप करना चाहिए । महामनीषियों ने वेदान्तागम की वेदान्त विधि यह ही बताई है ।।२३।। श्रवण करने वाला यम की दिशा की ओर मुख वाला हो और वाचक उत्तर दिशा की ओर मुख वाला रहना चाहिए । पुराण और भारत के आख्यान में बह विधि कही गई है ।।२४।। हे द्विजश्रेष्ठो! रामायण, धर्मशास्त्र और हरिवंश में इसके विपरीत विधि जाननी चाहिए ।।२५।। इसके विरुद्ध करने पर यातुधान लोग इनके फल को प्रलुप्त कर दिया करते हैं । इसलिये विधि, विधान की बहुत अधिक आवश्यकता होती है । इनके विधान से ही सुनना तथा पढ़ना चाहिए ।।२६।। इस पुण्य विद्या का श्रवण करके जो मांस का अशन करता है वह गधा की योनि को प्राप्त किया करता है और जो श्रवण करके मैथुन करता है तो वह भी गधा के शरीर में जन्म ग्रहण करता है ।।२७।। यदि किसी देवालय तीर्थ में इसका वाचन या श्रवण करे तो जिसका यह देव-गृह होता है उसके तीर्थ का वर्णन होता है ।।२८।।

गुरुभ्यो वंदनं व्यर्थं पितरं यो न तर्पयेत् ।
जीवन्न तर्पयेन्मुख्यं गगायां मरणेपि च ।
उभयोस्तर्पणं नास्ति जीवन्नपि न जीवति ।।२९
पुराणश्रवणं पुण्यं शून्यं भागवतं यदि ।
व्यर्थं भागवतं विप्रा नारसिंहविहीनकम् ।।३०

आदिपर्वणि हीने तु भारताख्यं न धारयेत् ।
विनाश्वमेधिकं विप्रा विना यज्ञाननं विना ।।३१
दानकर्मविहीनं च मोक्षधर्मं न धारयेत् ।
भारतं च दिवारोहधारणादौ वरं व्रजेत् ।।३२
वायुपुराणमश्रुत्वा शास्त्रं च यौगिकं विना ।
वायुहीनं देहिकुलं वृथा तस्य न धारकम् ।।३३
तथा वायुपुराणं यद्विहीनं श्रव्यमन्यकम् ।
यथा सुन्दरकान्डेन आरण्यं च न धरयेत् ।।३४
लंकां विना चादेकान्डं तल्लिखित्वा न धारयेत् ।
पाराशरं विना व्यासं याज्ञवल्क्य विना मखम् ।।३५

यदि पितरों का तर्पण भली-भाँति नहीं किया है तो उसका गुरु के लिए बन्दना करना व्यर्थ है । गङ्गा में मृत्यु पाने पर भी जीवित रहते हुए जिसने मुख्य तर्पण नहीं किया है उन दोनों का तर्पण नहीं होता है और जीवित रहते हुये भी जीवित नहीं रहता है ।।२६।। पुराण का श्रवण करना व्यर्थ है यदि भागवत का श्रवण नहीं किया है । हे विप्रगण ! वह भागवत-श्रवण भी निष्फल है जो नारसिंह से विहीन होता है ।।३०।। आदि पर्व से हीन भारत नामक पुराण को कभी धारण नहीं करना चाहिए । दिवारोह धारण आदि में भारत परम श्रेष्ठ होता है ।।३१।। अश्वमेध के बिना और यज्ञानन के बिना तथा दान कर्म के बिना मोक्ष धर्म को धारण नहीं करना चाहिए ।।३२।। वायु पुराण का श्रवण न करके तथा यौगिक शास्त्र के बिना यह वायुहीन देही का कुल वृथा होता है और उसका धारक नहीं होता है ।।३३।। वायु पुराण ऐसा श्रवण करने के योग्य होता है कि उसके बिना अन्य सभी श्रव्य विषय व्यर्थ है जिस तरह सुन्दर काण्ड के बिना आरण्य काण्ड को कभी धारण नहीं किया जाता है ।।३४।। लंका कांड के बिना आदि काण्ड को लिखकर कभी धारण नहीं करना चाहिए । पराशर के बिना व्यास और याज्ञवल्क्य के बिना मख व्यर्थ होता है ।।३५।।

दक्षं विना न शंखं च शंखहीनं बृहस्पतिम् ।
वीक्ष्यं श्रवणाद्येन न च युक्तिमथापयेत् ॥३६

संस्थापनादेव विना न च किमपि राक्षसैः ।
न ददेत्प्रार्थकादिभ्यो न विक्रीयेत्कथन्चन ॥३७

न हरेत्पुस्तकं चापि न हरेदक्षराणि षट् ।
ब्रह्माक्षरस्य हरणाद्रौरवान्न निवर्तते ॥३८

आद्याक्षरस्य हरणात्ताम्रकुष्टी भवेदिह ।
मुखवृत्तस्य हरणाद्यावदाचन्द्रतारकम् ॥३९

कुवले असिपत्रे च पततीह न संशयः ।
स्वाक्षरस्य हरणे स्वमातृहरणेऽपि यत् ॥४०

तस्मात्पुस्तकमात्रं यो हरेन्नरकमाप्नुयात् ।
यद्भारतं यत्पुराणं स्तोत्ररूपाणि तानि च ॥४१

दक्ष स्मृति के विना शंख स्मृति और शंख स्मृति के बिना बृहस्पति स्मृति का श्रवण व्यर्थ होता है । वह्नीय श्रवण से युक्ति का स्थापन नहीं करना चाहिए ॥३६॥ संस्थापन के बिना और राक्षसों के बिना प्रार्थकादि के लिये कुछ भी नहीं देना चाहिए और किसी भी प्रकार से विक्रय भी नहीं करना चाहिए ॥३७॥ पुस्तक का कभी हरण न करे और षट् अक्षरों का भी हरण नहीं करना चाहिए । ब्रह्माक्षर के हरण करने से कभी रौरव नरक से निवृत्ति नहीं होती है ॥३८॥ आद्याक्षर के हरण से ताम्र कुष्ठी हो जाता है । मुखवृत्त के हरण करने से जब तक सूर्य, चन्द्र और तारागण इस भूमण्डल में रहते हैं तब तक कुवल और असिपत्र नरक में जाकर पड़ जाता है, इसमें संशय नहीं है । स्वाक्षर के हरण में और स्वमातृ हरण में भी यही नरक प्राप्त होते हैं । इससे कोई भी पुस्तक का जो हरण किया करता है वह नरक में अवश्य ही जाता है । चाहे भारत हो या पुराण हो या कोई केवल स्तोत्र मात्र ही क्यों न हों । ये सभी स्तोत्र के ही स्वरूप होते हैं ॥३९-४१॥

परमं प्रकृतेर्गुह्यं स्थानं देवैर्विनिर्मितम् ।
पूरयेत्ताम्रलिगेन अथ रैत्यमयेन वा ॥४२
अशक्तो बिल्वकाष्ठस्य तथा श्रीपर्णिकस्य च ।
न काष्ठस्य नवं शस्यं न लौहं योजयेत्क्वचित् ॥४३
प्रागारंभश्लोकशतं धर्मशास्त्रस्य वै लिखेत् ।
संहिताया पुराणायां युग्मकल्पं तदर्धकम् ॥४४
ब्रह्मचर्येण विलिखेन्न मोहाद्ब्राह्मण: क्वचित् ।
तथापि चाखिलव्यास लेखनात्सन्ततिक्षय: ॥४५
अनामात्वे हेमयुतां बलाकं चित्तमेव च ।
न लिखेत्खिलभानं च हरिवंशस्य सत्तमा: ॥४६
गारुडस्य च स्कान्दस्य न लिखेन्मध्यतन्त्रकम् ।
लेखनं हरिवंशस्य व्रतस्थो नियमैर्युत: ॥४७
गृहस्थो न लिखेद्ग्रंथं लिखेच्च मथुरां विना ।
लेखने पारिजातस्य मत्स्यमांसाशिनं लिखेत् ॥४८
बाल्मीकिसंहितायाश्च लेखनं च तथा क्वचित् ।
स्तोत्रमात्रं लिखेद्विप्रा अव्रती न लिखेत्क्वचित् ॥४९

प्रकृति का परम गुह्य स्थान जो कि देवों के द्वारा विनिर्मित हुआ है उसे ताम्र लिङ्ग से अथवा रैत्यमय से पूरित करना चाहिए ॥४२॥ यदि शक्ति हीनता हो तो बिल्व के काष्ठ तथा श्री पर्णिक के काष्ठ से करे। काष्ठ का भी नव अच्छा नहीं होता है। लौह का तो कभी योजित नहीं करना चाहिए ॥४३॥ पहिले आरम्भ में धर्म शास्त्र के सौ श्लोक लिखने चाहिए। पुराण संहिता में युग्म कल्प उसका आधा लिखे ॥४४॥ लेखन ब्रह्मचर्य के नियम से ही करना चाहिए। मोह से कहीं ब्राह्मण समस्त व्यास का लेखन करे तो सन्तति का क्षय होता है ॥४५॥ अनामात्व में हेमयुता, बलाक और चित्त को ही नहीं लिखना चाहिये। हे सत्तम ! हरिवंश के सम्पूर्ण भाग को नहीं लिखो ॥४६॥ गारुड़ और स्कन्द के मध्य तन्त्र को नहीं लिखना चाहिये। हरिवंश का लेखन व्रत में स्थित होकर और नियमों

से युक्त रह कर ही करना चाहिये ।।४७।। गृहस्थ को ग्रन्थ नहीं लिखना चाहिये और लिखे तो मथुरा के बिना लिखे। लेखन में पारिजात के मत्स्य मांसाशी को लिखना चाहिये। वाल्मीकि संहिता को किसी समय लिखना हो तो स्तोत्र मात्र ही लिखे और बिना व्रत वाला होकर नहीं लिखना चाहिये ।।४८-४६।।

।। पूर्तकर्म तथा वृक्षारोपण ।।

अन्तर्वेदि प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणोक्तं युगान्तरे।
बहिर्वेदं तथैवोक्तं शस्तंस्याद्द्वापरे कलौ ।।१
ज्ञानसाध्यं तु यत्कर्म अन्तर्वेदीति कथ्यते।
देवतास्थापनं पूजा बहिर्वेदिरुताहृता ।।२
प्रपापूर्तादिकं चैव ब्राह्मणानां च तोषणम्।
गुरुभ्यः परिचर्या च बहिर्वेदी द्विधा मता ।।३
अकामेन कृतं कर्म कर्म च व्यसनादिकम्।
अन्तर्वेदी तदेवोक्तं बहिर्वेदी विपर्ययः ।।४
धर्मस्य कारणं राजा धर्मभेतद्भवेन्नृपः।
तस्मान्नृपं समाश्रित्य बहिर्वेदो ततो भवेत् ।।५

इस अध्याय में अन्तर्वेदि-वहिर्वेदि प्रमाण आदि के वर्णन के साथ पूर्त कर्म का निरूपण किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—अब मैं अन्तर्वेदि को बतलाता हूँ जो कि युगान्तर में ब्रह्माजी ने कहा था। उसी प्रकार से बहिर्वेदि ने भी कहा था जो कि द्वापर में और कलियुग में प्रशस्त होता है। जो कर्म ज्ञान के द्वारा साध्य होता है वह अन्तर्वेदि कर्म कहा जाता है। देवता की स्थापना तथा देवता का पूजन का कर्मंवदि वेंदि कर्म कहा गया है ।।१-२।। प्रपा पूर्त आदि और ब्राह्मणों को तोषण करना गुरु वर्ग की परिचर्या करना यह बहिर्वेदि कर्म है जो कि दो प्रकार का माना गया है ।।३।। बिना किसी 'कामना के किया हुआ कर्म और जो बहिर्वेदि के विपर्यय होता है वही अन्तर्वेदि कहा गया है ।।४।। धर्म

का कारण राजा होता है और नृप का समाश्रय करके फिर बहिर्वेदि होना चाहिये ॥५॥

सप्ताशीतिर्बहिर्वेदी सारमेषां तृतीयकम् ।
देवतास्थापनं चैव प्रासादकरणं तथा ॥६
तडागकरणं चैव तृतीयं त चतुर्थकम् ।
पंचमं पितृपूजा च गुरुपूजापुरः सरा ॥७
अधिवासः प्रतिष्ठा च देवतानामविक्रिया ।
प्रतिमाकरणं चैव वृक्षाणामथ रोपणम् ॥८
त्रिविधा सा विनिर्दिष्टा उत्तमा चाथ मध्यमा ।
कनिष्ठा शेषकल्पश्च सर्वकार्येष्वयं विधिः ॥९
त्रिधा भवति सर्वत्र प्रतिष्ठादिविधिर्मतः ।
पूजाहोमादिभिर्दानैर्मानतश्च त्रिभागतः ॥१०

बहिर्वेदी कुल सत्तासी होते हैं किन्तु इन सबका सार तीन हैं। किसी देवता की स्थापना करना तथा किसी प्रासाद का निर्माण करना और तड़ाग का बनवाना ये तीन सार स्वरूप हैं। इनके अतिरिक्त चौथा नहीं पाँचवाँ पितृगण की पूजा है जो गुरु पूजा के पुरस्सर होती है ॥६-७॥ अधिवास-प्रतिष्ठा और देवताओं की अविक्रिया प्रतिमा का करना, वृक्षों का आरोपण इस तरह वह उत्तम मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार की निर्दिष्ट की गई है। और शेष कल्प समस्त कार्यों में यही विधि होती है ॥८-९॥ यह तीन भाग वाली होती है और सब जगह प्रतिष्ठा आदि की विधि मानी गई है। पूजा होम आदि दान और मान इसके तीन भाग किये जाते हैं ॥१०॥

शोधयेत्प्रथमं भूतिं मितां कृत्वा ततो द्विजाः ।
दशहस्तेन दण्डेन पञ्चहस्तेन वा पुनः ॥११
वाहयेत्सदा वृषभैस्तडागार्थेऽपि भूमिकाम् ।
देवगारस्य या भूमिः श्वेतैश्च वृषभैरपि ॥१२

या भूमिर्ग्रहयागार्थे तन्न वाहैरपि स्पृशेत् ।
आरामार्थे कृष्णवृषैः कूपार्थखननैरपि ॥१३
वाहयेत्त्रिदिनं विप्राः पञ्चव्रीहींश्च वापयेत् ।
देवपक्षे सप्तगुण आरामकरणे गुणः ॥१४
मुद्गमाषौ धान्यतिलाः श्यामाकश्चेति पञ्चमः ।
मसूरश्च कलायश्च सप्तव्रीहिगणः स्मृतः ॥१५
सर्षपश्च कलायश्च मुद्गो माषश्चतुर्थकः ।
व्रीहित्रयं माषमुद्गौ श्यामाको महिषो गणः ॥१६
सुवर्णमृत्तिका ग्राह्या वर्णानामनुपूर्वशः ।
बिल्ववृक्षैरियं कुर्याद्यूपशून्यध्वजे दिने ॥१७

इस अध्याय में आराम कर्म और विविध प्रकार के वृक्षों के आरोपण करने की विधि का वर्णन किया जाता है । श्रीसूतजी ने कहा—हे द्विजगण! सर्व प्रथम भूमि का भली-भाँति शोधन करना चाहिए इसके अनन्तर उसे मित्त करे अर्थात् दश हाथ के दण्ड से अथवा पाँच हाथ के दण्ड से उसका ठीक मान कर लेना चाहिए ॥११॥ तड़ाग निर्माण करने के लिए भूमि को सदा बैलों के द्वारा वाहित कराना चाहिये । जो भूमि देवता के आलय बनाने के लिए ली गई हो उसे श्वेत अङ्ग के वृषभों से जुताना चाहिए । जो भूमि गृहयाग के लिए हो उसे बाहों से स्पर्श नहीं कराना चाहिए । जो आराम के लिए भूमि हो अथवा कुए के खुदाने के लिए भूमि हो उसे कृष्ण वर्ण के वृषों से जुतवाना चाहिए । हे विप्रगण ! इस तरह तीन दिन एक वाहन करावे और उसमें पञ्च व्रीहियों का वपन कराना चाहिए । देव पक्ष में और आराम करण में सात गुना अर्थात् सात धान्य बुवाने चाहिए । मुद्ग (मूँग), माष (उर्द), धान्य, तिल और पाँचवा श्यामाक, मसू और कलाय ये सात व्रीहियों का गण कहा गया है ॥१२-१५॥ सर्षप (सरसों), कलाय, मुद्ग, माष, व्रीहीत्रय, मुद्ग, माष और श्यामाक यह महिषगण होता है । सुवर्ण मृत्तिका ग्रहण करनी चाहिए जो कि वर्णों के आनुपूर्वी से हो । विल्व वृक्षों से इसे यूपशून्य ध्वज दिन में करनी चाहिए ॥१६-१७॥

अरत्निमात्रं विज्ञेयं प्रशस्तं यष्टिहस्तकम् ।
ऊर्णासूत्रमयीं मूर्ति कृत्वा कुर्याच्चतुष्टयम् ।।१८
क्षीरदारुगर्तयुतं द्वादशांगुलमेव च ।
ज्वालयेत्तिलतैलेन तथा केशरजेन वा ।।१९
पूर्वदिक्प्रणवे सिद्धिः पश्चिमाशागतिः शुभा ।
मरणे दक्षिणानां च हानिः स्यादुत्तरे स्थिते ।।२०
कल्पे विपत्करं विद्यात्तथा चैव च दिग्गते ।
नारसिंहेन मनुना चाग्नि प्रज्वाल्य दापयेत् ।।२१
मासे घटे तथा मासे कुर्यादभूमिपरिग्रहम् ।
सूत्रयेत्कीलयेत्पश्चान्महामाने द्विजोत्तमाः ।।२२
ततो वास्तुबलिं दद्यात्खनित्रं परिपूजयेत् ।
आब्रह्मन्निति मन्त्रेण खनयेन्मध्यदेशतः ।।२३

अरत्नि मात्र यष्टि हस्तक प्रशस्त जाननी चाहिए । ऊन और सूत्रमयी मूर्त्ति करे और चार करनी चाहिए ।।१८।। क्षीर दारु गर्त्त से युक्त और बारह अंगुल प्रमाण वाले को तिल के तैल से अथवा केश रज से जलवाना चाहिये ।।१९।। पूर्व दिक्प्रणव में सिद्धि होती है । यदि पश्चिम दिशा की गति हो तो वह भी शुभ मानी जाती है । दक्षिण दिशा मे गति होने से मरण होता है और यदि उत्तर में गति हो तो हानि होती है ।।२०।। कल्प में विपत्ति के करने वाला होता है और दिग्गत में भी उसी प्रकार से होता है । नारासिंह मन्त्र के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करा कर दिलवाना चाहिये ।।२१।। मास घट में तथा मास में भूमि का परिग्रह करना चाहिए । हे द्विजश्रेष्ठो ! पश्चात् महामान में उसे सूत्रापित और कीलित करना चाहिए ।।२२।। इसके अनन्तर वास्तुदेव के लिए बलि देवे और खनित्र का पूजन करना चाहिए । "आ ब्रह्मन्"– इत्यादि मन्त्र के द्वारा मध्यदेश में खनन कराना चाहिए ।।२३।।

पत्रपुष्पफलानां च रजोरेणुसमागमाः ।
पोषयान्ति च पितरं प्रत्यहं प्रतिकर्मणि ।।२४

यस्तु वृक्षं प्रकुरुते छायापुष्पफलोपगम् ।
पथि देवालये चापि पापात्तारयते पितृन् ।
कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रत्यभ्येति शुभं फलम् ।।२५
अतीतानागताश्चातः पितृन्स स्वर्गतो द्विजाः ।
तारयेद्वृक्षरोपि च तस्माद्वृक्षं प्ररोपयेत् ।।२६
अपुत्रस्य हि पुत्रत्त्वं पादपा इह कुर्वते ।
यत्नेनापि च विप्रेंद्रा अश्वत्थारोपणं कुरु ।।२७
शतैः पुत्रसहस्राणामेक एव विशिष्यते ।
कामेन रोपयेद्विप्रा एकद्वित्रिप्रसंख्यया ।।२८
मुक्तिहेतुः सहस्राणां लक्षकोटीनि यानि च ।
धनी चाश्वत्थवृक्षे च अशोकः शोकनाशनः ।।२९
प्लक्षो भार्याप्रदश्चैव बिल्व आयुष्यदः स्मृतः ।
धनप्रदो जंबुवृक्षो ब्रह्मदः प्लक्षवृक्षकः ।।३०

पत्र, पुष्प और फलों के रज-रेणु के समागम प्रतिदिन प्रति कर्म में पितृगण का पोषग किया करते हैं ।।२४।। जो वृक्ष छाया देता है, पुष्प देता है और फल दिया करता है और मार्ग में या देवालय में रहता है वह पितृगण को पाप से तार दिया करता है । ऐसे स्थान में समारोपित छाया, पुष्प एवं फलों के देने वाला वृक्ष इस मनुष्य लोक में कीर्त्ति देता है और शुभ फल प्राप्त कराता है ।।२५।। जो पितृगण हो चुके हैं और जो आगे होने वाले हैं उन सब पितरों को वह स्वर्गगत होकर वृक्षों का रोपण करने वाला तार देता है । इसलिए वृक्षों का रोपण अवश्य कराना चाहिए ।।२६।। इस लोक में जो मनुष्य पुत्रहीन हो उसको ये समारोपित हुए वृक्ष पुत्र वाला कर देते हैं । इसलिए हे विप्रेन्द्र वर्ग ! यत्न पूर्वक भी अश्वत्थ (पीपल) के वृक्ष का आरोपण अवश्य ही करो ।।२७।। सैकड़ों और सहस्रों पुत्रों से यह एक ही विशेषता रखता है । अतः कामना से एक, दो और तीन संख्या में वृक्षों का आरोपण अवश्य करना चाहिए ।।२८।। यह अश्वत्थ वृक्ष का समारोपण मुक्ति के प्रदान करने का हेतु होता है । लाखों और करोड़ों के धन का धनी

बनाने वाला होता है। जो अशोक का वृक्ष है वह समारोपित होकर शोक का नाश कर देने वाला होता है ॥२६॥ प्लक्ष (पा र का वृक्ष आरोपित होकर भार्या का प्रदाता होता है और बिल्व वेल) का वृक्ष आयुष्य के प्रदान करने वाला है। जामुन का वृक्ष धन प्रदान किया करता है तथा प्लक्ष वृक्ष ब्रह्म का देने वाला होत. है ॥३०॥

तिंदुकात्कुलवृद्धिः स्याद्दाडिमी कामिनीप्रदः।
बकुलो वन्जुलश्चैव पापहा बलबुद्धिदः ॥३१
स्वर्गप्रदा धातकी स्याद्वटो मोक्षप्रदायकः।
सहकारः कामप्रदो गुवाकः सिद्धिमादिशेत् ॥३२
सर्वशस्यं बलवले मधुके चार्जुने तथा।
कदंबे विपुला कीर्तिस्तितिडा धर्मदूषिकः ॥३३
जीवंत्या रोगशान्तिः स्यात्केशर. शत्रुमदनः।
धनप्रदश्चैव वटो वटः श्वेतवटस्तथा ॥३४
पनसे मन्दबुद्धिः स्यात्कलिवृक्षः श्रियं हरेत्।
कलिवृक्षं च शाखोट उदरावर्तकंतथा ॥३५
तथा च मर्कटौनीपरोपणात्संततिक्षयः।
शिंशपां चार्जुनं चैव जयन्ती हयमारकान्।
श्रीवृक्षं किंशुकं चैव रोपणात्स्वर्गमादिशेत् ॥३६
न पूर्वारोपयेज्जातु समिधं कन्टकीद्रुमम्।
कुशं पद्मं जलजानां रोपणाद्दुर्गतिं व्रजेत् ॥३७

तिन्दुक के वृक्ष का समारोपण करने से कुल की वृद्धि होती है और दाड़िम (अनार) का वृक्ष का.मनी के देने वाला है। वकुल और वजुल का वृक्ष पापों का हनन करते हैं और बल तथा बुद्धि के देने वाले होते हैं। घात की वृक्ष स्वर्ग का प्रदान करने वाला होता है तथा वट के वृक्ष का आरोपण मोक्ष प्रदान किया करता है। आम का वृक्ष कामना पूर्ण करने वाला है और गुवाक का वृक्ष सिद्धि प्रदायक होता है। बलव वल, मधुक और अर्जुन वृक्षों में सब प्रकार शस्य देने की सामर्थ्य होती

है। कदम्ब वृक्ष के आरोपण से विपुल कीर्त्ति की प्राप्ति होती है। तितड़ी का वृक्ष धर्मदूषिक होता है। जीवन्ती में रोग की शान्ति होती है और केशर वृक्ष शत्रु के मर्दन करने वाला है। वट वृक्ष धन प्रदान करने वाला है और श्वेत वट भी धन प्रदाता होता है। पनस का वृक्ष से मन्द बुद्धि होती है और कलि वृक्ष श्री का हरण किया करता है। कलिवृक्ष, शाखोट, उद्रावर्त्तक, मर्कटी, नीप इनके रोपण से सन्तति का क्षय होता है। शिशया, अर्जुन, जयन्ती, हमपारक, श्री वृक्ष, किंशुक इन वृक्षों के रोपण करने से स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है। पूर्वा का कभी रोपण न करे। समिध और कण्टकी, द्रुम, कुश, पद्म और जलज के वृक्षों के रोपण से दुर्गति को प्राप्त होता है ।।३१-३७।।

अथ तन्त्रविधिं वक्ष्ये पुराणेष्वति गीयते।
तन्त्रे चैव प्रतिष्ठां च कुर्यात्पुण्यतमेऽहनि ।।३८
शतवृक्षक्षुद्रवृक्षे दशद्वादश वृक्षके।
दृष्टिमात्रान्तरे सेतौ कूपयागे समुत्सृजेत् ।।३९
न कूपमुत्सृजेज्जातु वृक्षयागे कथन्चन।
तुलसीवनयागे तु न चान्यं यागमाचरेत् ।।४०
तडागयागे सेत्वादीन्न चारामे कदाचन।
न सेतु देवयागे तु तडागं न ससुत्सृजेत् ।।४१
तन्त्रे श्राद्धं पृथङ्नास्ति कर्तुर्भेदे पृथग्भवेत्।
शिवलिंग स्थापनायां न चान्यद्देवस्थापनम् ।।४२

इस अध्याय में कूप, वापी और तालाब की प्रतिष्ठा में विशेष विधि का वर्णन किया जाता है। सूतजी बोले—यहाँ पर अब मैं तन्त्र विधि को बतलाऊँगा जिसका कि पुराणों में भी गान किया जाता है। तन्त्र में प्रतिष्ठा का कर्म किसी परम पुण्यतम दिन में करना चाहिये। छोटे शत वृक्ष में, दशद्वादश वृक्ष में, दृष्टिमात्र अन्तर वाले से तुमें कूपयाग में समुत्सृजन करना चाहिये। वृक्षयाग में किसी भी प्रकार से कूप का कभी उत्सृजन नहीं करना चाहिये तुलसी वन के याग में तो अन्य कोई

भी याग नहीं करनी चाहिये । तड़ाग याग में और आराम में सेतु आदि का उत्सृजन कभी न करे । देवयाग में सेतु और तड़ाग का समुत्सृजन नहीं करना चाहिये । तन्त्र में श्राद्ध प्रथक् नहीं होता है केवल कर्त्ता के भेद से ही उसमें पार्थक्य हुआ करता है । शिवलिंग की स्थापना में अन्य किसी भी देव की स्थापना नहीं होती ॥३८-४२॥

स्वदेशे वर्जयेत्तंतं स्वतन्त्रेण विधीयते ।
विपरीते कृते चापि आयुःक्षय इति स्मृतिः ॥४३
तडागे पुष्करिण्यां वा आरामेऽपि द्विजोत्तमाः ।
मानहीने मानपूर्णे दशहस्ते न दूषणम् ॥४४
द्विसहस्राधिकं यत्र तत्प्रतिष्ठां समाचरेत् ।
दश द्वादशवृक्षे च आरामे पूववद्द्विजाः ॥४५
प्रतिष्ठां बिल्ववृक्षे त्र अन्यथा कणवेधनम् ।
कुर्याद्दोहददानं च तत्र निर्मंथनादिकम् ॥४६
अनन्तरं प्रदातव्या लाजा मूर्ध्न्यक्षतादिकम् ॥४७

उसको अपने देश में वर्जित कर देना चाहिए और स्वतन्त्र रूप से करना चाहिए । इसके विपरीत करने से आयु का क्षय होता है–ऐसा स्मृति कहती है । हे द्विजोत्तमो ! तड़ाग में अथवा पुष्करिणी में और आराम में भी मानहीन, मानपूर्ण और दशहस्त में कोई भी दूषण नहीं होता है । जहाँ पर दो सहस्त्र से अधिक हो वहाँ प्रतिष्ठा करनी चाहिए । हे द्विजगण ! दश द्वादश वृक्ष में आराम में तो पूर्व की भाँति ही करना चाहिए । विल्व वृक्ष में प्रतिष्ठा करे अन्यथा कर्णवेधन, दोहद दान और वहाँ निर्मन्थमादिक करना चाहिये । इसके अनन्तर मूर्द्धा पर लाज और अक्षत आदि का प्रक्षेपण करना चाहिये ॥४३-४७॥

॥ विविधविधिकुण्डनिर्णय ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि कुण्डानामथ निर्णयम् ।
तस्योद्धारं च सस्कारं शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१

चतुरस्रं च वृत्तं च पादार्धं चार्धचन्द्रकम् ।
योन्याकारं चन्द्रकं च अष्टार्धमथपंचमम् ॥२
सप्तार्धं च नवार्धं च कुंडं दशकमीरितम् ।
भूमिं संशोध्य विधिवत्तुषकेशादिवर्जिताम् ॥३
भ्रामयेच्चोध्वतस्तस्या भस्मांगाराणि यत्नतः ।
अंकुरापणकं कुर्यात्सप्ताहादेव बुद्धिमान् ॥४
स्थानं विमर्दितं कुर्यात्खनित्वा सेचयेज्जलैः ।
पुष्टिहस्तोच्छ्रायमित प्रकुर्यात्परिसूत्रयेत् ॥५
अर्कांगुलमितं सूत्रं चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ।
अष्टादशांगके क्षेत्रे न्यसेदेकं बहिस्ततः ॥६
मापयेत्तेन मानेन त्रिवृत्तं कुन्डमुज्ज्वलम् ।
पूर्ववद्विभजेत्क्षेत्रं भागकं पुरतो न्यसेत् ॥७

इस अध्याय में कर्म विशेषों की प्रधानता होने से अनेक प्रकार के विधि कुण्डों के निर्णय का निरूपण किया है। सूतजी ने कहा—अब इससे आगे हम कुण्डों के निर्णय के विषय में बतायेंगे। हे द्विजश्रेष्ठो! कुण्डों का उद्धार और संस्कार का तुम श्रवण करो। कुण्ड कई प्रकार के होते हैं—चौकोर, वृत्त (गोलाकार), पादार्ध, अर्धचन्द्रक योनि, के समान आकार वाला चन्द्रक, अष्टार्ध, पञ्चम सप्तार्ध, नवार्ध इस तरह ये दश प्रकार के कुण्ड बताये गये हैं। विधि के अनुसार भूमि का संशोधन करे जहाँ कि तुष और केश आदि न हों। उसके ऊपर यत्न से भस्माङ्गारों का भ्रामन करावे। बुद्धिमान को एक सप्ताह में ही अंकुरारोपण करना चाहिये। कुण्ड का जो स्थान हो उसे विशेष रूप से मर्दित करे और खोद कर जल से सेचन करे। पुष्टि हस्त उच्छ्राय वाला होना चाहिये और उसे परिसूत्रित करना चाहिये। बारह अंगुल परिमाण वाला सूत्र चतुरस्त प्रकल्पित करे। अष्टादश अङ्ग वाले क्षेत्र में एक न्यास करे फिर उससे बाहिर उस मान से उसका माप करे। त्रिवृन्त उज्ज्वल कुण्ड होता है। इसी प्रकार से पूर्व की भाँति क्षेत्र का विभाजन करे और एक भाग आगे की ओर रक्खे ॥१-७॥

वृत्तानि कालिकादीनि बहिस्त्रीणि विवर्जयेत् ।
पद्मकुंडमिदं प्रोक्तं विलोचनमनोहरम् ॥८
दशधा भेदयेत्क्षेत्रे उर्ध्वाधोर्ध्वांगुलद्वयम् ।
संपरिपातयेत्सूत्रं पाटयेत्तत्प्रमाणतः ॥९
पंचधा भेदिते क्षेत्रे कामं वा विभजेत्सुधाः ।
न्यसेत्पुरस्तादेवांगं कोणार्धार्धप्रमाणतः ॥१०
योनिस्थानं प्रतिष्ठाप्य अश्वत्थस्य दलाकृति ।
सूत्रद्वयं ततो दद्यात्कुंडं परिमितं भवेत् ॥११
चतुरस्त्रं समुद्धृत्य सूत्रं संकल्पयोगतः ।
दिशं प्रति यथान्यायं पातयेच्च द्विजोत्तमाः ॥१२
शृंगाटकं युग्मपुटं षडस्त्र कुंडत्रयं बुधाः ।
जलाशयारामकूपे नित्ये गृहमये यथा ॥१३
चतुस्त्रं भवेत्कुंडं द्विजसंस्कारकर्मणि ।
देवप्रतिष्ठायागे च गृहवास्तौ चतुर्थकम् ॥१४

कालिकादि तीन वृत्तों को बाहिर विवर्जित कर देना चाहिये । इसको पद्म कुण्ड कहा गया है जो कि भगवान् विलोचन को परम सुन्दर लगता है ॥८॥ क्षेत्र में दश प्रकार से भेदन करे । ऊर्ध्व भाग में, अधो भाग में दो अंगुल रक्खे और सूत्र को संपरिपातित करे तथा उसी प्रमाण से उसे पाटित भी करना चाहिए । पाँच प्रकार से भेदित क्षेत्र में अथवा विद्वान को यथेच्छा से विभाजन करना चाहिए और कोणार्धार्ध प्रमाण से पहले ही अङ्ग का न्यास करना चाहिए ॥९-१०॥ योनिस्थान को प्रतिष्ठापित करके पीपल के पत्तें का आकृति वाला बनावे फिर दो सूत्र देवे जिससे कुण्ड परिमित होवे । चतुरस्त्र सूत्र लेकर संकल्प के योग से दिशा के प्रति न्यायानुसार पातन करना चाहिए ॥११-१२॥ हे द्विजोत्तमो! शृङ्गाटक, युग्मपुट और षडस्त्र ये तीन प्रकार के कुण्ड होते हैं । जिस तरह जलाशय, आराम कूप और नित्य गृहमय में होते हैं । द्विजों के संस्कार के कर्मों चतुरस्त्र कुण्ड होता है । देव प्रतिष्ठ याग में और गृह वास्तु में चतुर्थक होता है ॥१३-१४॥

वसुन्धरायोगभेदे प्रपन्चे वर्तमादिशेत् ।
सोमेऽष्टौ पंकजं प्रोक्तं नरमेधाश्वमेधयो: ।।१५
अंकुरार्पणयागे च वैष्णवे यागकर्मणि ।
शिवदेव्योश्च जन्मादावष्टाम्यां चार्धचन्द्रकम् ।।१६
मार्जारपौष्टिके वैरं रम्ये च शान्तिके तथा ।
शान्तिप्रतिष्ठायागे तु शाक्तानां काम्यकर्मणि ।।१७
पुरश्चरणकाम्येषु ज्वरादीनां विमोक्षणे ।
एवंविधेषु कार्येषु योनिकुण्डं प्रशस्यते ।।१८
देवतातीर्थयात्रादौ महायुद्धप्रवेशने ।
सौरे शान्ते पौष्टिके च षट्पुरं कुण्डमुत्तमम् ।।१९
मारणोच्चाटने चैव तथा रोगोपशान्तये ।
वैष्णवानां कोटिहोमे नृपाणामतिशोचने ।।२०
अष्टास्रमब्जकुन्डं च सप्तास्रं निधिसाधने ।
राज्ञा साध्ये च पंचास्रं कन्याप्राप्तौ त्रिरस्रकम् ।।२१

वसुन्धरायोग भेद में प्रपञ्च में वर्त्त का आदेश देना चाहिए । सोम में आठ और नरभेद तथा अश्वमेध यागों में पंकज कहा गया है ।।१५।। अङ्कुरार्पण याग में, वैष्णव याग कर्म में, शिव और देवी के जन्मादि में और अष्टमी में अर्ध चन्द्रक कुंड का निर्माण कराना चाहिये । मार्जार पौष्टिक में वैर में, रम्य शान्तिक, शान्ति प्रतिष्ठायाग और शाक्तों के काम्य कर्म में एवं काम्य पुरश्चरणों में तथा ज्वरादि के विमोक्षण कर्म में इस प्रकार के जो कर्म होते हैं उनमें योनि कुंड ही प्रशस्त कहा जाता है ।।१६-१८।। देवता तीर्थ यात्रादि में महायुद्ध के प्रवेश में, सौर, शान्त और पौष्टिक कर्म में षडपुर नामक कुंड उत्तम माना जाता है । मारण, उच्चाटन, रोगोपशान्ति, वैष्णवों का कोटि होम और नृपों के अतिमोचन में अष्टास्र अब्ज कुंड होना चाहिए । निधि के साधग में सप्तास्र कुंड श्रेष्ठ कहा गया है । राजा के द्वारा साध्य में पञ्चास्र कुंड और कन्या की प्राप्ति में त्रिरस्रक कुंड होना चाहिए ।।१९-२१।।

यावन्निम्नं भवेदेव विस्तारस्तावदेव तु ।
कुण्डानुरूपतः कार्या मेखला सर्वतो बुधैः ॥२२
अयुतादिषु होमेषु मेखलां योजयेत्सुधीः ।
निम्नप्रमाणे चात्रापि मूले सार्धांगुलं त्यजेत् ॥२३
कोणवेदरसैर्मानं यथायोग्यमनुक्रमात् ।
मुष्टिहस्ते समुत्सेधो सार्धांगुलपरिष्कृतः ॥२४
अरत्निमात्रे कुण्डे तु त्रिश्चकांगुलतः क्रमात् ।
एकहस्तमिते कुण्डे वेदाग्निनयनान्गुलाः ॥२५
सप्तमेखलकं युक्तं लक्षहोमे न शस्यते ।
पन्चमे खलकं लथकोटयां च योजयेत् ॥२६
एकांगुलादिमानेन नेमिं संवर्धयेत्सुधीः ।
चतुर्हस्तमिते कुण्डे तावदेव गुणांगुलाः ॥२७
वसुहस्ते भानुपंक्तिर्युग्महोनेऽपि ताः क्रमात् ।
सर्वाः समा ग्रहमखे मेखलाश्च सहस्रके ॥२८

कुण्ड जितना नीचे गहरा हो उसका उतना ही विस्तार भी होना चाहिए। बुधों को कुंड के अनुरूप ही सब ओर से मेखला भी बनानी चाहिये ॥२२॥ सुधी पुरुष को अयुतादि होमों में मेखला को योजित करना चाहिए। निम्न के प्रमाण में यहाँ पर भी मूल में डेढ़ अंगुल का त्याग कर देना चाहिए। कोण वेद रसों से यथा योग्य अनुक्रम से मान रखे, मुष्टिहस्त में सार्धांगुल परिष्कृत समुत्सेध होना चाहिए ॥२३-२४॥ जो कुंड अरत्नि मात्र हो उसमें तो तीन और एक अंगुल के क्रम में रक्खे। एक हाथ परिमित जो कुंड हो उसमें वेद, अग्नि और नयन (अर्थात् चार तीन और दो) अंगुल मेखला होनीं चाहिए ॥२५॥ सात मेखलाओं से युक्त कुंड लक्ष होम में प्रशस्त नहीं कहा जाता है। लक्ष कोटि में पाँच मेखलाओं वाला कुंड की योजना करनी चाहिए ॥२६॥ सुधी को एक अंगुल आदि मान से नेमि को सर्वधित करना चाहिए। जो कुंड चार हाथ के परिस्तण वाला हो उसमें उतनी ही अंगुल वाली मेखला होनी चाहिये। आठ हाथ के परिमाण वाले कुंड में भानु पक्ति होती है और

युग्म हीन में भी वेदी क्रम से होती हैं। ग्रह मुख में भी समान और सहस्रक मेखलाऐं हुआ करती हैं ॥२७-२८॥

पार्श्वतो योजयेत्तत्र मेखलास्ता यथाक्रमम् ।
सार्धांगुलादिमानेन नेभि संवर्धयेत्सुधीः ॥२९
एकमेखलयागेन योजयेच्छक्तिभावतः ।
होमाधिक्ये बदुफलमन्यून नाधिकं भवेत् ॥३०
कुण्डस्य रूपं जानीयात्परमं प्रकृतेर्वपुः ।
ततो होमे शतगुण स्थंडिले स्वल्पकं फलम् ॥३१
षट्चतुर्धा गुणायामविस्तारोन्नतिशालिनी ।
एकांगुलं तु योन्यग्रं कुर्यादीषदधामुखम् ॥३२
एकैकांगुलतो योनिं कुण्डशून्येषु वर्धयेत् ।
सममध्ये मेखलायाः सपर्या या सुलक्षणा ॥३३
स्थापयेत्कुण्डकोणेषु योनिं तां द्विजसत्तमाः ।
कुण्डानां कल्पयेन्नाभि स्फुटमंबुजसन्निभाम् ॥३४
तत्तु कुंडानुरूपं वा सुव्यक्तं सुमनोहरम् ।
योनिकुण्डे योनिमब्जं कुण्डे नाभि च वर्जयेत् ॥३५

वहाँ पर उन मेखलाओं को यथाक्रम पार्श्व से योजित करना चाहिए। सुधी पुरुष को सार्धांगुल मान से उसकी नेमि को सवर्धित करना चाहिए ॥२९॥ एक मेखला वाले भाग से शक्ति भाव के अनुसार योजित करना चाहिए। होम की अधिकता में बहुत फल होता है। अन्यून अधिक नहीं होता है ॥३०॥ कुण्ड के रूप को अवश्य ही जान लेना चाहिए। यह प्रकृति का परम वपु होता है। इससे होम सौगुना हो जाता है और स्थण्डिल में स्वल्प फल वाला रहा करता है।॥३१॥ षट् और चार प्रकार से गुणायाम विस्तार और उन्नति वाली योनि होती है और योनि का अग्रभाग एक अंगुल थोड़ा नीचे की ओर मुख वाला करना चाहिए। एक-एक अंगुल से कुंड शून्यों में योनि को बढ़ाना चाहिए मेखला के सम मध्य में जो सपर्या होती है वह अच्छे लक्षणों वाली होती है ॥३२-३३॥

हे द्विज श्रेष्ठो ! उस योनि को कुंड कोणों में स्थापित करना चाहिए। कुंडों की नाभि की कल्पना करें जो कि एक विकसित कमल के समान हो। और वह कुंड के अनुरूप हो अथवा सुस्पष्ट एवं सुमनोहर हो। योनि कुंड में योनि और कुंड में अब्ज और नाभि को वर्जित कर देना चाहिए ॥३४- ५॥

यावद्द्वयप्रमाणेन अर्धांगुलक्रमाद्बहिः ।
नाभिं प्रवर्धयेदेकं कुण्डानां रूपतो यथा ॥३६
तत्र तत्र भवेत्कुण्डं बिंबशून्यं न होमयेत् ।
शिवशक्तिसमायोगात्काम उत्पद्यते यतः ॥३७
अवटोपि उमादेवी बिंबः ख्यातः सदाशिवः ।
न कुर्यादेकया हीनं मरणं च समुद्दिशेत् ॥३८
त्रयोदशांगुलं हित्वा वह्निहस्तमथापि वा ।
महातीर्थे सिद्धक्षेत्रे यत्र शंभुगृहे कुले ॥३९
तस्य दक्षिणदिग्भागे अग्रतो मण्डलं लिखेत् ।
तत्र पूजा प्रकर्तव्या पूर्वमानेन चाश्रयेत् ॥४०
अर्कहस्तान्तरे कुर्याच्छतोध्र्वांते शतेन वा ॥४१

यावद् द्वय प्रमाण से बाहिर अर्ध अंगुल क्रम से नाभि को बढ़ाना चाहिए जैसा कि कुंडों का रूप हो उसी के अनुसार बढ़ावे ॥३६॥ वहाँ-वहाँ पर कुंड होना चाहिए और जो बिम्बशून्य हो उसका होम नहीं करे। शिव शक्ति के समायोग से काम उत्पन्न होता है। अवट भी उमा देवी बिम्ब सदाशिव ख्यात हैं। एक से हीन कभी नहीं करना चाहिए, मरण का समुद्देश कर लेवे ॥३७-३८॥ त्रयोदश अंगुल को त्यागकर अथवा बह्निहस्त का त्याग करके सिद्धों के क्षेत्र में महा तीर्थ में और शम्भु गृह में कुल में उसके दक्षिण दिग्भाग में आगे मंडल को लिखे और वहाँ पर भली भांति पूजा करनी चाहिए और पूर्व मान से आश्रय करना चाहिए। अर्क हस्त के अन्तर में शतोर्ध्वान्त में अथवा शत से करना चाहिये ॥३९-४१॥

॥ होमावसाने षोडशोपचारवर्णन ॥

नित्यं नैमित्तिकं चैव यागादौ च समाप्तके ।
होमावसाने प्रजपेदुपचाराञ्च षोडश ॥१
दद्यात्समीरणं पश्चात्पीठपूजां समाचरेत् ।
गृहीत्वा रक्तपुष्पं च ध्यायेद्वह्नि यथाविधि ॥२
इष्टं शक्तिस्वस्तिकाभीति
मुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं वरान्तम् ।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ।
ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः ॥३
पूर्वादिद्वारदेशेषु कामदेवं शतक्रतुम् ।
वराहं षण्मुखं चैव गंधाद्यैःसाधु पूजयेत् ॥४
आवाह्य स्थापयेत्पश्चादष्टौ मुद्राः प्रदर्शयेत् ।
दत्वासनं स्वागतं च दद्यात्पाद्यादिकत्रयम् ॥५
अतः पूर्वादिपात्रेषु यावता च हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ॥६
महोदरं महाजिह्वमाकाशत्वेन पूजयेत् ।
तारकादीन्समाप्ते च गन्धैः पुष्पैः पृथग्विधैः ॥७

इस अध्याय में नित्य और नैमित्तिक होम के अन्त में षोड़शोपचार का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—यागादि की समाप्ति होने पर नित्य और नैमित्तिक का जाप करे और होम के अवसान हो जाने पर षोड़श उपचारों का प्रकृष्ट रूप से जाप करना चाहिए ॥१॥ समीरण को देवे और पीछे पीठ पूजा करनी चाहिए। रक्त पुष्प ग्रहण करके वह्नि का यथा विधि ध्यान करना चाहिए। अग्नि के ध्यान का प्रकार यह है—अग्निदेव अपने लम्बे हाथों में इष्ट, शक्ति, स्वस्तिक और उच्च अभीति को धारण किए हुए हैं। वरदान देने वाले, हेम के आकल्प वाले, पद्म पर विराजमान, तीन नेत्रों से युक्त और जटाओं से मौलि-भाग को बाँधे हुए वह्निदेव का ध्यान करना चाहिए ॥२-३॥ पूर्व आदि

दिशओं के द्वारा देशों में कामदेव,शतक्रतु,वराह, षण्मुख की गन्धाक्षतादि से भली-भांति पूजा करनी चाहिए ।।४।। आवाहन करके पीछे इसकी स्थापना करे और फिर आठ मुद्राओं को प्रदर्शित करना चाहिए। आसन और स्वागत देकर फिर अर्घ्यपाद्य और आचमनीय इन तीनों को देवे ।।५।। इसलिए पूर्वादि पात्रों में जितना सुवर्ण के वर्ण वाला अमल हुताशन सर्वतोमुख समिद्ध सो उस महान् उदर वाले और महान् जीह्वा वाले का आकाशत्व से पूज। कराना चाहिए और पृथक् विध गन्ध एवं पुष्पों से समाप्त में तारकादि का पूजन करे ।।६-७।।

तत्रैव जिह्वास्त्रिविधा ध्यायेन्मंत्रपुरःसराः ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण उपचारैरनन्तरम् ।।८
त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारकः ।
परमज्योतीरूपस्त्वमासनं सफली कुरु ।।९
दद्यादासनमेतेन पुष्पगुच्छत्रयेण तु ।
पुटान्जलिं ततो बद्धा पृच्छेत्कुशलपूर्वकम् ।।१०
वैश्वानर नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन ।
स्वागतं तु सुरश्रेष्ठ शान्ति कुरु नमोऽस्तु ते ।।११
नमस्ते भगवन्देव आपोनारायणात्मक ।
सर्वलोकहितार्थाय पाद्यं च प्रतिगृह्यताम् ।।१२
नारायणपरं धाम ज्योतीरूप सनातन ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं विश्वरूप नमोऽस्तु ते ।।१३
जगदादित्यरूपेण प्रकाशयति यः सदा ।
तस्मै प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे ।।१४

वहाँ पर ही तीन प्रकार की जिह्वाओं का मन्त्र पुरस्सर ध्यान करना चाहिए। आगे बताये गये मन्त्र के द्वारा ध्यान करे और इसके अनन्तर उपचारों से करे ।।८।। हें अग्निदेव!आप समस्त प्राणियों के आदि स्वरूप हैं और इस संसार रूप सागर से तार देने वाले हैं। आप परम ज्योति स्वरूप हैं। रब कृपा करके इस आसन को सफल कीजिए ।।९।। इस उक्त

मन्त्र से अग्निदेव को आसन देना चाहिए फिर पुष्पों के तीन गुच्छों के द्वारा पुष्पाञ्जलि करके कुशल पूर्वक पूछना चाहिए ॥१०॥ हे वैश्वानर! हे हव्यवाहन ! आपके लिए प्रणाम है आपको नमस्कार है। हे सुरश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। आप शान्त करिये। आपको नमस्कार है। हे भगवन्! हे देव ! हे भगवन् ! आपो नारायणात्मक ! आप समस्त लोकों के हित सम्पादन करने के लिये इस पाद्य का ग्रहण कीजिए। हे ज्योति स्वरूप ! हे सनातन ! आपका धाम नारायण पर है। हे विश्वरूप ! मेरे द्वारा समर्पित यह अर्घ्य आप ग्रहण करें। आपके लिए मेरा नमस्कार है। जो सदा आदित्य के स्वरूप से इस जगत् को प्रकाशित किया करता है उस प्रकाश रूप जात वेदा के लिए मेरा नमस्कार है ॥११-१४॥

धनंजय नमस्तेऽस्तु सर्वपापप्रणाशन।
स्नानीयं ते मया दत्तं सर्वकामार्थसिद्धये ॥१५
हुताशन महाबाहो देवदेव सनातन।
शरणं ते प्रयच्छामि देहि मे परमं पदम् ॥१६
ज्योतिषां ज्योतीरूपस्त्वमनादिनिधनाच्युत।
मया दत्तमलंकारमलंकुरु नमोस्तु ते ॥१७
देवीदेवा मुदं यान्ति यस्य सम्यक्समागमात्।
सर्वदोषोपशांत्यर्थं गन्धोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१८
त्वं विष्णुस्त्वं हि ब्रह्मा च ज्योतिषां गतिरीश्वर।
गृहाण पुष्पं देवेश सानुलेपं जगद्भवेत् ॥१९
देवतानां पितृणाँ च सुखमेकं सनातनम्।
धूपोऽयं देवदेवेश गृह्यताँ मे धनंजय ॥२०

हे धनञ्जय ! हे समस्त पापों के प्रणाश करने वाले देव ! आपके लिए मेरा प्रणाम है। मेरे द्वारा आपके लिए यह स्नानीय समर्पित किया गया है जो कि समस्त कामनाओं के अर्थ की सिद्धि के लिये है ॥१५॥ हे हुताशन ! हे महाबाहो ! हे देवों के देव ! हे सनातन ! मैं आपकी शरण होता हूं। आप मुझे परम पद प्रदान कीजिए ॥१६॥ आप ज्योतियों के

ज्योति रूप हैं। हे अनादि निधनाच्युत ! मेरे द्वारा समर्पित किये हुए अलंकारों से आप अपने को अलंकृत करें। आपके लिये मेरा नमस्कार है जिसके भली-भाँति समागम होने से देवी और देव सभी प्रसन्नता प्राप्त किया करते हैं वह अग्निदेव समस्त दोषों की उपशान्ति करने के लिए यह गन्ध ग्रहण करें ।।१७-१८।। हे ईश्वर ! आप विष्णु हैं, आप ब्रह्मा हैं और आप ज्योतियों की गति हैं। हे देवेश ! यह पुष्प ग्रहण कीजिए जिससे यह जगत् सानुलेप हो जावे। देदताओं को और पितृगण को सुख देने वाला यह एक सनातन धूप है, हे देवदेवेश ! हे धनञ्जय ! इसे आप मुझसे ग्रहण करें ।।१९-२०।।

त्वमेकः सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
परमात्मा पराकारः प्रदीपः प्रतिगृह्यताम् ।।२१
नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रभवे जातवेदसे ।
सर्वलोकहितार्थाय नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।।२२
हुतासन नमस्तुभ्यं नमस्ते रुक्मवाहन ।
लोकनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे ।।२३
इत्यनेन तु मन्त्रेण दद्याद्दिव्येऽप्यधीतकम् ।
सर्वस्वं यज्ञसूत्रं च परमान्नं समाक्षिकम् ।।२४

इन समस्त प्राणियों में चाहे वे स्थावर हों या जंगम हों आप ही एक परमात्मा और पराकार हैं। आप मेरे द्वारा निवेदित इस प्रदीप का ग्रहण करे ।।२१।। यज्ञों के पति प्रभु जात वेदा के लिए मेरी नमस्कार है। आप समस्त लोक के हित सम्पादन करने के लिए इस मेरे समर्पित नैवेद्य को ग्रहण कीजिए ।।२२।। हे हुताशन ! आपके लिए मेरा प्रणाम है। हे रुक्मवाहन ! आपको मेरा नमस्कार है। हे लोकों के स्वामिन् ! आपको मेरा नमस्कार है। जात वेदा के लिए मेरा प्रणाम है ।।२३।। इस प्रकार के मन्त्रों के द्वारा दिव्य में भी अधी तक देना चाहिए। सर्वस्व और यज्ञ सूत्र एवं माक्षिक के सहित परमान्न समर्पित करना चाहिए ।।२४।।

।। यज्ञभेद से वह्निनामवर्णन ।।

यज्ञभेदं त्रिभेदं च वक्ष्ये शास्त्रमतं यथा ।
यथावेदानुसारेण यथाग्रहण योजनम् ।।१
शतार्धे वह्निरुद्दिष्टः शतार्धे काश्यपः स्मृतः ।
घृतप्रदोपके विष्णुस्तिलयागे वनस्पतिः ।।२
सहस्रे ब्राह्मणो नाम अयुते हरिरुच्यते ।
लक्षहोमे तु वह्निः स्यात्कोटिहोमे हुताशनः ।।३
वरुणः शान्तिके ज्ञेयो मारणे ह्यरुणः स्मृतः ।
नित्यहोमेऽनलो नाम प्रायश्चित्ते हुताशनः । ४
लोहितश्चान्नयज्ञे यो ग्रहाणां प्रत्यनुक्रमात् ।
देवप्रतिष्ठायागे तु लोहितः परिकीर्तितः ।।५
प्रजापतिर्वास्तुयागे मंडपे चापि पद्मके ।
प्रपायां चैव नागाख्यो महादाने हविर्भुजः ।।६
गोदाने च भवेद्रुद्रः कन्यादाने तु गोऽजकः ।
तुलापुरुषदाने च धाताग्निः परिकीर्तितः ।।७
वृषोत्सर्गे भवेत्सूर्योऽवसानान्ते रविः स्मृतः ।
पावको वैश्वदेवे च दीक्षापक्षे जनार्दनः ।।८

इस अध्याय में तीन प्रकार के यज्ञों के भेदों के वर्णन के साथ कर्म विशेषों में वह्नि के नामों का वर्णन किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा—यज्ञों के तीन भेदों को हम अब बतलायेंगे जैसा कि शास्त्रों का मत होता है । जो कुछ भी वेद ने कहा है उसके अनुसार और जैसा कि ग्रहण योजन होता है कहा जाता है ।।१।। शतार्द्ध में वह्नि उदिष्ट किया गया है । शतार्द्ध में काश्यप कहा गया है । घृत के प्रदीप में विष्णु नाम होता है और तिलयाग में वनस्पति होता है ।।२।। सहस्र में ब्राह्मण नाम होता है और अयुत में हरि इस नाम से कहा जाता है । जहाँ लक्ष का होम होता है इसका वहाँ वह्नि नाम होता है और कोटि

के होम में इसे हुताशन कहते हैं ।।३।। शान्तिक होम में वरुण और मारण कर्म के लिये किये हवन में इसका अरुण नाम होता है। जो होम नित्य ही होता है उसमें इसका नाम अनल है तथा प्रायश्चित के लिए किये गये होम में हुताशन कहते हैं ।।४।। अन्न यज्ञ में लोहित जो कि ग्रहों के अनुक्रम से किया जाता है। देवों की प्रतिष्ठा के याग में भी इसका नाम लोहित ही है ।।५।। वास्तु याग में इसका नाम प्रजापति होता है औप पक्षक मण्डप में भी यही नाम है। प्रपा में नाग इसका नाम है और महादान में इसका नाम हविभुंज होता है ।।६।। गोदान में रुद्र और कन्या के दान में गोऽजक इसका नाम होता है। तुला पुरुष दान में इसे धाताग्नि कहा गया है ।।७।। वृष के उत्सर्ग करने में सूर्य और अवसानान्त में रवि कहा गया है। वैश्वदेव में पावक तथा दीक्षा पक्ष में जनार्दन कहा जाता है ।।८।।

वासने च भवेत्कालः क्रव्यादः शरदाहने ।
पर्णदाहे यमो नाम ह्यास्थिदोहे शिखंडिकः ।।९
गर्भाधाने च मरुतः सीमन्ते पिंगलःस्मृतः ।
पुंसवे त्विद्र आख्यातः प्रशस्तो यागकर्मणि ।।१०
नामसंस्थापने चैवमुपन्यस्ते च पार्थिवः ।
निष्क्रमे हाटकश्चैव प्राशने च शुचिस्तथा ।।११
षडाननश्च चूडायां व्रतादेशे समुद्भवः ।
वीतिहोत्रश्चोपनये समावर्ते धनंजयः ।।१२
उदरे जठराग्निश्च समुद्रे वडवानलः ।
शिखायां च विभुर्ज्ञेयः स्वरस्याग्निः सरीसृपः ।।१३
अश्वाग्निर्मंथरो नाम रथाग्निर्जातवेदसः ।
गजाग्निर्मंदरश्चैव सूर्याग्निर्विंध्यसंज्ञकः ।।१४
तोयाग्निर्वरुणोनाम ब्राह्मणाग्निर्हविर्भुजः ।
पर्वताग्निः क्रतुभुजो दावाग्निः सूर्य उच्यते ।।१५
दीपाग्निः पावको नाम गृह्याग्निर्धरणीपतिः ।
घृताग्निश्च नलो वायुः सूतिकाग्निश्च राक्षसः ।।१६

त्रासन के कर्म में इसका काल नाम है और शरदाहन में इसे क्रव्याद कहा जाता है। पर्णदाह में इसका यम नाम है तथा अस्थि दाह में इसे शिखण्डिक कहते हैं ।।६।। गर्भादान में मरुत और सीमन्त कर्म में पिंगल नाम होता है। पुसंवन में इन्द्र कहा गया है और याग कर्म में इसका प्रशस्त नाम होता है ।।१०।। नाम संस्थापन और उपन्यस्त में पार्थिव नाम है। निष्क्रम कर्म में हारक तथा प्राशन कर्म में शुचि नाम होता है ।।११।। चूड़ाकर्म में इसका नाम षडानन है और व्रतादेश में समुद्भव नाम है। उपनयन में वीतिहोत्र तथा समावर्तन सस्कार में इसका धनञ्जय नाम होता है ।।१२।। उदर में जो पाचन करने वाला अग्नि उसका जठराग्नि होता है तथा समुद्र में वडवा नल होता है। शिखा में इसका नाम विभु जानना चाहिए और स्वर की अग्नि का नाम सरीसृप होता है ।।१३।। अश्वाग्नि का मन्थर नाम है और रथानि का नाम जात वेदस होता है। गजाग्नि को मन्दर महा जाता है तथा सूर्याग्नि का नाम विध्य है ।।१४।। तोयाग्नि का नाम वरुण होता है तथा ब्राह्मणाग्नि को हविर्भुज कहते हैं। पर्वत की अग्नि का नाम क्रतुभुज होता है और सूर्यं दावाग्नि कहा जाता है ।।१५।। दावाग्नि का नाम पावक है तथा गृह्याग्नि का नाम धरणी पति होता है। घृताग्नि नल बायु और सूतिकाग्नि का नाम राक्षस होता है ।।१६।।

।। स्रुवा-दर्वी-पात्र निर्माणि ।।

श्रीपर्णी शिंशपा क्षीरो बिल्वः खदिर एव च।
स्रुवे प्रशस्तास्तरवः सिद्धिदा यागकर्मणि ।।१
प्रतिष्ठायां प्रशस्तास्तु धात्रीखदिरकेशराः।
संस्कारे शशिभिन्नौ च धात्रो धात्रा निर्निर्मिता ।।२
संप्राशे यः स्रुवः प्रोक्तः संस्कारे यज्ञासाधने।
प्रतिष्ठायां तु कथितास्तदन्ये शास्त्रवेदिभिः ।।३
स्रुवं स्रुचमथो वक्ष्ये यदधीनश्च जायते।
यज्ञे न सर्वकं धार्यमक्षरेण च व्यत्ययः ।।४

तस्यादौ च स्रुवं वक्ष्ये यच्चमानं यदास्पदम् ।
काष्ठं गृहीत्वा बिल्वस्य रिक्तादितिथिर्वर्जिते ॥५
समुपोष्य च रचयेदामिषाणि न च स्मरेत् ।
वर्जयेद्ग्राम्यधर्मं च निर्माणे स्रुक्स्रुवस्य वै ॥६
काष्ठं गृहीत्वा विभजेद्भागांस्त्रिंशत्तथा पुनः ।
विंशत्यंगुलमानं तु कुण्डवेदिसमोदरम् ॥७

इस अध्याय में स्रुवा, दर्वी पात्र के निर्णय एवं निर्माण करने का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—स्रुवा के निर्माण कराने के लिए श्रीपर्णी, शिंशपा, क्षीर वाले वृक्ष क्षीरी, बिल्व, खदिर ये वृक्ष प्रशस्त कहे गये हैं जो कि यागों के कर्मों में सिद्धियों के देने वाले होते हैं ॥१॥ प्रतिष्ठा के कम में धात्री (आँवला), खदिर और केशर ये वृक्ष प्रशस्त माने गये हैं। संस्कार कर्मों में शशि भिन्न धात्री और धाता से विनिर्मित होने चाहिए ॥२॥ संप्राश में जो स्रुवा कहा गया है, शास्त्रों के वेत्ताओं ने उनसे अन्य संस्कार, यज्ञ साधन और प्रतिष्ठा में बताये हैं ॥३॥ स्रुव स्रुच को बतायेंगे जिसके अधीन होता है। यश में सर्वक नहीं धारण करना चाहिए और अक्षर के द्वारा व्यत्यय होता है ॥४॥ उसके आदि में स्रुव को बताते हैं कि उसका कितना मान और क्या आस्पद होना चाहिये। बिल्व के काष्ठ को ग्रहण करके जबकि रिक्ता तिथि न हो उस दिन में समुवास करके इसकी रचना करावे और उस समय में आमिषों (माँसों) का स्मरण नहीं करना चाहिये। स्तुक स्रुव के निर्माण के कार्य के समय में ग्राम्य धर्म भी वर्जित कर देन चाहिए ॥५-६॥ काष्ठ का ग्रहण करके उसके तीस भागों का विभाजन करना चाहिए। बीस अंगुल के मान वाला कुण्ड वेदि समोदर करावे ॥७॥

कटाहाकारनिम्नं च स्रुवं कुर्याद्विचक्षणः ।
धात्रीफलसमाकारं स्वधानिम्नं सुशोभनम् ॥८
वेदीं शूर्पाकृतिं कुर्यात्कुण्डानि परिकल्पयेत् ।
हंसवत्त्रिगुणा वापि हस्तेनाऽनुमुखं लिखेत् ॥९

स्रुवं चतुर्विंशतिभिर्भागैश्च रचयेद्ध्रुवम् ।
द्विंत्रिंशं स्यात्कुण्डमानमर्द्धे तस्य कीर्तितम् ।।१०

चतुर्भिरंगैरानाहं कर्षाद्यग्रं ततः स्रुवम् ।
अंगद्वयेन विलिखेत्पंके मृगमदाकृतिम् ।।११

दंडमूलाश्रये दंडो भवेत्कंकणभूषितः ।
सौवर्णस्य च ताम्रस्य कार्या दर्वी प्रमाणतः ।।१२

श्रैवर्णिकोद्भवं यच्च इन्दुवृक्षसमुद्भवम् ।
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं द्वादसशांगुलसंमितम् ।।१३

कटाह के आकार वाला निम्न भाग वाला स्रुवा विचक्षण पुरुष को कराना चाहिए । धात्री के फल के समान आकार का स्वधा निम्न एवं सुशोभन निर्मित करावे ।।८।। वेदी को शूर्प की जैसी आकृति वाली करनी चाहिये और कुण्डों की परिकल्पना करे । हंसवत् त्रिगुणा हस्त से अनुमुख लिखनी चाहिए ।।९।। चौबीस भागों के द्वारा निश्चय ही स्रुवा की रचना करावे । उसके अर्द्ध में बत्तीस कुण्ड का मान कहा गया है ।।१०।। चार अंगों से आनाह और फिर कर्षाद्यग्र वाला स्रुवा बनवाना चाहिए । अंगद्वय से पङ्क में मृग मदाकृति का विलेखन करना चाहिए ।।११।। दण्ड मूल के आश्रय में कंकण भूषित दंडी होनी चाहिये । सुवर्ण की अथवा ताम्र की प्रमाण से दर्वी करानी चाहिए ।।१२।। जो श्रैवर्णि कोद्भव हो और जो इन्दुवृक्ष से उत्पन्न होने वाला हो तथा क्षीर वाले किसी वृक्ष से उत्पन्न होने वाला हो वह द्वादश अंगुल के संमित होना चाहिए ।।१३।।

द्वयंगुलं मंडलं तस्य दर्वी सा यज्ञसाधने ।
चत्वारिंशत्तोलिकाभिरिति ताम्रमयस्य च ।।१४

पंचांगुलं मंडलं च अष्टहस्तं च दंडकम् ।
अन्नादिपायसविधौ दर्वी यज्ञस्य साधने ।।१५

दशतोलकमानेन सा च दर्वी उदाहृता ।

आज्यसंशोधनार्थं तु सा तु ताम्रमयस्य च ॥१६
षोडशांगुलमानेन सर्वाभावे च पैप्पलीम् ।
आज्यस्थालीं घृतमयीं मृन्मयीं च समाश्रयेत् ॥१७
अथ ताम्रमयी कार्या न च यां तत्र योजयेत् ॥१८

उसका मंडल दो अंगुल हो वह दर्वी यज्ञ के साधन में होती है जो कि ताम्रमय चालीस तोलों से निर्मित कराई गई हो ॥१४॥ पाँच अंगुल मंडल हो और आठ हाथ दण्डक हो ऐसी दर्वी अनादि पायस की विधि में यज्ञ साधन में होती है ॥१५॥ और वह दर्वी दश तोले मान वाली कही गई है । ताम्रमय की वह आज्य के संशोधन के लिए होती है ॥१६॥ सबके अभाव में षोडश अंगुल के मान से पैप्पली अथात् पीपल के वृक्ष की आज्य (घृत) स्थाली घृतमयी अर मृन्मयी का समाश्रय करना चाहिए ॥१७। इसके अनन्तर ताम्रमयी करनी चाहिए और उसको वहाँ योजित नहीं करनी चाहिए ॥१८॥

॥ ब्राह्मणलक्षण तथा ब्राह्मणकर्तव्यवर्णन ॥

त्रयाणामेव वर्णानां जन्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ।
संसृष्टा ब्राह्मणाः पूर्वं तपस्तप्त्वा द्विजोत्तमाः ॥१
हव्यानामिह कव्यानां सर्वस्यापि च गुप्तये ।
अश्नंति च मुखेनास्य हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥२
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ।
जन्मना चोत्तमोऽयं च सर्वार्चा ब्राह्मणोऽर्हति ॥३
स्वकीयं ब्राह्मणो भुंक्ते विदधाति द्विजोत्तमाः ।
त्रयाणामिह वर्णानां भावाभावाय वै द्विज ॥४
भवेद्विप्रो न संन्देहस्तुष्टो भावाय वै भवेत् ।
अभावाय भवेत्क्रुद्धस्तस्मात्पूज्यः सदा हि सः ॥५
गर्भाधानादयश्चेह संस्कारा यस्य सत्तमाः ।

चत्वारिंशत्तथा चाष्टौ निर्वत्ता शास्त्रतो द्विजाः ।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वेन सयुतः ॥६

संस्कारपूतः प्रथमो वेदपूतो द्वितीयकः ।
विद्यापूतस्तृतीयः स्यात्तीर्थपूतस्त्वनंतरम् ॥७

क्षेत्रपूतं प्रविज्ञाय विपूतं पूजयेद्द्विजाः ।
स्वर्गापवगफलदमन्यथा श्रमतायियात् ॥८

इस अध्याय में त्रैवार्णिकों की प्रशंसा में ब्राह्मणों के लक्षण और ब्राह्मणों के कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—तीनों वर्णों का ब्राह्मण जन्म से ही प्रभु होता है। हे द्विजोत्तमो ! तपःस्या करके पहिले ब्राह्मणों की ससृष्टि की गई थी। इस लोक में जो हव्य और कव्य होते हैं उनको सबकी रक्षा के लिए देवगण इस ब्राह्मण के मुख के द्वारा अशन किया करते हैं। कव्यों का पितरलोग अशन किया करते हैं। इससे अधिक क्या होता है। यह ब्राह्मण जन्म से ही उत्तम होता है और ब्राह्मण सबकी चर्चा के ग्रहण करने के योग्य होता है। ब्राह्मण स्वयं तो खाता है और यहाँ तीनों वर्णों के भावाभाव के लिये किया करता है। विप्र जब परम तुष्ट होता है तो भाव के लिए होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है और जब यह क्रुद्ध हो जाता है तो अभाव के लिए होता है। इससे ब्राह्मण सर्वदा ही पूजा करने के योग्य होता है। हे द्विजवर्ग ! यहाँ लोक में गर्भाधान से आदि लेकर जिसके अड़तालीस संस्कार शास्त्र के अनुसार पूर्ण किए गए हों वह ही ब्रह्म के स्थान का प्राप्त करता है और ब्राह्मणत्व से संयुक्त भी होता है। ब्रह्म जो ब्राह्मण संस्कारों से पवित्र हो जाता है। फिर वेदों के अध्ययन-अध्यापन से पूत होता है। इसके अनन्तर तीर्थों से पूत हुआ करता है। क्षेत्रपुत को भली-भाँति जानकर हे द्विजगण ! विशेष रूप से पूत को पूजना चाहिए। अन्यथा स्वर्ग अपवर्ग के फल देने वाला श्रमता को प्राप्त होता है ॥१-८॥

पूतानां परमः पूतो गुरूणां परमो गुरुः ।
सर्वसत्त्वान्वितो विप्रो निर्मितो ब्रह्मण पुरा ॥९
पूजयित्वा द्विजान्देवाः स्वर्गं भुञ्जन्तिचाक्षयम् ।
मनुष्याश्चापि देवत्वं स्वंस्वं राज्य गतेन सः ॥१०
यस्य विप्राःप्रसीदन्ति तस्य विष्णुः प्रसीदति ।
तस्माद्ब्राह्मणपूजायां विष्णुस्तुष्यति तत्क्षणात् ॥११
यस्माद्विष्णुमुखाद्विप्रः समुद्भूतः पुरा द्विजाः ।
वेदास्तत्रैव संजाताः सृष्टिसंहारहेतवः ॥१२
तस्माद्विप्रमुखे वेदाश्चार्पिताः पुरुषेण हि ।
पूजार्थं ब्रह्मलोकानां सर्वज्ञानार्थतो ध्रुवम् ॥१३
पितृयज्ञविवाहेषु वह्निकार्येषु शान्तिषु ।
प्रशस्ता ब्राह्मणा नित्य सर्वस्वस्त्ययनेषु च ॥१४
देवाभुञ्जंति हव्यानि बलि प्रेतादयोऽसुराः ।
पितरो हव्यकव्यानि विप्रस्यैव मुखाद् ध्रुवम् ॥१५
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च यो दद्याद्यज्ञकर्मसु
दान होमं बलि चंव विना विप्रेण निष्फलम् ॥१६

पूतों को परम पूत और गुरुओं में परम गुरु सर्वसत्वों से अन्वित विप्र को ब्रह्माजी ने सबसे पहले निर्मित किया था ॥९॥ देवगण द्विजों की पूजा करके ही अक्षय स्वर्ग का उपभोग किया करते हैं। अपने-अपने राज्य को प्राप्त होने वाले मनुष्य भी देवत्व को प्राप्त किया करते हैं, यह सब ब्राह्मणों के अर्चन से फल होता है ॥१०॥ जिसके ऊपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं उससे विष्णु भी प्रसन्न हो जाते हैं। इससे ब्राह्मण की पूजा करने से भगवान विष्णु तत्क्षण ही प्रसन्न हुआ करते हैं ॥११॥ हे द्विजगण ! जिस भगवान् विष्णु के मुख से पहिले ब्राह्मण उत्पन्न हुआ था वेद वहाँ से ही समुद्भूत हुए हैं जो कि इस जगत् के सृजन और संहार के हेतु होते हैं ॥१२॥ इसी कारण से पहिले पुरुष के द्वारा विप्र के मुख में वेदों को अर्पित किया गया था। सबके ज्ञानार्थ से निश्चय ही वेदों का समर्पण ब्रह्म लोकों की पूजा के लिए होता है ॥१३॥ पितृयज्ञों में, विवाह में, वह्नि कार्यों

में, शान्ति के कर्मों में और समस्त स्वयन कर्मों में ब्राह्मण नित्य प्रशस्त होते हैं ।।१४।। ब्राह्मण के मुख से ही देवता लोग हव्यों का, प्रेतादि असुर बलि का और पितर हव्य काव्यों का भोग किया करते हैं ।।१५।। जो यज्ञ कर्मों में देवों के लिए और पितरों के लिए देता है अर्थात् दान, होम और बलि दिया करता है वह ब्राह्मण के द्वारा ही सफल होते हैं अन्यथा सब निष्फल होते हैं ।।१६।।

विना विप्रं च यो धर्मः प्रयासफलमात्रकः ।
भुञ्जते चासुरास्तत्र प्रेता भूताश्च राक्षसाः ।।१७
तस्माद्ब्राह्मणमाहूय तस्य पूजां च कारयेत् ।
काले देशे च पात्रे च लक्षकोटिगुणं भवेत् ।।१८
श्रद्धया च द्विजं दृष्ट्वा प्रकुर्यादभिवादनम् ।
दीर्घायुस्तस्य वाक्येन चिरंजीवी भवेन्नरः ।।१९
अनभिवादिनां विप्रे द्वेषादश्रद्धयापि च ।
आयुः क्षीणं भवेत्पुंसां भूमिनाशश्च दुर्गतिः ।।२०
आयुर्वृद्धिर्यशोवृद्धिर्वृद्धिर्विद्याधनस्य च ।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्भवेन्नास्त्यत्र संशयः ।।२१
न विप्रपादोदककर्दमानि
न वेदशास्त्रप्रतिगर्जितानि ।
स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि
श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ।।२२
षड्विंशतिदोषमाहुर्नरा नरकभीरवः ।
विमुच्यैव वसेत्तीर्थं ग्रामे वा पत्तने वने ।।२३
ते स्वर्गे पितृलोके च ब्रह्मलोकेऽववस्थिताः ।।२४

ब्राह्मण के बिना जो धर्म किया जाता है उसमें केवल प्रयास ही फल होता है अन्य कुछ भी फल नहीं होता है । वहाँ पर असुर, प्रेत, भूत और राक्षस उसके फल का भोग करते हैं । इसलिए ब्राह्मण का आवाहन करके उसकी पूजा करानी चाहिए । काल देश और पात्र में लक्ष कोटि गुण फल

हुआ करता है अर्थात् समुचित समय पर, पवित्र स्थान में और किसी परम योग्य ब्राह्मण की पूजा से अनेक गुना फल प्राप्त होता है, ब्राह्मण का दर्शन श्रद्धा से करना चाहिये और उसका विधिवत् अभिवादन करे। आशीर्वाद के जो वचन उसके मुख से निकलते हैं उससे ब्राह्मण को प्रणाम करने वाला व्यक्ति दीर्घ आयु वाला होता है और चिरकाल तक जीवित रहता है किसी भी द्वेश से या अश्रद्धा से जो ब्राह्मण का अभिवादन नहीं किया जाता है उससे आयु क्षीण होती है और मनुष्यों की भूमि का नाश होता है तथा दुर्गति भी होती है। इस लोक में द्विज श्रेष्ठों की पूजार्चना करने से आयु की वृद्धि, यश की वृद्धि, वि॰ा और धन की वृद्धि हुआ करती है। इस विषय में तनिक भी सशय नहीं होता है। जिन पुरुषों के घरों में कभी ब्राह्मणों के चरण धोने से कीच नहीं हुआ है, और जिन घरों में वेद और शास्त्रों के मन्त्र तथा वचनों की ध्वनि नहीं हुई है, जो घर स्वधा और स्वाहा शब्दों तथा स्वास्तिवाचक वचनों से रहित रहते हैं वे गृह श्मशान के समान हुआ करते हैं। नरक के भय वाले मनुष्य छब्बीस दोषों को बताया करते हैं। इन दोषों का त्याग करके ही तीर्थ में, ग्राम में, नगर में या वन में निवास करना चाहिए। ऐसे मनुष्य स्वर्ग में, पितृलोक में और ब्रह्मलोक में ही अवस्थित होते हैं ॥१७-२४॥

अन्यथा न वसेद्वासस्तस्मात्स्तेयी न पालयेत् ।
अधर्मो विषमश्चन पशुश्च विशुनस्तथा ॥२५
पापिष्ठो नष्टकष्टौ च रुष्टो दुष्टश्च पुष्टकः ।
हृष्ट कुण्ठश्च अन्धश्च काणश्चैव तथापरः ॥२६
चण्ड: खण्डश्च वक्ता च दत्तस्यापहरस्तथा ।
नोचः खलश्च वाचालः कदर्यश्चपलस्तथा ॥२६
मलीमसश्च ते दोषाः षड्विंशतिरमी मताः ।
एतेषां चापि विप्रेन्द्राः पञ्चाशीतिर्निगद्यते ॥२८
शृणुध्वं द्विजाशार्दूलाः शास्त्रेस्मिन्त्रुवतः क्रमात् ।
अधमोऽत्र त्रिधा विद्याद्विषमः स्याद्विधोचितः ॥२९

पशुश्चतुर्विधश्चैव कृपणोऽपि हि वै द्विधा।
द्विधाथापि च पापिष्ठो नष्टः सप्तविधः स्मृतः ॥३०
कष्टः स्यात्पञ्चधा ज्ञेयो रुष्टोपि स्याद्द्विधा द्विजाः।
दुष्टः स्यात्षड्विधो ज्ञेयः पुष्टश्चैव भवेद्द्विधा ॥३१
हृष्टश्चाष्टविध प्रोक्तः कुण्डश्चैव त्रिधोदितः।
अन्धः काणश्च तौ द्वौ द्वौ स्याद्द्वे च सगुणोऽगुणः ॥३२

अन्य प्रकार से निवास कहीं पर भी नहीं करना चाहिये। स्तेयी (चोरी करने वाला) नहीं पालिन करना चाहिए। अधर्म अर्थात् धर्म से रहित, विषम, पशु, पिशुन, पापिष्ठ, नष्ट,कष्ट,रुष्ट,दुष्ट,पुष्टक,हृष्ट,कुण्ठ,अन्ध, काण, चण्ड, खण्ड, वक्ता, दिए हुए का हरण करने वाला, नीच, खल, वाचाल,कदर्य, चपल और मलीमस ये दोष होते हैं जो कि छब्बीस बताये गये है। इनके भी हे विप्रेन्द्रगण ! वे दोष पिचासी कहे जाते है ॥२५-२८॥ हे द्विजशार्दूलो ! अब शास्त्र में क्रम से बताये हुये इन दोषों को बताने वाले मुझसे आप श्रवण करें। जो अधम होता है वह भी तीन प्रकार का हुआ करता है विषम दो प्रकार का होता है। पशु चार तरह का कहा गया है कृपण भी दो प्रकार का होता है। पापिष्ठ दो तरह का है और नष्ट सात प्रकार का कहा गया है ॥२९-३०॥ कष्ट पाँच प्रकार का होता है और रुष्ट दो तरह का बताया गया है। दुष्ट छः तरह का है और पुष्ट दो प्रकार का होता है। हृष्ट आठ भेदों वाला होता है। कुण्ठ तीन तरह का है। अन्ध और काण दो-दो तरह के होते हैं। सगुण और अगुण दो होते हैं ॥३१-३२॥

द्वौ चण्डौ चपलश्चैकावण्डचण्डौ द्विगुर्भवेत्।
दण्डपण्डौ तथा ज्ञेयौ खलनीचौ चतुर्द्वयम् ॥३३
वाचालश्च कदर्यश्च क्रमात्त्रिभिरुदाहृतः।
कदर्यश्चपलश्चैव तथा ज्ञेयो मलीमसः ॥३४
द्वावेकौ चतुरश्चैव स्तेयी चैकविधो भवेत्।
पृथग्लक्षणमेतेषा शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥३५

सम्यगस्य परिज्ञानं नरो देवत्वमाप्नुयात् ।
उपानच्छत्रधारी च गुरुदेवाग्रतश्चरन् ॥३६
उच्चासनं गुरोरग्रे तीर्थयात्रां करोति यः ।
यानमारुह्य विप्रेन्द्राः सोऽप्येकत्राधमो मतः ॥३७
निमज्ज्य तीर्थे विधिवद्ग्राम्यधर्मेण वर्तयन् ।
द्वितीयश्चाधमः प्रोक्तो निंदितः परिकीर्तितः ॥३८
वाक्चैव मधुराश्लक्ष्णा हृदि हालाहलं विषम् ।
वदत्यन्यत्करोत्यन्यद्वावेतौ विषमौ स्मृतौ ॥३९
मोक्षचिन्तामतिक्रम्य योऽन्यचिन्तापरिश्रमः ।
हरिसेवा विहीनो यः स पशुर्नाितः पशुः ॥४०

दो प्रकार के चण्ड हैं और चपल ही होते हैं । अण्ड-चण्ड एक-एक हैं । वहाँ द्विगु होता है । उसी प्रकार से दण्ड पण्ड जानने चाहिए । खल और नीच चार प्रकार के होते हैं ॥३३॥ वाचाल और कदर्य क्रम से तीन-तीन प्रकार के होते हैं । कदर्य-चपल और मलीमस भी उसी प्रकार से समझने चाहिए ॥३४॥ ये दो, एक और चार, इस प्रकार से हुआ करते हैं । स्तेयी एक ही प्रकार का होता है । हे द्विजश्रेष्ठो ! अब इनके पृथक लक्षणों का श्रवण करो ॥३५॥ जिस मनुष्य को बहुत ही अच्छी तरह से परिज्ञान होता है वह नर देवत्व को प्राप्त किया करता है । उपानत् (जूता) और छत्र इनको धारण करके जो गुरु और देवत्व के आगे चलता है और गुरु के आगे ऊँचे आसन पर स्थित होता है तथा जो तीर्थ-यात्रा किया करता है एवं यान पर आरूढ़ होकर चला करता है, हे विप्रेन्द्रगण ! वह मनुष्य भी एक स्थान पर अधर्म कहा गया है ।३६-३७। तीर्थ में निमज्जन करके जो विधिवत् ग्राम्य धर्म का बरताव करता है वह दूसरा अधम कहा गया है और निन्दित बताया गया है ॥३८॥ जिसकी वाणी तो बहुत चिकनी, चुपड़ी हो एवं मीठी हो और हृदय में हाला हल विष भरा हो, जो कहता है कुछ और है और करता कुछ और ही है ये दोनों विषम बताये गये हैं ॥३९॥ जो अपने संसार के

जन्म-मरण से छुटकारा पाने की चिन्ता का त्याग कर अन्य बातों की चिन्ता ही में रात-दिन परिश्रम किया करता है और हरि की सेवा से विहीन होता है वह पशु योनि से पशु ही होता है ॥४०॥

प्रयागे विद्यमानेऽपि योऽन्यत्र स्नानमाचरेत् ।
दृष्टं देवं परित्यज्य अदृष्टं भजते तु यः ॥४१

आयुषस्तु क्षायार्थाय शास्त्रेयमृषिसंमतः ।
योगाभ्यासं ततो हित्वा तृतीयश्चाधमः पशुः ॥४२

बहूनि पुस्तकानीह शास्त्राणि विविधानि च ।
तस्य सारं न जानाति स एव जंबुकः पशुः ॥४३

बलेन च्छलछद्मेन उपायेन प्रबन्धनम् ।
सोऽपि स्यात्पिशुनः ख्यातः प्रथयाद्वा द्वितीयकः ॥४४

मधुरान्नं प्रतिष्ठाप्य दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
म्लानं चापि च तिक्तान्नं यः प्रयच्छति दुर्मतिः ॥४५
कृपणः स तु विज्ञेयो न स्वर्गी न च मोक्षभाक् ।
कुदाता च मुदा हीनः सक्रोधस्तु यजेत यः ॥४६

स एव कृपणः ख्यातः सर्वधर्मबहिष्कृतः ।
अदोषेण शुभत्यागी शुभ कार्योपविक्रयी ॥४७
पितृमातृगुरुत्यागी शौचाचारविवर्जितः ।
पित्रोरग्रे समश्नाति स पापिष्टनमः स्मृतः ॥४८

प्रयाग में विद्यमान रहते हुए भी जो अन्यत्र स्नान करता है और अपने इष्ट देव का परित्याग करके जो अदृष्ट का सेवन किया करता है। आयु के क्षय के लिये ऋषि समस्त शास्त्रीय योगाभ्यास का त्याग करता है वह तीसरा अधम होता है और पशु होता है ।४१-४२॥ यहाँ संसार में बहुत से ग्रन्थों को और अनेक प्रकार के शास्त्रों को देखकर भी उनके सार को नहीं समझता है वह जम्बुक पशु ही होता है ॥४३॥ बल से, छल छद्म से और उपाय से जो प्रकृष्ट बन्धन करता है वह भी पिशुन नाम

से प्रसिद्ध है अथवा प्रणय से जो करता है वह दूसरी तरह का होता है ।।४४।। दैव और पित्र्य कर्म में मधुराल का प्रतिष्ठापन कर जो दुष्ट बुद्धि वाला म्लान और तिक्तान्न को दिया करता है वह कृपण समझना चाहिए। वह न तो स्वर्ग के वास का ही अधिकारी होता है और न मोक्ष को प्राप्त करने वाला ही हुआ करता है। जो कुत्सित वस्तु का देने वाला है और आनन्द एवं प्रसन्नता से रहित होता है एवं क्रोध से युक्त होता है ऐसा जो कोई यजन करे तो वह भी कृपण कहा गया है। जो कि सम्पूर्ण धर्मों से बहिष्कृत होता है। प्रदोष से शुभ का त्याग करने वाला और शुभ कार्यों का उपविक्रयी होता है। माता-पिता और गुरु का त्याग कर देने वाला शौच और आचार से वर्जित रहने वाला एवं माता-पिता के आगे अशन जो करता है वह पापिष्ठतम कहा गया है ।।४५-४८।।

जीवत्पितृपरित्यक्तं सुतं सेवेन्न वा क्वचित् ।
द्वितीयस्तु स पापिष्ठो होमलोपी तृतीयकः ।।४९
साध्वाचारं च प्रच्छाद्य सेवनं चापि दर्शयेत् ।
स नष्ट इति विज्ञेयः क्रयक्रीतं च मैथुनम् ।।५०
जीवेद्देवलवृत्तिर्यः भार्याविपणजीवकः ।
कन्याशुल्केन जीवेद्वा स्त्रीधनेन च वाक्वचित् ।।५१
षडेव नष्टाः शास्त्रे च न स्वर्गमोक्षभागिनः ।
सदा क्रुद्धं मनो यस्य हीनं दृष्ट्वा प्रकोपवान् ।।५२
भ्रुकुटीकुटिलः क्रुद्धो रुष्टः पंचविधोदितः ।
अकार्ये भ्रमते नित्यं धर्मार्थे न व्यवस्थितः ।।५३
निद्रालुर्व्यसनासक्तो मद्यपः स्त्रीनिषेवकः ।
दुष्टैः सह सदालापः स दुष्टः सप्तधा स्मृतः ।।५४
एकाकी मिष्टमश्नाति वंचकः साधुनिंदकः ।
यथा सूकरः पुष्टः स्यात्तथा पुष्टः प्रकीर्तितः ।।५५
निगमागमतंत्राणि नाध्यापयति यो द्विजः ।
न शृणोति च पापात्मा स दुष्ट इति चोच्यते ।।५६

किसी समय में भी जीवित पिता से परित्यक्त सुत का सेवन नहीं करना चाहिये अथवा जिस व्यक्ति ने जीवित माता-पिता का ही त्याग कर दिया हो वह दूसरा पापिष्ठ होता है । जो होम का लोप करने वाला वह तीसरा पापिष्ठ होता है । साधु आचार का प्रच्छादन करके जो सेवन करना दिखलाता है वह नष्ट समझना चाहिये । जो क्रय क्रीत मैथुन करता है वह भी नष्ट होता है । जो देवलवृत्ति से अर्थात देव पूजन करके रोजी कमाई से रहता है और भार्या के विपण से जीवन निर्वाह करने वाला है, जो कन्या के शुल्क से जीवन-यापन करता है अथवा स्त्री के धन से जो अपना जीवन निर्वाह करता है ये छओं नष्ट होते हैं और स्वर्ग तथा मोक्ष के भागी नहीं होते हैं । शास्त्र में इनको नष्ट माना गया है । जिसका मन सदा क्रोध से परिपूर्ण रहता है और अपने से हीन को देखकर प्रकुष्ट कोप वाला हो जाता है । जिसकी भृकुटियाँ हमेशा तिरछी ही रहा करती हैं और क्रुद्ध होती है इस तरह पांच प्रकार के ये रुष्ट बताये गये हैं । ये अकार्य में नित्य भ्रमण किया करते हैं और धर्मार्थ में व्यवस्थित नहीं होते हैं । रात दिन निद्रा करने वाला, व्यसनों में आसक्ति रखने वाला, मद्यपान करने वाला स्त्रियों का सेवन करने वाला तथा दुष्ट पुरुषों के साथ सदा वार्त्तालाप करने वाला, जो होता है वह सात प्रकार का दुष्ट बताया गया है । अकेला ही जो मिष्ट पदार्थों के खाने वाला है, वञ्चक (ठग) है तथा साधु पुरुषों की जो निन्दा किया करता है वह जैसे सूकर पुष्प होता है वैसे ही पुष्ट कहा गया है । निगम और आगम एवं तन्त्रों को जो द्विज न पढ़ता है और न पढ़ाता ही है तथा इनका कभी श्रवण किया करता है वह पापात्मा 'दुष्ट' इस नाम से कहा जाया करता है ।।४६-५६।।

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे विनिर्मिते ।
एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामंधः प्रकीर्तितः ।।५७

विवादः सोदरैः सार्द्धं पित्रोरप्रियकृद्भवेत् ।
द्विजाधमः स विज्ञेयः स चंडः शास्त्रनिंदितः ।।५८

पिशुनो राजगामी च शूद्रसेवक एव च।
शूद्रांगनागमो विप्रः स चडश्च द्विजाधमः ।।५९
पक्वान्नं शूद्रगेहे च यो भुंक्ते सकृदेव वा।
पंचरात्रं शूद्रगेहे निवासी चंड उच्यते ।।६०
अष्टकुष्टान्वितः कुष्ठी त्रिकुष्ठी शास्त्रनिंदितः।
एतैः सह सदालापः स भवेत्तत्समोऽधमः ।।६१
कीटवद्भ्रमणं यस्य कुव्यापारी कुपंडितः।
अज्ञानाच्च वदेद्धर्ममग्रवृत्तिः प्रधावति ।।६२
अविमुक्तं परित्यज्य योऽन्यदेशे वसेच्चिरम्।
स द्विधा शूकरपशुर्निंदितः सिद्धसंमतः ।।६३
कपोलेन हि संयुक्तो भ्रुकुटीकुटिलाननः।
नृपवद्दंडयेद्यस्तु स दंडः समुदाहृतः ।।६४

श्रुति और स्मृति ये दोनों विप्रों के नेत्र निर्मित किये गये हैं। जो इन दोनों में से एक से रहित होता है वह काण (काना) होता है और दोनों से जो हीन होता है वह अन्धा ही होता है ।।५७।। जो अपने सगे भाइयों के साथ विवाह किया करता है और जो अपने माता-पिता के साथ उनका अप्रिय कर्म करता है या अप्रिय वचन बोलता है वह अधम द्विज होता है, वह चंड कहा जाता है और शास्त्र में परम निन्दित कहा गया है ।।५८।। जो पिशुन, राज गामी, शूद्र सेवक तथा शूद्रांगना के समागम वाला विप्र होता है वह अधम द्विज चंड कहा गया है ।।५९।। शूद्र के घर में जो एक बार भी पक्वान्न खाता है और पाँच रात्रि तक शूद्र के यहाँ निवास करने वाला है वह भी चंडत कहा जाता है। ६०।। आठ प्रकार के कुष्ठों से अन्वित, कुष्ठ वाला, त्रिकुष्ठी और शास्त्र निन्दित इनके साथ सदा वार्तालाप करने वाला होता है वह उसके समान ही अधम होता है ।।६१।। कीट की भाँति जिसका भ्रमण होता है और जो कुत्सित व्यापार करने वाला है तथा कुपण्डित होता है एवं अज्ञान से धर्म के विषय में बोला करता है और अग्रवृत्ति होकर जो प्रधावन करता है, जो अवियुक्त का त्याग करके बहुत समय तक अनय देश में

निवास किया करता है वह दो प्रकार का शूकर पशु होता है वह सिद्ध सम्मति निन्दित हुआ करता है ।।६२-६३।। कपोल से संयुक्त अर्थात् गालों का फुलाने वाला तथा भृकुटियों की कुटिलिता से युक्त मुख वाला अर्थात् भौंहें तिरछी करने वाला जो एक राजा की भाँति दण्ड दिया करता है वह दण्ड कहा गया है ।।६४।।

ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा नृपदेवस्वमेव च ।
धनेन तेन इतरं देवं वा ब्राह्मणानपि ।।६५
संतर्पयति योऽश्नाति यः प्रयच्छति वा क्वचित् ।
स खरश्च पशुश्रेष्ठः सर्ववेदेषु निंदितः ।।६६
अक्षराभ्यासनिरतः पठत्येव न बुध्यते ।
पदशास्त्रपरित्यक्तः स पशुः स्यान्न संशयः ।।६७
वदत्यन्यत्करोत्यन्यद्गुरुदेवाग्रतो यतः ।
स नीच इति विज्ञेयो ह्यनाचारस्तथापरः ।।६८
षड्गुणालंकृतेः साधोर्दोषान्मृगयते खलः ।
वने पुष्पफलाकीर्णे शलभः कंटकानिव ।।६९
दैवेन च विहीनो यः कुसंभाषां वदेत्तु यः ।
स वाचाल इति ख्यातो यो ह्यपत्रपतायुतः ।।७०
चांडालैः सह आलापः पक्षिणां पोषणे रतः ।
मार्जारैश्चापि संभुंक्ते यत्कृत्यं मर्कटोदितम् ।।७१
तृणच्छेदी लोष्टमर्दी वृथा मांसाशनश्च यः ।
चपलः स तु विज्ञेयः परभार्यारतस्तथा ।।७२

ब्राह्मणों के धन का हरण करके राजा तथा देवता की सम्पत्ति का अपहरण करके उस धन से इतर देवता अथवा ब्राह्मणों की तृप्ति किया करता या खाता है अथवा उसका कभी कहीं दान करता है वह पशु में श्रेष्ठ खर समस्त वेदों में निन्दित होता है ।।६५-६६।। जो अक्षरों के ही अभ्यास करने में निरत रहता है केवल पढ़ा ही करता है उसे बिल्कुल भी समझता नहीं है वह पद शास्त्र से परित्यक्त पशु ही होता है, इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ।।६७।। जो गुरु और देवता के आगे भी

कहता तो कुछ और है और करता कुछ और ही है वह नीच होता है तथा दूसरा आचार से रहित होता है ॥६८॥ छः प्रकार के गुणों से विभूषित साधु के भी जो खल दोषों को खोजा करता है वह खल ही होता है। वह इसी प्रकार से होता है जैसे पुष्प और फलों से समाकीर्ण वन में शलभ कांटों की ही खोज किया करता है ॥६९॥ जो देव से विहीन है और जो बुरी भाषा बोला करता है वह वाचाल लज्जा से रहित हुआ करता है ॥७०॥ जो चाण्डालों के साथ आलाप करता है, जो पक्षियों के पोषण करने में रति रखता है, जो बिल्लियों के साथ बैठ कर भोजन करता है, जो मर्कटों जैसे कृत्य किया करता है, जो तृणों का छेदन करने वाला है जो लोष्ठों का वृथा मर्दन करने वाला है और जो मास का अशन करने वाला होता है तथा पराई स्त्री में रति किया करता है वह चपल जानना चाहिए ॥७१-७२॥

स्नेहोद्वर्तनहीनो यो गंधचन्दनवर्जितः ।
नित्यक्रिया अकुर्वाणो नित्यं स च मलीमसः ।।७३
अन्यायेन गृहं विन्देदन्यायेन गृहान्धनम् ।
शास्त्रादन्यद्गृहं मंत्रं स स्तेयी ब्रह्मघातकः ।।७४
देवपुस्तकरत्नानि मणिमुक्ताश्वमेव च ।
गोभूमिस्वर्णहरणः स स्तेयोति निगद्यते ।।७५
देवोऽपि भावयेत्पश्चान्मानुषोऽपि न संशयः ।
अन्योन्यभावना कार्या स स्तेयी यो न भावयेत् ।।७६
गुरोः प्रसादाज्जयति पित्रोश्चापि प्रसादतः ।
करोति च यथार्हं च स च स्वर्गे महीयते ।।७७
न पोषयति दुष्टात्मा स स्तेयो चापरः स्मृतः ।।७८
उपकारिजनं प्राप्य न करोति परिष्क्रियाम् ।
स तप्तनरके शेते शोणिते च पतत्यधः ।।७९
सर्वेषां च सवर्णानां धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ।
पृथिवीपालको राजा धर्मचक्षुरुदाहृयः ।।८०

जो स्नेह तैल आदि और उद्वर्त्तन उबटना आदि से हीन होता है, जो गन्ध और चन्दन से रहित होता है, जो नित्य क्रिया के न करने वाला होता है वह नित्य ही मलीमस होता है ।।७३।। जो अन्याय से गृह की प्राप्ति करे और अन्याय पूर्वक घरों को तथा धन को पाता है एवं शास्त्र के विरुद्ध गृह और मन्त्र को जो पाता है वह ब्रह्म घातक स्तेही होता है ।।७४।। देवता, पुस्तक, रत्न, मणि, मुक्ता, अश्व, गौ, भूमि और सुवर्ण का हरण करने वाला स्तेही कहा जाता है ।।७५।। देव भी भावित करना चाहिए और पीछे मनुष्य भी भावित करे, इसमें संशय नहीं है । अन्योन्य भावना करनी चाहिए । जो भावना नहीं करता है वह स्तेयी होता है ।।७६।। गुरु के प्रसाद से जय होता है और माता पिता के प्रसाद से भी जय हुआ करता है वह यथार्ह करता है और वह स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है ।।७७।। जो दुष्टात्मा पोषण नहीं करता है वह दूसरा स्तेयी कहा गया है ।।७८।। जो उपकारीजन को प्राप्त करके उसकी परिष्क्रिया नहीं करता है अर्थात् उसका प्रत्युपकार नहीं किया करता है वह तप्त नरक में गिरता है और रुधिर में उसका अधः पतन हुआ करता है ।।७९।। समस्त सवर्णों का धर्म से ब्राह्मण ही प्रभु होता है । पृथिवी का पालन करने वाला राजा धर्म की चक्षु कहा गया है ।।८०।।

प्रजापतेर्मुखोद्भूतो होरातंत्रे यथोदितम् ।
तद्विदो गणनाभिज्ञा अन्यविप्राः प्रचक्षते ।।८१
गंगाहीनो हतो देशो विप्रहीना यथा क्रिया ।
होराज्ञप्तिविहीनो यो देशोऽसौ विप्लवप्लवः ।।८२
अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः ।
तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यंध इवाध्वनि ।।८३
स्थापयेद्धर्मतो विप्रं भावयेत्कर्मवृद्धये ।
श्मश्रुयुक्तो द्विजः पूज्यः सूर्यो विप्रस्तु श्मश्रुलः ।।८४
प्रत्यक्रदर्शनात्पुण्यं त्रिदिन कल्मषापहम् ।
दर्शने व्रात्यविप्रस्य सूर्यं दृष्ट्वा विशुध्यति ।।८५

न व्रात्यत्वं सूर्यविप्रे पूजयेद्यज्ञसिद्धये ।
ज्योतिर्वेदस्याधिकारः सूर्यविप्रस्य वै द्विजाः ॥८६
जातिभेदाश्च चत्वारो भोजकः कथकस्तथा ।
शिवविप्रः सूर्यविप्रश्चतुर्थः परिपठ्यते ॥८७

प्रजापति के मुख से उद्भूत ब्राह्मण होता है जैसा कि होरातन्त्र में कहा गया है । उसके जानने वाले गणना के अभिज्ञ होते हैं अन्य विप्र कहे जाते हैं ॥८१॥ जो देश गङ्गा नदी से हीन होता है वह हत कहा गया है जिस प्रकार से विप्रों से हीन क्रिया हत हुआ करती है । जो होरा की ज्ञप्ति से विहीन देश होता है वह विप्लवों का प्लव होता है ॥८२॥ जो रात्रि प्रदीपों से रहित होती है और जो नभ आदित्य से रहित होता है उसी प्रकार से असाम्वत्सर राजा मार्ग में अन्धे की भाँति भ्रमण किया करता है ॥८३॥ धर्म से विप्र को स्थापित करना चाहिए और कर्मों की वृद्धि के लिए भावित करना चाहिए । जो द्विज श्मश्रुओं से युक्त हो उसकी पूजा करनी चाहिए । श्मश्रुल विप्र सूर्य होता है ॥८४॥ प्रत्यक्ष दर्शन करने से पुण्य होता है और तीन दिन तक करते रहने से कल्मषों का अपहरण करने वाला होता है । व्रात्य संज्ञा को प्राप्त होने वाले विप्र के दर्शन में सूर्य का दर्शन करने पर विशुद्धि हुआ करती है ॥८५॥ सूर्य विप्र में व्रात्यत्व नहीं होता है । यज्ञों की सिद्धि के लिए पूजा करनी चाहिए । हे द्विजो ! सूर्य विप्र को ही ज्योतिर्वेद का अधिकार होता है । जाति के भेद चार होते हैं । भोजक, कत्थक, शिव विप्र और चौथा सूर्य विप्र परिपठित किये जाते हैं ।८६-८७।

कथको मध्यमस्तेषां सूर्यविप्रस्तथोत्तमः ।
शिवलिङ्गार्चनरतः शिवविप्रस्तु निंदितः ॥८८
सूर्यविप्रस्य विप्रस्य वैद्यस्य च नृपस्य च ।
प्रवासयेदक्षतेन सपुत्रपशुबांधवः ।
अवध्यः सर्वलोकेषु राजा राज्येन पालयेत् ॥८९
वसुभिर्वस्त्रगंधाद्यैर्माल्यैश्च विविधैरपि ।
देशचक्रविदः पूज्या होराचक्रविदः पराः ॥९०

सूर्यचक्रविदः पूज्या नावमन्येत्कथंचन ।
सिद्धय्‌ृद्धिं च धनर्द्धि च य इच्छेदायुषा समम् ।
गणविप्रसमः पूज्यो दैवज्ञः समुदाहृतः ।।६१
जाते वाले निरूप्ये च लग्नग्रहनिरूपणम् ।
संस्थानं सूर्यविप्रो यः सूर्यविप्रस्य सत्तमाः ।
द्विमात्रिकां समभ्यस्य सर्ववेदफलं लभेत् ।।६२

उन चारों में कत्थक जो होता है वह मध्यम होता है और जो सूर्य विप्र होता है वह उत्तम माना गया है । शिवलिंग के अर्चन में रत रहने वाला जो शिव विप्र होता है वह निन्दित हुआ करता ।।८८।। सूर्य विप्र, वैद्य विप्र और नृप का पशु पुत्र और बान्धवों के सहित अक्षत से प्रत्रास कर देना चाहिए । राजा समस्त लोकों में अवध्म होता है उसे राज्य से पालन करना चाहिए ।।८९।। वसुओं (धनों) के द्वारा तथा वस्त्र और गन्धों के द्वारा एवं माल्यों के द्वारा जो कि विविध प्रकार के हों, देवचक्र के ज्ञाता विद्वान् और होराचक्र के वेत्ता विद्वान् पूजने के योग्य होते हैं ।।९०।। जो सूर्य चक्र के ज्ञान रखने वाले होते हैं वे पूजा के योग्य हुआ करते हैं उनका कभी किसी प्रकार से भी अपमान नहीं करना चाहिए यदि सिद्धि, ऋद्धि और धन की ऋद्धि आयु के तुल्य ही चाहते हों तो इनकी पूजा आवश्यक होती है । गण विप्र के समान ही दैवज्ञ विप्र पूज्य कहा गया है ।।९१।। बालक के उत्पन्न होने पर लग्न और ग्रहों का निरूपण करना चाहिए । हे श्रेष्ठवर्ग ! सूर्य विप्र का जो संस्थान है वह सूर्य विप्र ही होता है । द्विमात्रिका का भली भाँति अभ्यास करके समस्त वेदों के अध्ययन-अध्यापन का फल प्राप्त किया करता है ।।९२।।

।। गुरुजन माहात्म्य वर्णन ।।

चतुर्णामपि वर्णानां नान्यो बंधुः प्रचक्षते ।
ऋते पितुर्द्विजश्रेष्ठा इतीयं नैगमी स्मृतिः ।।१

त्रयोऽपि गुरवः श्रेष्टास्ताभ्यां माता परो गुरुः ।
ये सोदारा ज्येष्ठश्रेष्ठा उत्तरोत्तरतो गुरुः ।।२
द्वादश्यां तु आमवास्यामथ वा रविसंक्रमे ।
वासांसि दक्षिणा देया मणिमुक्ता यथारुचि ।।३
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
प्राप्ते चापरपक्षें तु भोजयेच्चापि शक्तितः ।।४
पश्चात्प्रवंदयेत्पादौ मंत्रेणानेन सत्तमाः ।
विधिवद्वंदनादेव सर्वतीर्थफलं लभेत् ।।५
स्वर्गापवर्गप्रदमेकमाद्यं ब्रह्मस्वरूपं पितरं नमामि ।
यतो जगत्पश्यति चारुरूपं
तं तर्पयामः सलिलैस्तिलैयुतैः ।।६
पितरो जनयंतीह पितरः पालयंति च ।
पितरो ब्रह्मरूपा हि तेभ्यो नित्यं नमोनमः ।।७

श्री सूत जी ने कहा—चारों वर्णों का अन्य कोई भी बन्धु नहीं कहा जाता है । हे द्विज श्रेष्ठो ! पिता ही एक परम बन्धु होता है पिता के बिना अन्य कोई बन्धु नहीं है, यह नैगमी स्मृति है ।।१।। ये तीनों ही गुरुगण श्रेष्ठ होते हैं और उन दोनों से माता परमगुरु होती है । जो सोदार और ज्येष्ठों में श्रेष्ठ है वे उत्तरोत्तर से गुरु होते हैं ।।२।। द्वादशी अथवा अमावस्या में अथवा रवि के संक्रमण के दिन में वस्त्र दक्षिणा देनी चाहिए और अपनी रुचि के अनुसार मणि और मुक्ता भी देने चाहिए ।।३।। अयन में, विषुव में, चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहण में अपर पक्ष के अनुरूप भोजन भी करावे ।।४।। हे सत्तमाः ! इसके पीछे इस निम्न मन्त्र के द्वारा चरणों की वन्दना करनी चाहिए । विधि-विधान के साथ वन्दना करने से ही समस्त तीर्थों के फल को प्राप्त किया करता है ।।५।। मन्त्र यह है, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के प्रदान कराने वाले, आद्य ब्रह्म के स्वरूप से युक्त पिता को मैं प्रणाम करता हूँ जिससे जगत् चारु रूप को देखता है उनको मैं तिलों से युक्त सलिलों के द्वारा तृप्त

करता हूँ ।।६।। इस संसार में पितर उत्पन्न किया करते हैं और पितृगण ही पालन भी करते हैं । पितर ब्रह्म के रूप वाले हैं अतः उनके लिये नित्य ही बार-बार नमस्कार है ।।७।।

यस्माद्विजयते लोकस्तस्माद्धर्मः प्रवर्तते ।
नमस्तुभ्यं पितः साक्षाद्ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ।।८
या कुक्षिविवरे कृत्वा स्वयं रक्षति सर्वतः ।
नमामि जननीं देवीं परां प्रकृतिरूपिणीम् ।।९
कृच्छ्रेण महता देव्या धारितोऽहं यथोदरे ।
त्वत्प्रसादाज्जगद्दृष्टं मातर्नित्यं नमोऽस्तुते ।।१०
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरादीनि सर्वशः ।
वसन्ति यत्र तां नौमि मातर भूतिहेतवे ।।११
गुरुदेव प्रसादेन लब्धा विद्या यशस्करी ।
शिवरूप नमस्तस्मै संसारार्णवसेतवे ।।१२
वेद वेदांगशास्त्राणां तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम् ।
आधारः सर्वभूतानामग्रजन्मन्नमोऽस्तु ते ।।१३
ब्राह्मणो जगतां तीर्थं पावनं परमं यतः ।
भूदेव हर मे पापं विष्णुरूपिन्नमोऽस्तु ते ।।१४

जिससे लोक विजय प्राप्त किया करता है और उससे धर्म प्रवृत्त होता है, हे पित्त ! हे साक्षात् ब्रह्म स्वरूप ! आपके लिये नमस्कार है, आपको मेरा प्रणाम है ।।८।। जो अपनी कुक्षि के विवर में रखकर स्वयं सर्व प्रकार से मेरी रक्षा करती है उस परा प्रकृति के स्वरूप वाली देवी जननी को मैं नमन करता हूँ ।।९।। देवी ने बड़े ही कष्ट से जिस तरह मुझे अपने उदर में धारण किया था, हे मात ! यह समस्त जगत मैंसे आपके ही प्रसाद (प्रसन्नता) से देखा है । अतः मैं नित्य ही प्रणाम करता हूँ ।।१०।। पृथ्वी मण्डल में जितने भी तीर्थ है और सब ओर सागर आदि हैं ये सब जहाँ पर निवास किया करते हैं उस अपनी देवी माता को भूति के हेतु के लिए नमस्कार करता हूँ

॥११॥ गुरुदेव के प्रसाद मैंने यश प्रदान करने वाली विद्या को प्राप्त किया है। ऐसे शिव के स्वरूप हे गुरुवर्या! इस संसार रूपी अर्णव से पार होने के सेतु के लिए आपके लिए मेरा शत-शत बार प्रणाम है ॥१२॥ जहाँ पर वेदवेदों के अङ्ग स्वरूप शास्त्रों का तत्व प्रतिष्ठित रहता है। जो समस्त प्राणियों के आधार स्वरूप हैं हे अग्रजन्मन्! आपके लिए मेरा प्रणाम है ॥१३॥ ब्राह्मण समस्त जगत् का तीर्थ है क्योंकि यह परम पावन होता है। हे भूदेव! हे विष्णु रूपिन्! मेरे पाप को हरण करो। आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥१४॥

कनिष्ठं तारहस्तं स्यादुत्तमं पचविंशतिः।
सर्वोत्तमं च द्वात्रिंशच्चतुष्कोणे महाफलम् ॥१५
पुरद्वारं च कर्तव्यं चतुरस्रं समं भवेत्।
अष्टकोणं न कर्तव्यं त्रिपुरं च कलौ युगे ॥१६
सुरवेश्मनि यावन्तो द्विजेन्द्राः परमाणवः।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥१७
कर्तुर्दशगुणं प्रोक्तमापातनपरिपालकः।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स सर्वं फलमश्नुते ॥१८
पतितं पतमानं च तथार्द्धस्फुटित तथा।
समुद्धृत्य हरेर्वेश्म द्विगुणं फलमाप्नुयात् ॥१९
पातितस्य तु यः कर्त्ता पतमानस्य रक्षिता।
विष्णोरधितलस्यैव मानवः स्वगभाग्भवेत् ॥२०
यः कुर्याद्विष्णुप्रासादं ज्योतिर्लिगस्य वा क्वचित्।
सूर्यस्यापि विरिचेश्च दुर्गायाः श्रीधरस्य च ॥२१

अब देवायतन के निर्माण कराने के विषय में बतलाते हैं कि कनिष्ठ देवालय तारहस्त होता है जो कि पञ्च विंशति उत्तम होता है। बत्तीस सर्वोत्तम होता है और जो चतुष्कोण हो तो उसमें महान् फल होता है ॥१५॥ पुरद्वार चतुरस्र और सम करना चाहिए। इस कलियुग में अष्ट-कोण त्रिपुर नहीं बनवाना चाहिए ॥१६॥ देवायतन में हे द्विजेन्द्रगण!

जितने भी परमाणु होते हैं उतने सहस्र वर्ष तक वह मन्दिर निर्माता स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ।।१७।। जो देवालय के कराने वाला होता है उससे दश गुना आपान परिपालक कहा गया है। वह जो भी पतित हो गये हैं उन सबका उद्धार कर देता है और सम्पूर्ण फल की प्राप्ति किया करता है ।।१८।। गिरे हुये या गिरने वाले तथा आधे टूटे-फूटे हुए हरि के आयतन का भली-भाँति जीर्णोद्धार किया करता है वह दुगुना फल प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। नूतन बनवाने की अपेक्षा जीर्ण देवालय के उद्धार का द्विगुण फल मिला करता है।।१९।। पतित का जो कर्त्ता है और पतमान होने वाला है उसकी रक्षा किया करता है वह मानव विष्णु के अधस्तल का ही स्वर्ग भाक् होता है ।।२०।। जो विष्णु के प्रासाद को बनवाता है अथवा ज्योतिर्लिङ्ग के प्रासाद को करता है, सूर्य, ब्रह्मा दुर्गा और श्रीधर के प्रासाद की रचना कराता है वह करोड़ों कल्प तक स्वर्गवासी होता है ।।२१।।

स्वयं स्वकुलमुद्धृत्य कल्पकोटिं वसेद्दिवि ।
स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्राजा धनी पूज्यतमोपि वा ।।२२
देवीलिंगेषु योनौ वा कृत्वा देवकूलं नरः ।
स्मरत्वं प्राप्नुयोल्लोके पूजितो दिवि सर्वदा ।।२३
प्रावृट्काले स्थितं तोयमग्निष्टोमफलं लभेत् ।
शरत्कालस्थितं तोयं यज्ञतोयाद्विशिष्यते ।।२४
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वापिनः ।
स्वर्गं गच्छेत्स नरकं न कदाचिदवाप्नुयात् ।।२५
एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां द्विजसत्तमाः ।
कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराणि च ।।२६
पूर्वं पितृकुले सप्त तद्वन्मातृकुले द्विजाः ।
चतुर्दशमिदं ज्ञेयं शतलेखं ततः शृणु ।।२७
पितुरूर्ध्वं कुलं विंशं मातुरूर्ध्वं कुलं तथा ।
तद्वत्परं विजानीयाद्भार्यायाः पंच एव च ।।२८

देवायतनके निर्माण कराने वाला चाहे किसी भी एक देवता के आलय की रचना करावे, अपने कुल का उद्धार करके करोड़ों कल्प पर्यन्त स्वर्ग-लोक में निवास किया करता है। जब स्वर्ग का उपभोग उसका समाप्त हो ज.ता है तो वह फिर यहाँ मानुष लोक में जन्म ग्रहण करके राजा, धनी या पूज्यतम हुआ करता है ।।२२।। जो मनुष्य देवी के लिङ्गों में अथवा योनि में देव कुल को करता है वह लोक में स्मर के स्वरूप को प्राप्त किया करता है और सर्वदा स्वर्ग में पूजित होता है ।।२३।। वर्षा के समय में जो तोय (जल) स्थित होता है वह अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है। जो जल शरत्काल में स्थित रहता है वह यज्ञ तोय से भी विशेषता रखता है ।।२४।। जिसकी वापी (बावड़ी) में ग्रीष्म ऋतु में जल स्थित रहा करता है वह वापी के निर्माण कराने वाल। मानव स्वर्ग में चला जाता है और उसे नरक कभी भी प्राप्त नहीं होता है ।।२५।। हे द्विजश्रेष्ठो ! पृथिवी मण्डल में एक दिन भी स्थित रहने वाला जल उस निर्माता के सात पूर्व के और सात आगे होने वाले कुलों का उद्धार कर दिया करता है ।।२६।। पहिले पितृकुल में सात और उसी भाँति मातृकुल में सात इस तरह से चौदह कुल होजाते हैं। अब शत लेख का श्रवण करो ।।२७।। पिता के ऊर्ध्व के बीस कुल तथा इसी प्रकार से माता के ऊर्ध्व कुल और इसी भाँति अपनी भार्या के पांच समझने चाहिए ।।२८।।

पंच वै मातृतश्चास्य पितुर्मातामहे कुले ।
पन्च पन्च विजानीयान्मातुर्मातामहस्य च ।।२९
गुरोः पितृकुले पन्च तस्य मातृकुले तथा ।
आचार्यस्य कुले द्वंद्वं दशराजकुलस्य च ।।३०
राज्ञो मातामहकुले पन्च चैव प्रकीर्तिताः ।
एकोत्तरं शतकुलं परिसंख्यातमेव च ।।३१
आत्मना सह विप्रेंद्रा उद्धारः संमतः स्मृता ।
कुर्याद्देवाचंनं तीर्थं स्वविमुक्ते दशार्णवे ।।३२
समुद्धरेत्कुलशतं शृणु विंशकुलं द्विज ।
पन्च पंच च पित्रोश्च पितुर्मातामहस्य च ।।३३

मातुर्मातामहस्यैव जातिं द्वंद्वमुदाहृतम् ।
गुरोः संतानके द्वंद्वं तद्वद्यादवसात्वतौ ॥३४
परपक्षस्य चैकं स्यादेकविंशं कुलं क्रमात् ।
पानीयमेतत्सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३५

इस तरह माता से इसके पाँच और पिता मातामह कुल में पाँच-पाँच तथा मातामह के जानने चाहिए ॥२९॥ गुरु के पितृकुल में पाँच और उसके मातृकुल में पाँच, आचार्य के कुल में दो तथा राजा के कुल में दस का उद्धार कर देता है ॥३०॥ राजा के मातामह के कुल में पाँच बताये गये हैं। इस प्रकार से एक सौ से अधिक अर्थात् एक सौ एक कुलों की संख्या की गई है ॥३१॥ हे विप्रेन्द्रगण! अपनी आत्मा के साथ ही उद्धार का होना सम्मत कहा गया है। तीर्थ में स्वविमुक्त दशार्णव में देवता का अर्चन करना चाहिए ॥३२॥ हे द्विज ! इस तरह शतकुल का समुद्धार करना चाहिये। अब त्रिशकुल का श्रवण करो। पाँच-पाँच माता और पिता के और पिता के मातामह के तथा माता के मातामह के द्वन्द्व जाति को बतलाया गया है। गुरु की सन्तान में द्वन्द्व और इसी भाँति यादव सात्वत और पर पक्ष का एक इस क्रम से इक्कीस कुल होते हैं। यह जल सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य का उद्धार कर देता है ॥३३-३५॥

पानीयेन विना वृत्तिर्लोके नास्तीति कर्हिचत् ।
वारस्वस्थ पुष्पखंड तोये पतति यावति ॥३६
तावत्काल वसेत्स्वर्ग चान्ते ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ।
तस्मात्तोयोपरि गृहं प्रसादोपरि वर्जयेत् ॥३७
सूर्यरश्मियुतं यद्वै तत्तोयं तु विनिंदितम् ।
चन्द्ररश्मिविहीन यत्नामृतत्वाय कल्पते ॥३८
तस्माद्दशगुणं कुण्डे तस्माद्दशगुणं ह्रदे ।
देवानां स्थापनं कुर्यादविमुक्तफलं शुभम् ॥३९
सुस्थितं दुःस्थित वापि शिवलिंगं न चालयेत् ।
चालनाद्रौरवं याति न स्वर्गं न च स्वर्गभाक् ॥४०

उच्छन्ननगरग्रामे स्थानत्यागे च विप्लवे ।
पुनः संसारधर्मेण स्थापयेदविचारयन् ॥४१

बाहुदंतादिप्रतिमा विष्णोश्चान्यस्य सत्तमाः ।
न चालयेत्स्थापिते च विप्रवृक्षं न चालयेत् ॥४२

पानीय के बिना लोक में कहीं भी वृत्ति नहीं होती है। जब तक धारस्वस्थ पुष्प खण्ड जल में गिरता है तब तक वह स्वर्ग में निवास किया करता है और अन्त में ब्रह्मत्व की प्राप्ति करता है। इसलिए तोय (जल) के ऊपर गृह और प्रसाद के ऊपर गृह वर्जित रखना चाहिए ॥३६-३७॥ जो तोय सूर्य की रश्मियों से युक्त होता है वह तोय विनिन्दित होता है। जो चन्द्रमा की रश्मियों (किरणों) से विहीन होता है वह अमृतत्व के लिए कल्पित नहीं होता है ॥३८॥ इससे दश गुना कुण्ड में और उससे दश गुना ह्रद में देवों का स्थापन करना चाहिए वह अविमुक्त फल शुभ होता है ॥३९॥ सुस्थित या दुःस्थित कैसा भी हो शिवलिंग को चालित नहीं करना चाहिए। इसके चालन करने से रौरव को जाया करता है और स्वर्ग में नहीं जाता है और स्वर्ग का भागी भी नहीं होता है ॥४०॥ उच्छन्न नगर ग्राम में, स्थान के त्याग में और विप्लव में पुनः संसार के धर्म से बिना कुछ विचार किए हुए स्थापना करनी चाहिए ॥४१॥ हे सत्तमाः ! विष्णु की या अन्य की बाहु दन्तादि प्रतिमा नहीं चालित करनी चाहिए और स्थापित करने पर विप्र वृक्ष को भी चालित न करे ॥४२॥

केशवं हरिवृक्षं च मधूकं किंशुकं तथा ।
नाकाले स्थापयेज्जातु चालनाद्ब्रह्महा भवेत् ॥४३

देवालयस्य पुरतः कुर्यात्पुष्करिणीं द्विजाः ।
ब्राह्मणानां समाजे च राजद्वारे चतुष्पथे ॥४४

देवार्थे ब्राह्मणार्थे च सुखं कुर्याच्च सर्वतः ।
पश्चिमे पुष्टिकामं तु उत्तरे सर्वकामदम् ॥४५

याम्ये स्वार्थं न कुर्वीत कोणे तु नरकं भवेत् ।
मुखं प्रकल्पयेन्मध्ये केचिदुत्तरलंघनम् ॥४६
कुर्याद्दक्षिणपूर्वे तु अर्कहस्तप्रमाणतः ।
तडागे तु फलाहस्तं हस्तिकं ह्रासयेत्क्रमात् ॥४७
तृप्ये हस्तं नलिन्यादावतो हीनं न कारयेत् ।
गर्तंतृणं कलाहस्तं तडागेऽत्र प्रचक्ष्यते ॥४८
हीने हीनतरं कुर्याद्धस्तमानेन ह्रासयेत् ।
यूपस्तथा खादिर एव कार्यः
श्रेपर्णिको धात्रिसमुद्भवश्च ॥४९

केशव, हरि वृक्ष, मधूक और किंशुक को अकाल में कभी स्थापित न करे और इनके चालन करने से ब्रह्महा होता है ॥४३॥ हे द्विजाः ! देवालय के आगे के भाग में पुष्करिणी बनवानी चाहिए । ब्राह्मणों के समाज में, राजद्वार में और चतुष्पथ में पुष्करिणी होनी चाहिए ॥४४॥ देवों के अर्थ में और ब्राह्मणों के अर्थ में सब प्रकार से सुख करे । पश्चिम में पुष्टि काम को और उत्तर में समस्त कामनाओं के देने वाला होता है ॥४५॥ याम्य दिशा में स्वार्थ नहीं करे और कोण में करने से नरक होता है । इसका मुख मध्य में प्रकल्पित करे । कुछ विद्वान् इसे उत्तर लंघन कहते हैं ॥४६॥ बारह हाथ के प्रमाण से दक्षिण पूर्व में करना चाहिए । तड़ाग में फलाहस्त क्रम से हस्तिक का ह्रास करे ॥४७॥ तृप्य में नलिन्यादाव से हाथ हीन नहीं करावे । गर्त्त तृण कला हस्त इस तड़ाग में कहा जाता है ॥४८॥ हीन में हीनता करे और हस्त के मान से ह्रास वाला बनावे । खदिर का, श्रेपर्णिक अथवा धात्री से समुत्पन्न धूप कराना चाहिए ॥४९॥

॥ आहुति होमसंख्या वर्णन ॥

यस्य यज्ञस्य यन्मानं तत्तु तेनैव योजयेत् ।
अमानेन हतो यज्ञस्तस्मान्मानं न हापयेत् ॥१

शतार्धं प्रथमं मानं शतसाहस्त्रमेव च।
अयुतं च तथा लक्षं कोटिहोममतः परम् ॥२
अतः परं तु विभवे राजा वान्यो द्विजोत्तमाः।
न स सिद्धिमवाप्नोति अयागफलभाग्भवेत् ॥३
विपाक कर्मणां सर्वं नरः प्राप्नोति सर्वदा।
शुभाशुभं ततो नित्यं प्राप्नोति मनुजः किल ॥४
युक्ताश्चापि ग्रहास्तत्र नित्यं शांतिकपौष्टिके।
तस्मात्प्रयत्नतो भक्त्या नित्यं पूजा यथाविधि ॥५
अद्भुते च तथा शान्ति कुर्याद्भक्तिसमन्वितः।
तस्माद्ग्रहाभिजनितं शुभाशुभफलं खलु ॥६
अद्भुतेषु च सर्वेषु अयुतं कारयेन्नरः।
होमं यथाभिरुचितं पौष्टिके काम्यकर्मणि ॥७

इस अध्याय में यज्ञ परतः होने से आहुति और होम की संख्या तथा मान का निरूपण किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—जिस यज्ञ का जो मान होता है उसे उस ही मान के द्वारा योजित करना चाहिए। जो यज्ञ बिना ही मान के किया जाता है वह हत हो जाता है इसलिए मान का त्याग कभी नहीं करे ॥१॥ इस यज्ञ का प्रथम मान एक शत होता है। फिर शत सहस्र वाला मान होता है। अयुतमान होता है और लक्ष तथा कोटिका होम सबसे पर होता है ॥२॥ इससे ऊपर तो विभव होने पर राजा हो या कोई भी अन्य हो, हे द्विजोत्तमाः! जो भी करता है वह सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है और याग के फल का भागी भी नहीं हुआ करता है ॥३॥ इस संसार में मनुष्य सर्वदा कर्मों के समस्त विपाक को प्राप्त किया करता है। मनुष्य इसी से नित्य शुभ और अशुभ फल पाया करता है ॥४॥ वहाँ शान्ति व पौष्टिक कर्म में नित्य ही ग्रह युक्त होते हैं। इससे भक्ति के भाव से प्रयत्न पूर्वक यथाविधि पूजा करनी चाहिए ॥५॥ और अद्भुत में भक्ति से समन्वित होकर शान्ति करे। इससे ग्रहों से अभिजनित शुभ और अशुभ फल निश्चय ही होता है ॥६॥ समस्त अद्भुतों में मनुष्य को

अयुत कराना चाहिए । पौष्टिक काम्य कर्म में अपनी अभिरुचि के अनुसार होम करे ॥७॥

लक्षहोमं कोटिहोमं राजा कुर्याद्यथाविधि ।
अन्यः शतादिकं कुर्यादयुतं विभवे सति ॥८
ग्रहाणां लक्षहोमस्तु कोटिहोमस्तथा कलौ ।
निधिहोमं चाभिचारं तन्न कुर्याद्गृहाश्रमी ॥९
यत्र यत्र जपः कार्यो होमो वा यत्र कुत्रचित् ।
मानं नैव च कर्तव्यं मानादौ चाष्टकं न्यसेत् ॥१०
युग्मसाध्यं न कर्तव्यं युग्मतो भयमादिशेत् ।
लक्षे सप्ततालसंख्या कोटिहोमे च विंशतिः ॥११
एकत्रिंशद्दिनैर्वापि न कुर्यात्यद्ययं क्वचित् ।
आरंभस्त्रिसहस्रः स्याद्द्वितीयऽष्टसहस्रकः ॥१२
तृतीये तु सहस्रं स्याद्ग्रहसाध्यः स्मृतो विधिः ।
पञ्चाहे च समारंभे सहस्रं जुहुयाद्बुधः ॥१३
द्वितीयेऽह्नि द्विसाहस्रं तृतीये तु सहस्रकम् ।
गुणसाहस्रकं तुर्ये पञ्चाहे शेषमोरितम् ॥१४

राजा को लक्ष होम और कोटि होम विधि के अनुसार करना चाहिये । अन्य पुरुष को शतादिक होम करना चाहिए । यदि विभव हो तो अयुत भी करे ॥८॥ ग्रहों का लक्ष हाम होता है और कलियुग में कोटि होम करना चाहिए । निधि होम और अभिचार जो होता है उसे गृहाश्रमी को नहीं करना चाहिए ॥९॥ जहाँ-जहाँ पर जप करे अथवा जहाँ कहीं होम करे । और मान नहीं करना चाहिए । मानादि में अष्टक का न्यास करना चाहिये ॥१०॥ युग्म साध्य को नहीं करे युग्म से भय आदिष्ट होता है । लक्ष में सप्त ताल की संख्या होती है और कोटि होम में बीस की संख्या है ॥११॥ अथवा इकत्तीस दिनों में करे । इसका व्यत्यय कहीं पर नहीं करना चाहिये । आरम्भ में तीन सहस्र होता है और द्वितीय में आठ सहस्र होता है । तृतीय में सहस्र है । ग्रहों से साध्य विधि कही गई है । पाँच दिन के समारम्भ में बुध को एक सहस्र

का हवन करना चाहिए। दूसरे दिन में दो सहस्र तथा तृतीय दिन में सहस्र करे। चौथे में गुण साहस्त करे और पाँचवे में शेष कहा गया है ॥१२-१४॥

नवाहे कल्पयेल्लक्षमेकैकांगं दिने दिने।
पंचमे च तथा षष्ठे कुले भागद्वयाधिकम् ॥१५
कोटिहोमे च तिथ्यंगे शतभागेन कल्पयेत्।
न न्यूनं नाधिकं कार्यमेतन्मानमुदाहृतम् ॥१६
नित्यमेकं दिने दद्यात्पृथङ् नित्यं न चाचरेत्।
स समाजे जपेन्नित्य पञ्चतारेण स्विष्टकृत् ॥१७
अयुते लक्षहोमे च कोटिहोमे च सर्वदा।
प्रथमे दिवसे कुर्याद्देवतानां च स्थापनम् ॥१८
महोत्सवे द्वितीये तु बलिदानं तथैव च।
त्र्यहसाध्ये त्रिरात्रे पूर्णं कृत्वा विसर्जयेत् ॥१९
पञ्चाहे तु तृतीयेऽह्नि बलिदानं प्रशस्यते।
सप्ताहे चाष्टदिवसे नवाहे पञ्चमेऽहनि ॥२०
पञ्चाहे द्वादशाहे तु द्वात्रिंषत्षोडशेहनि।
इतोऽन्यथा न कुर्वीत नात्र यज्ञफलं लभेत् ॥२१

नवाह में लक्ष की कल्पना करे और दिन-दिन में एक-एक अङ्ग को करना चाहिए। पाँचवे और छटवें कुल में भाग द्वय से अधिक करना चाहिये ॥१५॥ तिथ्यङ्ग कोटि होम में शतभाग से करनी चाहिए। न तो न्यून ही करे और न अधिक ही करना चाहिए। इस तरह से इसका मान बताया गया है ॥१६॥ दिन में नित्य एक को देना चाहिये। और नित्य पृथक् आचरण नहीं करना चाहिए। उसे पञ्च तार से स्विष्टकृत् होकर समाज में नित्य जप करना चाहिए ॥१७॥ अयुत होम में, लक्ष होम में, और कोटि होम में सर्वदा प्रथम दिवस में देवताओं का स्थापन करना चाहिए ॥१८॥ दूसरे महोत्सव में बलिदान करे। तीन दिन में साध्य में और तीन रात्रि में साध्य होने वाले पूर्ण करके विसर्जन

करे ॥१६॥ जो पञ्चाह याग हो उसमें तीसरे दिन में बलिदान प्रशस्त कहा जाता है। सप्ताह में आठवें दिन में और नवाह में पाँचवे दिन में करे ॥२०॥ पञ्चाह में, द्वादशाह में बत्तीस षोड़श दिन में करे। इससे अन्यथा कभी नहीं करना चाहिए। विपरीत करने पर यज्ञ के फल की प्राप्ति नहीं होती है ॥२१॥

॥ कुण्ड संस्कार वर्णन ॥

कुण्डानामथ संस्कारे वक्ष्ये शास्त्रमतं यथा।
असस्कृते चाथहानिस्तस्मात्संस्कृत्य होमयेत् ॥१
अष्टादश स्युः संस्काराः कुण्डानां तत्र दर्शिताः।
तारेणावेक्षयेत्स्थानं कुशतोयैः प्रसेचयेत् ॥२
त्रिसूत्रीकरणं पश्चाद्वृत्तसूत्रं निपातयेत्।
वारेण कीलकं दद्यान्नारसिंहेन कुड्मलम् ॥३
जिह्वां प्रकल्पयेत्पश्चात्तस्मादग्नि समाहरेत्।
न च म्लेच्छगृहादग्नि न शूद्रनिलयात्क्वचित् ॥४
नदीपर्वतशालाभ्यः स्त्रीहस्तात्परिवर्जयेत्।
संस्कृत्य परिगृह्णीयात्त्रिधा कृत्वा समुद्धरेत् ॥५
तमग्नि प्रतिगृह्णीयादात्मनोऽभिमुखं यथा।
वह्निबीजेन मतिमाञ्छिवबीजेन प्रोक्षयेत् ॥६
वागीश्वरीमृतुस्नातां वागीश्वरसमागताम्।
ध्यात्वा समारणं दद्यात्काममुत्पद्यते ततः ॥७

इस अध्याय में कुण्डों के संस्कार के विषय में शास्त्र के मत का वर्णन तथा अष्टादश कुण्डों के संस्कार का वर्णन किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर मैं कुण्डों के संस्कार में शास्त्र के मत को बतलाऊँगा। जो कुण्ड असंस्कृत होता है उसमें होम करने से हानि हुआ करती है इसलिए कुण्ड का संस्कार करके ही होम करना चाहिये ॥१॥ वहाँ पर कुण्डों के अठारह संस्कार दिखलाये गये हैं। तार के द्वारा

स्थान का अवेक्षण करना चाहिये और कुश के जल से प्रसेचन करना चाहिए ।।२।। इसके पीछे त्रिसूत्रीकरण करे और वृत्त सूत्र का निपातन करना चाहिए । वार से कीलक देवे और नारसिंह मन्त्र से कुङ्मल देवे ।।३।। इसके पश्चात् उसमें जीह्वा को प्रकल्पित करना चाहिए और उससे अग्नि का समाहरण करे । किसी मलेच्छ जाति वाले के घर से और किसी भी शूद्र के घर से कभी अग्नि नहीं लेनी चाहिए ।।४।। नदी, पर्वत और शाला से तथा स्त्री के हाथ से अग्नि का लाना परिवर्जित करना चाहिए । पहले संस्कार करके परिग्रहण करना चाहिए । और तीन भाग करके समुद्धृत करे ।।५।। उस अग्नि को अपने अभिमुख करके प्रतिग्रहण करे । मति मान पुरुष को वह्नि बीज से और शिव बीज से प्रोक्षण करना चाहिए ।।६।। वागीश्वर से समागत ऋतु स्नान करने वाली वागीश्वरी का ध्यान करके समीरण (वायु) देना चाहिये जिससे कि वह अच्छी तरह से यथेच्छ उत्पन्न हो जाती है ।।७।।

कालबीजेन चैशान्यां योनावग्निं विनिक्षिपेत् ।
पश्चाद्देवस्य देव्याश्च दद्यादाचमनीयकम् ।।८
पितृपिङ्गल दहदह पचयुग्ममुदीर्य च ।
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रोयं वह्निपूजने ।।९
वह्निर्बर्हिषि संयुक्ताः सादियांताः सबिंदवः ।
वह्निमन्त्राः समुद्दिष्टा द्विजानां मन्त्र ईरितः ।।१०
जिह्वास्तास्त्रिविधाः प्रोक्ता यज्ञदत्तेन सत्तमाः ।
हिरण्यामाज्यहोमेषु होमयेत्संयतात्मकः ।।११
त्रिमध्ववक्त्रं यंत्र होमं कर्णिकायां च होमयेत् ।
कनकास्यातु कृष्णास्याद्धिरण्या शुभ्रता तथा ।।१२
बहुरूपातिरूपा च सात्त्विका योगकर्मसु ।
विश्वमूर्तिस्फुलिंगिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा ।।१३
लोहितास्यात्करालास्यात्कालीभासस्य इत्यपि ।
एताः सप्त नियुंजीत विज्ञेयाः क्रूरकर्मसु ।।१४

काल बीज से ईशान दिशा की योनि में उस अग्नि को निक्षिप्त करे। इसके अनन्तर देवी और देव को आचमनीय देना चाहिए ॥८॥ हे पितृ पिंगल! दहन करो, दहन करो, इस तरह पच युग्म को कह कर अर्थात् पच-पच इसे दो बार कह कर हे सर्वज्ञ! स्वाहा को आज्ञा दो, यह वह्नि के पूजन में मन्त्र होता है ॥९॥ वह्नि वहिष में संयुक्त सदियान्त और सबिन्दु वह्नि के मन्त्र समुद्दिष्ट हुए हैं। यह द्विजों का मन्त्र कहा गया है ॥१०॥ वह जीह्वा तीन प्रकार की कही गई है। हे सत्तमा:! आज्य (घृत) होमों में संयतात्मक होकर हिरण्या का होम करना चाहिए ॥११॥ जहाँ पर त्रिमध्वक्तों से होम होता है वहीं कर्णिका में होम करना चाहिए। कनका हो, कृष्ण होवै, हिरण्या हो तथा शुभ्रता होवे ॥ १२॥ बहुरूपा, अतिरूपा और सात्विका योग कर्मों में होती है। विश्वमूर्त्ति, स्फुलिंगिनी, धूम्र वर्ण वाली, मनोजवा, लोहित हो, करालः होवे, कालो भासस्व हो, ये सात नियुक्त करे जोकि क्रूर कर्मों में जाननी चाहिए ॥१३-१४॥

समिद्भेदेषु या जिह्वास्तास्तु तेनैव योजयेत्।
हिरण्यामाज्यहोमेषु होमयेत्संयतात्मकः ॥१५
त्रिमध्वक्तैर्यथा होमं कर्णिकायां च होमयेत्।
शुद्धक्षीरेण रक्तायां नैत्यिकेषु प्रभा स्मृता ॥१६
बहुरूपा पुष्पहोमे कृष्णा चान्नेन पायसैः।
इक्षुहोमे पद्मरागा सुवर्णा पद्महोमके ॥१७
लोहिता पद्महोमै च श्वेता वै बिल्पत्रकै।
धूमिनी तिलहोमे च काष्ठहोमे करालिका ॥१८
लोहितास्या पितृहोमे ततो ज्ञेया मनोजवा।
वैश्वानरं स्थितं होमे समिद्धोमेषु सत्तमाः ॥१९
समानमाज्यहोमे च निषण्णं शेषवस्तुषु।
आस्यात्तु जुहुयाद्वह्नौ विपर्गीत सवकर्मसु ॥२०
कर्णहोमे तु वै व्याधिर्नेत्रे तद्द्वयमीरितम्।
नासिकायां मनः पीडा मस्तकेऽत्रा न संशयः ॥२१

समिधाओं के भेदों में जो जीह्वा हैं वे उसी के द्वारा योजित करे। आज्य होमों में संयत आत्मा वाला होकर हिरण्या को होम करना चाहिए ॥१५॥ त्रिमध्वक्तों से होम को कर्णिका में होमना चाहिए। रक्ता में शुद्ध क्षीर से करे और नैत्यिकों में प्रभा कही गई है ॥१६॥ पुण्य होम में बहु-रूपा जीह्वा होती है। अन्न के द्वारा और पायस से होम में कृष्णा होती है। इक्षु के होम में पद्मरागा और पद्म होम में सुवर्णा होती है ॥१७॥ पदम होम में लोहिता और विल्व पत्रों के द्वारा किये जाने वाले होम में श्वेता होती है। तिलों के होम में धूमिनी और काष्ठ के होम में कराला कही गई है ॥१८॥ पितृहोम में लोहितास्या और इसके अनन्तर मनोजवा जाननी चाहिए। होम जो समिद्ध हों उनमें हे सत्तमा: ! वैश्वानर स्थित होम में रहते हैं ॥१९॥ आज्य होम में समान है और शेष वस्तुओं में निषण्ण रहते हैं। वह्नि में आस्य से हवन करना चाहिए जो कि समस्त कर्मों में पालन करता है ॥२०॥ कर्ण होम में व्याधि होती है। नेत्र में भी उसी तरह कहा गया है। नासिका में मन को पीड़ा होती है और मस्तक में मार्ग होता है, इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥२१॥

गुह्ये विपत्करं चैव तस्मात्तत्र न होमयेत्।
साधारणमथो वक्ष्ये वह्नेर्जिह्वाश्च कीर्तिता: ॥२२
प्रवक्ष्यामि विधिं कृत्स्नं यद्विशेषं पुन: शृणु।
घृताहुतौ हिरण्याख्या गगना पाणिहोमत: ॥२३
वक्त्रा ख्याता महाहोमे कृष्णाभा सा क्रतौ मता।
सुप्रभा मोदकविधौ बहुरूपातिरूपिका: ॥२४
पुष्पपत्रविधौ होमे वह्नेर्जिह्वा: प्रकीर्तिता:।
न वा संकल्पयेत्कुंडे शूद्राकारविभेदत: ॥२५
इन्द्रकोष्ठं मस्तकं स्यादीशाग्नेये च मस्तके।
तत्काष्ठपार्श्वे द्वे नेत्रे द्वौ करौ च पदक्रमात् ॥२६
अविशिष्टं भवेत्पुच्छं मध्ये चोदरसम्भवम्।
उदरे होमयत्पुष्टिमन्तं पायसकं च यत् ॥२७

हुत्वा व्रीहिगणं तत्र कर्णे पुष्पाहुतिं हुनेत् ।
वामकर्णे वामनेत्रे हुनेदब्जादिकं बुधः ॥२८

गुह्य में विपत्ति करने वाला होता है इसलिए उसमें होम नहीं करना चाहिए। अक तक वह्नि की जीह्वा के विषय में विशदतया कह दिया गया है। अब साधारण बताया जाता है ॥२१॥ अब मैं पूर्ण विधि को बतलाऊँगा। जो कुछ विशेष है उसे पुनःश्रवण करो। घृताहुति में हिरण्या नाम वाली होती है। पाणि होम में गगना है ॥२३॥ महा होम में वक्ता कही गई है। क्रतु में वह कृष्णाभा मानी गई है। मोदक विधि में सुप्रभा होती है। बहुरूपा और अति रूपिका पुष्प पत्र विधि वाले होम में वह्नि की जिह्वायें परिकीर्त्तित की गई हैं। अथवा शूद्रकार के विभेद से कुण्ड में संकल्पन नहीं करना चाहिए ॥२४-२५॥ इन्द्रकोष्ट मस्तक होता है और ईशाग्नेय मस्तक होते हैं। तत्काष्ठ पार्श्व में दो नेत्र और पद क्रम से दो हाथ होते हैं ॥२६॥ और मध्य में उदर से सम्भव वाली अविशिष्ट पुच्छ होती है। उदर में पुष्टि अन्न और पायस का होम करना चाहिये ॥२७॥ वहाँ व्रीहिगण का हवन करके वहाँ कर्ण में पुण्या हुति का हवन करना चाहिए। बुध पुरुष को चाहिए कि वाम कर्ण में और वाम नेत्र में अब्ज आदि का हवन करे ॥२८॥

श्रवणे चैव नेत्रे च दक्षिणे चेक्षुखंडकम् ।
वामपादे वामकरे अभिचारेषु शस्यते ॥२९
मारणे पुष्पदेशे तु न चान्यं होमयेत्क्वचित् ।
विपत्करं विजानीयाद्धनिः सर्वविनाशकृत् ॥३०
चन्दनागरुकर्पूरपाटलायूथिकानिभः ।
पावकस्य सुतो गन्ध समन्तात्सुमहोदया ॥३१
प्रदक्षिणस्त्यक्तकल्पा छत्राका शिथिला शिखा ।
शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः ॥३२
छिन्नवृत्ताः शिखाः कुर्यान्मृत्युर्धनपरिक्षयः ।
निर्वाप्यं मरणं विद्यान्महाधूमाकुलेऽपि च ॥३३

एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
अष्टाविंशाहुतीस्त्यक्त्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।।३४
मूलेनाज्येन जुहुयाज्जुहुयात्पञ्चविंशतिम् ।
महास्नानं प्रकर्तव्यं त्रिकालं हरिपूजनम् ।।३५

दक्षिण श्रवण और नेत्र में ईख के दण्ड का हवन करना चाहिए। वाम याद और वाम कर में हवन करना अभिचार के कर्मों में प्रशस्य माना जाता है ।।२६।। मारण पुष्य देश में अन्य किसी का कभी भी हवन नहीं कराना चाहिए। ऐसा हवन करना विपत्ति के करने वाला जानना चाहिए। यह हनि सर्व विनाश की करने वाली होती है ।।३०।। चन्दन, अगरु, कपूर, पाटला यूथिका के तुल्य पावक का सुत गन्ध सब और सुन्दर महान् उदय वाला होता है ।।३१।। प्रदक्षिण,कल्प के त्यागने वाली, छत्राक, शिथिला अग्नि की शिखा यजमान को शुभ देने वाली होती है और विशेष करके राज्य की भी शुभदा हुआ करता है ।।३२।। छिन्न वृत्त वाली शिखा मृत्यु और धन का परिक्षय करती है। महान् धूम से आकुल में भी मरण को निर्वाप्य जानना चाहिए ।।३३।। इस प्रकार के दोषों में प्रायश्चित करना चाहिए अठ्ठाईस आहुतियां छोड़कर फिर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। मूल के द्वारा आज्य से हवन करना चाहिए और पञ्च विशंति का हवन करे। महास्नान करना चाहिए और त्रिकाल में हरि का पूजन भी कराना चाहिए ।।३४-३५।।

।। विविध मंडल निर्माण वर्णन ।।

अथातो मंडलं वक्ष्ये पुराणेषु यथोदितम् ।
यदधीना भवेत्सिद्धिस्तस्मात्कुर्यात्समाहितः ।।१
देवाः पद्मासनस्थाश्च भविष्यन्ति वसंति च ।
विनाब्जं नार्चयेद्देवमर्चिते यक्षिणी हरेत् ।।२

अतो मंडलविच्छेदं यस्माद्दशगुणं भवेत् ।
रजः साध्ये शतगुणं केवले द्विगुणं फलम् ।।३

त्रिशतं वन्दने साध्ये सहस्रं च रजोऽष्टकम् ।
रजोभिः षोडशैर्बिवं शतंशतमनंतकम् ।।४
यन्त्रे मणौ शालग्रामे प्रतिमायां विशेषतः ।
महालये महायोनौ रक्तलिंगे च साधिकम् ।।५
रजोयुक्तं लिखेद्यस्तु पूजाकार्ये विभूतये ।
करणादिफलं यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।।६
चतुरस्रं नवं व्यूहं क्रौंचघ्राणं चतुर्विधम् ।
कामबीजं वज्रनाभं विघ्नराजं गजाह्वयम् ।।७

इस अध्याय में देवता परता होने से और कर्म का परत्व होने से विविध विधि के मण्डलों के निर्माण करने का वर्णन किया जाता है। श्री सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर मण्डल के विषय में बतलाया जाता है जैसा कि पुराणों में कहा गया है ? मण्डलों के ही अधीन सिद्धियाँ हुआ करती हैं अतएव इन मण्डलों की रचना बहुत ही समाहित होकर करनी चाहिए ।।१।। देवगण पद्म के आसन पर स्थित रहा करते हैं। और उसी पर वे निवास भी करते हैं। इसलिए बिना कमल के देवता का यजन नहीं करना चाहिए। और जो विना कमलों के अर्चना करते हैं उस अचना को दक्षिणी हरण करके ले जाया करती है ।।२।। इससे दश गुना मण्डल का विच्छेद होता है। रज के साध्य होने में शतगुण और केवल में द्विगुण फल हुआ करता है ।।३।। वन्दन के द्वारा साध्य में तीन सौ गुना होता है और रजोऽष्टक में सहस्र गुना फल हुआ करता है। रजों के द्वारा जो षोड़श हों, बिम्ब करना शत-शत और अनन्त फल देने वाला होता है ।।४।। यन्त्र में, मणि में शालग्राम में और प्रतिमा में विशेष रूप से होता है। महालय में, महायोनि में और रक्त लिंक में साधिक होता है ।।५।। जो रज से युक्त पूजा के कार्य में लिखता है वह विभूति के लिये होता है। जिससे करणादि फल हो

उसे परिवर्जित कर देना चाहिए ॥६॥ चतुरस्र नव व्यूह होता है और क्रौञ्च घ्राण चार प्रकार का होता है। कामबीज, वज्रनाभ, और गजाह्वय नाम वाले होते हैं ॥७॥

पारिजातं चंद्रबिबं सूर्यकांतं च शेखरम् ।
शतपत्रं सहस्रारं नवनाभं च मुष्टिकम् ॥८
पंचाब्जं चैव मैनाकं कामराजं च पुष्करम् ।
अष्टास्त्रं चैव श्रीबिबं षडस्त्रं त्र्यस्रमेव तु ॥९
चत्वारिंशत्तथा पंचस्वाधिकं परिसंख्यया ।
चतुरस्त्रं नवव्यूढं वैष्णवे यागकर्मणि ॥१०
प्रशस्तं चापि गोमेध क्रौंचं घ्राणं चतुर्विधम् ।
सुभद्रं चाश्वमेधे च नरमेधे नरासनम् ॥११
सर्वत्र सर्वतोभद्रं चतुरस्त्रं सुभद्रकम् ।
कामराजं तथा त्र्यस्रमष्टास्त्रं च षडकस्त्रम् ॥१२
शक्तानां कामपक्षे च पंचसिंहासनं महत् ।
ध्यानाचले मेरुपृष्ठं मणिमुक्ताचलेष्वपि । १३
सहस्त्रं शतपत्रं च अन्नदाने तिलाचले ।
हरिवल्लभं राजसूये सोमयागेषु शस्यते ॥१४

पारिजात, चन्द्रबिम्ब, सूर्यकान्त, शेखर, शतपत्र सहस्रार, नवनाभ और मुष्टिक होते हैं ॥८॥ पञ्चाब्ज, मेनाक, कामराज, पुष्कर, अष्टस्रा, श्रीबिम्ब, षडस्र और त्र्यस्र नाम वाले होते हैं ॥६॥ इस प्रकार से परिसंख्या से पैतालीस वैष्णव याग कर्म में चतुरस्र नवव्यूढ़ हैं ॥१ ॥ गौमेध में क्रौञ्च और घ्राण चार प्रकार के प्रशस्त होते हैं। अश्वमेध में नरासन होता है ॥ ११ ॥ सर्वत्र सर्वतो भद्र चतुरस्र, सुभद्रक, कामराज, त्र्यस्र, अष्टास्र और षडस्र होने हैं ॥१२॥ शाक्तों के काम पक्ष में पञ्च सिंहासन महान् होता है। ध्यानाचल में मेरु पृष्ट होता है तथा मणि मुक्ताचलों में भी यही होता है ॥१३॥ अन्नदान और तिलाचल में सहस्र

और शतपत्र होते हैं। राजसूय यज्ञ में हरिवल्लभ और यह सोमयागों में भी प्रशस्त कहा जाता है ॥१४॥

प्रतिष्ठायां सुभद्रं च सर्वतोभद्रमेव च ।
जलाशयप्रतिष्ठायां विघ्नराजं प्रशस्यते ॥१५
घटप्रस्थापनें चैव गजाह्वं तुरगासनम् ।
शतपत्रं लक्षहोमे अयुते चतुरस्त्रकम् ॥१६
यस्य यज्ञस्य यद्विबवं तत्तु तेनैव योजतेत् ।
इतोऽन्यथा भवेद्दोषो विपरीतैष्वधोगतिः ॥१७
द्विहस्ता चतुरस्रा च वेदिका परिकीर्तिता ।
चतुरंगुलोच्छ्रायमिता षडंगुला ह्यथापि वा ॥१८
षडंगुला नवव्यूहे वर्धयेद्यज्ञकोविदः ।
एकांगुलसमुत्सेधः कर्तव्यस्सुसमाहितैः ॥१९
क्रौंचप्राणे तुर्यहस्तं मुष्टिहस्तं समुच्छ्रितम् ।
मध्यद्वये हीनकरं कनिष्ठं त्र्यंगुलाधिकम् ॥२०
कुर्याद्द्वित्रिक्रमाद्धीनमुच्छ्राये द्विजसत्तमाः ।
पारिजातं चन्द्रबिबं सूयकांत च शेखरम् ॥२१
ग्रहाणां पौष्टिके पक्षे बाह्यग्रामादिसाधने ।
नियोजयेत्तत्रतत्र वेदिकाचक्रकत्रयम् ॥२२

प्रतिष्ठा में सुभद्र और सर्वतोभद्र ही होता है। चहाँ जलाशय की प्रतिष्ठा होती है वहाँ विघ्नराज प्रशस्त माना जाता है ॥ १५ ॥ घट के प्रस्थापन में गजाह्व और तुरगासन होता है। लक्ष होम में शतपत्र और अयुत होम में चतुरस्त्रक हुआ करता है ॥१६॥ जिस यज्ञ का जो बिम्ब होता है वह उसी से योजित करना चाहिए। इससे अन्यथा करने पर दोष होता है और विपरीत करने में अधोगति हुआ करती है ॥१७॥ चतुरस्रा वेदका दो हाथ की बताई गई है। चार अंगुल उच्छ्राय (उँचाई) सेमित अथवा छैं अङ्गुल ऊंचाई वाली हुआ करती है ॥१८॥ यज्ञ की विधि के विद्वान पुरुष को नव व्यूह में छै अंगुल उच्छ्राय वाली वेदिका वर्जित कर देनी चाहिए। भली भाँति समाहितों

के द्वारा एक अंगुल का समुत्सेध करना चाहिये ।।१६।। क्रौञ्च प्राण में तुर्य हस्त, मुष्टि हस्त समुच्छ्रित मध्यद्वय में हीनकर और अनिष्ठ तीन अंगुल अधिक होता है ।।२०।। हे द्विज सत्तमाः ! दो तीन के क्रम से उच्छ्राय में हीन करना चाहिए। पारिजात, चन्द्रबिम्ब, सूर्यकान्त और शेखर इनको ग्रहों के पौष्टिक पक्ष में तथा बाह्य ग्रामादि साधन में नियोजित करना चाहिए। वहाँ-वहाँ पर वेदिक चक्र का त्रय करे ।।२१-२२।।

प्रथमे मुष्टिहस्तः स्यातसंपूर्णो शेषमानकैः ।
नवलाभे च पंचाब्जं करत्रयमुदाहृतम् ।।२३

शेषा चैव वरिष्ठा च लवली भिति वेदिका ।
विज्ञेया द्विजशार्दूला यथाकाम्येषु योजयेत् ।।२४

अयथाव्यत्यये दोषस्तस्माद्यत्नेन साधयेत् ।
दशहस्ते चाष्टहस्ते अष्टहस्ते च षोडशम् ।।२५
मुष्टिबाहुञ्च प्रादेशं वर्धयेतषोडशांशक ।
हस्तोत्सेधं च कर्तव्य हीने हीनं च ह्रासयेत् ।।२६

दर्पणाकारकं कुर्याद्यागके शांतिकर्मणि ।
हीनं कुर्यात्प्रयत्नेन वप्राकारं परिस्तवे ।।२७

निशारणैर्गोमयैश्च वेदिकां च प्रलेपयेत् ।
स्वर्ण रत्नमयस्तोयैरभिषिच्य कुशोदकैः ।।२८

प्रथम में मुष्टि हस्त होना चाहिए जबकि शेष मान वालों के द्वारा सम्पूर्ण हो जाये। नव लाभ में पञ्चाब्ज और करत्रय उदाहृत किया गया है ।।२३।। और शेष वरिष्ठा, लवली भित्ति वेदिका जाननी चाहिए। हे द्विज शार्दूलो ! इनको यथा काम्यों में योजित करना चाहिए ।।२४।। अथवा व्यत्यय में दोष होता है अतएव बड़े यत्न के साथ साधन करना चाहिए। दशहस्त में, आठ हस्त में और अष्टहस्त में षोडश का साधन करे ।।२५।। मुष्टिबाहु को और प्रादेश को षडशांशक में वर्धित करना चाहिए। एक हाथ उत्सेध करना चाहिए। जो हीन हो तो उसमें हीन

को ह्रासित करे ॥२६॥ शान्ति कर्म वाले याग में दर्पण कारक करना चाहिए। परिस्तव में वप्राकार प्रयत्न से हीन करना चाहिए ॥२७॥ निशारण और गोमय से वेदिका का प्रलेपन कराना चाहिए। स्वर्णरत्न से परिपूर्ण कुशोदक जल से अभियोचन करे ॥२८॥

हीनवीर्यगवानां च पुरीषं धैनुकं तथा।
कपिलायाश्च यत्नेन कुंडमंडललेपने ॥२९
वर्जयेत्सर्वयागेषु स्थडिलेषु प्रयत्नतः।
विना सूत्रैः कीलके न मंडले नैव सूत्रयेत् ॥३०
तस्मात्प्रयत्नतः कार्यं यत्सूत्रं यच्च कीलकम्।
अर्कहस्तमितं सूत्रं मृद्धलाक्षामयं तथा ॥३१
पीतकार्यस्रजं चैव कीलकं स्वर्णनिर्मितम्।
रौप्यताम्रमयं कुर्याद्वैष्णवे यागकर्मणि ॥३२
गणनायके सुप्रशस्तं शैषेपामार्गमेव च।
ग्रहपक्षे तथेशस्य कच्छपस्य द्विजोत्तमाः ॥३३
षोडशे चार्कहस्ते च तत्र नेमियुतं भवेत् ॥३४

कुण्ड के मंडल के लेपन करने के कार्य में हीन वीर्य गौओं के पुरीष (गोबर) को तथा धेनुक और कपिला के पुरीष को यत्न पूर्वक ग्रहण करना चाहिए ॥२९॥ समस्त यागों में स्थण्डिलों में प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए। कीलक में सूत्रों के बिना न करें और मण्डल में सूत्रयन न करे ॥३०॥ इसलिए जो सूत्र हो और जो कीलक हो उसे प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए। सूत्र अर्क (बारह) हाथ मित हो तथा लाक्षामय मृदु होना चाहिए ॥३१॥ वैष्णव याग कर्म में कीलक पीत कार्य स्रज, स्वर्ण निर्मित तथा रौप्य ताम्रमय करना चाहिए ॥३२॥ गणनायक में शैष और अपमार्ग ही प्रशस्त होता है। हे द्विजोत्तमाः ! ग्रह पक्ष में ईश का, कच्छप का प्रशस्त है। षोडश में और अर्क हस्त में वहाँ नेमियुत होना चाहिए ॥३३-३४॥

———

॥ मध्यम पर्व समाप्त ॥

भविष्य पुराण

प्रतिसर्ग पर्व

॥ सुदर्शनान्तनरपतिराज्यकालवृत्तांत ॥

भविष्याख्ये महाकल्पे ब्रह्मायूषि परार्द्धके ।
प्रथमेऽब्देह्नि तृतीये प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ॥१
अष्टाविंशे सत्ययुगे के राजानोऽभवन्मुने ।
तेषां राज्यस्य वर्षाणि तन्मे वद विचक्षण ॥२
कल्पाख्ये श्वेतवाराहे ब्रह्माब्दस्य दिनत्रये ।
प्राप्ते सप्तमुहूर्ते च मनुर्वैवस्वतोऽभवत् ॥३
स तप्त्वा सरयूतीरे तपो दिव्यं शतं समाः ।
तच्छिक्कातोऽभवत्पुत्र इक्ष्वाकुः स महीपतिः ॥४
ब्रह्मणो वरदानेन दिव्यं यानं स आप्तवान् ।
नारायणं पूजयित्वा हरौ राज्यं निवेद्य च ॥५
षट्त्रिंशच्च सहस्राणामब्दं राज्यं तदाऽकरोत् ।
तस्माज्जातो विकुक्षिश्च शतहीनं तदब्दकम् ॥६
राज्यं कृत्वा दिवं यातस्तस्माज्जातो रिपुंजयः ।
शतहीनं कृतं राज्यं तत्ककुत्स्थसुतः स्मृतः ॥७

इस अध्याय में मंगलाचरण के साथ प्रश्न करने पर सूत जी के द्वारा सुदर्शनान्त नरपति राज्य काल का वृत्तान्त वर्णित किया गया है । शौनक जी ने कहा—भविष्य नामक महाकल्प में ब्रह्मा की आयु के

परार्द्धक में प्रथम वर्ष के दिन में तृतीय वैवस्वत के अन्तर में अठ्ठाईशवें सत्ययुग में कौन राजा हुए ? हे मुने ! हे विचक्षण ! उनके राज्य के वर्षों को मुझसे कहा ।।१-२।। श्री सूत जी ने कहा—श्वेत वाराह नामक कल्प में ब्रह्मा जी के वर्ष के तीन दिन में सप्त मुहूर्त के प्राप्त होने पर वैवस्वत मनु हुए थे ।।३।। उस वैवस्वत मनु ने सरयू नदी के तट पर दिव्य तप करके जोकि सौ वर्ष तक तपस्या की थी, उसकी तपस्या के प्रभाव से उसको इक्ष्वाकु महीपति पुत्र हुआ था ।।४।। उस इक्ष्वाकु राजा ने ब्रह्मा जी के वरदान से एक परम दिव्य यान प्राप्त किया था। उस राजा ने नारायण का पूजन करके हरि के लिए राज्य को समर्पित करते हुए छत्तोस हजार वर्ष तक उस समय में राज्य किया था। उससे विकुक्षि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसने भी पिता के शासन काल से एकसौ वर्ष कम राज्य किया था और फिर वह स्वर्ग लोक में चला गया था। उससे रिपुञ्जय उत्पन्न हुआ। इसने भी शतहीन राज्य किया था। इसका पुत्र ककुत्स्थ कहा गया है ।।५-७।।

शतहीनं कृतं राज्यं ततोऽनेनांस आत्मजः।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो नृपः पृथुः ।।८
शतहीनं कृतं राज्यं विष्वगश्वश्च तत्सुतः।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादार्द्रो नृपोऽभवत् ।।९
शतहीनं कृतं राज्यं भद्राश्वस्तत्सुतोऽभवत्।
शतहीनं कृतं राज्य युवनाश्वस्तु तत्सुतः ।।१०
शतहीनं कृतं राज्यं श्रवस्थस्तत्सुतोऽभवत्।
सत्यपादश्च संजातः प्रथमो भारतेऽन्तरे ।।११
उदयादस्तपर्यंतं तैर्नृपैर्भूमिमंडलम्।
भुक्तं नीतिपरैर्देवैः श्रवस्थेन तु भूतले।
शतहीनं कृतं राज्यं बृहदश्वस्ततोऽभवेत् ।।१२
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्कुवलयाश्वकः।
शतहीनं कृतं राज्यं दृढाश्वस्तत्सुतोऽभवत् ।।१३

सहस्रहीनं राज्यं तत्तस्मात्पुत्रो निकुम्भकः ।
सहस्रहीनं राज्यं तत्संकटाश्वस्तु तत्सुतः ।।१४

इससे शतहीन राज्य किया फिर इससे ओस आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था । इसका राज्य काल एक शतहीन रहा था । उससे पृथु नृप उत्पन्न हुआ था । इसने भी शतहीन राज्य किया था । इसका पुत्र विम्वगश्व हुआ और उसने शतहोन राज्य किया था । उससे आर्द्र नाम वाला सुत समुद्भूत हुआ था ।।८-९।। इसने शतहीन राज्य किया था । इसका पुत्र भाद्रश्व हुआ था । इसने भी शतहीन राज्य किया था । इसका पुत्र युवनाश्व हुआ था ।।१०।। इसका शासन काल भी एक सौ वर्ष कम पिता से हुआ था । इसका पुत्र श्रवस्थ हुआ था और सत्यपाद उत्पन्न हुआ था जो कि भारत अन्तर में प्रथम था ।।११।। इन राजाओं ने उदय से अस्त पर्यन्त नीतिपरायण होकर इस भूमण्डल का भोग किया था । श्रवस्थने भूतल में शतहीन राज्य किया था । इससे फिर वृहदश्व उत्पन्न हुआ था जिसने शतहीन शासन किया था । उस वृहदश्व से कुवलयाश्वक का जन्म हुआ था । इसने भी शतहीन राज्य किया था । कुवलयाश्वक का जन्म हुआ था । इसने अपने पिता से एक सहस्र वर्ष कम राज्य किया था । इसका पुत्र निकुम्भक हुआ था । ईसने भी सहस्रहीन राज्य किया था । इसका पुत्र सङ्कटाश्व समुत्पन्न हुआ था ।।१२-१४।।

सहस्रहीनं राज्यं तत्तस्माज्जातः प्रसेनजित् ।
सहस्रहीनं राज्यं तद्रवणाश्वस्तु तत्सुतः ।।१५
सहस्रहीनं राज्यं तन्मांधाता तत्सुतोऽभवत् ।
शतहीनं कृतं राज्यं पुरुकुत्सस्तु तत्सुतः ।।१६
शतहीनं कृतं राज्यं त्रिशदश्वस्तु तत्सुतः ।
रथे यस्य स्मृता वाहा वाजिनस्त्रिशतो वराः ।।१७
अनरण्यस्ततो जातो ह्यष्टाविंशतसहस्रकम् ।
राज्यं द्वितीयचरणे स्मृतं सत्ययुगस्य वै ।।१८
पृषदश्वस्ततो जातो राज्यं षष्ठसहस्रकम् ।
तदब्दं भूतले कृत्वा पितृलोकमुपाययौ ।।१९

हर्यश्वस्तु ततो जातो विष्णुभक्तकुले नृपः ।
सहस्रहीनं राज्यं तत्तत्सुतो वसुमान्स्मृतः ॥२०
सहस्रहीनं राज्यं तत्रिधन्वा तनयस्ततः ।
सहस्रहीनं राज्यं तत्तेन राज्ञा च सत्कृतम् ॥२१

सकटाश्व ने सहस्रहींन राज्य किया था और प्रसेनजित् नामक पुत्र को जन्म दिया था। इसका राज्य काल सहस्रहीन था। इसका पुत्र तद्रवणाश्व हुआ था। इसने सहस्रहीन राज्य किया था। इसका पुत्र मान्धाता नाम वाला राजा हुआ था। इसने शतहीन राज्य का उपभोग किया था। इसका पुत्र पुरुकुत्स हुआ। इसने शतहीन शासन किया था। इसका पुत्र त्रिशदश्व हुआ था जिसके रथ में तीस बहुत श्रेष्ठ अश्व वहन करने वाले थे ॥१५-१७॥ उससे फिर अनरण्य उत्पन्न हुआ था जिसका राज्य अट्ठाईस सहस्र वर्ष तक रहा था। यह सत्ययुग के द्वितीय चरण में कहा गया है ॥१८॥ इसके पश्चात् उससे पृषदश्व ने जन्म ग्रहण किया था जिसके राज्य का कार्य काल छै सहस्र वर्ष था। यह इस भूतल में राज्य का शासन करके फिर पितृ लोक में चला गया था ॥१९॥ ऊससे फिर हर्यश्व समुत्पन्न हुआ था जोकि नृप विष्णु के भक्तों के कुल में हुआ। उसने सहस्रहीन राज्य किया था। उसका पुत्र वसुमान कहा गया है ॥२०॥ वसुमान का राज्य काल सहस्रहीन था। इससे तत्त्वि-धन्वा पुत्र हुआ था। इसका राज्यशासन का समय सहस्रहीन था। उस राजा ने सत्कृत किया था ॥२१॥

सत्यपादः समाप्तोऽयं द्वितीयो भारतेऽन्तरे ।
त्रिधन्वनश्च नृपतेस्त्रपारण्यस्तु वै सुतः ॥२२
सहस्रहीनं राज्यं तत्कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ।
तस्माज्जातस्त्रिशंकुश्च राज्यं वर्षसहस्रकम् ॥२३
छद्मना हीनतां जातो हरिश्चन्द्रस्तु तत्सुतः ।
राज्यं विंशत्सहस्रं च रोहितो नाम तत्सुतः ॥२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हारीतस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चंचुभूपश्च तत्सुतः ॥२५

पितुस्तुल्यं हि राज्यं तद्विजयो नाम तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं हि राज्यं तद्रुरूकस्तनयस्ततः ।।२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सगरस्तनयोऽभवत् ।
भूपाश्च बाहुसेनान्ता वैष्णवाः परिकीर्तिताः ।।२७

भारत अन्तर में यह द्वितीय सत्य पाद समाप्त हुआ त्रिधन्वा राजा का पुत्र त्रयारण्य हुआ था ।।२२।। यह भी सहस्रहीन राज्य करके अन्त में स्वर्ग को चला गया था । उससे फिर त्रिशंकु समुत्पन्न हुआ था जिसका राज्य काल एक सहस्र वर्ष हुआ था ।।२३।। यह छद्म से हीनता को प्राप्त हुआ था । इसका पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ था जिसने बीस सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था । इसके पुत्र का नाम रोहित हुआ था इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य किया था । इसके पुत्र का नाम हारीत था । इसका राज्य काल पिता के ही तुल्य रहा था । इसके पुत्र का नाम चंचुभूप हुआ था । पिता के बराबर इसका राज्य रहा था । इसके पुत्र का नाम विजय था जो कि पितृ तुल्य राज्य करने वाला हुआ । इसके पुत्र तद्रूरूक हुआ था । इसका भी राज्य काल पिता के ही समान रहा था । उसका पुत्र सगर हुआ था । वाहु सेना के अन्त तक होने वाले भूप समस्त वैष्णव कहे गये हैं ।।२४-२७।।

राज्यमानं कृतं सम्यग्भूपैर्वैवस्वतादिभिः ।
मणिस्वर्णसमृद्धिश्च बह्वन्नं वहुदुग्धकम् ।।२८
पूर्णो धर्मस्तदा भूम्यां मुने सत्ययुगस्य वै ।
तृतीयचरणे मध्ये सगरो नाम भूपतिः ।।२९
शिवभक्तः सदाचारस्तत्पुत्राः सागराः स्मृताः ।
त्रिंशत्सहस्रवर्षं तद्राज्यं वै मुनिभिः स्मृतम् ।।३०
नष्टेषु सागरेष्वत्रैवमसमञ्जस आत्मजः ।
शतहीनं कृतं राज्यमंशुमांस्तत्सुतोऽभवत् ।।३१
शतहीनं कृतं राज्यं दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो भगीरथः ।।३२

शतहीनं कृतं राज्यं श्रुतसेनस्ततोऽभवत् ।
शतहीनं कृतं राज्यं नाभागस्तनयस्ततः ॥३३
शतहीनं कृतं राज्यमम्बरीषस्ततोऽभवत् ।
शैवाः षट्ट श्रुतसेनान्ता नाभागोवैष्णवो नृपः ॥३४
सत्यपादः समाप्तोऽयं तृतीयो भारतेंतरे ।
अंबरीषेण भूपेन शतहीनं कृतं पदम् ॥३५
चतुर्थे चरणे तस्य चाष्टादश सहस्रकम् ।
अब्दं राज्यं शुभं ज्ञातं कर्मभूम्यां च भारते ॥३६
एकोनत्रिंशद्वर्षाणि राज्यं तत्रिशतानि च ।
शतहीनं कृतं राज्यं सिंधुद्वीपोऽम्बरीषजः ॥३७

वैवस्वत आदि राजाओं ने भली भाँति राज्य मान लिया था। उस समय उनके राज्य में मणि, स्वर्ण की समृद्धि थी। बहुत अधिक अन्न, अत्यधिक दूध, पूर्ण धर्म उस समय में भूमि में था। हे मुने! सत्य युग के तृतीय चरण में मध्य में सगर नामधारी राजा हुआ था ॥२८-२९॥ वह राजा सगर शिव का परम भक्त और सदाचार वाला था उसके पुत्र सब सागर इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे। उनका राज्या मुनियों ने तीस सहस्र वर्ष तक बताया है ॥३०॥ सागरों के नष्ट हो जाने पर असमञ्जस पुत्र हुआ था। इसने शतहीन राज्य किया था और इसका पुत्र अंशुमान नाम वाला हुआ था ॥३१॥ इसका राज्यकाल शतहीन रहा था। इसके पुत्र का नाम दिलीप राजा हुआ। इसने भी शतहीन राज्य किया था। इससे फिर भगीरथ ने जन्म ग्रहण किया था। इसका राज्य शतहीन हुआ। इसके पुत्र का नाम श्रुतसेन हुआ था। इसने शत कम राज्य किया था। इसके नाभाग नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥३२-३३॥ इसका राज्य काल शतहीन था। इसके पुत्र का नाम अम्बरीष हुआ था। श्रुतसेन के अन्त तक यह छैः राजा शैव थे केवल नाभाग नृप ही एक विष्णु का भक्त वैष्णव हुआ था ॥३४॥ भारतेऽन्तर में यह तृतीय सत्य युग का पाद समाप्त हो गया। राजा अम्बरीष ने शतहीन पद किया था ॥३५॥ चतुर्थ

चरण में उसका अठारह सहस्र वर्ष तक शुभ राज्य इस भारत में कर्म भूमि में जाना गया है ।।३६।। तीनसौ उनतीस वर्ष तक राज्य हुआ था । अम्बरीष के पुत्र सिन्धुद्वीप ने शत हीन राज्य किया था ।।३७।।

शतहीनं कृतं राज्यमयुताश्वस्ततोऽभवत् ।
शतहीनं कृतं राज्यमृतुपर्णस्तु तत्सुतः ।।३८
शतहीनं कृतं राज्यं सर्वकामो नृपस्ततः ।
शतहीनं कृतं राज्यं नृपः कल्माषपादकः ।।३९
शतहीनं कृतं राज्यं सुदासस्तनयोऽभवत् ।
तस्मादशमकश्चैव मदयन्त्या वशिष्ठजः ।।४०
शतहीनं कृतं राज्यं हरिवर्मा ततोऽभवत् ।
सप्त भूपाः सुदासान्ता वैष्णवाः परिकीर्तिताः ।।४१
गुरुशापात्तु सौदासो राज्याङ्गं गुरवेऽर्पयत् ।
गोकर्णलिंगभक्तश्च शैवः समय उच्यते ।।४२

इसके पश्चात् उसके पुत्र अयुताश्व ने शतहीन राज्य किया था । इसके पुत्र ऋतुपर्ण नामधारी हुआ था जिसने शतहीन राज्य किया । इसके सर्वकाम नामक नृप हुआ । इसका राज्य काल शतहीन था । फिर कल्माष पादक राजा हुआ इसने शतहीन शासन किया और इसके पुत्र सुदास हुआ था । उसके अदशमक मदयन्ती से वशिष्ठ के द्वारा जन्म ग्रहण करने वाला हुआ था । इसने शतहीन राज्य किया । इसके बाद हरिवर्मा समुत्पन्न हुआ था । ये सुदास के अन्त तक सात भूप वैष्णव कहे गये हैं । सौदास ने गुरु के शाप से राज्याङ्ग को गुरु जी के लिये समर्पित कर दिया था । गोकर्णलिंग का भक्त था और उस समय शैव कहा जाता था ।।३८-४२।।

हरिवर्मा शमकजो वैश्यवत्साधुपूजकः ।
ऊनत्रिंशत्सहस्राणि तथा सप्तशतानि वै ।।४३
हरिवर्माऽकरोद्राज्यं तस्माद्दशरथोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्दल्लीवयरसुतः ।।४४

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भूपो विश्वासहस्ततः ।
राज्यं दशसहस्रं तन्नियज्ञः प्राकृतो नृपः ॥४५
तदधर्मप्रतापेन ह्यनावृष्टिस्तदाऽभवत् ।
शतवर्षमना वृष्टिस्सर्वराज्यं व्यनाशयत् ॥४६
यज्ञं कृत्वा वशिष्ठस्तु राज्ञीवचनतत्परः ।
यज्ञात्खट्वागं उत्पन्नः खट्वांगं शस्त्रमुद्वहन् ॥४७
इन्द्रसाहाय्यमगमद्राज्यं त्रिशत्सहस्रकम् ।
कृत्वा तत्र वरं लब्ध्वा देवेभ्यो मुक्तितां गतः ॥४८
खट्वांगाद्दीर्घबाहुश्च राज्यं विंशत्सहस्रकम् ।
तस्मात्सुदर्शनो जातो देवीपूजनतत्परः ॥४९

हरि वर्मा शमकज था और वैश्य की भाँति साधु पूजक हुआ था। हरिवर्मा ने उनतीस सहस्र सात सौ वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था। इससे फिर दशरथ उत्पन्न हुआ था। इसने भी अपने पिता के ही तुल्य राज्य किया था। इसके दिल्लीवय पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४३-४४॥ इसका राज्यकाल भी पिता के बराबर ही हुआ था। इससे विश्वासह समुत्पन्न हुआ था जिसने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य किया था। तन्नियज्ञ प्राकृत नृप था ॥४५॥ उसके अधर्म के प्रताप से उस समय में बड़ी भारी अनावृष्टि हुई थी। एक सौ वर्ष तक वृष्टि का सर्वथा अभाव रहा था जिसके कारण से समस्त राज्य विनष्ट हो गया था ॥४६॥ वशिष्ठ मुनि ने राज्ञी के वचन में तत्पर होकर यज्ञ किया था। उस यज्ञ से खट्वांग समुत्पन्न हुआ जो कि खट्वांग शस्त्र को धारण किये था ॥४७॥ तीस सहस्र वर्ष तक राज्य इन्द्र की सहायता में चला गया था। वहाँ पर वरदान प्राप्त करके देवों से मुक्ति को प्राप्त हुआ था ॥४८॥ खट्वांग से दीर्घबाहु हुआ जिसने बीस सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। उससे फिर सुदर्शन नामक उत्पन्न हुआ था जो देवी के यजनार्चन में तत्पर रहता था ॥४९॥

वैष्णवा दाशरथ्यं तास्त्रयो विख्यातसद्बलाः ।
खट्वांगो दीर्घबाहुश्च वैष्णवौ परिकीर्तितौः ॥५०

सुदर्शनो महाप्राज्ञः काशीराजसुतः नृपः ।
उद्दूह्य भूपतीञ्जित्वा देवीसेवाप्रसादतः ॥५१
राज्यं भारतखण्डान्त मदधद्धर्मतो नृपः ।
वर्षपञ्चसहस्त्राणि राज्यं चक्रे स भूपतिः ॥५२
स्वप्नमध्ये वचः प्रोक्तं महाकाल्या नृपाय वै ।
वत्स त्वं प्रियया सार्द्धं वशिष्ठादिभिरन्वितः ॥५३
हिमालयं गिरिं प्राप्य वासं कुरु महामते ।
महावायुप्रभावेन क्षयो भरतखंडके ॥५४
रत्नाकरः पश्चिमोऽब्धिस्तस्य द्वीपाः क्षयं गताः ।
महोदधिः पूर्वतोऽब्धिस्तस्य द्वीपाः क्षयं गताः ॥५५
वाडवोऽब्धिर्दक्षिणे च तस्य द्वीपाः क्षयं गताः ।
हिमाब्धिरुत्तरे तस्य सगरेः खनितो हि सः ॥५६

दाशरथि के अन्त तक तीन वैष्णव और विख्यात वात्सल्य वाले राजा हुए थे। खट्वांग और दीर्घ बाहु भी वैष्णव कहे गये हैं ॥५०॥ सुदर्शन महान पण्डित था जो कि काशीराज का सुत नृप था। भूपतियों को जीतकर देवी की सेवा के प्रसाद से विजय प्राप्त की थी ॥५१॥ इस नृप ने भरतखण्ड में पूर्ण धर्म से राज्य किया था। इस राजा का राज्य काल पाँच हजार वर्ष तक रहा था ॥५२॥ महाकाली ने स्वप्न के मध्य में राजा से ये वचन कहे थे कि हे वत्स ! हे महामतिवाले ! तू अपनी प्रिया के साथ वशिष्ठ आदि से अन्वित होकर हिमाचल पर्वत पर चला जा और वहाँ अपना निवास कर। महान वायु का एक ऐसा प्रभाव होगा कि इस भरत खण्ड का विनाश हो जायगा ॥५३-५४॥ इसका रत्नाकार पश्चिम सागर है उसके समस्त द्वीप क्षीण हो गये हैं। महोदधि पूर्व सागर है उसके द्वीप भी क्षय को प्राप्त हो गये हैं। दक्षिण में वाडव अब्धि है उसके द्वीप क्षय को प्राप्त हो चुके हैं। हिमाब्धि उत्तर में है उसके सगर में खनित है ॥५५-५६॥

ये द्वीपास्तु सुविख्यातास्तेऽपि सर्वे लयं गताः ।
भारतो वर्ष एवासौ वत्सरे सप्तमेऽहनि ॥५

सज़ीवः प्रलयं यायात्तस्मात्त्वं जीवितो भव ।
तथेति मत्वा स नृपः पर्वतं वै हिमालयम् ।।५८
प्राप्तावान्मुख्यभूपैश्च मुख्यवैश्यैर्द्विजैः सह ।
पञ्चवर्षप्रमाणेन वायुस्तेजःक्रमाज्जलम् ।।५९
शर्करा च महीं प्राप्तास्ततो जीवाः क्षयं गताः ।
पंचवर्षमिते काले जलं जाता वसुन्धरा ।।६०
शांतो भूत्वा पुनर्वायुर्जलं सर्वमशोषयत् ।
दशवर्षान्तरे भूमिः स्थली भूत्वा प्रदृश्यते ।।६१

जितने भी प्रसिद्ध द्वीप हैं वे सब क्षय को प्राप्त हो चुके हैं । भारतवर्ष ही यह है जो सातवें वर्ष में दिन में सजीव प्रलय को प्राप्त होगा । इससे तू जीवित रह । इस महाकाली के वचन को स्वीकार करके वह राजा हिमाचल पर्वत पर चला गया था । उसके साथ मुख्य नृप थे, प्रमुख वैश्य थे और प्रधान द्विज भी चले गये थे । पाँच वर्ष के प्रमाण से वायु, तेज, जल क्रम से शर्करा मही को प्राप्त हुई और इसके अन्तर समस्त जीव क्षय को प्राप्त हो गये थे । पाँच वर्षमित काल में इस वसुन्धरा पर जल ही हो गया था । फिर वायु शान्त होकर उसने समस्त जल का शोषण कर लिया था । इस तरह दश वर्ष के अन्तर में यह भूमि स्थली होकर दिखाई देती है ।।५७-६१।।

।। त्रेतायुगीयभूपवृत्तान्त वर्णन ।।

वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीयागुरुवासरे ।
सुदर्शनो जनैः सार्द्धमयोध्यामगमत्पुनः ।।१
मायादेवीप्रभावेण पुरं सत्रं मनोहरम् ।
महवृद्धियुतं प्रातं बहवन्नं सर्वरत्नकम् ।।२
दशवर्ष सहस्राणि राज्यं कृत्वा सुदर्शनः ।
प्राप्तवाञ्छाश्वतं लोकं दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ।।३

नन्दिनीवरदानेन तत्पुत्रो रघुरुत्तमः ।
दशवर्षसहस्राणि दिलीपो राज्यसत्कृतः ॥४
राज्यं कृतं च रघुणा दिलीपान्ते पितुस्समम् ।
रघुवंशस्ततः ख्यातस्त्रेतायां भृगुनन्दन ॥५
विप्रस्य वरदानेन तत्पुत्रोऽज इति स्मृतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्रामो हरिः स्वयम् ।
एकादश सहस्राणि रामराज्यं प्रकीर्तितम् ॥७

इस अध्याय में त्रेतायुग के भूपों का वृतान्त वर्णित किया जाता है । सूत जी ने कहा—वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि के दिन जब कि गुरुवार था सुदर्शन जनों के साथ फिर अयोध्या को गये थे ॥१॥ माया देवी के प्रभाव से समस्त नगर परम मनोहर हो गया था जिसमें महान् ऋद्धिभरी हुई थी, बहुत अधिक अन्न से सम्पन्न था और सब प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण हो रहा था ॥२॥ दश सहस्र वर्ष तक सुदर्शन ने यहाँ राज्य करके अन्त में शाश्वत लोक को वह प्राप्त हो गये थे । उसके दिलीप नामक पुत्र हुआ था ॥३॥ नन्दिनी गौ के वरदान प्राप्त करने से दिलीप के उत्तम पुत्र रघु नाम धारी हुआ था । दश सहस्र वर्ष तक दिलीप ने राज्य किया था ॥४॥ दिलीप के अन्त हो जाने पर रघु नृप ने पिता के समान ही राज्य के सुखों का उपभोग किया था । हे भृगुनन्दन ! तब से ही त्रेता में यह रघुवंश प्रख्यात हुआ था ॥५॥ विप्र के वरदान से रघु नृपति के अज नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था । इसने भी अपने पिता के तुल्य ही राज्य का आनन्द प्राप्त किया था । इसके दशरथ नामक पुत्र का जन्म हुआ था । इस दशरथ नृप ने पिता के समान ही राज्य भोगा था । फिर महाराज दशरथ के श्री राम पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए जो कि स्वयं भगवान् हरि ही थे । एकादश सहस्र वर्ष तक श्री राम का राज्य काल कहा गया है ॥६-७॥

तस्य पुत्रः कुशो नाम राज्यं दशसहस्रकम् ।
अतिथिर्नाम तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुःसमम् ॥८

निबन्धो नाम तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् ।
तस्माज्जातो नलो नाम त्रेतायां शक्तिपूजकः ।।९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मान्नाभः सुतोऽभवेत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुंडरीकः सुतोऽभवत् ।।१०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्षेमधन्वा तु तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं द्वारको नाम तत्सुतः ।।११
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो ह्यहीनजः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं करूर्नाम सुतस्ततः ।।१२
कुरुक्षेत्र कृतं तेन त्रेतायां शतयोजनम् ।
त्रेतापादस्समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेऽन्तरे ।।१३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पारियात्रः सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दलपालस्सुत स्ततः ।।१४

उन भगवान दशरथि श्री राम के कुश नामधारी पुत्र हुए जिसने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था अतिथि नामक उसके पुत्र हुआ था। इसने अपने पिता के समान ही राज्य शासन किया था ।।८।। उसके निबन्ध नामक पुत्र हुआ जो कि पिता के समान राज्य सुख भोक्ता हुआ है। इससे नल नाम वाला हुआ था जो कि त्रेता में शक्ति की पूजा करने वाला हुआ था ।।९।। इस नल ने पिता के तुल्य ही राज्य किया था । इसके नाभ पुत्र उत्पन्न हुआ था । इसका राज्य काल पिता के समान ही था। उसका पुण्डरीक पुत्र हुआ था । वह भी पितृ तुल्य राज्य वाला हुआ ।।१०।। क्षेम धन्वा उसका आत्मज उत्पन्न हुआ जिसका राज्य भी पिता के समान था। इसके पुत्र द्वारक ने जन्म गृहण किया था जिसका राज्य पितृतुल्य था ।।११।। द्वारक से अहीन पुत्र हुआ इसका राज्य भी पिता के समान ही था। करू नाम वाला उसका पुत्र हुआ था ।।१२।। उसने त्रेता में शत योजना वाला कुरु क्षेत्र किया था । भारत के अन्तर में यह प्रथम त्रेता का चरण समाप्त हुआ ।।१३।। इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य शासन किया था । इसका पुत्र पारियात्र नामधारी समुत्पन्न

हुआ था। उसका पितृ तुल्य राज्य रहा था। इसके पुत्र का नाम दलपाल हुआ था ॥१४॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं छद्मकारी तु तत्सुतः।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुक्थःसुतोऽभवत् ॥१५
पितुस्तुल्यं कृत राज्यं वज्रनाभिस्ततोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शंगनाभिस्तयोऽभवत् ॥१६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं व्युत्थनाभिस्ततोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विश्वपालस्ततोऽभवत् ॥१७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं स्वर्णनाभिस्तु तत्सुतः।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुष्पसेनस्तु तत्सुतः ॥१८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ध्रूवसंधिस्तु तत्सुतः।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमपवर्मा बु तत्सुतः ॥१९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शीघ्रगन्ता तु तत्सुतः।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मरुपालस्तु तत्सुतः ।२०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रसूवश्रुत उच्यते।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सूसधि स्तनयोऽभवत्।
त्रेतापादः समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेंतरे ॥२१

दलपाल का राज्य पितृ तुल्य था। इसके पुत्र का नाम छद्मकारी हुआ था। छद्मकारी का उक्थ पुत्र हुआ। उक्थ का वज्रनाभि पुत्र हुआ। इसके शङ्ग नामि पुत्र हुआ। इसके व्युत्थनाभि पुत्र हुआ। इसके विश्व-पाल पुत्र हुआ। इन सबका राज्य काल अपने-अपने पिताओं के समान ही हुआ था ॥१६-१७॥ इसके स्वर्ण नाभि पुत्र उत्पन्न हुआ। स्वर्ण नाभि का पुत्र पुष्पसेन उत्पन्न हुआ। इसके पुत्र का नाम ध्रुव सन्धि था। इसका पुत्र अप वर्मा हुआ। इसके शीघ्रगन्ता पुत्र हुआ। उसके पुत्र का नाम मरुपाल हुआ जोकि प्रसूव श्रुत कहा जाता है। इसके पुत्र का नाम सुसन्धि हुआ था। इन सबका राज्य काल भी पिताओं के तुल्य ही हुआ था। यह भारतेऽन्तर में प्रथम त्रेता पाद समाप्त हुआ था ॥१८-२१॥

उदयादुदयं यावद्राज्ञा तत्र सुसंधिना ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मामर्बस्तनयस्ततः ॥२२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं महाऽश्वस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहद्बालः सुतस्ततः ॥२३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहद्दशान एव तत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मुरुक्षेपस्ततोऽभवम् ॥२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सपालस्तु तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्स व्यूहस्ततोऽभवत् ॥२५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रतिव्योमा ततो नृपः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुतो देवकरस्ततः ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सहदेवस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहदश्वस्ततो नृपः ॥२७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भानुरत्नस्ततोऽभवत्
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुप्रीतकस्ततोऽभवत् ॥२८

जहाँ तक उदय से उदय होता है वहाँ तक सुसन्धि राजा ने राज्य पिता के तुल्य ही किया था । इसके मामर्ब पुत्र हुआ था । इसके महाश्व पुत्र हुआ था । महाश्व पुत्र का नाम बृहद्बाल था । इसके बृहद्दशान हुआ । इससे मुरुक्षेप नामक पुत्र हुआ । इसके पुत्र का नाम वत्स पाल हुआ । इससे वत्स व्यूह नाम वाला पुत्र हुआ था । वत्स व्यूह से प्रति व्योमा पुत्र का जन्म हुआ था । ये सब अपने पिताओं के समान ही राज्य करने वाले हुए थे । इसके देवकर हुआ जो पितृ तुल्य राज वाला था ॥२२-२६॥ उसके पुत्र का नाम सहदेव हुआ था । सहदेव के बृहदश्व पुत्र हुआ था । इसके पुत्र का नाम भानुरत्न हुआ था । इससे सुप्रतीक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । इन सबका राज्योपभोग अपने पिताओं के समान हुआ था ॥२७-२८॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मरुदेवस्सुतस्ततः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनक्षत्रस्ततोऽभवत् ॥२९

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुत केशीनरस्ततः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमन्तारिक्षस्ततो नृपः ॥३०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुवर्णांगो नृपोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्य पुत्रो ह्यमित्रजित् ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहद्राजस्ततोऽभवत् ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धर्मराजस्ततो नृपः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातः कृतञ्जयः ॥३३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो रणञ्जयः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सञ्जयस्तत्सुता स्मृतः ॥३४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः शाक्यवर्धनः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्रोधदानस्तु तत्सुतः ॥३५

सुप्रतीक के पुत्र का नाम मरुदेव था। इससे सुनक्षत्र नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। इसके केशीनर पुत्र हुआ। इसके पुत्र का नाम अन्तरिक्ष नृप हुआ था। इनके पश्चात् सुवर्णाङ्ग के पुत्र का नाम अभित्रजित् था। इससे वृहद्राज उत्पन्न हुआ। वृहद्राज का पुत्र धर्मराज और धर्मराज से कृतञ्जय पुत्र हुए। कृतञ्जय के पुत्र का नाम रणञ्जय हुआ। इसके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम सञ्जय कहा गया था। इसके पुत्र का नाम शाक्य वर्धन था। इससे फिर क्रोध दान नाम के पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। ये सभी अपने-अपने पिताओं के समान ही राज्यभोग करने वाले हुए हैं ॥२६-३५॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादतुलविक्रमः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं स्तस्माज्जातःप्रसेनजितम् ॥३६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः शूद्रकः स्मृतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुरथस्तत्सुतोऽभवत् ॥३७
पितुरर्द्धं कृतं राज्यं सर्वे तु रघुवंशजाः ।
पञ्चषष्टि पिता भूपा देवीपूजनतत्परा ॥३८
हिंसायज्ञपराः सर्व स्वर्गं लोकमितो गताः ।
बुद्धा जाताश्च ये पुत्रास्ते सर्वे वर्णसंकराः ॥३९

त्रेतातृतीयचरणप्रारम्भेन नवतां गताः ।
इन्द्रेण प्रेषितो भूमौ चन्द्रमा रोहिणीपतिः ।।४०
प्रयागनगरे रम्ये भूमिराज्यमचीकरत् ।
विष्णुभक्तश्चन्द्रमाश्च शिवपूजनतत्परः ।।४१
मायादेवीप्रसन्नार्थे शतं यज्ञमचीकरत् ।
अष्टादशसहस्त्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः ।।४२

क्रोधदान के अतुल विक्रम पुत्र का जन्म हुआ था जिसने पितृ तुल्य राज्य किया था । इससे प्रसेनजित् पुत्र हुआ, प्रसेनजित से शूद्रक की उत्पत्ति हुई इससे सुरथ ने जन्म ग्रहण किया । इन सबने पितृ तुल्य राज्यों के सुख का उपभोग किया था । समस्त रघुवश में उत्पन्न होने वालों ने पिता का आधा राज्य किया था । ये पैंसठ राजा हुए हैं जो पिता थे और देवी के पूजन करने में तत्पर रहा करते थे ।।३६-३८।। ये सब हिंसा यज्ञों के परायण थे और सभी यहाँ से स्वर्ग लोक में चले गये थे । जो पुत्र बुद्ध उत्पन्न हुए वे सब वर्ण सङ्कर थे ।।३९।। त्रेता के तृतीय चरण के प्रारम्भ होने से ये नवीनता को प्राप्त हुए थे । इन्द्रदेव ने इस भूमण्डल रोहिणी पति चन्द्रमा को प्रेषित किया था ।।४०। उसने रम्य प्रयाग नगर में भूमि का राज्य किया था । चन्द्रमा विष्णु का भक्त और शिव की पूजा करने में सदा तत्पर रहा करता था ।।४१।। इसने माया देवी की प्रसन्नता के लिये सौ यज्ञ किये थे । अठारह सहस्र वर्ष तक यहाँ पर राज्य सुख का अनुभव करके स्वर्ग लोक को गया था ।।४२।।

तस्य पुत्रो बुधो नाम मेरुदेवस्य वै सुतः ।
इलामुद्वाह्य धर्मेण तस्माज्जातः पुरूरवाः ।।४३
चतुर्दशसहस्राणि भूमिराज्यमचीकरत ।
उर्वशीं सोऽपि स्वर्वेश्यां समये नैव भोग्यवान् । ४४
आयुर्नाम सुतो जातो धर्मात्मा विष्णुतत्परः ।
षट्त्रिंच्च सहस्राणि राज्यं कृत्वा पुरूरवाः ।।४५
गधर्वलोक संप्राप्य मोदते दिवि देववत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमायुषो नहुषः सुतः ।।४६

पितुस्तुल्यं क्रमं राज्यं ततः शक्रत्वमागतः ।
त्रिलोकीं स्ववशं चक्रे वर्षमेकसहस्रकम् ॥४७

इसके पुत्र का नाम बुध हुआ था जोकि मेरुदेव का पुत्र था । इसने इला से धर्म विधिके साथ विवाह किया था और उससे पुरूरवा पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४३॥ इस पुरूरवा राजा ने चौदह सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । उसने भी समय पर उर्वशी नाम वाली स्वर्ग की अप्सरा से भोग किया था ॥४४॥ इससे आयु नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था जो कि परम धर्मात्मा था और विष्णु भगवान की आराधना में तत्पर रहा करता था । पुरूरवा छत्तीस हजार वर्ष तक राज्य करके फिर गन्धर्व लोक में पहुँचा और स्वर्ग में देवों की भाँति आनन्दोप भोग करता था । पितृतुल्य आयु तक राज्य किया । इसके नहुष नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥४५-४६॥ इस राजा नहुष ने अपने बराबर ही समय तक राज्य शासन किया और फिर इन्द्रत्व की पदवी प्राप्त की थी । एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इसने त्रिलोकी को अपने वश में कर लिया था ॥४७॥

मुनेर्दुर्वाससः शापान्नृपोऽजगरतां गतः ।
पञ्च पुत्रा ययातेश्च त्रयो म्लेच्छत्वमागताः ॥४८
द्वौ तथार्यत्वमापन्नौ यदुर्ज्येष्ठः पूरुर्लघुः ।
तपोबलप्रभावेण राज्यं लक्षाब्दसमितम् ॥४९
कृत्वा विष्णुप्रसादेन ततो वैकुण्ठमागतः ।
यदोः पुत्रः स्मृतः क्रोष्टा राज्यं षष्टिसहस्रकम् ॥५०
वृजिनघ्नस्सुतस्तस्माद्राज्यं विंशत्सहस्रकम् ।
तस्मात्स्वाहार्चनः पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् ॥५१
तस्माच्चित्ररथः पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् ।
अरविंदःसुतस्तस्मात्कृतं राज्यं पितुः समम् ॥५२
अथ श्रवास्ततो जातस्तेजस्वी विष्णुतत्परः ।
पितुरर्द्धं कृतं राज्यं तत्पुत्रस्तामसः स्मृतः ॥५३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुशनस्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शीताशुकनृपोऽभवत् ॥५४

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कमलांशुस्ततोऽभवत् ।।५५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पारावतसुतस्ततः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं जामघस्तत्सुतोऽभवत् ।।५६

महाक्रोधी दुर्वासा मुनि के शाप से नृप अजगर हो गया था । ययाति राजा के पाँच पुत्र थे उनमें तीन पुत्र म्लेच्छ हो गये थे ।।४८।। दो शेष थे वे आर्यत्व को प्राप्त हुए । उनमे ज्येष्ठ यदु था और लघु पुरु था । तपस्या के बल प्रभाव से एक लाख वर्ष तक राज्य सुख भोगकर भगवान् विष्णु के प्रसाद से उसके पश्चात् वैकुण्ठ लोक चला गया था । यदु का पुत्र क्रोष्ठा था जिसने साठ हज़ार वर्ष पर्यन्त राज्य किया था ।।४९-५०।। इसका पुत्र वृजिनघ्न हुआ । उसने बीस सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । उससे स्वाहार्चन नामक पुत्र हुआ जिसने अपने पिता के बराबर ही समय तक राज्य किया था ।।५१।। इसका पुत्र चित्ररथ हुआ जिसने भी पितृ तुल्य राज्य किया था । इस चित्ररथ के यहाँ अरविन्द नामक पुत्र ने जन्म लिया था । इसने पिता के समान राज्य किया था ।।५२।। इसके अनन्तर उससे श्रवा ने जन्म ग्रहण किया था जो बड़ा तेजस्वी और विष्णु की भक्ति में तत्पर रहा करता था । इसने पिता के समय से आधे समय तक राज्य किया था । इसका पुत्र तामस उत्पन्न हुआ था इसने पितृ तुल्य राज्य किया था इससे उशन हुआ, उसके शीतांशुक नृप पुत्र रूप में हुआ था । शीतांशुक का पुत्र कमलांशु हुआ और फिर पारावत पुत्र हुआ, इन सबने अपने पिता के समय के तुल्य हो राज्य सुख प्राप्त किया था इसका पुत्र जामघना मवाला उत्पन्न हुआ था ।।५३-५६।।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विदर्भस्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्राथो नाम सुतस्ततः ।।५७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कुन्तिभोजस्तु तत्सुतः ।
पुरुर्दैत्यसुतापुत्रः पाताले वृषपर्वणः ।।५८
उषित्वा नगरे तस्मिन्माया विद्यस्ततोऽभवत् ।
प्रयागस्य प्रतिष्ठाने पुरे राज्यमथाकरोत् ।।५९

दशवर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः ।
देवीभक्तः स नृपतिस्तत्पुत्रो जनयेजयः ॥६०

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रचिन्वांस्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रवीरस्तनयोऽभवत् ॥६१

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नभस्यस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भवदस्तत्सुतस्स्मृतः ॥६२

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुद्युम्नस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुत्रो बाहुगरः स्मृतः ॥६३

इस जामघ ने भी पितृ तुल्य राज्य किया था इसके जो पुत्र हुआ उसका नाम विदर्भ था और विदर्भ के क्राथ आत्मज उत्पन्न हुआ था। इन दोनों ने पिताओं के समान ही राज्य किया था। क्राथ का पुत्र कुन्तिभोज हुआ था। पुरु दैत्यसुता का पुत्र था। वृषपर्वण ने पाताल निवास कर लिया था। उस नगर में उसका पुत्र मायाविद्य हुआ था। इसने प्रयाग के प्रतिष्ठान पुर में राज्य शासन किया था ॥५७-५९॥ इसने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य करके अन्त में यह स्वर्ग लोक में चला गया था। यह राजा देवी का परमभक्त हुआ है। इसका पुत्र जनयेजय हुआ था ॥६०॥ इसका राज्य काल भी पिता के समान ही था। इसका पुत्र प्रचिन्वान् हुआ था उसके प्रवीर हुआ और प्रवीर का पुत्र नभस्य उत्पन्न हुआ था फिर इसके भवद पुत्र हुआ, इन सब का राज्य करने का समय अपने-अपने पिताओं के समान ही था। भवद का पुत्र सुद्युम्न नाम वाला नृपति हुआ था। इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य किया था। इसके बाहुगर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥६१-६३॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं संयातिस्तनतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धनयातिस्ततोऽभवत् ॥६४

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमैन्द्राश्वस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृत राज्यं तस्माद्रंतिनरः सुतः ॥६५

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः सुतपाः स्मृतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सवरणस्तनयस्ततः ॥६६
हिमालयगिरौ प्राप्ते तपः कर्तुं मनो दधत् ।
शतवर्षं ततः सूर्यस्तपतीं नाम कन्यकाम् ॥६७
संवरणाय ददौ तुष्टो रविलोकं नृपो गतः ।
ततो मायाप्रभावेन युगं प्रलयमागतम् ॥६८
चत्वारः सागरा वृद्धा भारतं क्षयतां गतम् ।
द्विवर्षे सागरे भूमिरुषित्वा भूधरैस्सह ॥६९
महावायुप्रभावेन सागराः शुष्कता गताः ।
अगस्त्यतेजसा भूमिः स्थली भूत्वा प्रदृश्यते ॥७०
पञ्चवर्षांतरे भूमिर्वृक्षदूर्वादिसयुता ।
सूर्याज्ञया च संवर्णस्तपत्या मुनिना सह ॥७१
वशिष्ठेन त्रिवर्णैश्च मुख्यैः सार्द्धं समागतः ॥७२

इसने भी पितृ तुल्य राज्य किया था । इसका तनय संयाति नाम वाला हुआ था। इसका राज्य काल पिता के ही समान था । उसके धनयाति नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ था । धनयाति के ऐन्द्राश्व पुत्र हुआ और इसके रन्ति नरसुत उत्पन्न हुआ था । इसके सुतया पुत्र हुआ और सुतया के सवरण नामक आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था। इन सबका राज्य काल अपने पिताओं के राज्य काल के समान हुआ था । सवरण ने हिमाचल में जाकर तप करने का मन में विचार किया था और वहाँ सौ वर्ष तक तपस्या की थी । इस तप से प्रसन्न होकर सूर्य देव ने तपती नाम वाली कन्या को सवरण के लिये दे दिया था । राजा परम सन्तुष्ट होकर सूर्य लोक में चला गया था । इसके पश्चात माया के प्रभाव से प्रलय का युग आ गया था ॥६४-६८॥ चारों महासमुद्र इतने बढ़ गये थे कि यह भारत देश क्षयता को प्राप्त हो गया था । इस भूमि ने समस्त भूधरों के सहित दो वर्ष तक सागर में ही निवास किया था । इसके पश्चात महा

वायु के प्रभाव से ये सागर शुष्क हुए थे। अगस्त्य के तेज से यह भूमि शुष्क होकर दिखाई देने लगी थी। पाँच वर्ष के अन्तर हो जाने पर यह समस्त भूमण्डल वृक्ष तथा दूभ आदि से युक्त हुआ था। भगवान् सूर्य की आज्ञा से सवरण तपती को साथ में लेकर मुनि वशिष्ठ और प्रमुख त्रिवर्णों के साथ यहां आये थे ॥६६-७२॥

॥ द्वापरयुगीयभूपवृत्तान्तवर्णनम् ॥

संवर्णश्च महीपालः कस्मिन्काले समागतः ।
लोमहर्षण मे ब्रूहि द्वापरस्य नृपांस्तथा ॥१
भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु त्रयोदश्यां भृगौ दिने ।
संवर्णो मुनिभिः सार्द्धं प्रतिष्ठाने समागतः ॥२
प्रतिष्ठानं कृतं रम्यं पञ्चयोजनमायतम् ।
अर्द्धक्रोशोन्नतं हर्म्यं रचितं विश्वकर्मणा ॥३
बुद्धिवंशे प्रसेनस्य सत्ताया भूपतिः कृतः ।
यदुवंशे सात्वतश्च मधुराभूपतिः कृतः ॥४
म्लेच्छवंशे श्मश्रुपालो मरुदेशस्य भूपतिः ।
क्रमेण वर्द्धिता भूपाः प्रजाभिः सहिता भुवि ॥५
दशवर्षसहस्राणि संवर्णो भूपतिः स्मृतः ।
तस्यात्मजाऽयमर्चाज्ञः कृतं राज्यं पितुस्समम् ॥६
तस्य पुत्रः सूरिजापी पितुरर्द्धं च राज्यकृत् ।
सूर्ययज्ञस्तस्य पुत्रः सौरयज्ञपरायणः ॥७

इस अध्याय में द्वापर युग के होने वाले भूपों के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। शौनक मुनि ने कहा—हे लोमहर्षण ! वह संवरण राजा किस समय में आया था—यह बताइये और अब द्वापर युग के

राजाओं के विषय में मुझे वर्णन करने की कृपा करें। सूतजी ने कहा—भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी तिथि के दिन शुक्रवार में राजा संवर्ण मुनियों के साथ प्रतिष्ठान में आया था ॥१-२॥ उस प्रतिष्ठान को पाँच योजन के विस्तार वाला परम सुन्दर बनाया था। विश्व कर्मा ने आधे कोश जितना ऊँचा हर्म्य बना दिया था ॥३॥ बुद्धि वंश में प्रसेन को सत्ता का राजा किया गया था। यदुवंश में सात्वत मथुरा का भूपति किया गया ॥४॥ म्लेच्छ वंश में श्मश्रुपाल मरु देश का राजा हुआ था। इस तरह क्रम से भूपगण इस भूमण्डल में क्रम से बढ़ते हुए चले गए थे और उनकी प्रजा भी साथ बढ़ती रही थी ॥५॥ दश सहस्र वर्ष तक संवर्ण राजा कहा गया था। उसका पुत्र अर्चाङ्ग हुआ जिसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था ॥६॥ इसका पुत्र सूरिजापी हुआ था जिसका राज्यकाल पिता से आधा रहा था। इसका पुत्र सूरियज्ञ हुआ जोकि सौरयज्ञ में परायण था ॥७॥

शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादातिथ्यवर्द्धनः ।
शतहीनं कृतं राज्यं द्वादशात्मा तु तत्सुतः ॥८
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो दिवाकरः ।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातः प्रभाकरः ॥९
शतहीनं कृतं राज्यं भास्वदात्मा च तत्सुतः ।
शतहीनं कृतं राज्यं विवस्वज्ज्ञस्तदात्मजः ॥१०
शतहीनं कृतं राज्यं हरिदश्वार्चनस्ततः ।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्वैकर्तनः सुतः ॥११
शतहीनं कृतं राज्यं स्तस्मादर्केष्टिमान्सुतः ।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मान्मार्तण्डवत्सलः ॥१२
शतहीनं कृतं राज्यं मिहिरार्थस्तु तत्सुतः ।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादरुणपोषणः ॥१३
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्द्युमणिवत्सलः ।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्तरणियज्ञवान् ॥१४

इस सूर्ययज्ञ राजा ने शतहीन राज्य किया था। इसके अतिथ्य वर्धन पुत्र हुआ। इसका राज्यकाल भी पिता से एक सौ वर्ष कम हुआ था। इसके द्वादशात्मा नामक पुत्र ने जन्म लिया था। इसका शतहीन राज्य था। द्वादशात्मा के दिवाकर पुत्र उत्पन्न हुआ, इसके प्रभाकर सुत हुआ फिर इसके भास्वदात्मा पुत्र हुआ। इस भास्वदात्मा के विवस्वज्ज्ञ पुत्र हुआ। इसके हरिदश्वार्चन उत्पन्न हुआ। इसके वैकर्त्तन पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था, इन सबका राज्य काल अपने पिताओं से सौ-सौ वर्ष कम होता चला आया था ॥८-११॥ वैकर्त्तन के अर्केष्टिमान् पुत्र हुआ जिसने शतहीन राज्य किया था। अर्केष्टिमान के मार्त्तण्ड वत्सल नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी जिसका राज्य शतहीन था। उसका पुत्र मिहिरार्थं नामधारी हुआ था। इसने भी शतहीन राज्य किया था। इसका पुत्र अरुण पोषण उत्पन्न हुआ जिसने शतहीन राज्य किया इसके धुमणिवत्सल पुत्र हुआ। इसने भी एक सौ वर्ष कम राज्य किया था। धुमणिवत्सल का पुत्र तरणि यज्ञक उत्पन्न हुआ था ॥१२-१४॥

शतहीनं कृतं राज्यं तस्मान्मैत्रेष्टिवर्धनः।
शतहीनं कृतं राज्यं चित्रभानूर्जकस्ततः ॥१५
शतहीनं कृतं राज्य तस्माद्वैरोचनः स्मृतः।
शतहीनं कृतं राज्यं हंसन्यायी तु तत्सुतः ॥१६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वेद प्रवर्धनः।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्सावित्र उच्यते ॥१७
शतहीनं कृतं राज्यं धनपालस्ततोऽभवत्।
शतहीनं कृतं राज्यं म्लेच्छहन्ता सुतः स्मृतः ॥१८
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादानंदवर्द्धनः।
शतहीनं कृतं राज्यं धर्मपालसुतस्ततः ॥१९
शतहीनं कृतं राज्यं ब्रह्मभक्त सुतस्ततः।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्ब्रह्मोष्ठिवर्द्धनः ॥२०

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादात्मप्रपूजकः ।
पितुः तुल्यं कृतं राज्यं परमेष्ठी सुतस्ततः ।।२१

तरणि यज्ञक का पुत्र मैत्रेष्टिवर्धन हुआ था । इसका पुत्र चित्रभानूजंक उत्पन्न हुआ । इसका पुत्र वैरोचन हुआ था । वैरोचन का हंस न्यायी आत्मज हुआ था और हंसन्यायी का वेदप्रवर्धन पुत्र हुआ । तरणि यज्ञक से हंसन्यायी तक सबका राज्यकाल शतहीन हुआ था । केवल हंसन्यायी का राज्यकाल अपने पिता के समान था। वेदप्रबर्धन ने शतहीन राज्य किया था । इसके सावित्र नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ।।१५-१७।। सावित्र ने शतहीन राज्य किया था । इसके फिर धनपाल नामक पुत्र हुआ । इसका राज्य काल भी शतहीन था । इसका पुत्र म्लेच्छ हन्ता हुआ, इसका पुत्र आनन्द वर्धन हुआ, आनन्द वर्धन का पुत्र धर्मपाल हुआ । धर्मपाल का पुत्र ब्रह्मभक्त उत्पन्न हुआ था । इनका सबका राज्य काल शतहीन था । ब्रह्मभक्त ने अपने पिता के राज्यकाल के बराबर ही राज्य किया था । इसके ब्रह्मेष्टि वर्धन पुत्र हुआ, इससे आत्मप्रपूजक राजा ने जन्म प्राप्त किया था । इसका पुत्र परमेष्ठी उत्पन्न हुआ । इन सब ने पितृतुल्य ही राज्यकाल का सुखोपभोग किया था ।।१८-२१।।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्धैरण्यवर्द्धनः ।
शतहीनं कृतं राज्यं धातृयाजी तु तत्सुतः ।।२२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तद्विधातृप्रपूजकः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वै द्रुहिणः क्रतुः ।।२३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वैरंच्य उच्यते ।
शतहीनं कृतं राज्यं तत्पुत्रः कमलासनः ।।२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शमवर्ती तु तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं श्राद्धदेवस्तु तत्सुतः । २५

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वै पितृवर्द्धनः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सोमदत्तस्तु तत्सतः ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सौमदत्तिस्तदात्मजः ।
पितुस्तुल्यं कृत राज्यं तस्माद्वै सोमवर्द्धनः ॥२७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राज्यमवतंसः सुतस्ततः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रतंसस्तनयस्ततः ॥२८

परमेष्ठी का हैरण्य वर्धन पुत्र हुआ। इसने शतहीन राज्य किया था। इसका धातृयाजी पुत्र हुआ जिसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था। इसका पुत्र धातृप्रपूजक नाम वाला उत्पन्न हुआ था। उससे द्रुहिणक्रतु हुआ। उससे वैरञ्चय हुआ। वैरञ्चय का पुत्र कमलासनं हुआ था। उसका शमवर्त्ती हुआ और शमवर्त्ती का पुत्र श्राद्धदेव हुआ था। इन सबने अपने-अपने पिताओं के समान ही राज्य सुख प्राप्त किया था ॥२२-२५॥ श्राद्धदेव से पितृवर्धन की उत्पत्ति हुई और इससे सोमदत्त ने जन्म प्राप्त किया था। सोमदत्त से सोमदत्ति सम्भूत हुआ था और फिर इससे सोमवर्द्धन नामधारी पुत्र ने जन्म लिया था। इससे अवतंस नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। इसका पुत्र प्रतंस हुआ था। इन सभी ने पितृतुल्य राज्य का सुख-भोग किया था ॥२६-२८॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं परातंसस्तदात्मजः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमयतंसस्ततोऽभवत् ॥२९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं समातंसस्तु तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमनुतंसस्तदात्मजः ॥३०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमधितंसस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमभितंसस्तदात्मजः ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं समुतंसस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तंतोनाम सुतोऽभवत् ॥३२

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दुष्यंतस्तनयस्ततः ।
शकुंतलायां तस्माच्च भरतोनाम भूपतिः ।।३३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दुष्यंतः स्वर्गतिं गतः ।
भरतोनाम तत्पुत्रो देवपूजन तत्परः ।।३४
महामाया प्रभावेन षट्त्रिंशद्वर्षजीवनम् ।
षट्त्रिंशाब्दसहस्राणि नृपायुर्वर्द्धितं तथा ।।३५

प्रतंस नामक नृप का पुत्र परातंस उत्पन्न हुआ था । परातस के अयतंस और इसका पुत्र समातंस हुआ, उसके पुत्र का नाम अनुतंस था इससे फिर अधितंस नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ । इसके पुत्र का नाम अभितंस था और अभितन्स का पुत्र समुत्तंस हुआ । इसके यहाँ तंस नामक पुत्र ने जन्म लिया था । तंस के यहाँ दुष्यन्त पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । इन सबने अपने पिताओं के समान ही राज्यकाल के सुख का उपभोग किया था । दुष्यन्त नृप से शकुन्तला में भरत नाम वाला प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ था । दुष्यन्त ने पितृ तुल्य राज्य भोग कर स्वर्ग की प्राप्ति की थी । भरत नामधारी जो दुष्यन्त का पुत्र था वह सर्वदा देवों के यजनार्चन में तत्पर रहा करता था । महामाया के प्रभाव से छतीस वर्ष के जीवन को छतीस हजार वर्ष की आयु वाला बढ़ा दिया गया था ।।२९-३५।।

तस्य नाम्ना स्मृतः खंडो भारतोनाम विश्रुतः ।
तेन भूमेर्विभागश्च कृतं राज्यं पृथक चिरम् ।।३६
दिव्य वर्ष शतं राज्यं तस्माज्जातो महाबलः ।
दिव्यं वर्षशतं राज्यं भरद्वाजस्ततोऽभवत ।।३७
दिव्यं वर्षशतं राज्यं तस्माद्भवनमन्युमान् ।
अष्टादशसहस्राणि समा राज्यं प्रकीर्तितम् ।।३८
बृहत्क्षेत्रस्ततो ह्यासीत्पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
सुहोत्रस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।३९

वीतिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् ।
यज्ञहोत्रस्ततोऽप्यासीत्पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४०
शक्रहोत्रस्तत्रो जातः पितुस्तुल्यं कृत पदम् ।
प्रसन्नो भगवानिंद्रस्तं नृपं स्वर्गमाप्तवान् ॥४१
तदायोध्यापतिः श्रीमान्प्रतापेन्द्रो महाबलः ।
भारतं वर्षमदधद्वर्ष दशसहस्रकम् ॥४२

उस भरत नृप के नाम से ही खण्ड कहा गया है जिसको भारत कहा जाता है । उसने भूमि का विभाग किया था और चिरकाल तक पृथक् राज्य बना दिया था ॥३६॥ दिव्य वर्ष शत राज्य था उससे महाबल उत्पन्न हुआ । यह दिव्य वर्ष शत राज्ज था जिससे भरद्वाज हु । यह दिव्य वर्ष शत राज्य था जिससे भवन मन्युमान् हुआ । इस तरह अठारह सहस्र वर्ष राज्य कहा गया है ॥३७-३८॥ इससे वृहत्क्षेत्र था जिसने पिता के तुल्य पद किया था । उसका तनय सुहोत्र था । इसने भी पिता के तुल्य पद किया था । उसका पुत्र वीतहोत्र हुआ था जिसने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । उसका पुत्र यज्ञहोत्र था । इसने भी पिता के समान ही पद किया था । इसके बाद उस यज्ञहोत्र के शक्रहोत्र उत्पन्न हुआ जो कि पितृतुल्य पद करने वाला था । इन्द्र ने परम प्रसन्न होकर उस राजा को स्वर्ग प्राप्त करा दिया था । तब अयोध्या के पति श्रीमान् महाबल प्रतापेन्द्र ने भारतवर्ष दश सहस्र वर्ष तक धारण किया था ॥३६-४२॥

मंडलीकस्तस्य सुनः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
विजयेन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४३
धनुर्दीप्तस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
इंद्राज्ञया शक्रहोत्रो घृताच्या सह भूतले ॥४४
प्राप्तवान्सधनुर्दीप्तं जित्वा राज्यमचीकरत् ।
हस्तीनाम सतो जात ऐरावतसुतं गजम् ॥४५
आरुह्य पश्चिमे देशे हस्तिनानगरी कृता ।
द्वययोजनविस्तीर्णा स्वर्गंगायास्तटे शुभा ॥४६

राज्यं दशसहस्रं च तत्र वासं चकार सः ।
तत्पुत्रस्त्वजमीढाख्यः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४७
तस्माज्जातो रक्षपालः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
सुशर्म्यर्णस्तस्य सुत पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४८
तस्य पुत्रः कुरुर्नाम पितुरर्द्धं कृतं पदम् ।
इन्द्रस्य वरदानेन संदेहः स्वर्गमागतः ॥४९

उसके पुत्र का नाम मण्डलीक था । जिसने पिता के तुल्य पद किया था । उसका पुत्र विजयेन्द्र हुआ था जिसने भी पिता के समान ही पद को किया था ॥४३॥ धनुर्दीप्त उसका पुत्र हुआ जिसने पितृतुल्य पद किया था । इन्द्र को आज्ञा से शक्रहोत्र भूमण्डल में घृताची के साथ रहा था । उसने धनुर्दीप्त को जीतकर राज्य के सुख का उपभोग किया था । उसके हस्तो नाम वाला पुत्र हुआ जिसने ऐरावत के पुत्र गज पर आरोहण करके पश्चिम देश में हस्तिना नगरी की थी । यह नगरी दश योजन के विस्तार वाली थी और स्वर्गङ्गा के तट पर स्थित यह परम शुभ थी ॥४४-४६॥ उसने वहाँ पर निवास करके दश सहस्र वर्ष तक राज्य शासन किया था । उसका पुत्र अजमीढ़ हुआ था जिसने पिता के तुल्य ही पद किया था ॥४७॥ उससे फिर रक्षपाल की उत्पत्ति हुई थी । जो कि पितृतुल्य पद के करने वाला था । उसका पुत्र सुशर्म्यर्ण हुआ जिसने पिता के समान ही पद को किया था ॥४८॥ उसका पुत्र कुरु समुत्पन्न हुआ था । उसने पिता का आधा ही पद किया था । यह इन्द्रदेव के वरदान से सदेह अर्थात् इसी शरीर से स्वर्ग को प्राप्त हुआ था ॥४९॥

तदा सात्वतवंशेऽस्तिन्वृष्णिर्नाम महाबलः ।
मथुरायां स्थितो राज्यं सर्वं स्ववशमाप्तवान् । ५०
भगवतो वरदानेन हरेरद्भुतकर्मणः ।
पचवर्षसहस्रं च सर्वं राज्य वशीकृतम् ॥५१

निरावृत्तिस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
दशारी तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५२
वियामुनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
जीमूतस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५३
विकृतिस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
तस्माज्जातो भीमरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५४
तस्माज्जातो नवरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
तस्माज्जातो दशरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५५
तस्माज्जातश्च शकुनिः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
तस्माज्जातः कुशुंभश्च पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५६

उस समय सात्वत वश में वृष्णि नाम वाला महान् बलवान् हुआ था । इसने अपनी स्थिति मथुरा में बनाई थी और समस्त राज्य को अपने वश में कर लिया था ।।५० । अद्भुत कर्मों के करने वाले भगवान् हरि के वरदान से इसने पाँच सहस्र वर्ष पर्यन्त सम्पूर्ण राज्य को वशीकृत कर लिया था ।।५१।। उसके यहाँ निरावृत्ति नामक पुत्र ने जन्म लिया था । इसने पिता के तुल्य पद किया था । उसका पुत्र दशारी हुआ और दशारी का पुत्र वियामुन हुआ । उसका पुत्र जीमूत हुआ और जीमूत का पुत्र विकृति नामक उत्पन्न हुआ था । विकृति के भीमरथ और भीमरथ के नवरथ पुत्र हुआ । नवरथ से दशरथ नामधारी पुत्र ने जन्म लिया और इससे शकुनि उत्पन्न हुआ । शकुनि से कुशुम्भ नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था इन सभी ने अपने पिता के तुल्य पद को किया था ।।५२-५६।।

तस्माज्जातो देवरथः पितुस्तुल्यं पदम् ।
देवक्षेत्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५७
तस्य पुत्रो मधुर्नाम पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
ततो नवरथः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५८
कुरुवत्सस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
तस्मादनुरथ पुत्र पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५९

पुरुहोत्रः सुतस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
विचित्राङ्गस्तस्य सुत. पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६०
तस्मात्सात्वतवान्पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
भजमानस्तस्यसुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६१
विदूरथस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
सुरभक्तस्तस्य कृतं पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६२

कुशुम्भ के देवरथ पुत्र पैदा हुआ था और इसका पुत्र देवक्षेत्र नाम वाला हुआ । इसका पुत्र मधु हुआ इसका पुत्र नवरथ उत्पन्न हुआ । नवरथ का पुत्र कुरुवत्स हुआ और उससे अनुरथ नाम वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई । अनुरथ का पुत्र पुरुहोत्र हुआ और उसका पुत्र विचित्राङ्ग नाम वाला उत्पन्न हुआ था । उससे सात्वत वान् नामधारी पुत्र की उत्पत्ति हुई और उसका पुत्र भजमान संज्ञा वाला उत्पन्न हुआ था । भजमान का पुत्र विदूरथ हुआ और विदूरथ के यहाँ सुरभक्त नामधारी पुत्र ने जन्म लिया था । ये सभी पिता के समान पद के करने वाले हुए हैं ।।५७-६२।।

तस्माच्च यमुनाः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
ततिक्षेत्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६३
स्वायंभुवस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
हरिदीपक एवासौ तस्य राज्यं पितुस्समम् ॥६४
देवमेधास्सुतस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
सुरपालस्तदा जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६५
शक्राज्ञया कुरुश्चैव द्वापर त्रितये पदे ।
व्यतीते च सुकेश्यास्स स्वर्वेश्यायाः पतिः प्रभु ॥६६
आगतो भारते खंडे कुरुक्षेत्रं तदा कृतम् ।
विंशद्योजनविस्तीर्णं पुण्य क्षेत्रं स्मृतं बुधैः ॥६७
द्वादशाब्दसहस्रं च कुरुणा राज्यसात्कृतम् ।
तस्माज्जाह्नुस्सुतो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६८
तस्माच्च सुरथो जात पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
विदूरथस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६९

सार्वभौमस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
जयसेनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७०

सुरभक्त से सुमना नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। जिसने पिता के तुल्य पद को किया था। उसका पुत्र ततिक्षेत्र उत्पन्न हुआ जिसने पद को पिता के समान ही रखा था। स्वायम्भुव उसका आत्मज हुआ जो पिता के ही समान पद को रखने वाला था। यह हरिदीपक ही था जिसका कि राज्य पिता के ही समान था ॥६३-६४॥ उसका पुत्र सुरपाल हुआ था इन दोनों ने पितृतुल्य पद किया था ॥६५॥ इन्द्रदेव की की आज्ञा से द्वापर के तीसरे चरण के व्यतीत होने पर कुरु स्वर्ग की अप्सरा सुकेशी का पति हुआ था और वह यहाँ भारत खण्ड में आया तथा उसने यहाँ आकर कुरुक्षेत्र की रचना की थी। यह कुरुक्षेत्र बीस योजन के विस्तार वाला था जिसको महा मनीषियों ने परम पुण्य का क्षेत्र बतलाया है ॥६६-६७॥ बारह सहस्र वर्ष पर्यन्त इसे कुरु ने राज्य सात् किया था अर्थात् अपना राज्य जैसा ही बना लिया था। उससे फिर जह्नु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने पिता के समान ही पद को किया था। उससे सुरथ हुआ और सुरथ से विदूरथ तथा विदूरथ से सार्वभौम एवं सार्वभौम ने जयसेन पुत्र उत्पन्न हुआ था। इन सभी ने पिता के समान ही पद को किया था ॥६८-७०॥

तस्मादर्णव एवासौ पितुस्तुल्यं कृत पदम् ।
चतुस्सागरगामी च पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७१
अयुतायुस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् ।
अक्रोधनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७२
तस्माद्दक्षस्सुतो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
भीमसेनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७३
दिलीपस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
प्रतीपस्तस्य तनयो राज्यं पञ्चसहस्रकम् ॥७४

शंतनुस्तस्य पुत्रश्च राज्यमेकसहस्रकम् ।
विचित्रवीर्यस्तत्पुत्रो राज्यं वै द्विशंत समाः ।।७५
पांडुश्च तनयो यस्मिन्राज्यं पंचशतं कृतम् ।
युधिष्ठिरस्तस्य सुतो राज्यं पंचाशदब्दकम् ।।७६
सुयोधनेन षष्टचब्दं कृतं राज्यं ततः परम् ।
युधिष्ठिरेण निधनं तस्य प्राप्तं कुरुस्थले ।।७७

जयसेन का पुत्र अर्णव हुआ और चतु सागर गामी हुआ। इसका पुत्र अयुतायु हुआ उपर्युक्त दोनों ने पिता के समान पद किया था और अयुतायु ने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। इसका पुत्र अक्रोधन हुआ, उसका पुत्र ऋक्ष नाम वाला हुआ, ऋक्ष का पुत्र भीमसेन हुआ, भीमसेन का दिलीप पुत्र उत्पन्न हुआ था, इन सबने पिता के समान ही पद को बनाया था, दिलीप का पुत्र प्रतीप हुआ था जिसने पांच सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य के सुख का भोग किया था ।।७१-७५।। प्रतीप के यहाँ शन्तनु नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था जिसने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य का शासन किया था ! इसका पुत्र विचित्र वीर्य नाम वाला हुआ था जिसने केवल दो सौ वर्ष तक ही राज्य किया था। इसका पुत्र पाण्डु हुआ था जिसने पाँच सौ वर्ष तक राज्य किया था। उसका पुत्र युधि-ष्ठिर हुआ था जिसने पचास वर्ष तक राज्य किया था। इसके बाद सुयोधन ने साठ वर्ष तक राज्य का शासन किया था। युधिष्ठिर के द्वारा उसका निधन कुरुक्षेत्र में हुआ था ।।७६-७७।।

पूर्वं देवासुरे युद्धे ये दैत्याश्च सुरैर्हताः ।
ते सर्वे शंतनो राज्ये जन्मवंतः प्रतस्थिरे ।।७८
लक्षमक्षौहिणी तेषां तद्भारेण वसुन्धरा ।
शक्रस्य शरणं प्राप्तावतारं च ततो हरेः ।।७९
स सौरेर्वसुदेवस्य देवक्यां जन्मनाविशत् ।
एवं कृष्णो महावीर्यो रोहिणीनिलयं गतः ।।८०

पंचत्रिंशदुत्तरं च शतं वर्षं च भूतले ।
उषित्वा कृष्णचन्द्रश्च ततो गोलोकमागतः ॥८१
चतुर्थे चरणान्ते च हरेर्जन्म स्मृतं बुधैः ।
हस्तिनापुरमध्यस्याभिमन्योस्तनयस्ततः ॥८२
राज्यमेकसहस्रं च ततोऽभूज्जनमेजयः ।
त्रिसहस्रं कृतं राज्यं शतानीकस्ततोऽभवत् ।८३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं यज्ञदत्तस्ततः सुतः ।
राज्यं पंचसहस्रं च निश्चक्रस्तनयोऽभवत् ॥८४

पहिले होने वाले देवों और असुरों के युद्ध में जो असुर देवों के द्वारा मारे गये थे उन सबने राजा शन्तनु के राज्य में आकर जन्म धारण कर लिया था ॥७८॥ उनकी एक लक्ष अक्षौहिणी सेना थी। जिसके भार से यह पृथिवी एकदम दबकर परम उत्पीड़ित हुई थी और इन्द्रदेव की शरणागति में पहुँची थी। इसके पश्चात् भगवान् हरि का अवतार हो गया था ॥ ७९ ॥ भगवान् हरि ने सौरि वसुदेव की पत्नी देवकी में जन्म के द्वारा प्रवेश किया था । इस प्रकार इसे महान् वीर्य वाले भगवान् कृष्ण रोहिणी के निलय में गए थे ॥८०॥ भगवान् श्री कृष्ण ने इस भूतल में एक सौ पैंतीस वर्ष तक निवास करके अन्त में गो-लोक धाम में चले गये थे ॥८१॥ विद्वानों ने चतुर्थ चरण के अन्त में भगवान् हरि का जन्म बतलाया है। हस्तिनापुर के मध्य में अभिमन्यु के पुत्र जनमेजय का राज्यकाल एक सहस्र वर्ष तक रहा था जो कि त्रिसहस्र राज्य किया गया था। इसके पश्चात् शतानिक हुआ था। इसने पिता के तुल्य ही राज्य किया था। इसका पुत्र यज्ञदत्त हुआ जिसने पांच सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य किया था। इसके पश्चात् निश्चक्र हुआ था ॥८२-८४॥

सहस्रमकं राज्यं तदुष्टपालस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माच्चित्ररथस्सुतः ॥८५

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतितांस्तनय स्ततः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुषेणस्तनयोऽभवत् ॥८६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनीथस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मखपालः सुतोऽभवत् ॥८७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं न चक्षुस्तनयस्ततः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुखवंतस्ततोऽभवत् ॥८८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मात्पारिप्लवस्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनयस्तत्सुतोऽभवत् ॥८९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मेधावी तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो कृपंजयः ॥९०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मृदुस्तत्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तिग्मज्योतिस्तु तत्सुतः ॥९१

निश्चक्र ने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य किया । इससे तदुष्टपाल हुआ । उसका पुत्र चित्ररथ उत्पन्न हुआ । चित्ररथ का पुत्र धृतिमान् उत्पन्न हुआ इसका पुत्र सुषेण हुआ था । सुषेण का पुत्र सुनीथ हुआ । इसका पुत्र मखपाल नाम वाला उत्पन्न हुआ था । इसका पुत्र नचक्षु हुआ था इन सभी ने अपने–अपने पिताओं के समान ही राज्य के सुख का उपभोग किया था । फिर नचक्षु का पुत्र सुखवन्त पैदा हुआ ॥८५-८८॥ इसने पिता के तुल्य ही राज्य किया था । इसका पुत्र पारिप्लव नामधारी समुत्पन्न हुआ था जिसने पिता के समान ही राज्य किया था । पारिप्लव का पुत्र सुनय उत्पन्न हुआ था । इसका पुत्र मेधावी नामक हुआ । इससे फिर 'कृपञ्जय नामधारी पुत्र ने जन्म ग्रहण किया । इसके मृदु नामक आत्मज उत्पन्न हुआ और मृदु से तिग्मज्योति संज्ञा वाले आत्मज ने जन्म धारण किया था । ये सभी ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपने पिता के तुल्य ही सब प्रकार से राज्य के सुख का उपभोग किया था ॥८९-९१॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो बृहद्रथः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्य वसुदानस्ततोऽभवत् ॥९२

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शतानीकस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृतं राज्यं तस्मादुद्यान उच्यते ।।९३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो ह्यहीनरः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं निर्मित्रस्तनयोऽभवत् ।।९४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्षेमकस्तत्सुतोऽभवत् ।
राज्यं त्यक्त्वा स मेधावी कलापग्राममाश्रितः ।।९५
म्लेच्छैश्च मरणं प्राप्तो यमलोकमतो गतः ।
नारदस्योपदेशेन प्रद्योतस्तनयस्ततः ।।९६
म्लेच्छयज्ञ कृतस्तेन म्लेच्छा हननमागताः ।।९७

तिग्म ज्योति राजा के वृहद्रथ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । इसने पिता के समान राज्य के समस्त कार्य किए थे । उसके पुत्र का नाम वसुदान था जिसने अपने राज्य का शासन बिल्कुल पिता के ही तुल्य किया था । वसुदान के पुत्र का नाम शतानीक हुआ था । इसने भी राज्य का कार्य अपने पिता के ही समान किया था । शतानीक से उद्यान की उत्पत्ति हुई थी । उद्यान ने भी अपने पिता के नीति, नियमानुसार राज्य-शासन किया था । उद्यान के पुत्र अहीनर हुए जोकि पितृतुल्य ही राज्व के कार्य करने वाले थे । इनके पुत्र का नाम निर्मित्र था । इसने भी पिता के ही अनुसार राज्य किया था । इसके पुत्र का नाम क्षेमक था जिसने राज्य का त्याग कर दिया था और यह मेधावी कलाप ग्राम में आश्रित होकर रहने लगा था ।।९२-९५।। म्लेच्छों ने इसको मार डाला था और वह यमलोक को चला गया । इसके पुत्र का नाम प्रद्योत था जिसने देवर्षि नारदजी के उपदेश से म्लेच्छ यज्ञ किया था और इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त म्लेच्छ मारे गये थे ।।९६-९७।।

।। म्लेच्छयज्ञवृत्तान्तवर्णनम्, कलिकृतविष्णुस्तुतिः ।।

कथं यज्ञः कृतस्तेन प्रद्योतेन विचक्षण ।
सर्वं कथय मे तात त्रिकालज्ञ महामुने ।।१

एकदा हस्तिनगरे प्रद्योतः क्षेमकात्मजः ।
आस्थितः स कथामध्ये नारदोऽभ्यागमत्तदा ॥२
तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा पूजयामास धर्मवित् ।
सुखोपविष्टः स मुनिः प्रद्योतं नृपमब्रवीत् ॥३
म्लेच्छैर्हतस्तव पिता यमलोकमतो गतः ।
म्लेच्छयज्ञप्रभावेण स्वर्गतिर्भविता हि सः ॥४
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षो ब्राह्मणान्वेदविशारदान् ।
आहूय स कुरुक्षेत्रे म्लेच्छयज्ञं समारभत् ॥५
यज्ञकुंडं चतुष्कोणं योजनान्येव षोडश ।
रचित्वा देवता ध्यात्वा म्लेच्छांश्च जुहुयान्नृपः ॥६
हारहूणान्बर्बरांश्च गुरुंडांश्च शकान्खसान् ।
यवनान्पल्लवांश्चैव रोमजान्खरसंभवान् ॥७
द्वीपस्थितान्कामरूश्च चीनान्सागरमध्यगान् ।
आहूय भस्मसात्कुर्वन्वेदमंत्रप्रभावतः ॥८

इस अध्याय में म्लेच्छों के हनन के लिए किए गये यज्ञ का वृत्तान्त तथा कलि के द्वारा की गई स्तुति का वर्णन किया जाता है। शौनकजी ने कहा—हे विचक्षण ! उस राज्य प्रद्योत ने यज्ञ क्यों किया था ? हे तात ! हे तीनों कालों के हाल को जानने वाले ! हे महा मुनिवर ! मुझे यह समस्त वृत्तान्त बतलाने की कृपा करें। श्री सूतजी ने कहा—एक बार हस्तिनगर में क्षेमक के पुत्र प्रद्योत बैठे हुए थे और वे कथा के मध्य में उस समय आस्थित हो रहे थे कि उसी समय वहाँ देवर्षि नारदजी आ गये थे ॥१-२॥ उस समय श्रीनारद मुनि को देखकर राजा परम हर्षित हुए और धर्म के नियमों के ज्ञाता राजा ने विधिवत् उनका पूजन किया था सुखपूर्वक बैठकर उस मुनिदेव ने राजा प्रद्योत से कहा—देखो म्लेच्छों ने तुम्हारे पिता क्षेमक नृप को मार दिया था और वह यमलोक वासी हो गये थे। इसलिए म्लेच्छ यज्ञ अवश्य करना चाहिए जिसके प्रभाव से वह तुम्हारे पिता की स्वर्ग की गति हो जावेगी ॥३-४॥ इस

वृत्तान्त को प्रद्योत ने सुनकर क्रोध से लाल आँखें करली थी और उससे तुरन्त ही वेद के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर कुरुक्षेत्र में म्लेच्छों के हनन करने के लिये यज्ञ का आरम्भ करा दिया था ।।५।। चार कोनों वाला यह कुण्ड जोकि षोडस योजन का था बनाकर देवों का ध्यान किया गया था और राजा ने म्लेच्छों की आहूतियाँ देना प्रारम्भ कर दिया था ।।६।। म्लेच्छ कितने ही प्रकार के थे, उसमें हार, हूण, बर्बर, गुरुण्ड, शक, खस, यवन, पल्लव रोमज और खरसंभव इन सब जाति भेद वाले म्लेच्छों का तथा जो द्वीपों में स्थित थे एवं कामरू थे, चीन और सागरों के मध्य में निवास करते थे। उन सबको आहूत करके वेद के मन्त्रों के प्रभाव से भस्म सात् कर दिया था ।।७-८।।

ब्राह्मणान्दक्षिणां दत्त्वा अभिषेकमकारयत् ।
क्षेमको नाम नृपतिः स्वर्गलोकं ततो गतः ।।९
म्लेच्छहंता नाम तस्य विख्यातं भुवि सर्वतः ।
राज्यं दशसहस्राब्दं कृतं तेन महात्मना ।।१०
स्वर्गलोकं गतो राजा तत्पुत्रो वेदवान्स्मृतः ।
द्विसहस्रं कृतं राज्यं तदा म्लेच्छः कलिःस्वयम् ।
नारायणं पूजयित्वा दिव्य स्तुतिमथाकरोत् ।।११
नमोऽनंताय महते सर्वकालप्रवर्तिने ।।१२
चतुर्युगकृते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे ।
दशावताराय हरे नमस्तुभ्यं नमोनमः ।।१३
नमः शक्त्यवताराय रामकृष्णाय ते नमः ।
नमो मत्स्यावताराय महते गौरवासिने ।।१४
नमो भक्तावताराय कल्पक्षेत्रनिवासिने ।
राज्ञा वेदवता नाथ मम स्थान विनिनाशितम् ।
मम प्रियस्य म्लेच्छस्य तत्पित्रा वंशनाशनम् ।।१५

इसके पश्चात् राजा ने ब्राह्मणों को दक्षिणा दी और अभिषेक कराया था। इसका यह फल हुआ कि म्लेच्छ तो नष्ट हो गये थे और उसका

पिता क्षेमक भी स्वर्गलोक के निबासी हो गये ।।६।। तब से उस राजा का नाम इस भूमण्डल में सर्वत्र म्लेच्छ हन्ता यह नाम प्रसिद्ध हो गया उस महान् आत्मा वाले ने यह दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था फिर अन्त में राजा प्रद्योत स्वर्गलोक में चला गया था । उसका पुत्र वेदवान् कहा गया है । दो सहस्र राज्य किया था । उस समय कलि स्वयं म्लेच्छ था । इसने भगवान् नारायण का पूजन किया और स्तुति करना आरम्भ कर दिया था । कलि ने कहा—समस्त कालों के प्रवर्त्तक, महान् अनन्त स्वरूप, चारों युगों के करने वाले साक्षीरूप वासुदेव भगवान् आपके लिए मेरा नमस्कार है ।।१०-१२।। हे हरे ! दश अवतार धारण करने वाले आपके लिये बार बार नमस्कार हैं । शक्ति के अवतार राम एव कृष्ण के रूप वाले आपके लिये प्रणाम है । मत्स्य का अवतार धारण करने वाले महान् और गौरवासी आपके लिये नमस्कार है ।।१३-१४।। भक्तों के लिए अवतार लेने वाले अथवा भक्तों के रूप में अवतार धारण करने वाले तथा कल्पक्षेत्र के निवास करने वाले आपके लिए नमस्कार है । हे नाथ ! वेदवान् राजा ने मेरा स्थान विनाश कर दिया है और मेरे परम प्रिय म्लेच्छ का उसके पिता ने वंश ही नष्ट कर दिया है ।।१५।।

इति स्तुतस्तु कलिना म्लेच्छस्य सह भार्यया ।।१६
प्राप्तवान्स हरिः साक्षाद्भगवान्भक्तवत्सलः ।
कलिं प्रोवाच स हरियुष्मदर्थं यूगोत्तमम् ।।१७
बहुरूपमहं कृत्वा तवेच्छां पूरयाम्यहम् ।
आदमो नाम पुरुषः पत्नी हव्यवती तथा ।।१८
विष्णुकर्दमतो जातौ म्लेच्छवंशप्रवर्धनौ ।
हरिस्त्वन्तर्दधे तत्र कलिरानंदसंकुलः ।।१९
गिरि नीलाचलं प्राप्य किंचित्कालमवासयत् ।
पुत्रौ वेदवतो जातः सनन्दो नाम भूपतिः ।।२०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमनपत्यो मृतिं गतः ।
आर्यदेशाः क्षीणवंतो म्लेच्छवंशा बलान्विताः ।।२१

सूतजी ने कहा—इस प्रकार से म्लेच्छ की भार्या के साथ कलि के द्वारा भगवान् की स्तुति की गई थी। तब तो भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान् हरि वहाँ साक्षात् प्राप्त हुए और उन्होंने कलि से कहा—देखो, तुम्हारी भलाई के लिए युगोतम बहुत से रूप मैं धारण करके तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करूँगा। आदम नाम वाला पुरुष तथा हव्यवती नाम वाली पत्नी थी ॥१६-१८॥ विष्णु कदम से म्लेच्छों के वंश के प्रवर्धन करने वाले उत्पन्न हुए थे। भगवान् हरि वहाँ अन्तर्धान हो गये और कलि आनन्द से संकुल हो गया था ॥१९॥ नीलाचल नामक पर्वत पर जाकर कुछ समय तक वास कराया था। वेदवान् का सुनन्द नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि राजा हुआ था। उसने पिता के समान राज्य का शासन किया था किन्तु उसके कोई सन्तान नही हुई थी और वह निस्सन्तान ही मृत हो गया था। आर्य देश उस समय क्षीणता से युक्त हो गये थे तथा म्लेच्छ देश बलवान् हो रहे थे ॥२०-२१॥

भविष्यंति भृगुश्रेष्ठ तस्माच्च तुहिनाचलम्।
गत्वा विष्णुं समाराध्य गमिष्यामो हरेः पदम् ॥२२
इति श्रुत्वा द्विजाः सर्वे नमिषारण्यवासिनः।
अष्टाशीतसहस्राणि गतास्ते तुहिनाचलम् ॥२३
विशालायां समासाद्य विष्णुगाथां प्रचक्षिरे।
इति व्यासेन कथितं वाक्यं कलिविशारदम्।
श्रोतारं सः मन कृत्वा भविष्यं समुदीरयत् ॥२४
मनः शृणु ततो गाथां भावीं सूतेन वर्णिताम्।
कलेर्युगस्य पूर्णां तां तच्छ्रुत्वा तृप्तिमावह ॥२५
षोडशाब्दसहस्रे च शेषे तद्वापरे युगे।
बहुकीर्तिमती भूमिरार्यदेशस्य कीर्तिता ॥२६
क्वचिद्विप्राः स्मृता भूपाः क्वचिद्राज न्यवंशजाः।
क्वचिद्वैश्याः क्वचिच्छूद्राः कुत्रचिद्वर्णसंकराः ॥२७
द्विशताष्टसहस्रे द्वे शेषे तु द्वापरे युगे।
म्लेच्छदेशस्य या भूमिर्भविता कीर्तिमालिनी ॥२८

हे भृगुश्रेष्ठ ! उस स्थान से तुहिनाचल पर जाकर विष्णु की आराधना करके हरि के पद प्राप्त करेंगे । यह समस्त द्विज सुनकर जोकि नैमिष अरण्य में वास कर रहे थे, अस्सी हजार ऋषिगण तुहिनाचल पर चले गये थे । विशाला में पहुँचकर वे वहाँ भगवान् विष्णु की गाथा करने लगे । यह व्यास ने कलिविशारद से वाक्य कहा था । वहाँ उन्होंने इस प्रसङ्ग में मन को श्रोता बनाकर भविष्य कहना आरम्भ किया था । व्यासजी ने कहा – हे मन ! तू अब श्रवण कर जो भावी गाथा सूत ने वर्णित की है । यह कलियुग को पूर्ण गाथा है । उसे सुनकर अपनी तृप्ति प्राप्त कर ।।२२-२५।। सूतजी ने कहा—द्वापर युग के सोलह सहस्र वर्ष शेष रहने पर आर्य देश की भूमि बहुत अधिक कीर्त्ति वाली कही गई है ।।२६।। कहीं तो विप्र भूप कहे गये हैं और कहीं पर क्षत्रिय वंश में उत्पन्न राजा कहे गये हैं । कहीं पर वैश्य वर्ण वाले भूप थे तो कहीं पर शूद्र राजा थे । कहीं पर वर्णसकर भी भूप थे ।।२७।। आठ हजार दो सौ वर्ष द्वापर के जब शेष रहे थे जा यह भूमि म्लेच्छ देश की कीर्त्तिमालिनी हो जायगी ।।२८।।

इंद्रियाणि दमित्वा यो ह्यात्मध्यानपरायणः ।
तस्मादादमनामासौ पत्नी हव्यवता स्मृता ।।२९
प्रदानगरस्यैव पूर्वभागे महावनम् ।
ईश्वरेण कृतं रम्यं चतुःक्रोशायतं स्मृतम् ।।३०
पापवृक्षतले गत्वा पत्नीदर्शनतत्परः ।
कलिस्तत्रागतस्तूर्णं सर्परूपं त हित्कृतम् ।।३१
वंचिता तेन धूर्तेन विष्णवाज्ञा भगता गता ।
खादित्वा तत्फलं रम्यं लोकमार्गप्रदं पतिः ।।३२
उदुंबरस्य पत्रैश्च ताभ्यां वाय्वशनं कृतम् ।
सुताः पुत्रास्ततो जातः सर्वेम्लेच्छा बभूविरे ।।३२

त्रिंशोत्तरं नवशतं तस्यायुः परिकीर्तितम् ।
फलानां हवनं कुर्वन्पत्न्या सह दिवं गतः ।।३४
तस्माज्जातः सुतः श्रेष्ठः श्वेतनामेति विश्रुतः ।
द्वादशोत्तरवर्षं च तस्यायुः परिकीर्तियम् ।।३५

जो आत्मा के ध्यान में ही परायण है उसने इन्द्रियों का दमन करके उससे यह आदम नाम वाला पुरुष हुआ और उसकी पत्नो हव्यवती नाम वाली कही गई है। प्रदान नगर के ही पूर्व भाग में महावन ईश्वर के द्वारा किया गया परम सुन्दर और चार कोस विस्तार वाला कहा गया है ।।२९-३०।। वहाँ पाप वृक्ष के नीचे जाकर पत्नी के दशन में तत्पर था। कलि वहाँ शीघ्र आ गया जो कि सर्प का रूप किये हुए था ।।३१।। उस धूर्त ने विष्णु की आज्ञा को वंचित कर दिया था और वह भङ्गता को प्राप्त हो गई। पति ने लोक मार्ग प्रद रम्य फल खाये। उन दोनों ने उदुम्बर के पत्तों से वायु का अशन किया था। इसके अनन्तर सुत पुत्र हुए जो कि सबके सब म्लेच्छ हो गये थे ।।३२-३३।। नौ सौ तीस वर्ष उसकी आयु बताई गई थी। फलों का हवन करता हुआ वह पत्नी के साथ दिव लोक को चला गया था। उससे श्वेत नाम वाला श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ था जो कि परम प्रसिद्ध था और उसकी आयु द्वादशोत्तर वर्ष बताई गई है ।।३४-३५।।

धनुहस्तस्य तनयः शतहीनं कृतं पदम् ।
कीनाशस्तस्य तनयः पितामहसमं पदम् ।।३६
महल्ललस्तस्य सुतः पंचहीनं शत नव ।
तेन राज्यं कृतं तत्र तस्मान्मानगरं स्मृतम् ।।३७
तस्माच्च विरदो जातो राज्यं षष्टयुत्तरं समाः ।
ज्ञेयं नवशतं तस्य स्वनाम्ना नगरं कृतम् ।।३८
हनूकस्तस्य तनयो विष्णु भक्तिपरायणः ।
फलानां हवनं कुर्वंस्तत्त्वं ह्यसि जयन्सदा ।।३९
त्रिशतं पंचषष्टिश्च राज्यं वर्षाणि तत्स्मृतम् ।
सदेहः स्वर्गमायातो म्लेच्छधर्मपरायणः ।।४०

आचारश्च विवेकश्च द्विजता देवपूजनम् ।
कृतान्येतानि तेनैव तस्मान्म्लेच्छः बुधैः ॥४१
विष्णुभक्त्यग्निपूजा च ह्यहिंसा च तपो दमः ।
धर्माण्येतानि मुनिभिर्म्लेच्छानां हि स्मृतानि वै ॥४२

उसके पुत्र का नाम अनुह था जिसने शतहीन पद किया था । उसका पुत्र कीनाश हुआ जिसने अपने पिता मह के तुल्य पद किया था ॥३६॥ महल्लल उसका पुत्र हुआ पाँच कम नौ सौ वर्ष तक जिसने वहाँ राज्य किया था । इससे मानगर कहा गया है ॥३७॥ और फिर उससे विरद उत्पन्न हुआ था । इसने षष्ठ्युत्तर वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । अर्थात् नौसौ साठ समझना चाहिए । इसने अपने नाम से नगर किया था ॥३८॥ उसका पुत्र हनूक नामधारी हुआ जो विष्णु की भक्ति में परायण रहता था । यह फलों का हवन करता हुआ सदा तत्व को उत्पन्न किया करता था ॥३९॥ उसका राज्य करने का काल तीन सौ पैंसठ वर्ष कहा गया है । यह इसी देहके साथ स्वर्ग में आया था जो कि म्लेच्छ धर्म परायण था ॥४०॥ आचार और विवेक, द्विजता और देव पूजन ये सब उसने ही की थीं । इसलिए बुधों के द्वारा म्लेच्छ कहा गया है ॥४१॥ विष्णु की भक्ति, अग्नि पूजा, अहिंसा, तप, दम ये धर्म मुनियों ने म्लेच्छों के बताये हैं ॥४२॥

मतोच्छिलस्तस्य सुतो हनुकस्यैव भार्गव ।
राज्यं नवशतं तस्य सप्ततिश्च स्मृताः समाः ॥४३
लोमकस्तस्य तनयो राज्यं सप्तशतं समाः ।
सप्तसप्ततिरेवास्य तत्पश्चात्स्वर्गतिं गतः ॥४४
तस्माज्जातः सुतो न्यूहो निर्गतस्तूह एव सः ।
तस्मान्न्यूहः स्मृतः प्राज्ञै राज्यं पंचशतं कृतम् ॥४५
सीमः शमश्च भावश्च त्रयः पुत्रा बभूविरे ।
न्यूहः स्मृतो विष्णुभक्तस्सोऽहं ध्यानपरायणः ॥४६
एकदा भगवान्विष्णुस्तत्स्वप्ने तु समागतः ॥४७

वत्स न्यूह श्रृणुष्वेदं प्रलयः सप्तमेऽहनि ।
भविता त्वं जनैस्सार्धं नावमारुह्य सत्वरम् ॥४८
जीवनं कुरु भक्तेंद्र सर्वश्रेष्ठो भविष्यसि ।
तथेति मत्वा स मुनिर्नावं कृत्वा सुपुष्टिताम् ॥४९
हस्तत्रिशतलम्बां च पंचाशद्धस्तविस्तृताम् ।
त्रिशद्धस्तोच्छ्रितां रम्यां सर्वजीवसमन्विताम् ॥५०

इसका पुत्र मतोच्छिल हुआ था जोकि हनूक का ही था । हे भार्गव ! उसका राज्या करने का समय नौ सौ सत्तर वर्ष कहा गया है ॥४३॥ उसका पुत्र लोमक नामधारी उत्पन्न हुआ था । उसका राज्य काल सात सौ वर्ष कहा गया है । सतत्तर ही वर्ष ऊपर थे । इसके पश्चात वह स्वर्गति को प्राप्त हो गया था ॥४४॥ उससे न्यूह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह तूह ही निर्गत हुआ था । इसके न्यूह प्राज्ञों के द्वारा कहा गया है । इसने पाँच सौ वर्ष तक राज्य किया था ॥४५॥ सीम, शाम और भाव ये तीन पुत्र हुए थे । न्यूह विष्णु का भक्त कहा गया है जोकि सोऽहं के ध्यान में परायण रहा करता था ॥४६॥ एक बार भगवान विष्णु उसके स्वप्न में आ गये थे । और स्वप्न में ही विष्णु ने कहा—हे वत्स न्यूह ! यह मेरा वचन श्रवण करलो, आज से सातवें दिन में प्रलय होगा । तुम मनुष्यों के साथ नाव में शीघ्र समारोहरण करके जीवन की रक्षा करना । हे भक्तेन्द्र ! तू सर्वश्रेष्ठ हो जायगा । उस स्वप्न में दी हुई आज्ञा को स्वीकार करके उसने सुपुष्टित नाव बनवाई थी जो तीनसौ हाथ लम्बी और पचास हाथ विस्तृत (चौड़ी) थी । यह तीस हाथ ऊँची थी एवं बहुत रम्य थी जोकि समस्त जीवों से समन्वित थी ॥४७-५०॥

आरुह्य स्वकुलैस्सार्द्धं विष्णुध्यानपरोऽभवत् ।
सांवर्तको मेघगणो महेंद्रेण समन्वितः ॥५१
चत्वारिंशद्दिनान्येव महावृष्टिमकारयत् ।
सर्वं तु भारतं वर्षं जलैःप्लाव्य तु सिंधवः ॥५२
चत्वारो मिलिताः सर्वे विकालायां न चागताः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि मनयो ब्रह्मवादिनः ॥५३

न्यूहश्च स्वकुलैस्सार्धं शेषास्सर्वे विनाशिताः।
तदा च मुनयस्सर्वे विष्णुमायां प्रतुष्टुवु५४ :॥

उस नौका पर अपने कुलों के साथ उसने समारोहण किया और विष्णु के ध्यान में तत्पर हो गया था। महेन्द्र के द्वारा समन्वित साँवर्त्तक मेघों के गण चालीस दिन में ही वहाँ महावृष्टि कराई थी। यह सम्पूर्ण भारतवर्ष जलों से प्लावित होकर सिन्धु बन गया था ॥५१-५२॥ चारों सागर मिल गये और विशाला में नहीं आये थे। अट्ठासी हजार मुनिगण वहाँ पर ब्रह्मवाद को करने वाले उपस्थित थे ॥५३॥ और न्यूह अपने कुलों के साथ वहाँ था बाकी अन्त सब विनाशित हो गये थे। तब सब मुनिगण ने विष्णु भगवान् की माया का स्तवन किया था ॥५४॥

नमो देव्यै महाकाव्यै देवक्यै च नमोनमः।
महालक्ष्म्यै विष्णुमात्रे राधा देव्यै नमोनमः ॥५५
रेवत्यै पुष्पवत्यै च स्वर्णवत्यै नमोनमः।
कामाक्षायै च मायायै नमो मात्रे नमोनमः ॥५६
महावातप्रभावेन महा मेघरवेण च।
जलधाराभिरुग्राभिर्भयं जातं हि दारुणम् ॥५७
दास्माद्भायाद्भै रवि त्वमस्मान्संरक्ष किंकरान्।
तदा प्रसन्ना सा देवी जलं शातं तया कृतम् ॥५८
अब्दांतरे मही सर्वा स्थली भूत्वा प्रदश्यते।
आराच्च शिषिणा नात हिमाद्र स्तटभूमयः ॥५९
न्यूहस्तत्र स्थितो नाव मारुह्य स्वकुलैस्सह।
जलांते भूमिमागत्य तत्र वासं करोति सः ॥६०

मुनिगण ने कहा—महाकाली देवी के लिए हम सबका नमस्कार है और देवकी के लिये नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है। महालक्ष्मी, विष्णु की माता, राधादेवी के लिए बार-बार हमारा सबका नमस्कार है ॥५५॥ खेती, पुष्पवती, स्वर्णवती के लिये नमस्कार है।

कामाक्षा, माया माता के लिये बार-बार नमस्कार है ।।५६।। महान् वायु के प्रभाव से और इस महान मेघों के गर्जन से तथा इन परम उग्र जल की धाराओं से दारुणभय उत्पन्न हो गया है। हे भैरवि ! इस भय से तू हम किंकरों की रक्षा कर। उस समय देवी प्रसन्न हो गई और उसने जल की वर्षा को शान्त कर दिया था ।।५७-५८।। एक ही वर्ष के अन्दर समस्त पृथ्वी स्थली होकर दिखाई देने लगी और शीघ्र ही हिमाद्रि की तटभूमि में शिषिणा नाम का एक स्थल है वहाँ पर अपने कुलों के साथ नाव पर सवार होकर न्यूह वहां पर स्थित था। जल के अन्त में वह भूमि पर उतर आया था और निवास करता है ।।५९-६०।।

।। म्लेच्छ वंश वर्णन ।।

सांप्रतं वर्तते यो वै प्रलयांते मुनीश्वर ।
दिव्यदृष्टिप्रभावेन ज्ञातं ब्रूहि ततः परम् ।।१
न्यूहो नाम स्मृतो म्लेच्छो विष्णुमोहं तदाकरोत् ।
तदा प्रसन्नो भगवान्स्तस्य वंशः प्रवर्द्धितः ।।२
म्लेच्छभाषा कृता तेन वेदवाक्यपराङ्मुखा ।
कलेश्च वृद्धये ब्राह्मीं भाषां कृत्वाऽपशब्दगाम् ।।३
न्यूहाय दत्तवान्देवो बुद्धीशो बुद्धिगः स्वयम् ।
विलोमं च कृतं नाम न्यूहेन त्रिसुतस्य वै ।४
सिमश्च हामश्च तथा याकूतो नाम विश्रुतः ।
याकूतः सप्तपुत्रश्च जुम्रो माजज एव सः ।।५
मादी तथा च यूनानस्तूवलोमसकस्तथा ।
तीरासश्च तथा तेषां नामभिर्देश उच्यते ।।६
जुम्रा दश कनाञ्जश्च रिफतश्च तजरुमः ।
तन्नाम्ना च स्मृता देशा यूनाद्या ये सुताः स्मृताः ।।७
इलीशस्तरलीशश्च किस्तीहूदानिरुच्यते ।
चतुर्भिर्नामर्देशास्तेषां तेषां प्रचक्रिरे ।।८

इस अध्याय में न्यूह राजा के वंश का वर्णन है, म्लेच्छों की भाषा का विधान है और सिम, हाम, याकूल, जुम्र माजूज, मादी, यूनान, इलीशतरलीश, कित्तीं हूदादि प्रभृति राज्य करने वाले म्लेच्छों के का वर्णन किया जाता है। शौनक जी ने कहा—हे मुनीश्वर ! इस वंश प्रलय के अन्त में इस समय जो वर्त्तमान है। आप अपनी दिव्य दृष्टि के प्रभाव से जो ज्ञात है उसे इससे आगे बतलाइये ॥१॥ सूत जी ने कहा, न्यूह के नाम वाले म्लेच्छ ने उस समय में विष्णु से मोह किया था। तव भगवान् ने प्रसन्न होकर उसके वंश को बढ़ा दिया था ॥२॥ उसने वेदों के वाक्यों के पराङ्मुख म्लेच्छों की भाषा की थो। और कलि की वृ‌द्धि के लिये अपशब्दों के गमन करने वाली ब्राह्मी भाषा की थी ॥३॥ स्वयं बुद्धिग और बुद्धि के ईश देव ने वह भाषा न्यूह को दी थो। न्यूह ने तीनों पुत्रों के नाम को विलोम किया था ॥४॥ सिम हाम तथा याकूत नाम विश्रुत थे। याकूत, सप्तपुत्र, जुम्र, माजूज भी वही थे। मादी तथा यूनान तथा स्तूवलोम सक, तीरास उनके इस प्रकार से नामों का निदश किया गया था ॥ ५-६ ॥ जुम्रादश, कनाब्जश्व, रिफत, तजरुस ये उनके नामों से देश कहे गये थे और यूनादि सुत कहे गये हैं ॥७॥ इलोश, तरलीक्ष, कित्ती और हूद इन चार चार नामों से उनके देश बनाये गये थे अर्थात् उनके देशों के नाम रखे गये थे ॥८॥

द्वितीयतनयाद्धामात्सुताश्चत्वार एव ते ।
कुशो मिश्रश्च कूजश्च कनआंस्तत्र नामाभिः ॥९
देशा प्रसिद्धा म्लेच्छानां कुशात्षट्त नयाः स्मृताः ।
स वा चैव हबीलश्च सवंतोरगमस्तथा ॥१०
तथा सवतिका नाम निमरूहो महाबलः ।
तेषां पुत्राश्च कलनः सिनारोरक उच्यते ॥११
अक्वदो बावुनश्चैव रसनादेशकाश्च ते ।
श्रावयित्वा मुनीन्सूतो योगनिद्रावशं गत ॥१२

द्विसहस्रे शताब्दान्ते बुद्धा पुनरथाब्रवीत् ।
सिमवंशं प्रवक्ष्यामि सिमो ज्येष्ठः स भूपतिः ॥१३
राज्यं पंचशतं वर्षं तेन म्लेच्छेन सत्कृतम् ।
अर्कन्सदस्तस्य सुतश्चतु स्त्रिशच्च राज्यकम् ॥१४
चतुश्शतं पुनर्ज्ञेयं सिह्लस्तत्तनयोऽभवत् ।
राज्यं तस्य स्मृतं तत्र षष्ट्युत्तरचतुः शतम् ॥१५

द्वितीय तनय धाम से वे ही चार पुत्र हुए थे । कूश, मिश्र, कूज और कनग्राँ—ये उनके नाम थे॥६॥इस तरह से म्लेच्छों के देश प्रसिद्ध हुए थे। कुश के छै पुत्र कहे गये हैं । वह अथवा हबील, सर्व तोरगम, सवतिका, निमरूह, महाबल ये नाम उनके हुए थे । उनके पुत्र कलन और सिना रोरक कहे जाते है॥१०-११॥अकद,बावुन, रस्ना देशक ये उनके नाम थे। इस प्रकार से सूत जी मुनिगण को सुना कर योग निद्रा के वशीभूत हो गये थे ॥१२॥ दो हजार सौ वर्षों के अन्त में वे बुद्ध हुए और इसके अनन्तर फिर उन्होंने कहा अब मैं सिम के वंश का वर्णन करूंगा सिम सबमें बड़ा था अतएव वह ही राजा हुआ था।१३।उस म्लेच्छ ने पाँच सौ वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । अर्कन्सद उसका पुत्र हुआ था । इसने चार सौ बीस वर्ष तक राज्य का शासन अपने हाथ में रक्खा था । इसके एक पुत्र था जिसका नाम सिह्ल हुआ था । इसका राज्य काल चारसौ साठ वर्ष पर्यन्त बताया है ॥१४-१५॥

इव्रतस्य सुतो ज्ञेयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
फलजस्तस्य तनयश्चत्वारिंशद्द्वयं शतम् ॥१६
राज्यं कृतं तु तस्माच्च रऊ नाम सुतः स्मृतः ।
सप्तत्रिंशच्च द्विशतं तस्य राज्यं प्रकीर्तितम् ॥१७
तस्माच्च जूजः उत्पन्नः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
नहूरस्तस्य तनयो वयः षष्टयुत्तरं शतम् ।
राज्यं चकार नृपतिर्बहुशत्रून्विहिंसयन् ॥१८
ताहरस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
तस्मात्पुत्रोऽविरामश्च नहूरो हारनस्त्रयः ॥१९

एवं तेषां स्मृता वंशा नाममात्रेण कीर्तिताः ।
सरस्वत्याश्च शापेन म्लेच्छभाषा महाधमाः ।।२०
तेषां वृद्धिः कलौ चासीत्संक्षेपेण प्रकीर्तिता ।
संस्कृतस्यैव वाणी तु भारतं वर्षमूह्यताम् ।।२१
अन्यखंडे गता सैव म्लेच्छा ह्यानंदिनोऽभवन् ।
एवं ते विप्र कथितं विष्णुभक्तद्विजैस्सह ।।२२

इसके पुत्र का नाम इन्नतस्य था जिसने अपने पिता के समान ही पद किया था। उसका पुत्र फलज हुआ था जिसने दो सौ चालीस वर्ष तक राज्य किया था। उसके रऊना मधारी पुत्र की उत्पत्ति हुई थी उसके राज्य करने का समय दो सौ सैंतीस वर्ष बताया गया है ।।१६-१७।। उससे फिर जूज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने अपने पिता के समान ही अपना सब काम पूर्ण किया था। नहूर उसका पुत्र हुआ जिसकी आयु एक सौ साठ वर्ष की थी। इसने अपने बहुत सारे शत्रुओं का विनाश करते हुए राज्य का शासन चलाया था ।।१८।। ताहर नाम वाला उसका पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने अपने पिता के ही समान सभी कुछ कार्य करके पद को संभाला था। इससे अविराम नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ था और दूसरे नहूर एवं हारन हुए थे। इस तरह तीन पुत्र थे ।।१६।। इस प्रकार से उनके वंश बताये गये हैं और उनके नाम मात्र से ही कहे गये हैं। म्लेच्छों की भाषा को भगवती सरस्वती का शाप हो गया। इसीलीए यह भाषा महा अधम भाषा कही जाती है ।।२०।। उनकी वृद्धि कलियुग में थी जोकि अति संक्षेप से कही गई है। संस्कृत ही की एक वाणी है जिससे भारतवर्ष प्रफुल्लित हो रहा है ।।२१।। अन्य खण्ड में गई वही भाषा म्लेच्छा हो गई क्योंकि म्लेच्छ लोगों ने ही उसका आनन्द लिया था। इस प्रकार से हे विप्र! तुम्हारे आगे मैंने सब वर्णन कर दिया है जो कि विष्णु भगवान के परम भक्त द्विज हैं उनके साथ सबका पूर्ण वर्णन हुआ है ।।२२।।

तच्छ्रुत्वा मुनयस्सर्वे विशालायां निवासिनः ।
नरं नारायणं देवं संपूज्य विनयान्विताः ।।२३

ध्यानं चक्रुर्मुदा युक्ता द्विशतं परिवत्सरम् ।
तत्पश्चाद्बोधितास्सर्वे शौनकाद्या मुनीश्वराः ॥२४
संध्यातर्पणदेवार्चाः कृत्वा ध्यात्वा जनार्दनम् ।
लोमहर्षणमासीनं पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥२५
व्यासशिष्य महाभाग चिरं जीव महामते ।
सांप्रतं वर्तते यो वै राजा तन्मे वद प्रभो ॥२६
त्रिसहस्राब्दसंप्राप्ते कलौ भार्गवनंदन ।
आवन्ते शंखनामाऽसौ सांप्रतं वर्तते नृपः ॥२७
म्लेच्छदेशे शकपतिरथ राज्यं करोति वै ।
शृणु तत्कारणं सर्वं यथा यस्य विवर्धनम् ॥२८

श्री व्यास जी ने कहा—विशाला में निवास करने वाले समस्त मुनियों ने यह श्रवण करके नर-नारायण देव की पूजा की और परम विनय से अन्वित हुए ॥ २३ ॥ उन समस्त मुनियों ने परम आनन्द के के साथ दो सौ वर्ष पर्यन्त ध्यान किया था। इसके अनन्तर शौनकादि समस्त मुनीश्वरों को बोध प्राप्त हुआ था ॥२४॥ सन्ध्या, तर्पण और देवताओं की अर्चा करके तथा भगवान् जनार्दन का ध्यान करके विनय से युक्त होकर उन मुनियों ने बैठे हुए सूत जी से पूछा था॥२५॥हे व्यास जी के शिष्य ! हे महान् भाग्य वाले ! हे महामते ! आप चिरकाल तक जीवित रहें। हे प्रभो ! इस समय में जो राजा विद्यमान हो उसके विषय में हमको बताने की कृपा करें ॥२६॥ सूत जी ने कहा-हे भार्गव नन्दन ! तीन सहस्र वर्ष कलियुग के सम्प्राप्त होने पर इस समय में आवन्त में शंख नाम वाला वर्त्तमान है ॥२७॥ म्लेच्छ देश में शकों का का पति राज्य शासन कर रहा है। आप सब लोग उसके कारण का श्रवण करो जिस प्रकार से जिसकी वृद्धि हुई है ॥२८॥

द्विसहस्रे कलौ प्राप्ते म्लेच्छवंशविवर्द्धिता ।
भूमिर्म्लेच्छमयी सर्वा नानापथविवर्द्धिता ॥२९
ब्रह्मावर्तमृते तत्र सरस्वत्यास्तटं शुभम् ।
म्लेच्छाचार्यश्च मूशाख्यस्तन्मतैः पूरितं जगत् ॥३०

देवार्चनं वेदभाषा नष्टा प्राप्ते कलौ युगे ।
तल्लक्षणं शृणु मुने म्लेच्छभाषाश्चतुर्विधाः ।।३१
व्रजभाषा महाराष्ट्री यावनी च गुरुंडिका ।
तासां चतुर्लक्षविधा भाषाश्चान्यास्तथैव च ।।३२
पानीयं च स्मृतं पानी बुभुक्षा भूख उच्यते ।
पानीयं पापडीभाषा भोजनं कक्कनं स्मृतम् ।।३३
इष्टिशुद्धरवा प्रोक्त इस्तिनी मसपावनी ।
आहुतिर्वै आजु इति ददाति च दधाति च ।।३४
पितृपैतरभ्राता च बादरः पतिरेव च ।
सेति सा यावनी भाषा ह्यश्वश्चास्पस्तथा पुनः ।।३५
जानुस्याते जैनुशब्दः सप्तसिंधुस्तथैव च ।
सप्तहिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुंडिका ।।३६

जब दो सहस्र वर्ष कलियुग के प्राप्त हो गये तो यहाँ म्लेच्छों के वंश की वृद्धि हुई है । यह समस्त भूमण्डल म्लेच्छों से परिपूर्ण हो गया था और इस वृद्धि के अनेक मार्ग थे ।।२९।। ब्रह्मावर्त्त मृत में वहाँ पर सरस्वती नदी का परम शुभ तट है वहाँ पर ही मूसा नाम वाला म्लेच्छों का आचार्य रहता । उसके मत से यह समस्त जगत् पूरित हो गया था ।।३०।। कलियुग के प्राप्त होने पर देवों का अर्चन और वेदों की भाषा यह सब नष्ट हो गये थे । हे मुने ! उसका लक्षण सुनो । म्लेच्छों की भाषा चार प्रकार की है ।।३१।। व्रजभाषा, महाराष्ट्री भाषा, यावनी भाषा और गुरुण्डिका भाषा ये चार भाषाऐं हैं । उन चारों की चार लाख प्रकार की भाषाऐं हैं और उसी भाँति अन्य भाषाऐं भी हैं ।।३२।। पानीय को पानी और बुभूक्षा को भूख कहा जाता है । पानीय पापड़ी भाषा और भोजन को कक्कन कहा गया है ।।३३।। इष्टि शुद्धरव कहा गया है और इस्तिनी का मस पावनी, आहुति को आजु और ददाती को दधाति कहा जाता है ।।३४।। पितृ का पैतर, भ्राता को बादर और पति ही कहा जाता है । वह यावनी भाषा है इसमें अश्व को आस्य कहा जाता है

।।३५।। जनु के स्थान में जैनु शब्द तथा सप्त सिन्धु को सप्त हिन्दु यह यावनी भाषा में कहा जाता है । अब गुरुण्डिका भाषा के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।।३६।।

रविवारे च संडे च फाल्गुने चैव फर्वरी ।
षष्टिश्च सिक्सटी तदुदाहारमीदृशम् ।।३७
या पवित्रा सप्तपुरी तासु हिंसा प्रवर्त्तते ।
दस्यवः शबरा भिल्ला मूर्खा आर्ये स्थिता नराः ।।३८
म्लेच्छदेशे बुद्धिमंतो नरा वै म्लेच्छधर्मिणः ।
म्लेच्छाधीना गुणाः सर्वेऽवगुणा आर्यदेशके ।।३९
म्लेच्छराज्यं भारते च तद्द्वीपेषु स्मृतं तथा ।
एवं ज्ञात्वा मुनि श्रेष्ठ हरिं भज महामते ।।४०
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे रोदनं चक्रिरे बहु ।।४१

गुरुण्डिका भाषा में रविवार के स्थान पर 'सन्डे' का प्रयोग होता है और फाल्गुन के स्थान पर 'फरवरी' को प्रयुक्त किया करते हैं । षष्टि के स्थान में 'सिक्सटी' होता है । इसी प्रकार के उसके उदाहरण होते हैं सो जान लेनी चाहिए ।।३७।। जो सात परम पवित्र पुरियाँ मानी गई हैं उनमें अब हिंसा की प्रवृत्ति दिखाई देती है । इस आर्यों के देश में दस्यु-लोग, शबर, भिल्ल, मूर्ख मनुष्य स्थित रहते हैं ।। ३८ ।। म्लेच्छ देश में बुद्धिमान मनुष्य भी म्लेच्छों के जैसे धर्मों का आचरण करने वाले होते हैं । समस्त गुण म्लेच्छों के ही वहाँ अधीन होते हैं और इस आर्य देश में जब अवगुण भरे हुए हैं ।।३९।। भारत में म्लेच्छों का राज्य फैला हुआ है । हे मुनियों में श्रेष्ठ ! इस प्रकार से समझकर हे, महामते ! हरि भगवान् का भजन करना चाहिए ।।४०।। यह सूत जी का कथन सुनकर समस्त मुनियों ने अत्यधिक रुदन किया था ।।४१।।

॥ आर्यावर्त में म्लेच्छों का आगमन ॥

ब्रह्मावर्ते कथं म्लेच्जा न प्राप्ताः कारणं वद ।
सूतः प्राह शृणुष्वेदं सरस्वत्याः प्रभावतः ॥१
म्लेच्छाःगाप्ता न तत्स्थाने काश्यपो नाम वद्विजः ।
कलौ प्राप्ते सहस्राब्दे स्वर्गात्प्राप्तः सुराज्ञया ॥२
आर्यावर्यो च तत्पत्नी दश पुत्रानकल्मषान् ।
काश्यपात्सा लब्धवती तेषां नामानि ये शृणु ॥३
उपाध्यायो दीक्षितश्च पाठकः शुल्कामिश्रकौ ।
अग्निहोत्रो द्विवेदी च त्रिवेदी पाण्डच एव च ॥४
चतुर्वेदीति कथिता नामतुल्यगुणाः स्मृताः ।
तेषां मध्ये काश्यपश्च सर्वज्ञानमन्वितः ॥५
काश्मीरे प्राप्तवान्सोऽपि जगदम्बां सरस्वतीम् ।
तुष्टाव पूजनं कृत्वा रक्तपुष्पैस्तथाक्षतैः ॥६
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पुष्पांजलिसमन्वितः ॥७

इस अध्याय में आर्यावत्त में म्लेच्छों के आगमन का कारण और काश्यप ब्राह्मणों के वृतान्त का वर्णन किया जाता है । शौनघ जी ने कहा—ब्रह्मावर्त्त में म्लेच्छ लोग कैसे मुक्त नहीं हुए, इसका क्या कारण था, इसे कृपा कर बताइये । सूत जी ने कहा—सुनो, यह सरस्वती नदी के प्रभाव से ही ऐसा हुआ था ॥१॥ उस स्थान में म्लेचछ लोग नहीं पहुँचे थे क्योंकि काश्यप नामधारी द्विज वहाँ पर कलियुग के सहस्र वर्ष हो जाने पर सुरों की आज्ञा से वहां स्वर्ग से प्राप्त हो गया था ॥२॥ उस द्विज की पत्नी का नाम आर्यवती था । उसने काश्यप से दश निष्पाप पुत्रों को प्राप्त किया था । अब उन दश पुत्रों के नामों का तुम श्रवण करो ॥३॥ उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी और पाण्ड्य ये उन दशों के नाम थे ॥४॥ चतुर्वेदी भी एक नाम था जो कि नामों के तुल्य ही गुण वाले थे । उन सब में काश्यप परम ज्ञान वाला बुद्धिमान ॥५॥ वह भी फिर काश्मीर में प्राप्त हो गया वहाँ उसने

जगदंबा सरस्वती का रक्तपुष्प और अक्षतों द्वारा पूजन करके उसे संतुष्ट किया धप और दोप तथा नैवेद्य के साथ पुष्पाञ्जलि से वह समन्वित था ॥६-७॥

मातःशंकरदयि ते मथिते करुणा कुतो नास्ति ।
भोऽसि त्वं जगदंबा जगत किं माँ बहिर्नयसि ॥८
देवि त्वं सुरहेतोर्धर्मद्रोहिणमाशु हंसि मातः ।
उत्तमसंस्कृतभाषा त्वं कुरु म्लेच्छांश्च मोहयेःशीघ्रम् ॥९
अंब त्वं बहुरूपा हुंकास द्धूम्रलोचनं हंसि ।
भीमं दुर्गा दैत्यं हत्वा जगतां सुखं नयसि ॥१०
दंभं मोह घोरं गर्वं हत्वा सदा सुखं शेषे ।
बोधय मातर्जगतो दुष्टान्नष्टान्कुरु त्वं वै ।
तदा प्रसन्ना सा देवी भो मुनेस्तस्य मानसे ॥११
वासं कृत्वा ददौ ज्ञानं मिश्रदेशे मुनिपतः ।
सर्वान्म्लेच्छान्मोहयित्वा कृत्वाथ तान्द्विजन्मनः ॥१२
संख्यादशसहस्र च नरवृन्दन द्विजन्मनाम् ।
द्विसहस्रं स्मृता वैश्याः शेषाः शूद्रसुताः स्मृताः ॥१३
तैः सार्द्धमार्यदेशे स सरस्वत्याः प्रसादतः ।
अवसद्वै मुनि श्रेष्ठो मुनिकार्यरतः सदा ॥१४

काश्यप ने कहा—हे माता, हे शङ्कर की पत्नी ! मेरे ऊपर आपकी करुणा क्यों नहीं होती है ? आप तो इस समस्त जगत् की अम्बा हैं क्या इस जगत से भी मुझे कहीं बाहर रखना चाहती है ? ॥८॥ हे देवी ! हे माता ! आप देवों के हित सम्पादन करने के लिये धर्म के द्रोह करने वाले को शीघ्र ही मार देती हैं । आप सर्वोत्तम संस्कृत भाषा का विस्तार आप करो और इन म्लेच्छों को शीघ्र ही मोहित कर दो ॥९॥ हे अम्ब ! आपके बहुत से रूप हैं । आप तो एक हुङ्कार से ही धूम लोचन दैत्य का वध कर देती हैं । दुर्गा भीम दैत्य का हनन कर जगत् को सुख किया करती हैं ॥१०॥ दम्भ, मोह, घोर गर्व का हनन करके सदा सुख पूर्वक शयन करती हैं । हे माता ! जगत् को ज्ञान प्रदान करो और आप इन समस्त दुष्टों को नष्ट करो इस प्रकार से स्तवन

करने पर उस समय वह देवी परम प्रसन्न हुई और उसने फिर उसी मुनि के मानस में वास करके ज्ञान का प्रदान किया था। वह मुनि मिश्र देश को चले गये। समस्त म्लेच्छों को मोहित कर उन्हें द्विजन्मा किया था ॥११-१२॥ दश सहस्र नरों का वृन्द था उनमें द्विजन्माओं की संख्या दो सहस्र थी शेष वैश्य थे और शूद्र सुत बताये गये हैं ॥१३॥ उनके साथ उस आर्य देश में वह सरस्वती के प्रसाद से वहाँ बसा था। वह मुनियों में श्रेष्ठ सदा मुनियों के कार्यों में ही रत रहा करता था ॥१४॥

तेषामार्य समूहानां देव्याश्च वरदानतः।
वृद्धिर्भवति बहुला चतुष्कोटिनराः स्त्रियः ॥१५
तेषां पुत्रांश्च पौत्राश्च तद्भूपः काश्यपो मुनिः।
विंशोत्तरशतं वर्षं तस्य राज्यं प्रकीर्तितम् ॥१६
राज्यपुत्राख्यदेशे च शूद्राश्चाष्टसहस्रकाः।
तेषां भूपश्चार्यपृथुस्तस्माज्जातस्स मागधः ॥१७
मागधं नाम तत्पुत्रमभिषिच्य ययौ मुनिः।
इति श्रुत्वा भृगुश्रेष्ठाः शौनको हर्षमागतः ॥१८
सूतं पौराणिकं नत्वा विष्णुध्यानपरोऽभवत्।
पुनश्च श्रुतिवर्षान्ते बोधिता मुनयस्तथा ॥१९
नित्यनैमित्तिकं कृत्वा पप्रच्छुरिदमादरात्।
लोमहर्षण मे ब्रूहि के राजानश्च मागधात्।
कलौ राज्यं यैस्तु कृतं यैस्तु व्यासशिष्य वदस्वनः ॥२०

उन आर्यों के समूहों में देवी के वरदान से वृद्धि बहुत अधिक हुई और चार करोड़ पुरुष तथा स्त्रियाँ थे ॥१५॥ उन स्त्री और पुरुषों के पुत्र तथा पौत्र भी थे। उन सबका भूप काश्यप मुनि हुआ था। एक सौ बीस वर्ष तक उस काश्यप का राज्य शासन करने का काल कहा गया है ॥१६॥ राज्य पुत्र नाम वाले देश में आठ सहस्र शूद्र थे और उनका राजा आर्य पृथु था। उससे मागध उत्पन्न हुआ था ॥१७॥ उसके पुत्र मागध का राज गद्दी पर अभिषेक करके मुनि चला गया था। यह श्रवण कर भृगु श्रेष्ठ शौन को परम हर्ष उत्पन्न हुआ था ॥१८॥ फिर उसने

पौराणिक सूत जी को प्रणाम करके वह विष्णु के ध्यान में परायण हो गया था और फिर श्रुति वर्ष के अन्त में मुनियों को बोधित किया था ॥१९॥ मुनियों ने अपना नित्य किये जाने वाला और निमित्त को लेकर किये जाने वाला समस्त कर्म पूर्ण करके सूतजी से परम आदर के साथ पूछा था—हे लोमहर्षण ! मागध से कौन राजाओं ने कलियुग में राज्य किया था । हे व्यास जी के शिष्य ! आप यह सब बतलाइये ॥२०॥

मागधो मागधे देशे प्रातवान्काश्यपात्मजः ॥२१
पितृराज्यं स्मृतं तेन त्वार्यदेशः पृथक्कृतः ।
पांचालात्पूर्वतो देशो मागधः परिकीर्तितः ॥२२
आग्नेय्यां च कलिंगश्च तथावन्तस्तु दक्षिणे ।
आनर्तदेशो नैर्ऋत्यां सिंधुदेशस्तु पश्चिमे ॥२३
वायव्यां कैकयो देशो मद्रदेशस्तथोत्तरे ।
ईशाने चैव कोणिन्दश्चार्यदेशश्च तत्कृतः ॥२४
देशनाम्ना तस्य सुता मगधस्य महात्मनः ।
तेभ्योंशानि प्रदत्तानि तत्पश्चात्क्रतुमुद्वहन् ॥२५
बलभद्रस्तदा तुष्टो यज्ञभावेन भावितः ।
शिशुनागः क्रतोर्जातो बलभद्रांशसंभवः ॥२६
शतवर्षं कृतं राज्यं काकवर्मा सुतोऽभवत् ।
तद्राज्यं नवतिवर्षं क्षेमधर्मा ततोऽभवत् ॥२७
दशहीनं कृतं राज्यं तत्क्षेत्रौजास्तत्सुतोऽभवत् ।
दशहीनं कृतं राज्यं वेदमिश्रस्ततोऽभवत् ॥२८

श्री सूतजी ने कहा—काश्यप का पुत्र मागध, मागध देश में प्राप्त हुआ था । उसने पिता के राज्य का स्मरण किया और आर्य देश को पृथक किया था ॥२१॥ पांचाल से पूर्व का देश ही मागध देश कहा गया है ॥२२॥ कलिङ्ग देश दक्षिण दिशा में है और अवन्त देश दक्षिण दिशा में है । आनर्त्त देश नैर्ऋत्य कोण में है और सिन्धु देश पश्चिम दिशा में है ॥२३॥ वायव्य कोण में कैकण नाम वाला देश स्थित है तथा मद्र देश उत्तर दिशा में है । ईशान दिशा में कोणिन्द देश स्थित है

और आर्य देश तत्कृत है ॥२४॥ उस महात्मा मगध के देश के नाम पुत्र थे। उनके लिये अंश दिये गये थे। इसके पश्चात् उन्होंने क्रतु का उद्वहन किया था ॥२५॥ यज्ञ भाव से परम भावित होकर भगवान बलभद्र सन्तुष्ट हो गये थे। क्रतु से बलभद्र के अंश से सम्भव शिशु नाग उत्पन्न हुआ था ॥२६॥ उसने एक सौ वर्ष तक राज्य का शासन किया था। उसका पुत्र काकवर्मा ने जन्म ग्रहण किया था। उसका राज्य काल नब्बे वर्ष का था। इसके पश्चात् उसका पुत्र क्षमधर्मा उत्पन्न हुआ ॥२७॥ इसने अस्सी वर्ष पर्यन्त राज्य शासन किया था फिर उसका क्षेत्रौजा नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसने अपने पिता के राज्य काल से दश वर्ष कम राज्य किया था। इसका पुत्र वेदमिश्र उत्पन्न हुआ था ॥२८॥

दशहीनं कृतं राज्यं तयोऽजातीरपुस्सुतः।
दशहीनं कृतं रज्यं दभकस्तनयोऽभवत् ॥२९
दशहीनं कृतं राज्यमुदयाश्वस्ततोऽभवत्।
दशहीनं कृतं राज्यं नंदवर्धन एव तत् ॥३०
दशहीनं कृतं राज्यं तस्मान्नंदसुतोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शूद्रीगर्भसमुद्भवः ॥३१
नन्दाज्जातः प्रनन्दश्च दशवर्षं कृतं पदम्।
तस्माज्जातः परानन्दः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥३२
तस्माज्जातःसमानंदो विंशोशद्वर्षं कृतं पदम्।
तस्माज्जातः प्रियानन्दः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥३३
देनानंदस्तस्त सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम्।
यज्ञ भंगः सुतस्तस्मात्पितुरर्द्धं कृतं पदम् ॥३४
मौर्यानंदस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम्।
महानन्दस्ततो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥३५

वेदमिश्र ने भी पिता से दश वर्ष हीन राज्य किया था। इसके पश्चात् इसका पुत्र अजातीरिपु हुआ। इसका राज्य काल दशहीन था। फिर इसके दर्भक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई इसने दशहीन रज्य

किया था । फिर इससे उदयाश्व का जन्म हुआ । इसका भी दशहीन राज्य काल था। फिर नन्दवर्धन उत्पन्न हुआ। इसका दश वर्ष कम राज्य काल था। इससे नन्द सुत की उत्पत्ति हई जिसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था। यह शूद्री के गर्भ से सम्भूत हुआ था ॥२६-३१॥ नन्द से प्रनन्द की उत्पत्ति हुई थी। इसने दश वर्ष ही पद किया था। इससे परानन्द समुत्पन्न हुआ था जिसने कि अपने पिता के समान ही पद किया था अर्थात् राज्य शासन किया था ॥३२॥ इससे समानन्द का जन्म हुआ था जिसने विशोशद्वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । इससे प्रियानन्द ने जन्म ग्रहण किया था जिसने अपने पिता के बराबर ही पद किया था ॥३३॥ फिर देवानन्द उसका पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसने पिता के तुल्य ही राज्य किया था। उसका आत्मज यज्ञभङ्ग नामक हुआ था जिसने अपने पिता से आधे समय तक पद सँभाला था ॥३४॥ इसके मौर्यानन्द नामधारी पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था जिसने बिल्कुल अपने पिता के तुल्य ही पद किया था। उससे फिर महानन्द समुत्पन्न हुआ जिसका राज्य काल अपने पिता के तुल्य ही हुआ था ॥३५॥

एतस्मिन्नेव काले तु कलिना संस्मृतो हरिः ।
काश्यपादुद्भवो देवो गौतमो नाम विश्रुतः ॥३६
बौद्धधर्मं च संस्कृत्य पट्टणे प्राप्तवान्हरिः ।
दशबर्ष कृतं राज्यं तस्माच्छाक्यमुनिः स्मृतः ॥३७
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तस्माच्छुद्भोदनोऽभवत् ।
त्रिंशद्वर्षं कृतं राज्यं शाक्यसिंहस्ततोऽभवत् ॥३८
शताद्रौ द्विसस्रेऽब्दे व्यतीते सोऽभवन्नृपः ।
कलेः प्रथमचरणे वेदमार्गो विनाशितः ॥३९
षष्ठिवर्ष कृतं राज्यं सर्वबौद्धा नराः स्मृताः ।
नरेषु विष्णुर्नृपतिर्यथा राजा तथा प्रजाः ॥४०
विष्णोर्वीर्यानुसारेण जगद्धर्मः प्रवर्त्तते ।
तस्मिन्हरौ ये शरणं प्राप्ता मायापतौ नराः ॥४१

अपि पापसमाचारा मोक्षवंतः प्रकीर्तिताः ।
शक्यसिंहाब्दुद्धसिंहः पितुरर्द्धं कृतं पदम् ॥४२

इसी काल में कलि ने हरि का स्मरण किया । काश्यप से उद्भव देव गौतम नाम से प्रसिद्ध हुए ॥३६॥ इनमें बौद्ध धर्म का संस्कार करके हरिपट्टण में प्राप्त हुए । दशवर्ष पर्यन्त वहाँ राज्य किया और फिर उनसे शाक्य मुनि स्मृत हुए ॥३७॥ इन्होंने बीस वर्ष तक राज्य किया था । इनसे शुद्धोदन हुए । इन्होंने तीस वर्ष तक राज्य किया था । इनसे शाक्य सिंह समुद्भूत हुए ॥३८॥ शताद्रि में दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह नृपति हुए थे । कलि के प्रथम चरण में ही वेद का जो मार्ग था वह विनाशित हो गया था ॥३९॥ इस तरह इन समस्त बौद्ध नरों ने साठ वर्ष तक राज्य किया था और ये नर कहे गये हैं । नरों में विष्णु ऐसे नृपति थे कि जैसे राजा थे वैसी ही प्रजा भी थी ॥४०॥ विष्णु के वीर्य के अनुसार से ही जगद्धर्म प्रवृत्त होता है । उस हरि के जो शरण में प्राप्त हुए हैं जोकि हरि माया के पति हैं, वे नर पापाचरण करने वाले भी हैं तो भी हरि की शरणागति के प्रभाव से मोक्ष वाले कहे गये हैं । शक्य सिंह से बुद्धिसिंह हुआ जिसने अपने पिता से आधे समय तक ही राज्य किया था ॥४१-४२॥

चंद्रगुप्तस्तस्य सुतः पौरसाधिपतेः सुताम् ।
सुलूवस्य तथोद्वाह्य यावनीबौद्धतत्परः ॥४३
षष्ठिवर्षं कृतं राज्यं बिंदुसारस्ततोऽभवत् ।
पितृस्तुल्यं कृतं राज्यमशोकस्तनयोऽभवत् ॥४४
एतस्मिन्नेव काले तु कान्यकुब्जो द्विजोत्तमः ।
अर्बुदं शिखरं प्राप्य ब्रह्महोममथाकरोत् ॥४५
वेदमंत्रप्रभावाच्च जाताश्चत्वारिक्षत्रियाः ।
प्रमरस्सामवेदी च चपहानियजुर्विदः ॥४६
त्रिवेदी च तथा शुक्लोथर्वा स परिहारकः ।
ऐरावतकुले जातान्गजानारुह्यते पृथक् ॥४७

अशोकं स्ववशं चक्रुस्सर्वे बौद्धा विनाशिताः ।
चतुर्लक्षाः स्मृता बौद्धाः दिव्यशस्त्रैः प्रहारिताः ॥४८
अवन्ते प्रमरो भूपश्चतुर्योजनविस्तृताम् ।
अम्बावतीं नाम पुरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥४९

इसके पुत्र का नाम चन्द्रगुप्त था जिसने पौरसाधिपति सुलूव की पुत्री के साथ विवाह किया था और यावनी बौद्ध तत्पर हो गया था। इसने साठ वर्ष पर्यन्त राज्य का शासन किया था। इसके विन्दुसार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसने पिता के तुल्य ही राज्य किया था। इसके सम्राट अशोक समुत्पन्न हुआ था ॥४३-४४॥ इसी समय में कान्यकुब्ज द्विज श्रेष्ठ ने अर्बुद की शिखर पर जाकर ब्रह्म होम किया था ॥४५॥ वेदों के मन्त्रों के प्रभाव से चार क्षत्रिय उत्पन्न हुए थे। प्रमर, साम वेदी, चपहानि और यजुर्वेदि। और त्रिवेदी तथा शुक्ल अथवा वह परिहारक था। इनके द्वारा ऐरावत के कुल में उत्पन्न गजों पर पृथक् आरोहण किया जाता था ॥४६-४७॥ इन्होंने अशोक को अपने वश में कर लिया था और समस्त बौद्ध विनाशित कर दिये थे। चार लाख की संख्या में बौद्ध बताये गये हैं। ये सभी दिव्य शस्त्रों के द्वारा प्रहारित कर दिये गये थे ॥४८॥ अवन्त देश में प्रमर भूप था जो चार योजन के विस्तार वाली अम्बावती नाम की पुरी में अधिष्ठित होकर बहुत ही सुखित हुआ था ॥४९॥

———

।। कलिंजर अजमरपुर आदि वर्णन ।।

चित्रकूटगिरेर्देशे परिहारो महीपतिः ।
कलिंजरपुरं रम्यमक्रोशायतनं स्मृतम् ।।१
अध्यास्य बोद्धहंता सुखितोभवदूर्जितः ।
राजपुत्राख्यदेशे च चपहानिर्महीपति ।।२
अजमेरपुरं रम्यं विधिशोभासमन्वितम् ।
चतुर्वर्ण्ययुतं दिव्यमध्यास्य सुखितोऽभवत् ।।३
शुक्लो नाम महीपालो गत आनर्तऽमण्डले ।
द्वारकां नाम नगरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ।।४
तेषामग्न्युद्भवानां च ये भपा राज्यसत्कृताः ।
तान्मे ब्रूहि महाभाग सूतो वाक्यमथाब्रवीत् ।।५
गच्छध्वं ब्राह्मणाः सर्वे योगनिद्रावशो ह्यहम् ।
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विष्णोर्ध्यानं प्रचक्रिरे ।।६
पूर्णे द्वे च सहस्रान्ते सूतो वचनमब्रवीत् ।
सप्तत्रिंशशते वर्षे दशाब्दे चाधिके कलौ ।।७

इस अध्याय में कलिंजरपुर, अजमरपुर और द्वारका नगरियों में प्रमर चपहानि तथा शुक्लों की स्थिति का वर्णन किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—चित्रकूट गिरि के देश में परिहार नाम वाला राजा था। वहाँ कलिंजरपुर परम रम्य और अक्रोशायतन कहा गया है ।।१।। वह बौद्धों का हनन करने वाला वहाँ निवास करके ऊर्जित सुखित हुआ था। और राजपुत्र नामक देश में चपहानि महीपति हुआ था ।।२।। अजमेरपुर अत्यन्त रमणीक था जो विधि शोभा से पूर्ण तथा समन्वित यह पुर चारों वर्णों से युक्त एवं दिव्य था। इसमें निवास करके परम सुखित हुआ था ।।३।। शुक्ल नामधारी राजा आनर्त्त मण्डल में चला गया था। वह द्वारका नाम नगरी में निवास करके परम सुखित हुआ था ।।४।। शौनक ने कहा—उस अग्नि से उद्भवों के जो राजा राज्य सत्कृत थे, हे महाभाग! आप उनके विषय में हमको बतलाइये। सूतजी ने यह

वचन कहा—हे ब्राह्मणो ! अब आप चले जाओ । मैं योगनिद्रा के वशीभूत हो गया हूँ । यह सुनकर समस्त मुनियों ने भगवान् विष्णु का ध्यान किया था ॥५-६॥ पूर्ण दो सहस्र वर्ष के अन्त हो जाने पर सूतजी ने यह वचन कहे—सैंतीस सौ दश वर्ष कलियुग के अधिक हो जाने पर प्रमर नामक राजा ने छैः वर्ष तक राज्य किया था ॥७॥

प्रमरो नाम भूपालः कृतं राज्यं च षट्समाः ।
महामदस्ततो जातः पितुरर्धं कृतं पदम् ॥८
देवापिस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्यं कृत पदम् ।
देवदूतस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं स्मृतं पदम् ॥९
तस्माद्गंधर्वसेनश्च पचाशदब्दभूपदम् ।
कृत्वा च स्वसुतं शंखमभिषिच्य वनं गतः ॥१०
शंखेन तत्पदं प्राप्तं राज्यं त्रिशत्समाः कृतम् ।
देवांगना वीरमती शक्रेण प्रेषिता तदा ॥११
गंधर्वसेनं संप्राप्य पुत्ररत्नमजीजनत् ।
सुतस्य जन्मकाले तु नभसः पुष्पवृष्टयः ॥१२
पेतुर्दुदुंभयो नेदुर्वाति वाताः सुखप्रदाः ।
शिवदृष्टिर्द्विजो नाम शिष्यैस्सार्द्धं वनं गतः ॥१३
विशद्भिः कर्मयोगं च समाराध्य शिवोऽभवत् ।
पूर्णे त्रिशच्छते वर्षे कलौ प्राप्ते भयंकरे ॥१४

इससे महामह नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई जिसने अपने पिता के समय से आधे समय तक ही पद किया था ॥८॥ उसका पुत्र देवापि हुआ जिसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था । इसका पुत्र देवदूत नामधारी उत्पन्न हुआ था । इसने पितृतुल्य ही पद किया था । इससे गन्धर्वसेन की उत्पत्ति हुई थी । इसका राज्यकाल पचास वर्ष पर्यन्त रहा था । इस राजा ने अपने पुत्र शङ्ख का राज्यासन पर अभिषेक करके वन

में प्रस्थान किया था ॥९-१०॥ राजा शङ्ख ने राजा होने के पद को प्राप्त करके तीस वर्ष पर्यन्त राज्य किया था। उस समय वीरमती नाम वाली एक देवाङ्गना इंद्र के द्वारा वहाँ प्रेषित की गई थी ॥११॥ उसने गन्धर्व सेन के साथ रहकर एक पुत्र रत्न को जन्म दिया था। इस पुत्र का जिस समय जन्म भूम डल में हुआ था उस वक्त आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई थी ॥१२॥ दुन्दुभियाँ बजने लगीं थीं और परम सुख प्रदान करने वाली वायु बह रही थी। इसका नाम शिवदृष्टि द्विज था जोकि अपने शिष्यों के साथ वन में चला गया था ॥१३॥ वहाँ बीर वर्ष पर्यन्त इसने कर्मयोग का साधन किया था और शिव का स्वरूप धारण किया था। इस समय तीन सौ वर्ष भयङ्कर कलियुग के प्राप्त हो गये थे ॥१४॥

शकानां च विनाशार्थमार्यधर्मविवृद्धये।
जातश्शिवाज्ञया सोऽपि कैलासाद्गुह्यकालयात् ॥१५
विक्रमादित्यनामानं पिता कृत्वा मुमोद ह।
स बालोऽपि महाप्राज्ञः पितृमातृप्रियंकरः ॥१६
पञ्चवर्षे वयःप्राप्ते तपसोऽर्थे वनं गतः।
द्वादशाब्दं प्रयत्नेन विक्रमेण कृतं तपः ॥१७
पश्चादम्बावतीं दिव्यां पुरीं यातः श्रियान्वित।
दिव्यं सिंहासनं रम्यं द्वात्रिंशन्मूर्तिसंयुतम् ॥१८
शिवेन प्रेषितं तस्मै सोपि तत्पदमग्रहीत्।
वैतालस्तस्य रक्षार्थं पार्वत्या निर्मितो गतः ॥१९
एकदा स नृपो वीरो महाकालेश्वरस्थलम्।
गत्वा संपूजयामास देवदेवं पिनाकिनम् ॥२०
सभा धर्ममयी तत्र निर्मिता व्यूहविस्तरा।
नानाधातुकृतस्तम्भा नानामणिविभूषिता ॥२१

शकों के विनाश करने के लिये और आर्यों के धर्म की वृद्धि करने के लिए वह भी गुह्यकों के आलय कैलास से शिव की आज्ञा प्राप्त कर ही

यहाँ समुत्पन्न हुआ था ॥१५॥ पिता ने इसका नाम राजा विक्रमादित्य रक्खा था। और उसे परम हर्ष हुआ था। वह बालक की अवस्था में ही महान् बुद्धिमान् पण्डित हुआ था और अपने माता-पिता का अत्यन्त प्रियङ्कर था ॥१६॥ जब इसकी पाँच वर्ष की आयु हो गई थी तभी यह तपस्या करने के लिए वन में चला गया था। वहाँ इस विक्रमादित्य ने बारह वर्ष तक बड़े ही प्रयत्न से तप किया था ॥१७॥ इसके अनन्तर वह श्री से समन्वित होकर उस दिव्य अम्बावती पुरी में गया था। एक परम सुन्दर एवं दिव्य बत्तीस मूर्त्तियों से युक्त सिंहासन उसके लिए शिव ने भेजा था और उसने उसे ग्रहण किया था। उसकी रक्षा करने के लिए पार्वती ने वेताल को निर्मित्त करके प्रेषित किया था ॥१८-१९॥ एकबार वह परमवीर राजा महाकालेश्वर के स्थल पर जाकर देवों के भी देव भगवान् पिता की पूजा करने को गया था ॥२०॥ वहाँ व्यूह विस्तार वाली एक धर्ममयी सभा का निर्माण किया गया था जिसमें अनेक धातुओं के स्तम्भ बनाये गये थे जो कि विभिन्न तरह की मणियों से विभूषित किए गये थे ॥२ ॥

नानाद्रुमलताकीर्णा पुष्पवल्लीभिरन्विता।
तत्र सिंहासनं दिव्यं स्थापितं तेन शौनक ॥२२
आहूय ब्राह्मणान्मुख्यान्वेदवेदांगपारगान्।
पूजयित्वा विधानेन धर्मगाथामथाऽश्रृणोत् ॥२३
एतस्मिनन्तरे तत्र वैतालो नाम देवता।
स कृत्वा ब्राह्मणं रूपं जयाशीर्भिः प्रशस्त तम् ॥२४
उपविश्यासने विप्रो राजनमिदमब्रवीत्।
यदि ते श्रवणे श्रद्धा विक्रमादित्यभूपते। २५
वर्णयामि महाख्यानमितिहाससमुच्चयम् ॥२६

यह सभा अनेक प्रकार के वृक्षों से समाकीर्ण था और विभिन्न पुष्पों से समन्वित वल्लियों से युक्त थी। हे शौनक! वहाँ पर ही वह दिव्य सिंहासन उसने स्थापित किया था ॥२२॥ वेदों और वेद के अङ्ग-शास्त्रों

के महा मनीषियों एवं पारङ्गत पण्डित मुख्य ब्राह्मणों का वहाँ समाह्वान करके उनकी पूजा की और विधि-विधान से उसने धर्म की गाथाओं का वहाँ श्रवण किया था ॥२३॥ इसी बीच में वहाँ पर वैताल नाम वाला देवता ने ब्राह्मण का रूप धारण करके जय के आशीर्वादों से उसकी प्रशंसा की थी ॥२४॥ वह विप्र आसन पर स्थित होकर राजा से यह बोला—हे विक्रमादित्य नृप ! यदि आपकी श्रवण करने में बहुत ही श्रद्धा है तो मुझसे श्रवण करो, मैं एक इतिहासों के समुच्चय स्वरूप महान् आख्यान का वर्णन करता हूँ ॥२५-२६॥

॥ पद्मावतीकथावर्णनम् ॥

इत्युक्तस्स तु वैतालो महाकालेश्वरस्थितः ।
शिवं मनसि संस्थाप्य राजानमिदमब्रवीत् ॥१
विक्रमादित्यभूपाल शृणु गाथां मनोरमाम् ।
वाराणसी पुरी रम्या महेशो यत्र तिष्ठति ॥२
चातुर्वर्ण्यप्रजा यत्र प्रतापमुकुटो नृपः ।
महादेवी च महिषी धर्मज्ञस्य महीपतेः ॥३
तत्पुत्रो वज्रमुकुटो मंत्रिणः सुतवल्लभाः ।
षोडशाब्देऽथ संप्राप्ते हयारूढो वनं गतः ॥४
अमात्यतनयश्चैव बुद्धिदक्ष इति श्रुतः ।
हयारूढा गतः सार्धं समानवयसा वने ॥५
स दृष्ट्वा विपिनं रम्यं मृगपक्षिसमन्वितम् ।
मुमोद वज्रमुकुटः कामाशयवशं गतः ॥६
तत्र दिव्यं सरो रम्यं नानापक्षिनिनादितम् ।
तस्य कूले शिवस्थानं मुनिवृंदैः प्रपूजितम् ॥७

इस अध्याय में पद्मावती की कथा का वर्णन किया जाता है । श्री सूत जी ने कहा—इस प्रकार से कहे गये वैताल ने जोकि महाकालेश्वर में

स्थित था, भगवान् शिव को मन में संस्थापित करके राजा से यह वचन बोले—॥१॥ हे भूपालविक्रमादित्य ! अब तुम एक परम मनोरथ गाथा का श्रवण करो वाराणसी पुरी बहुत ही रम्य है जहाँ कि महेश स्वयं स्थित रहा करते हैं ॥२॥ वहाँ प्रजा में चारों वर्णों के लोग हैं और वहाँ का प्रताप मुकुट नाम वाला राजा था। इस धर्म के ज्ञाता महीपति की महादेवी नाम वाली रानी थी ॥३॥ उसके पुत्र का नाम वज्रमुकुट था और उसके मन्त्रीगण उस सुत के परम प्रिय थे। जब वह वज्रमुकुट सोलह वर्ष की आयु वाला हो गया तो उस समय अश्व पर आरोहण करके वन को गया था ॥४॥ अमात्य (मन्त्री) का पुत्र बुद्धिदक्ष था, वह भी अश्व पर आरूढ़ होकर साथ ही में वन को गया था। ये दोनों समान ही उम्र वाले थे ॥५॥ उस राजकुमार ने मृग और पक्षियों से समन्वित सुन्दर वन को देखा और परम प्रसन्नता प्राप्त की थी। वहाँ फिर वह वज्रमुकुट नामक राजकुमार कामाशय वशीभूत हो गया था ॥६॥ वहाँ वन में एक अत्यन्त रम्य एवं परम दिव्य सरोवर था जोकि विभिन्न प्रकार के सुन्दर पक्षियों के निनाद से युक्त हो रहा था। उस सद के तट पर एक भगवान् शिव का स्थान था जोकि मुनियों के समूहों के द्वारा पूजित था ॥७॥

दृष्ट्वा तत्र गतौ वीरौ परमानन्दमापतुः ।
एतस्मिन्नन्तरे भूप करणाटकभूपतेः ॥८
दंतवक्त्रस्य तनया नाम्ना पद्मावती मता ।
कामदेवं नमस्कृत्य कामिनी कामरूपिणी ॥९
चिक्रीड सखिभिः क्रिडां सरोमध्ये मनोहरा ।
तदा तु वज्रमुकुटो मन्दिरादागतो बहिः ॥१०
दृष्ट्वा पद्मावतीं बालां तुल्रूपणान्विताम् ।
मूर्च्छितः पतितो भूमौ सा दृष्ट्वा तु मुमोह वै ॥११
प्रबुद्धो वज्रमुकुटो मां पाहि शिवशंकर ।
इत्युक्त्वा भूपतनयः पुनर्बालां ददर्श ह ॥१२

शिरसः पद्मकुसुमं सा गृहीत्वा तु कर्णयोः ।
कृत्वा चखान दशनै- पादयोर्दधती पुनः ॥१३
पुनर्गृहीत्वा तत्पुष्पं हृदये संप्रवेशितम् ।
इति भावं च सा कृत्वाऽऽलिभिः सार्धं ययौ गृहम् ॥१४

उस शिवालय को देखकर वे दोनों युवक वहाँ पहुँच गये और उन वीरों को परम अधिक आनन्द की प्राप्ति हुई थी । हे भूप ! इसी बीच में वहाँ पर करणाटक के राजा दन्तवक्त्र की पद्मावती नाम वाली पुत्री वहाँ आई । वह कामिनी का सरूपिणी थी । उसने कामदेव को नमस्कार किया और परम सुन्दरी वह अपनी सखी-सहेलियों के साथ उस सरोवर के मध्य में क्रीड़ा करने लगी । उस समय में राजकुमार वज्रमुकुट मन्दिर से बाहिर आ गया था ॥८-१०॥ उसने गुण और रूप में समान उस पद्मा-बाला को देखा तो वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया था । वह पद्मावती भी उसे देखकर अत्यन्त मोहित हो गई थी ॥११॥ कुछ क्षण के पश्चात् जब वज्रमुकुट को होश हुआ तो वह प्रबुद्ध होकर कहने लगा— हे शिवशङ्कर ! मेरी रक्षा करो । इतना कहकर वह फिर उसी बाला को देखने लगा ॥१२॥ उस बाला ने शिर से पद्म के पुष्प को लेकर कानों में किया और फिर पादों में करती हुई दशनों से चाखा था और फिर उस पुष्प को लेकर हृदय में प्रवेशित कर लिया था । इस प्रकार के भाव का उसने करके वह फिर अपनी सखियों के साथ गृह को चली गई थी ॥१३-१४॥

तीर्थार्थं च समं पित्रा संप्राप्ता गिरिजावने ।
तस्यां गतायां स नृपो मारबाणेन पीडितः ॥१५
महतीं मानसीं पीडां प्राप्तवान्मोहमागतः ।
उन्मादीव ततो भूत्वा खाद्यपानविवर्जितः ॥१६
ध्यात्वा पद्मावतीं बालां मौनव्रतमचीकरत् ।
तदा कोलाहलो जातः प्रतापमुकुटांतिके ॥१७

कुमारः कां दशां प्राप्त इति हाहेति सर्वतः ।
त्रिदिनांते मंत्रिसुतो बुद्धि दक्षो विशारदः ।।१८
अब्रवीद्वज्रमुकुटं सत्यं कथय भूपते ।
स आह कारणं सर्वं यथा जातं सरोवरे ।।१९
तच्छ्रुत्वा बुद्धिदक्षश्च विहस्याह महीपतिम् ।
महाकष्टेन स देवी मित्रत्वं हि गमिष्यति ।।२०
करणाटकभूपस्य दंतवक्त्रस्त सा सुता ।
पद्मावतीति विख्याता दधती त्वां स्वमानसे ।।२१

फिर तीर्थों के लिए पिता के साथ गिरिजा के वन में प्राप्त हुई थी। उसके चले जाने के बाद वह नृप काम के बाण से अत्यन्त पीड़ित हो गया था ।।१५।। बड़ी भारी मानसिक पीड़ा को वह प्राप्त हो गया और उसे मोह हो गया था। इसके पश्चात् एक उन्माद के रोगी की भाँति हो गया था जिसने अपना खाना-पीना सभी का त्याग कर दिया था ।।१६।। उसे केवल पद्मावती बाला का ही ध्यान रहा करता था और उसका ध्यान करके वह अहर्निश मौन व्रत में रहता था। तब तो इस बात का प्रताप मुकुट के समीप में बड़ा कोलाहल हो गया था ।।१७।। कुमार को यह क्या दशा हो गई, इसके लिये सभी ओर बड़ा हा-हा कार मच गया गया था। तीन दिन के बाद में मन्त्री के पुत्र परम पण्डित बुद्धिदक्ष ने वज्रमुकुट से कहा—हे भूपते ! सत्य-सत्य बताओ क्या कारण है। तब तो राजकुमार ने समस्त कारण उसे बता दिया था जोकि वन में उस सरोवर में उपस्थित हुआ था ।।१८-१९।। यह सुनकर बुद्धि दक्ष हँसकर महीपति से कहने लगा—वह महादेवी तो बहुत कष्ट से मित्रता को प्राप्त होगी ।।२०।। वह करणाटक देश के राजा दन्तवक्त्र की पुत्री है। उसका नाम पद्मावती है। वह तुमको अपने मन में धारण किए हुए है ।।२१।।

पुष्पभावेन ज्ञात्वाहं त्वां नयामि तदंतिके ।
इत्युक्त्वा तस्य पितरं प्रतापमुकुटं प्रति ।।२२
आज्ञाहां देहि भूपाल यास्येहं करणाटके ।
त्वत्सुतस्य चिकित्सार्थं स वज्रमुकुटोऽचिरम् ।।२३

आयामि नाऽत्र सन्देहो यदि जीवयसे सुतम् ।
तथेति मत्वा स नृपः प्रादात्पुत्रं च मन्त्रिणे ॥२४
हयारूढौ गतौ शीघ्रं दंतवक्त्रस्य पत्तने ।
काचिद्वृद्धा स्थिता तत्र तस्या गेहं च तौ गतौ ॥२५
बहुद्रव्यं ददौ तस्यै बुद्धिदक्षो विशारदः ।
ऊषतुर्मंदिरे तस्मिन्रात्रिं घोरतमोवृताम् ॥२६
प्रातःकाले तु सा वृद्धा गच्छंती राजमन्दिरम् ।
तामाह मन्त्रितनयः शृणु मातर्वचो मम ॥२७
पद्मावतीं च संप्राप्यैकांते मद्वचनं वद ।
ज्येष्ठशुक्लस्य पञ्चम्यामिंदुवारे सरोवरे ॥२८
यो दृष्टः पुरुषो रम्यस्त्वदर्थं समुपागतः ।
इति श्रुत्वा ययौ वृद्धा पद्मं तस्यै न्यवेदयत् ॥२९

मैं पुष्पभाव से जानकर तुमको उसके समीप में ले जाता हूँ । इतना बुद्धिदक्ष ने कहकर फिर उस राजकुमार के पिता प्रतापमुकुट से कहा—हे भूपाल ! आप आज्ञा दीजिए, मैं करणाटक देश को जाऊँगा । मेरा वहां गमन आपके पुत्र की चिकित्सा के ही लिए है । वह वज्रमुकुट और मैं शीघ्र ही वहाँ से आते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । यदि आप पुत्र को जीवित रखना चाहते हैं तो वहाँ जाने की आज्ञा दे देवें । इसे स्वीकार करके उस राज ने पुत्र को मन्त्री के सुपुर्द कर दिया था ॥२२-२४॥ ये दोनों अश्वों पर आरुढ़ होकर शीघ्र ही राजा दन्तवक्त्र के नगर में पहुँचे । वहाँ पर कोई एक वृद्धा स्त्री थी । वे दानों उसके घर में चले गये थे ॥२५॥ परम पण्डित बुद्धिदक्ष ने बहुत सारा धन उस वृद्धा को दिया था और उस मन्दिर में उस घोर अन्धकार वाली रात्रि में निवास किया ॥२६॥ प्रातःकाल जब हुआ तो वह वृद्धा राज मन्दिर में जाने को थी । उस समय मन्त्री के पुत्र बुद्धिदक्ष ने उससे कहा—हे माता ! मेरी बात सुनो, तुम पद्मावती के पास जाकर एकान्त में मेरा वचन उससे कह देना कि ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि में चन्द्रवार के दिन सरोवर में जो रम्य पुरुष तुमने देखा था वह

तुम्हारे लिए यहाँ उपस्थित हो गया है। यह सुनकर वृद्धा चली गई थी और उसने यह वृत्त उस पद्मावती से कह दिया था ॥२७-२६॥

रुष्टा पद्मावती प्राह चन्दनाद्रागुंलीयिका ।
गच्छ गच्छ महादुष्टे तलेनोरस्यताडयत् ॥३०
अंगुलीभिः कपोलौ च तस्याः स्पृष्ट्वा ययौ गृहम् ।
सा तु वृद्धा बुद्धिदक्षं सर्वं भावं न्यवेदयत् ॥३१
समित्रं दुःखितं प्राह श्रृणु मित्र शुचं त्यज ।
त्वामाह भूपतेः कन्या प्राणप्रिय वचः श्रृणु । ३२
त्वदर्थे ताडितं वक्षः कदा मित्रं भविष्यसि ।
श्रुत्वा तन्मधुरं वाक्यं रजो देहे समागतम् ॥३३
रजस्वलांते भो मित्र तवास्यं चुंबितास्म्यहम् ।
इति श्रुत्वा भूपसुतः परमानन्दमाययौ ॥३४
त्रिदिनांते तु सा वृद्धा पद्मावत्यै न्यवेदयेत् ।
त्वामुत्सुका स भूपालस्तव दर्शनलालसः ॥३५

चन्दन से आर्द्र अंगुलीयक वाली पद्मावती रुष्ट होकर बोली— हे महादुष्टे ! जा-जा, उसने तल से उरःस्थल में ताड़ना की थी ॥३०॥ अंगुलियों से उसके कपोलों को छूकर गृह को चली गई थी। फिर उस वृद्धा ने आकर बुद्धिदक्ष को उसका संपूर्ण भाव निवेदन कर दिया था ॥३१॥ वह बुद्धि दक्ष अपने दुःखित मित्र से कहने लगा—हे मित्र ! सुनो अब आप चिन्ता का त्याग कर दो। राजा की कन्या ने तुमसे कहा है कि हे प्राणप्रिय ! मेरा वचन श्रवण करो ॥३२॥ तुम्हारे लिए ही मैंने मेरा वक्षः स्थल ताड़ित किया है कि कब मित्र बनोगे। उसका मधुर वाक्य सुनकर देह में रज की प्रवृत्ति हो गई थी ॥३३॥ उसने कहा था कि रज स्वलता के अन्त हो जाने पर हे मित्र ! मैं तुम्हारे मुख का चुम्बन करूंगी। यह सुनकर राजा के पुत्र को परम अधिक आनन्द प्राप्त हुआ था ॥३४॥ जब तीन दिन व्यतीत हो गये तो उस वृद्धा ने पद्मावती के समीप में जाकर निवेदन किया कि वह भूपाल तुम्हारे लिए उत्सुक हो रहा है और तुम्हारे दर्शन की उसको बहुत अधिक लालसा है ॥३५॥

तं भजस्वाद्य सुश्रोणि सफलं जीवनं कुरु।
इति श्रुत्वा महाहृष्टा सा मस्याद्रांगुलीयकम् ॥३६
गवाक्षद्वारि निष्कास्य तले पृष्ठे च ताडिता।
तथैव वृद्धा तं प्राप्य मन्त्रिणं चाब्रवीद्वज: ॥३७
प्रसन्नो बुद्धिदक्षश्च तित्रं प्राह शृणुष्व भो:।
पश्चिमे दिशि भो: स्वामिन्गवाक्षं तव निर्मितम् ॥३८
अर्द्धरात्रे तु संप्राप्य भज मां कामविह्वलाम्।
श्रुत्वा तद्वज्रमुकुट: प्रियादर्शनलालस: ॥३९
ययौ शीघ्रं महाकामी रमणीं तामरामयत्।
मासांते कामशिथिलो मित्रदर्शनलालस: ॥४०
पद्मावतीं प्रियां प्राह शृणु वाक्यं वरानने।
येन प्राप्तवती मह्यं त्वं सुभ्रू: सुरदुर्लभा ॥४१
तन्मित्रं बुद्धिदक्षश्च किं नु तिष्ठति सांप्रतम्।
आज्ञां देहि प्रिये मह्यं द्रष्टुमायास्यामि तेंऽतिकम् ॥४२

हे सुश्रोणि ! तुम आज उस राजकुमार का सेवन करो और अपना जीवन सफल बनाओ। यह सुनकर वह अत्यधिक हर्षित हुई और उससे मसी से आर्द्र अंगुलीयक को गवाक्ष के द्वार में निकालकर तल में और पृष्ठ में ताड़ित किया था। उसी प्रकार से वृद्धा ने मन्त्री के पास आकर कहा—॥३६-३७॥ तब तो बुद्धिदक्ष परम प्रसन्न होते हुए मित्र से बोला—हे राजकुमार ! सुनो, हे स्वामिन् ! उसने पश्चिम दिशा में तुम्हारा गवाक्ष बना दिया है ॥३८॥ आधा रात में तुम वहाँ जाकर उस काम से विह्वला का सेवन करो। यह सुनकर वज्रमुकुट प्रिया के दर्शन की लालसा से पूर्ण हो गया था ॥३९॥ वह राजकुमार शीघ्र ही वहाँ गया और उस महाकामी ने उस रमणी को खूब रमण कराया था। जब एक मास पूर्ण हो गया तो वह काम से शिथिल हो गया और अपने मित्र के दर्शन करने की लालसा वाला हुआ ॥४०॥ तब वह राजकुमार वज्रमुकुट पद्मावती से बोला—हे वरानने ! मेरा वचन श्रवण करो जिसके द्वारा तुम देवों को भी दुर्लभा सुभ्रु मुझे प्राप्त हुई हो वह मेरा

मित्र बुद्धिदक्ष है। यह देखना है कि वह अभी तक यहाँ ठहरा है या नहीं, तुम मुझे आज्ञा दो, हे प्रिये ! मैं उससे मिलकर शीघ्र ही तुम्हारे समीप आ जाऊंगा ॥४१-४२॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य निष्ठुरं कुलिशोपमम् ।
मिष्ठान्नं सविषं कृत्वा मंत्रिणे सा न्यवेदयत् ॥४३
तदा तु बुद्धिदक्षश्च चित्रगुप्तप्रपूजकः ।
ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं न तु भक्षितवान्स्वयम् ॥४४
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो भूपतिस्त्वरयान्वितः ।
विवेकवन्तं मित्रं तं दृष्ट्वा प्राह रुषान्वितः ॥४५
कस्मान्न खादितं मित्र भोजनं मत्प्रियाकृतम् ।
विहस्य बुद्धिदक्षस्तु सारमेये ददौ हि तत् ॥४६
भुक्त्वा स मरणं प्राप्तः स दृष्ट्वा विस्मितो नृपः ।
स्त्रीचरित्रं च विज्ञाय स्नेहं त्यक्त्वाऽब्रवीत्तुतम् ॥४७
मित्रगच्छ गृहं शीघ्रं मया त्यक्ता च पापिनी ।
स आह श्रृणु भूपाल गच्छ शीघ्रं प्रियांतिकम् ॥४८
तदलंकारमाहृत्य त्रिशूलं कुरु जानुनि ।
प्रसुप्तां त्यज भो मित्र या हि त्वं मा विचारय ॥४९
इति श्रुत्वा ययौ भूपस्तथा कृत्वा समागतः ।
स्वमित्रेण ययौ सार्धं स्मशाने रुद्रमण्डपे ॥५०

उस राजकुमार का यह वज्र के समान अत्यन्त कठोर वचन सुनकर उसने मिष्टान्न को विष से युक्त करके मन्त्रि पुत्र को निवेदन किया था ॥४३॥ उस समय में चित्रगुप्त के प्रपूजक बुद्धिदक्ष ने उसका समस्त कारण समझ कर स्वयं उसे नहीं खाया था ॥४४॥ इसी बीच में शीघ्रता से युक्त भूपति वहाँ आ गया और उसने विवेक वाले मित्र को देखकर क्रोध में भरकर कहा—हे मित्र ! तुमने मेरी प्रिया के द्वारा दिया हुआ भोजन क्यों नहीं खाया है ? यह सुनकर हंसते हुए उस बुद्धिदक्ष ने उसे कुत्ते को दे दिया था। उसे खाकर कुत्ता तुरन्त ही मृत्यु को प्राप्त हो गया था। यह देखकर नृप बहुत विस्मित हुआ और स्त्रियों के चरित्र

को समझकर उसने पद्मावती से स्नेह छोड़कर उस अपने मित्र से कहा ॥४५-४७॥ हे मित्र ! अब शीघ्र ही घर को चलो । मैंने उस पापिनी का त्याग कर दिया है । वह बोला—हे भूपाल ! सुनो, तुम शीघ्र ही अपनी प्रिया के समीप में जाओ और उसके अलंकारों को लेकर उसके जानु में त्रिशूल कर देना । हे मित्र ! उसे सोती हुई त्याग देना जिससे वह तुझे न विचार सके ॥४८-४९॥ यह सुनकर राजकुमार वहाँ गया और उसी तरह करके आ गया था फिर वह अपने मित्र के साथ रुद्रमण्डप श्मशान में गया था ॥५०॥

शिष्यं कृत्वा नृपं तं स योगिरूपो हि भूषणम् ।
विक्रयार्थं ददौ तस्मै स्वमित्राय स बुद्धिमान् ॥५१
स वज्रमुकुटो मत्वा तदाज्ञां नगरं गतः ।
चोरोयमिति तं मत्वा बद्धा राज्ञो हि रक्षिणः ॥५२
शीघ्रं निवेदयामासुर्दन्तवक्त्रस्तमब्रवीत् ।
क्व प्राप्तं भूषणं रम्यं सर्वं कथय पूरुष ॥५३
जटिलः प्राह भो राजन्स्मशाने मद्गुरुः स्थितः ।
तेन दत्तं विक्रयार्थं भूषणं स्वर्णगुंठितम् ॥५४
इति श्रुत्वा स नृपतिस्तूर्णमाहूय तद्गुरुम् ।
भूषणं पृष्टवान्राजा योगी प्राह शृणुष्व भोः ॥५५
स्मशाने संधितं मंत्र मया योगस्वरूपिणा ।
पिशाची प्रापिता काचित्तस्याश्चिह्नं मया कृतम् ॥५६
वामजानुनि शूलेन तया दत्तं हि भूषणम् ।
ज्ञात्वा तत्कारणं राजा सुता निष्कासिता गृहात् ॥५७

उसने उस नृप को शिष्य बनाकर योगी रूप बुद्धिमान् बुद्ध ने भूषण विक्रय के लिए उस अपने मित्र को दे दिया था ॥५१॥ उस वज्रमुकुट ने उसकी आज्ञा को मानकर नगर को प्रस्थान किया था । यह चोर है ऐसा मानकर राजा के रक्षा करने वालों ने उसे बांध लिया और शीघ्र राजा के पास पहुंचाया गया था । राजा दन्तवक्त्र ने उससे कहा—हे पुरुष ! यह सुन्दर भूषण तुमको कहाँ से मिला है शीघ्र बताओ ॥५२-

५३।। उस जटिल ने कहा—हे राजन् श्मशान में मेरे गुरु स्थित हैं। उन्होंने इस स्वर्णगुण्ठित भूषण को मुझे बेचने के लिए दिया है ।।५४।। यह सुनकर उस राजा ने उसके गुरु को शीघ्र बुलवाया और राजा ने उस भूषण के विषय में पूछा था। योगी ने कहा—सुनिये, योगी के रूप में रहने वाले मैंने श्मशान में मन्त्र संधित किया था तो कोई पिशाची वहाँ प्राप्त हुई थी। मैंने उसके चिह्न कर दिया है। वाम जानु में शूल द्वारा चिह्न किया है। उसी पिशाची ने यह भूषण मुझे दिया है। राजा उसका कारण जानकर अपनी पुत्री पद्मावती को घर से निकाल दिया था ।।५५-५७।।

स वज्रमुकुटस्तां तु गृहीत्वा गृहमाययौ।
विहस्य प्राह वैताल: शृणु विक्रमभूपते ।।५८
कस्मै पापं महत्प्राप्तं चतुर्णां मे वदाधुना।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य विक्रमो नाम भूपतिः ।।५९
विहस्य भार्गवं प्राह प्राप्तं पापं हि भूपतेः।
मित्रकार्यममात्येन स्वामिकार्यं च रक्षिभिः ।।६०
भूप पुत्रेणार्थसिद्ध कृतं तस्माच्च भूपतेः।
महत्पापं च संप्राप्तं तेनासौ नरकं गतः ।।६१
रजोवतीं सुतां दृष्ट्वा न विवाहेत यो नरः।
स पापी नरकं याति षष्टिवर्षसहस्रकम् ।।६२
गांधर्वं च विवाहं वै कामिन्या च कृतं यया।
तस्या विघ्नकरो यो वै स पापी यमपीडितः ।।६३
अदृष्ट दोषां यः कन्यां विवेकन विना त्यजेत्।
स पापी नरकं याति लक्षवर्षप्रमाणकम् ।।६४
इति श्रुत्वा स वैतालो धर्मगाथां नृपेरिताम्।
प्रसन्नहृदयं प्राह भूपतिं धर्मतत्परम् ।।६५

उस वज्रमुकुट ने उसे ग्रहण कर लिया और फिर वह अपने घर में आ गया था। वैताल हँसकर बोला—हे विक्रम भूपते! सुनो, और इन चारों में किसको महान् पाप प्राप्त हुआ, यह मुझे अब आप बतलाइये।

सूतजी ने कहा—इस प्रकार का उसका वचन सुनकर हंसकर विक्रम राजा ने भार्गव से कहा—कि पाप राजा को प्राप्त हुआ। अमात्य ने तो मित्र का कार्य किया था, रक्षा करने वालों ने अपने स्वामी का कार्य किया था। राजा के पुत्र ने अपना अर्थ सिद्ध किया था। इसलिये जो महापाप हुआ वह राजा को ही हुआ और वह इस कारण से नरक को गया था ॥५८-६१॥ रजो धर्म वाली अपनी पुत्री को देखकर भी जो मनुष्य उसका विवाह नही करता है वह महान् पापी होता है और साठ हजार वर्ष तक नरक में रहता है ॥६२॥ जिस कामिनी ने गान्धर्व विवाह कर लिया है उसका जो विघ्न करने वाला वह पापी होता है और यम के द्वारा प्रपीड़ित किया जाता है ॥६३॥ जो बिना ही दोषों से देखे हुए विवेक से रहित होकर कन्या का त्याग कर देता है वह पापी मनुष्य नरकगामी होता है और एक वर्ष तक नरक में भोग भोगा करता है ॥६४॥ इस प्रकार से उस वैताल ने नृप के द्वारा कही हुई इस धर्म की गाथा को सुनकर हृदय में परम प्रसन्नता प्राप्त की थी और फिर वह धर्म में तत्पर राजा से बोला ॥६५॥

———

।। मधुमतीवरनिर्णयकथावर्णन ।।

प्रसन्नमनसं भूपं महासिंहासने स्थितम् ।
द्विजवर्यः स वैतालो वचः प्राह प्रसन्नधोः ।।१
एकदा यमुनातीरे धर्मस्थलपुरी शुभा ।
धनधान्यसमायुक्ता चतुर्वर्णसमन्विता ।।२
गुणाधिपो महीपालस्तत्र राज्यं चकार वै ।
हरिशर्मा पुरोधास्तु स्नानपूजनतत्परः ।।३
तस्य पत्नी सुशीला च पतिव्रतपरायणा ।
सत्यशीलः सुतो जातो विद्याध्ययनतत्परः ।।४
तस्यानुजा मधुमती शीलरूपगुणान्विता ।
द्वादशाब्दवयःप्राप्ते विवाहार्थं पिता यदा ।।५
भ्राता बभ्राम तो सर्वं चिनुतश्च सुतावरम् ।
कदाचिद्राजपुत्रस्य विवाहे समतो द्विजः ।। ६
पठनार्थे तु काश्यां वै सत्यशीलः स्वयं गतः ।
एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्विजः कश्चित्समागतः ।।७

इस अध्याय में मधुमती के वर के निर्णय की कथा का वर्णन किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—उस महान् सिंहासन पर स्थित प्रसन्न मन वाले राजा से प्रसन्न बुद्धि वाले द्विजों में श्रेष्ठ उस वैताल ने यह वचन कहा—।।१।। एक बार यमुना नदी के तट पर परम शुभ धर्मस्थल पुरी थी जोकि धन-धान्यादि सबसे पूर्णतया समायुक्त थी और चारों वर्णों के लोग वहाँ निवास किया करते थे। वहाँ पर गुणाधिप महीपाल राज्य-शासन किया करता था। उसका पुरोहित हरिशर्मा नामाधारी था जो सदा स्नान एवं पूजन में तत्पर रहा करता था ।।२-३।। उसकी पत्नी का नाम सुशीला था जो पति व्रत धर्म में परायण रहा करती थी। उसके सत्यशील नामक विद्या के अध्ययन में सदा तत्पर रहने वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था ।।४।। उसकी अनुजा (छोटी बहिन) मधुमती थी जो शील-रूप और अनेक सद्गुणों से युक्त थी। जब उसकी अवस्था

बारह वर्ष की हो गई तो उसके पिता और भाई उसके विवाह करने के लिए भ्रमण करने लगे। वे दोनों ही सुता के वर के लिए चयन करते थे। किसी समय राजपुत्र के विवाह में संगत द्विज सत्य शील पठन के लिये काशी में स्वयं गया था। हे राजन्! इसी अन्तर में कोई द्विज आया था ॥५-७॥

वामनो नाम विख्यातो रूपशीलवयोवृत: ।
सुता मधुमती तं च दृष्ट्वा कामातुराऽभवत् ॥८
भोजनं छादनं पानं स्वप्नं त्यक्त्वा च विह्वला ।
चकोरीव विना चंद्रं कामबाणप्रपीडिता ॥९
दृष्ट्वा सुशीला तं बाला वामनं ब्राह्मणं तथा ।
वारयामास तांबूलैः स्वर्णद्रव्यसमन्वितैः ॥१०
हरिशर्मा प्रयोगे च द्विज दृष्ट्वा त्रिविक्रमम् ।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञं सुतार्थेऽवरयत्तदा ॥११
सत्यशीलस्तु काश्यां वै गुरुपत्रं च केशवम् ।
वरित्वा त भगिन्यर्थे ययौ गेहं मुदान्वितम् ॥१२
माघकृष्णत्रयोदश्यां भृगौ लग्नं शुभस्मृतम् ।
त्रयो विप्रास्तदा प्राप्ता: कन्यार्थं रूपमोहिताः ॥१३
तस्मिन्काले तु सा कन्या भुजगेनैव दंक्षिता ।
मृता प्रेतत्वमापन्ना पूर्वकर्मप्रभावतः ॥१०

यह नाम से वामन विख्यात था तथा रूपशील और अवस्था से युक्त था। मधुमती पुत्री ने इसको देखा और वह कामातुर हो गई। उसने भोजन, पान, छादन, निद्रा सबका त्याग करके अत्यन्त विह्वलता की दशा प्राप्त करली। वह चन्द्र के बिना चकोरी की भाँति कामदेव के के वाणों से प्रपीड़ित हो गई थी ॥८-९॥ सुशीला बाला ने उस वामन नामक ब्राह्मण को देखकर स्वर्ण द्रव्य से समन्वित ताम्बूलों से वरण किया था ॥ १० ॥ हरिशर्मा ने प्रयोग में त्रिविक्र द्विज को देखकर जोकि वेद और वेदाङ्गों के तत्त्वों का ज्ञाता था,

उसी समय अपनी पुत्री के लिये वरण कर लिया था ॥११॥ इधर सत्य-शील भ्राता ने काशी में अपने गुरु के पुत्र केशव को अपनी भगिनी के लिए वरण करके बड़े आनन्द से युक्त होकर वह घर को गया था ॥१२॥ माघ कृष्ण त्रयोदशी भृगुवार का दिन शुभ लगन निश्चित की गई थी। उस समय कन्या के लिए रूप से मोहित होते हुए तीन विप्र प्राप्त हुए थे ॥१३॥ उसी समय में वह कन्या भुजङ्ग के द्वारा दशित हो गई और मरकर वह प्रेतत्व को प्राप्त हो गई थी यह उसके पूर्व कर्म का विधान था जिससे उसकी दशा हुई थी ॥१४॥

तदा ते ब्राह्मणा यत्नं कारयामासुरुत्तमम् ।
न जीवनवती बाला गरलेन विमोहिता ॥१५
हरिशर्मा तु तत्सर्वं कृत्वा वेदविधानतः ।
आययौ मंदिरं राजन्सुतागुणविमोहितः ॥१६
त्रिविक्रमस्तु बहुधा दुःखं कृत्वा स्मरानुगः ।
कंथाधारी यतिर्भूत्वा देशाद्देशांतरं ययौ ॥१७
केशवस्तु महादुःखी प्रियास्थीति गृहीतवान् ।
तीर्थात्तीर्थांतरं प्राप्तः कामबाणेन पीडितः ॥१८
भस्मग्राही वामनस्तु विरहाग्निप्रपीडितः ।
तस्थौ चितायां कामार्तः पत्नीध्यानपरायणः ॥१९
एकदा सरयूतीरे लक्ष्मणाख्यपुरे शुभे ।
त्रिविक्रमस्तु भिक्षार्थे संप्राप्तो द्विजमंदिरे ॥२०
तस्मिन्दिने रामशर्मा शिवध्यानपरायणः ।
यतिनं वरयामास भोजनार्थं स्वमंदिरे ॥२१

उस समय उन ब्राह्मणों ने उत्तम से उत्तम यत्न किया था किन्तु सर्प के विष से विमोहित हो जाने वाली वह जीवनवती नहीं हुई ॥१५॥ हरिशर्मा ने वेद के विधान से यह सब कुछ करके हे राजन् ! सुता के गुणों से विमोहित होकर वह मन्दिर में आ गया था ॥१६॥ जो त्रिविक्रम था वह स्मरानुग होकर अत्यन्त दुःखित हुआ

और कन्थाधारी होकर यति हो गया तथा अन्य देश को वहां से चला गया था ।।१७।। जो सत्यशील के गुरु का पुत्र केशव था वह महान् दुःखित हुआ और प्रिया की अस्थियों को ग्रहण कर लिया था। वह कामदेव के बाणों से पीड़ित होकर तीर्थ से दूसरे तीर्थों में प्राप्त हुआ था ।।१८।। वामन नामक जो प्रिय था उसको विरह की अग्नि की महा पीड़ा हुई थी। और उसकी भस्म को ग्रहण कर लिया था। वह वहीं पर कामार्त हो कर पत्नी के ध्यान में परायण रहकर चिन्ता में स्थित हो गया था। ।।१९।। एक समय में सरयू नदी के तट पर लक्ष्मण नाम वाले शुभ नगर में त्रिविक्रम भिक्षा के लिए द्विज मन्दिर में प्राप्त हुआ था ।।२०।। उसी दिन शिव के ध्यान में परायण रहने वाले रामशर्मा ने अपने मन्दिर में भोजन करने के लिए यती का वरण किया था ।।२१।।

तस्य पत्नी विशालाक्षी रचित्वा बहुभोजनम् ।
आहूय यतिनं राजन्पात्रमालभमाकरोत् ।।२२
तस्मिन्काले च तद्बालो मृतः पापवशं गतः ।
अरोदीत्तस्य सैरंध्री विशालाक्ष्यपि भर्त्सिता ।।२३
न रोदनं त्यक्तवती पुत्रशोकाग्नितापिता ।
रामशर्म तदा प्राप्तो मंत्रं सजीवनं शुभम् ।।२४
जपित्वा मार्जनं कृत्वा जीवयामास बालकम् ।
विनयावनतो विप्रस्तं च संन्यासिनं तदा ।।२५
भोजनं कारयित्वा तु मंत्रं सजीवनं ददौ ।
त्रिविक्रमस्तु तं मन्त्रं पठित्वा यमुनातटे ।।२६
प्राप्तावान्यत्र सा नारी दाहिता हरिशर्मणा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र राजपुत्रो मृतिं गतः ।।२७
दाहितस्तनयः पित्रा शोककर्त्रा तदामुना ।
जीवनं प्राप्तवान्बालस्तस्य मन्त्रप्रभावतः ।।२८

उसकी पत्नी विशालाक्षी ने बहुत प्रकार के उत्तम भोजन तैयार किए थे। हे राजन्! यति को आह्वान करने पात्र को आलभ किया ।।२२।। उसी समय में उसका बालक पाप के वंशगत होकर मर गया

था। उसकी सैरन्ध्री ने रुदन किया यद्यपि वह विशालाक्षी के द्वारा डाँट भी दी गई थी ॥२३॥ वह पुत्र के शोक की अग्नि से तप्त होकर अत्यन्त दुःखित हुई और उसने रुदन करना बन्द नहीं किया था। उस समय रामशर्मा आ गया और उसने संजीवन मन्त्र का जप करके उसका मार्जन किया और बालक को जीवित कर दिया था। तब विनय से युक्त ब्राह्मण ने उस सन्यासी को भोजन कराकर संजीवन मन्त्र उसको दे दिया था। त्रिविक्रम ने यमुना के तट पर उस मन्त्र का जाप किया और वह वहाँ पहुँचा जहां वह नारी हरिशर्मा के द्वारा दाहित हुई थी। इसी बीच में यहाँ पर राजा का पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया था ॥२४-२७॥ शोक के करने वाले पिता ने अपने पुत्र का दाह किया और उस समय इसके द्वारा मन्त्र के प्रभाव से उसके बालक ने जीवन प्राप्त कर लिया था ॥२८॥

गुणाधिपस्य तनयो राज्ञो धर्मस्थलीपतेः।
त्रिविक्रमं वचः प्राह वीरबाहुर्महाबलः ॥२९
जीवनं दत्तवान्मह्यं वरयाद्य वरं मम।
स विप्रः प्राह भो राजन्केशवो नाम यो द्विजः ॥३०
गृहीत्वास्थि गतस्तीर्थं तमन्वेषय मा चिरम्।
वीरबाहुस्तथा मत्वा दूतमार्गेण तं प्रति ॥३१
प्राप्तस्तं कथयामास कथा प्राप्तं हि जीवनम्।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवोऽस्थिसमन्वितः ॥३२
प्रगत्यास्थीनि सर्वाणि ददौ तस्मै द्विजातये।
पुनः सजीविता बाला केशवादीन्वचोऽब्रवीत् ॥३३
योग्या धर्मेण यस्याहं तस्मै प्रायामि धर्मिणे।
इति श्रुत्वा वचस्तस्या मौनवंतस्त्रय स्थिताः ॥३४

धर्मस्थली के स्वामी राजा गुणाधिप का पुत्र त्रिविक्रम से बोला—वीर वाहु महाबल ने मुझे जीवन दान दिया था। अतः राजा मुझसे वरदान माँग लो। उस ब्राह्मण ने कहा—हे राजन्! केशव नामधारी एक ब्राह्मण है। वह अस्थियों को लेकर तीर्थों में चला गया है उसकी खोज

करादो इसमें बिलम्ब मत करना। वीर बाहु ने इसे मानकर दूतों के मार्ग से उसके पास प्राप्त हो गया और उसने सब वृतान्त कहा जिस तरह जीवन प्राप्त किया था। यह उसका वचन सुनकर केशव जोकि अस्थियों के सहित था वहां आकर समस्त अस्थियाँ उस ब्राह्मण को उसने दे दी थीं। इनसे वह वह बोला पुनः जीवित करदी गई और वह केशव आदि सबसे बोली—॥२६-३३॥ मैं धर्म से जिसके भी योग्य हूँ उसी धर्म वाले को प्राप्त होऊंगी। यह सुनकर वे तीनों ही मौन वाले स्थित हो गये थे ॥३४॥

अतस्त्वं विक्रमादित्य धर्मज्ञ कथयस्व मे।
कस्मै योग्या च सा बाला नाम्ना मधुमती शुभा ॥३५
विहस्य विक्रमादित्यो वैतालं प्राह नम्रधीः।
योग्या मधुमती नारी वामनाय द्विजन्मने ॥३६
प्राणदाता तु यो विप्रः पितेव गुणतत्परः।
अस्थिदाता तु यो विप्रो भ्रातृतुल्यस्य वेदवित् ॥३७

हे धर्म के ज्ञाता ! हे विक्रमादित्य ! अब आप मुझे यह बताइये कि वह बाला किसके लिए योग्य होती है जोकि नाम से मधुमती शुभा कन्या थी ॥३५॥ सूतजी ने कहा—राजा विक्रमादित्य हँसकर नम्र बुद्धि वाला होकर वैताल से बोला—मधुमती जो कन्या थी वह द्विज वामन के लिये ही योग्य थी। जो विप्र प्राणों का दाता होता है वह तो गुण में तत्पर पिता के समान होता है। जो अस्थियों के प्रदान करने वाला है वह वेद-विद्-विप्र, भ्राता के समान होता है ॥३६-३७॥

———

।। सत्यनारायणकथावर्णन ।।

एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः ।
पृच्छन्ति विनयेनैव सूतं पौराणिकं खलु ।।१
भगवन्ब्रूहि लोकानां हितार्थाय चतुर्युगे ।
कः पूज्यः सेवियव्यश्च वांच्छितार्थ प्रदायकः ।।२
विनायासेन वै कामं प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ।
सत्य ब्रह्मन्वदोपायं नरणा कीर्तिकारकम् ।।३
नवांभोजनेत्रं रमाकेलिपात्रं चतुर्बाहुचामी-
कराचारुगात्रम् । जगत्राणहेतुं रिपौ धूम्रकेतुं
सदा सत्यनारायणं स्तौमि देवम् ।।४
श्रीरामं सहलक्ष्मणं सकरुणं सीतान्वितं
सात्त्विकं वंदेहीमुखपद्मलुब्धमधुपं पौलस्त्य-
संहारकम् । वन्दे वन्द्यपदाम्बुजं सुरवरं भक्ता-
नुकम्पाकरं शत्रुघ्नेन हनूमता च
भरतेनासेवितं राघवम् ।।५
कलिकलुषविनाशं कामसिद्धिप्रकाशं सुरवर-
मुखभासं भूसुरेण प्रकाशम् । विबुधबुधविलासं
साधुचर्याविशेषं नृप तिवरचरित्रं भोः शृणुष्वेतिहासम् ।।६

इस अध्याय में सत्य नारायण की कथा का वर्णन और उसमें नारायण के द्वारा नारद जी के लिए सत्य नारायण के व्रत की विधि का वर्णन किया जाता है । श्री व्यास देव ने कहा—एक समय नैमिषारण्य में शौनक से आदि लेकर ऋषियों ने बड़े ही विनय के साथ पौराणिक सूत जी से पूछा था ।।१।। हे भगवन् ! चतुर्युग में लोकों के हित सम्पादन करने के लिए पूजा के योग्य है और कौन सेवा के योग्य है जो मनोवाच्छित अर्थ के प्रदान करने वाला हो ।। २ ।। मानव विना ही किसी विशेष परिश्रम के अपनी शुभ कामना

की प्राप्ति कर लेवे । हे ब्रह्मन् ! नरों की कीर्ति का करने वाला कोई सत्य उपाय बतलाइये ॥३॥ सूत जी ने कहा—नवीन कमल के सदृश नेत्रों वाले, रमा की केलि के पात्र, चार बाहु वाले तथा सुवर्ण के तुल्य सुन्दर शरीर वाले, इस जगत् की रक्षा के कारण स्वरूप और शत्रु के लिए धूम्रकेतु सत्य नारायण देव को मैं सदा स्तुति करता हूं ॥४॥ लक्ष्मण के साथ विद्यमान, दया से परिपूर्ण, सीता के सहित विराजमान, परम सात्त्विक, वैदेही के मुख रूपी पद्म के लोभी भ्रमर के समान स्थित, पुलस्त्य के नाती रावण का संहार करने वाले वन्दना के करने योग्य चरण कमल वाले, देवों में श्रेष्ठ भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने वाले शत्रुघ्न, भरत और हनुमान के द्वारा सेवित राघवेन्द्र श्रीराम की मैं वन्दना करता हूँ ॥५॥ कलियुग के कलुष के विनाश करने वाले, कामनाओं की सिद्धि के प्रकाश रूप, सुरवर मुख भास और भूसुर के द्वारा प्रकाश युक्त, देव और विद्वानों के विलास स्वरूप, साधु चर्या विशेष नृपति श्रेष्ठ के चरित्र का इतिहास श्रवण करो ॥६॥

इतिहासं तथा राज्ञो भिल्लानां वणिजोऽस्य च ।
कथांते प्रणमेद्भक्त्या प्रसादं विभजेत्ततः ॥७
लब्धं प्रसादं भुंजीत मानयन्न विचारयेत् ।
द्रव्यादिभिर्न मे शांतिर्भक्त्या केवलया यथा ॥८
विधीनानेन विप्रेन्द्र पूजयंति च ये नराः ।
पुत्रपौत्रधनैर्युक्ता भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ॥९
अन्ते सान्निध्यमासाद्य मोदन्ती ते मया सह ।
यंयं कामयते कामं सुव्रती तंतमाप्नुयात् ॥१०
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्विप्रोपि सुखमाप्तवान् ।
प्रणम्यागाद्यथादिष्टं मनसा कौतुकाकुलः ॥११
अद्य भैक्ष्येण लभ्येन पूज्यो नारायणो मया ।
इति निश्चित्य मनसा भिक्षार्थी नगरं गतः ॥१२

विना देहीति वचनं लब्ध्वा च विपुलं धनम् ।
कौतुकायाससमनसा जगाम निजमालयम् ॥१३

तथा राजा का, भीलों का और वणिक् का इतिहास श्रवण करो । कथा के अन्त में भक्ति भाव के साथ प्रणाम करना चाहिए और प्रसाद का वितरण करना चाहिए ॥७॥ जो प्रसाद प्राप्त हुआ है उसे खा लेना चाहिए इसमें किसी प्रकार का मान नहीं करे और न कोई विचार ही करना चाहिए । द्रव्यादि से मेरी शान्ति नहीं होती है जैसी कि एक मात्र भक्ति के भाव से हुआ करती है ॥८॥ हे विप्रेन्द्र ! जो मानव इस विधि-विधान से पूजन किया करते हैं वे पुत्र-पौत्र और धन सम्पत्ति से युक्त हो जाते हैं । वे परम उत्तम सांसारिक भोगों का उपभोग करके अन्त में मेरे सान्निध्य की प्राप्ति कर मेरे साथ ही आनन्द किया करते हैं । सुव्रती दिल में जिस-जिस कामना को करता है वह उस-उस को ही निश्चय प्राप्त कर लिया करता है ॥९-१०॥ इतना कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये थे और विप्र ने भी सुख की प्राप्ति की थी । वह प्रणाम करके यथादिष्ट स्थान को मन से कौतुकाकुल होता हुआ चला गया ॥११॥ उस दिन उसने मन से निश्चय किया कि आज जो भी भिक्षा में प्राप्त होगा उस द्रव्य से मैं भगवान नारायण का पूजनार्चन करूँगा । इतना मन में विचार करके भिक्षा करने के लिए वह नगर में चला गया था ॥१२॥ कुछ मुझे दो, इस वचन के बिना कहे हुए ही भगवान् की कृपा से उस दिन उसे भिक्षा में बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ । कौतुक से आयास युक्त मन से वह अपने घर को चला गया था ॥१३॥

वृत्तांतं सर्वमाचख्यौ ब्राह्मणी सान्वमोदत ।
सादरं द्रव्यसंभारमाहृत्य भर्तुराज्ञया ॥१४
आहूय बन्धूमित्राणि तथा सान्निध्यवर्तिनः ।
सत्यनारायणं देवं यजामि स्वगणैर्वृतः ॥१५
भक्त्या तुतोष भगवान्सत्यनारायणः स्वयम् ।
कामं दित्सुः प्रादुरासीत्कथांते भक्तवत्सलः ॥१६

वव्रे विप्रोऽभिलषितमिहामुत्र सुखप्रदम् ।
भक्ति परां भगवति तथा तत्संगिनां व्रतम् ॥१७
रणं कुञ्जरं मंजुलं मन्दिरं च
हयं चारु चामी करालं कृतं च ।
धनं दासदासीगणं गां महीं च
लुलायाः सदुग्धा हरे देहि दास्यम् ॥१८
तथास्त्विति हरिः प्राह ततश्चांतर्दधे प्रभुः ।
विप्रोऽपिकृत कृत्योऽभूत्सर्वे लोका विसिस्मिरे ॥१९
प्रणम्यं भुवि कायेन प्रसादं प्रापुरादरात् ।
स्वंस्वं धाम समाजग्मुर्धन्यधन्येति वादनः ॥२०
प्रचचार ततो लोके सत्यनारायणार्चनम् ।
कामसिद्धिप्रदं मुक्तिभुक्तिदं कलुषापहम् ॥२१

उसने अपने घर में जाकर समस्त वृत्तान्त कहा और उसकी पत्नी ब्राह्मणी ने भी उसका प्रसन्नता से अनुमोदन किया था। बड़े आदर के साथ स्वामी की आज्ञा से द्रव्य संभारों का लाकर एकत्रित किया था ॥१४॥ फिर जो भी अपने बन्धु और मित्र थे तथा समीप में रहने वाले थे उन सबको बुला कर कहा कि मैं अपने समस्त गणों के साथ आज भगवान सत्य नारायण देव का यजन करता हूँ ॥१५॥ इस प्रकार के भक्ति-भाव से भगवान सत्यनारायण स्वयं बहुत तुष्ट हुए। कामनाओं के देने की इच्छा रखने वाले भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान कथा की समाप्ति होने पर प्रकट हुए थे। ब्राह्मण ने इस लोक और परलोक में जो सुखप्रद अभिलषित था उसे माँग लिया था। भगवान पराभक्ति, सत्सङ्गियों का व्रत, रथ, हाथी, सुन्दर मन्दिर, अश्व, सुन्दर सुवर्ण के अलंकार, धन, दासीगण, भूमि, गौ जो दूध देने वाली है, हे हरे इन सबको प्रदान कर अपना दास्य भी मुझे दीजिये ॥१६-१८॥ विप्र को इस याचना के करने पर भगवान् ने कहा ऐसा ही होगा।

यह कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये थे। वह ब्राह्मण भी कृतकृत्य हो गया और समस्त लोक विस्मय करने लगे ॥१६॥ सबने शरीर से भूमि पर प्रणाम किया और बड़े ही आदर के साथ प्रसाद प्राप्त किया था। धन्य-धन्य यह कहते हुए सब अपने-अपने गृहों को चले गये थे । २०॥ इसके पश्चात् लोक में भगवान् सत्य नारायण देवकी अर्चना का प्रचार हुआ था कि यह यजन कामनाओं की सिद्धि को प्रदान करने वाला, भोग और मोक्ष के देने वाला तथा समस्त पापों के अपहरण करने वाला है ॥२१॥

॥ सत्यनारायणव्रते चंद्रचूडनृपकथावर्णनम् ॥

राजासीद्धार्मिकः कश्चित्केदारमणिपूरके ।
चन्द्रचूड इतिख्यातः प्रजापालनतत्परः ॥१
शांतो मधुरवाग्धीरो नारायणपरायणः ।
बभूवुः शत्रवस्तस्य म्लेच्छा विंध्यनिवासिनः ॥२
तस्य तैरवभवद्युद्धम तिप्रबलादारुणैः ।
भुशुंडी युद्धनिपुणैः क्षेपणैः परिघायुधैः ॥३
चन्द्रचूड़स्य महती सेना यमपुरे गता ।
शतं रथास्तथा नागा सहस्रं तु हयास्तथा ॥४
पत्तयः पंचसाहस्रा मृताः स्वर्गपुरं ययुः ।
दस्यवः पंचसाहस्रा मृताः कैतवयोधिनः ॥५
आक्रांतः स महाभागस्तैर्म्लेच्छदंभयाधिभिः ।
त्यक्त्वा राष्ट्रं च नगरं सैकाकी वनमाययौ ॥६
तीर्थव्याजेन स नृपः पुरीं काशीं समागतः ।
तत्र नारायणं देवं वंद्यं सर्वगृहेगृहे ॥७

इस अध्याय में सत्य नारायण व्रत में चन्द्र चूड नृप की कथा का वर्णन किया जाता है। सूत जी ने कहा—केदार मणि पूरक में कोई

परम धार्मिक राजा था जो प्रजा के पालन करने में सदा तत्पर रहा करता था और चन्द्र चूड़ इस नाम से प्रसिद्ध था ।।१।। वह राजा अत्यन्त शान्त स्वभाव वाला, मधुर वाणी बोलने वाला और नारायण में ही परायण रहने वाला था । उसके विन्ध्याचल में निवास करने वाले म्लेच्छ शत्रु हो गये थे ।।२।। अत्यन्त प्रबल और दारुण उनके साथ उसका युद्ध हुआ था । वे भुशुण्डी के द्वारा युद्ध करने अत्यन्त निपुण थे तथा क्षेपण और परिघों से उन्होंने राजा चन्द्रचूड़ की बहुत बड़ी सेना को यमपुर भेज दिया था । शत, रथ, नाग और अश्व एक सहस्र एवं पाँच सहस्र पदाति (पैदल सैनिक) उस युद्ध में मरकर स्वर्गपुर को चले गये थे । दस्यु लोग पाँच सहस्र थे जो कैतव से युद्ध करने वाले उस युद्ध में मर गये थे ।।३-५।। वह महाभाग राजा चन्द्रचूड दम्भ से युद्ध करने म्लेच्छों ने आक्रान्त कर लिया और वह अपना राष्ट्र तथा नगर त्याग कर अकेला ही वन में चला गया था ।।६।। तीर्थाटन के बहाने से वह राजा काशीपुरी में आ गया था । वहाँ पर भगवान् नारायण देव को घर-घर में वन्दनीय होते उसने देखा था ।।७।।

ददर्श नगरीं चैव धनधान्यसमन्विताम् ।
यथा द्वारावती ज्ञेया तथा सा च पुरी शुभा ।।८
विस्मितश्चंद्रचूडश्च दृष्ट्वाश्चर्यमनुत्तमम् ।
सत्येन रोधितां लक्ष्मीं शीलधर्मसमन्विताम् ।।९
दृष्ट्वा श्रुत्वा सदानंदं सत्यदेवप्रपूजकम् ।
पतित्वा तच्चरणयोः प्रणनाम मुदा युतः ।।१०
द्विजराज नमस्तुभ्यं सदानंद महामते ।
भ्रष्टराज्यं च मां ज्ञात्वा कृपया मां समुद्धर ।।११
यथा प्रसन्नो भगवाँल्लक्ष्मीकान्तो जनार्दनः ।
तथा तद्वद यद्योग्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ।।१२
दुःखशोकादिशमनं धनधान्यप्रवर्धनम् ।
सौभाग्यसंततिकरं सर्वत्र विजयप्रदम् ।।१३

सत्यनारायणव्रतं श्रीपतेस्तुष्टिकारकम् ।
यस्मिन्कस्मिन्दिने भूप यजेच्चैव निशामुखे ॥१४

वहाँ धन-धान्य से पूर्णतया समन्वित उस नगरी को भी देखा था । जिस तरह द्वारावती नगरी है उसी तरह की वह परम शुभ नगरी थी ॥८॥ चन्द्रचूड़ इस परमोत्तम आश्चर्य को देखकर विस्मित हो गया था । सत्य के द्वारा अवरुद्ध की हुई शीलधर्म से युक्त लक्ष्मी को देखकर और सदा आनन्द स्वरूप सत्यदेव के प्रपूजक को सुनकर वह उसके चरणों में गिर गया और बहुत ही आनन्द मग्न होते हुए उसको प्रणाम किया था ॥९-१०॥ हे द्विजराज ! हे महामते ! हे सदानन्द ! आपको मेरा नमस्कार है । मैं अपने राज्य से भ्रष्ट हो चुका हूँ आप ऐसा समझकर कृपा पूर्वक मेरा उद्धार कीजिये ॥११॥ जिस प्रकार से भगवान् लक्ष्मी कान्त जनार्दन प्रसन्न हो जावें ऐसा कोई पापों के नाश करने वाला योग्य व्रत मुझे बतलाइये ॥१२॥ सदानन्द ने कहा—दुःख और शोक आदि के शमन करने वाला तथा धन-धान्य के बढ़ाने वाला एव सौभाग्य और सन्तति के करने वाला और सर्वत्र विजय देने वाला भगवान् सत्य नारायण देव का व्रत है जो कि श्रीपति की तुष्टि करने वाला है । हे नृप ! चाहे जिस किसी दिन में निशा के आरम्भ में उनका यजन करना चाहिए ॥१३-१४॥

तोरणादि प्रकर्तव्यं कदलीस्तंभमंडितम् ।
पंचभिः कलशैर्युक्तं ध्वजपंचसमन्वितम् ॥१५
तन्मध्ये वेदिकां रम्यां कारयेत्स व्रती द्विजैः ।
तत्र स्थाप्य शिलारूपं कृष्णं स्वर्णसमन्वितम् ॥१६
कुर्याद्गंधादिभिः पूजां प्रेमभक्तिसमन्वितः ।
भूमिशायी हरिं ध्यायन्सप्तरात्रं व्यतीतयेत् ॥१७
इति श्रुत्वा स नृपतिः काश्यां देवमपूजयत् ।
रात्रौ प्रसन्नो भगवान्ददौ राज्ञेऽसिमुत्तमम् ॥१८
शत्रुपक्षक्षयकरं प्राप्य खड्गं नृपोत्तमः ।
प्रणम्य च सदानन्दं केदारमणिमाययौ ॥१९

हत्वा दस्युन्षष्टिशतांस्तेषां लब्ध्वा महद्धनम् ।
हरिं प्रपूजयामास नर्मदायास्तटे शुभे ॥२०
पौर्णमास्यां विधानेन मासिमासि नृपोत्तमः ।
अपूजयत्सत्यदेवं प्रेमभक्तिसमन्वितः ॥२१
तद्व्रतस्य प्रभावेन लक्षग्रामाधिपोऽभवत् ।
राज्यं कृत्वा स षष्ट्यब्दमन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥२२

उस दिन तोरण आदि बनाने चाहिए और कदली के स्तम्भों से मण्डप को मण्डित करे। पाँच कलशों से उसे बनावे अर्थात पाँच कलश वहाँ स्थापित करे। पाँच ध्वजाऐं भी वहाँ आरोपित करनी चाहिए ॥१५॥ उस व्रती को द्विजों के द्वारा उस मण्डप के मध्य भाग में अति रम्य वेदिका बनवानी चाहिए वहाँ पर स्वर्ग से समन्वित शिला रूप कृष्ण को स्थापना करे और प्रेम तथा भक्ति के भाव से युक्त होकर गन्धाक्षत पुष्पादि उपचारों से उसकी पूजा करनी चाहिए। भूमि में शयन करने वाला होकर उनका ही ध्यान करते हुए सात रात्रि वहाँ व्यतीत करनी चाहिए ॥१६-१७॥ यह श्रवण करके उस राजा ने काशी में देव की पूजा की थी। रात्रि में प्रसन्न होकर भगवान् ने उस राजा के लिए एक अत्युत्तम तलवार दी थी। तब तो नृपश्रेष्ठ शत्रु के पक्ष का क्षय करने वाला खड्ग प्राप्तकर सदानन्द को प्रणाम करके केदार मणि को चला गया था ॥१८-१९॥ साठसौ दस्युओं को मारकर और उनका बहुतसा धन लेकर उसने हरि का पूजन किया था जो कि नर्मदा नदी के शुभ तट पर किया गया था ॥२०॥ प्रत्येक मास की पूर्णिमा में विधि विधान के साथ वह नृपोत्तम प्रेमभक्ति के भाव से युक्त होकर भगवान् सत्यदेव की पूजा किया करता था ॥२१॥ उस सत्यदेव के व्रत के प्रभाव से वह तो फिर एक लाख ग्रामों का स्वामी बन गया था। इस तरह परम आनन्द के साथ उसने साठ वर्ष पर्यन्त वहाँ राज्य का शासन किया था और अन्त में वह विष्णु पुर को चला गया ॥२२॥

॥ सत्यनारायणव्रते भिल्लकथावर्णनम् ॥

अथेतिहासं शृणुत यथा भिल्लाः कृतार्थिनः ।
विचरंतो वने नित्यं निषादाः काष्ठवाहिनः ॥१

वनात्काष्ठानि विक्रेतुं पुरीं काशीं ययुः क्वचित् ।
एकस्तृषाकुलो यातो विष्णुदासाश्रमं तदा ॥२

ददर्श विपुलैश्वर्यं सेवितं च द्विजैर्हरिम् ।
जलं पीत्वा विस्मतोऽभूद्भिक्षुकस्य कुतो धनम् ॥३

यो दृष्टो किंचनो विप्रो दृश्यतेऽद्य महाधनः ।
इति संचिंत्य हृदये स पप्रच्छ द्विजोत्तमम् ॥४

ऐश्वर्यं ते कुतो ब्रह्मन्दुर्गतिस्ते कुतो गता ।
आज्ञापय महाभाग श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥५

सत्यनारायणस्यांग सेवया किं न लभ्यते ।
न किंचित्सुखमाप्नोति विनतस्यानुकंपया ॥६

अहो किमिति माहात्म्यं सत्यनारायणार्चने ।
विधानं सोपचारं च ह्युपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥७

इस अध्याय में सत्य नारायण व्रत में भिल्ल की कथा का वर्णन किया जाता है । सूत जी ने कहा—इसके अन्तर अब तुम एक इतिहास का श्रवण करो जिसमें कि भिल्लवन में नित्य विचरण करते हुए काष्ठ के वहन करने वाले निषाद कृतार्थ हुए थे ॥१॥ किसी समय में वन से काष्ठों को बेचने के लिए ये काशीपुरी में गये थे । इनमें एक प्यास से बेचैन होकर एक विष्णु दास के आश्रम में उस समय चला गया था ॥२॥ वहाँ उसने विपुल ऐश्वर्य और ब्राह्मणों के द्वारा सेवित हरि का दर्शन किया था । इसने जल पीया और फिर यह अत्यन्त विस्मित हुआ क्योंकि विचारे भिक्षुक के यहाँ इतना धन कहाँ से आ गया है ॥३॥ जो ब्राह्मण बिल्कुल

गरीब पहिले देखा था वही आज बहुत धनवान दिखलाई दे रहा है। यह मन में सोचकर उसने द्विजोत्तम से पूछा—तुमको यह इतना ऐश्वर्य कहाँ से और कैसे प्राप्त हो गया है ? पहिले तो तुम बहुत गरीबी में थे। अब गरीबी कहाँ चली गई और कैसे दुर्गति समाप्त हो गई है ? हे महाभाग ! मुझे आप खुलासा बतलाइये। मैं तत्त्व पूर्वक इसे सुनना चाहता हूँ ।।४-५।। सदानन्द ने कहा—हे अङ्ग ! भगवान् सत्य नारायण देव की सेवा से इस संसार में क्या नहीं प्राप्त किया जाता है। उसकी कृपा के बिना तो प्राणी कुछ भी सुख-समृद्धि प्राप्त नहीं किया करता है ।।६।। निषाद ने कहा—अहो ! यह बताइये कि सत्य नारायण की पूजा में क्या माहात्म्य है ? उसका उपचारों के सहित पूर्ण विधान आप मुझे बताने के लिये योग्य होते हैं ।।७।।

साधूनां समचित्तानामुपकारवतां सताम् ।
न गोप्यं विद्यते किंचिदार्तानामार्तिनाशनम् ।।८
इति पृष्टो विधिं वक्तुमितिहासमथाब्रवीत् ।
चन्द्रचूडो महीपालः केदारमणिपूरके ।।९
ममाश्रमं समायातः सत्यनारायणार्चने ।
विधानं श्रोतुकामोऽसौ मामाह सादरं वचः ।।१०
मया तत्कथितं तस्मै तन्निबोध निषादज ।
संकल्प्य मनसा कामं निष्कामो वा जनः क्वचित् ।।११
गोधूमचूर्णं पादार्धं सेट काद्यैः सुचूर्णकम् ।
सस्कृतं मधुगंधाज्यनैंवेद्य विभवेऽर्पयेत् ।।१२
पचामृतेन सस्नाप्य चन्दनाद्यैश्च पूजयेत् ।
पायसापूपसंयावदधिक्षीरमथो हरेत् ।।१३
उच्चावचः फलैः पुष्पैर्धूपदीपैर्मनोरमैः ।
पूजयेत्परया भक्त्या विभवे सति विस्तरैः ।।१४

जो परम साधु वृत्ति वाले और सम चित्त वाले महापुरुष होते हैं तथा परोपकार करने वाले सत्य पुरुष हैं उनको कुछ भी गोप्य रखने को

वस्तु नहीं होती है जोकि दुखियों के दुःख दूर करने वाली वस्तु है उसे वे कभी छिपाकर नहीं रखते हैं ।।८।। इस प्रकार से पूछा गया वह विधि और इतिहास कहने लगा । केदार मणि पूरक में महीपाल चन्द्रचूड़ श्री सत्यनारायण देव की पूजा के समय में मेरे आश्रम आया था । इसके विधान के श्रवण करने की कामना वाले उसने आदर के साथ मुझसे वचन बोले ।।९-१०।। हे निषाद पुत्र ! मैंने उससे जो कहा था वह तू भी समझ ले । मन से कुछ कामना का सङ्कल्प करके अथवा निष्काम भाव से मनुष्य किसी भी समय में पादार्थ गेहूँ का चून को सेट काद्य से सुचूर्ण को संस्कार युक्त मधु और गन्ध तथा घृत से करके नैवेद्य बनावे और विभु भगवान् सत्य देव के लिए समर्पित करे ।।११-१२।। पञ्चामृत से उनका स्नान कराकर चन्दन आदि से पूजा करनी चाहिए । पायस, पूआ, संयाव, दधि और क्षीर आदि का हरण करे ।।१३।। छोटे-बड़े फल, पुष्प, धूप, प्रदीप आदि मनोरम पूजनोपचारों से जैसा भी वैभव हो उसके अनुसार विस्तार करके परम भक्ति से सत्य नारायण देव की पूजा करनी चाहिए ।।१४।।

न तुष्येद्रव्यसंभारैर्भक्त्या केवलयायथा ।
भगवान्परितः पूर्णो न मानं वृणुयात्क्वचित् ।।१५
दुर्योधनकृतां त्यक्त्वा राजपूजां जनार्दनः ।
विदुरस्याश्रमे वासमातिथ्यं जगृहेविभुः ।। १६
सुदाम्नस्तंडुलकणाञ्जग्ध्वा मानुष्यदुलभा ।
सपदोऽदाद्धरिः प्रीत्या भक्तिमात्रमपेक्ष्यते ।।१७
गोपो गृध्रो वणिग्व्याधो हनुमान्सविभीषणः ।
येऽन्ये पापात्मका दैत्या वृत्रकायाधवादयः ।।१८
नारायणान्तिकं प्राप्य मोदंतेऽद्यापि यद्वशाः ।
इति श्रुत्वा नरपतिः पूजासंभारमादरात् ।। १९
कृतवान्स धनं लब्ध्वा मोदते नर्मदातटे ।
निषाद त्वमपि प्रीत्या सत्यनारायणं भज ।।२०

इह लोके सुखं प्राप्य चान्ते सन्निध्यमाप्नुयाः ।
कृतकृत्यो निषादोऽभूत्प्रणम्य द्विजपुंगवम् ॥२१

द्रव्य के अधिक सम्भारों से वे उतने संतुष्ट नहीं होते हैं जैसे कि केवल भक्ति के भाव से तुष्ट हुआ करते हैं। भगवान् तो सब प्रकार से पूर्ण हैं उनसे कभी भी मान का वरण नहीं करे ।१५।। भगवान जनार्दन ने दुर्योधन की राजपूजा का त्याग कर दिया था और विदुर के आश्रम जाकर प्रेम भाव से आतिथ्य को स्वीकार किया था ।।१६।। सुदामा ब्राह्मण चावलों की कनीयों को खाकर मनुष्यों को परम दुर्लभ सम्पत्ति हरि ने प्रीति से उसको दे दी थी वहाँ तो केवल भक्ति की ही अपेक्षा की जाती है ।।१७।। गोप, गृध्र, वणिक, व्याध, हनुमान, विभीषण और जो अन्य पापात्मक वृत्र कायाधवादि दैत्य थे वे सब भगवान् नारायण की सन्निधि को प्राप्त करके यद्वश आज तक भी आनन्द प्राप्त करते हैं। यह सुनकर नरपति ने पूजा के सम्भार को बड़े आदर से किया था और धन का लाभ करके नर्मदा के तट पर सुख प्राप्त कर रहा है । हे निषाद ! तुम भी प्रीति से नारायण सत्यदेव की सेवा करो ।।१८-२०।। इस लोक में सुख प्राप्त करके अन्त में भगवान् के सन्निध्य को प्राप्त हुआ था। इस तरह से निषाद कृत कृत्य हुआ और उसने द्विज पुङ्गव को प्रणाम किया था ।।२१।।

एकदा नारदो योगी परानुग्रहवांच्छया ।
पर्यटन्विविधाँल्लोकान्मर्त्यलोकमुपागमत् ।।२२

तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्नानाक्लेशसमन्वितान् ।
आधिव्याधियुतानार्तान्पच्यमानान्स्वकर्मभिः ॥२३

केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेद्ध्रुवम् ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ।।२४

तत्र नारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम् ।
शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥२५
प्रसन्नवदनं शांतं सनकाद्यैरभिष्टुतम् ।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥२६
नमो वाङ्मनसातीतरूपायानंतशक्तये ।
नादि मध्यान्तदेवाय निर्गुणाय महात्मने ॥२७
सर्वेषामादिभूताय लोकानामुपकारिणे ।
अपारपरिमाणाय तपोधाम्ने नमोनमः ॥२८

एक बार देवर्षि योगिराज भगवान् नारदजो दूसरों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अनेक लोकों का पर्यटन करते हुए इस मनुष्य लोक में आये थे ॥२२॥ वहाँ मनुष्य लोक में समस्त मनुष्यों को अनेक प्रकार के क्लेशों से युक्त देखा था जोकि आधि और व्याधियों से पीड़ित थे, परम दुःखी और अपने कर्मों से पच्यमान हो रहे थे ऐसे प्राणियों को देखा था। उन्होंने मन में विचार किया कि कौन सा ऐसा उपाय है जिससे इनके दुःखों का सर्वनाश हो। यही मन में सोचकर तब वे विष्णुलोक में गये थे ॥२३-२४॥ वहां पर उन ने शुक्ल वर्ण से युक्त चार भुजाओं वाले तथा शंख, चक्र, गदा और पद्म आयुधों से सुशोभित एवं वनमाला धारण करने वाले प्रसन्न मुख तथा शान्त स्वरूप और सनकादि के द्वारा अभिष्टुत देवों के भी देव भगवान् नारायण का दर्शन किया और उनकी स्तुति करने लगे ॥२५-२६॥ नारदजी ने कहा—वाणी, मन से अतीत रूप वाले, अनन्त शक्ति से परिपूर्ण आदि, मध्य और अन्त से रहित निर्गुण महान् आत्मा वाले आपके लिए नमस्कार है सबके आदिभूत और लोकों के उपकार करने वाले अपार परिमाण वाले तप के धाम आपके लिए मेरा बार-बार नमस्कार है ॥२७-२८॥

इति श्रुत्वा स्तुतिं विष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत ।
किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्तते ॥२९
कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ।
श्रुत्वा तु नारदो विष्णुमुक्तवान्सर्वकारणम् ॥३०

नारदस्य वचः श्रुत्वा साधुसाध्वित्यपूजयत् ।
शृणु नारद वक्ष्यामि व्रतमेकं सनातनम् ।।
कृते त्रेतायुगे विष्णुर्द्वापरेऽनेकरूपधृक् ।
कलौ प्रत्यक्षफलदः सत्यनारायणो विभुः ।।३२

चतुष्पादो हि धर्मश्च तस्य सत्यं प्रसाधनम् ।
सत्येन धार्यते लोकः सत्ये ब्रह्म प्रतिष्ठितम् ।।३३

सत्यनारायणव्रतमतः श्रेष्ठतमं स्मृतम् ।
इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नारदः पुनरब्रवीत् ।। ४
किं फलं किं विधानं च सत्यनारायणार्चने ।
तत्सर्वं कृपया देव कथयस्व कृपानिधे ।।३५

सूतजी ने कहा—इस प्रकार भगवान् विष्णु का स्तवन करने के पश्चात् नारदजी से विष्णु भगवान् ही बोले—हे देवर्षिवर ! आप यहाँ किस प्रयोजन से आये है और आपके मन में क्या बात है ? ।।२९।। हे महाभाग ! आप मुझसे सब कहें तो मैं आपको वह सभी बतला दूंगा । यह बात नारदजी ने सुनकर भगवान् विष्णु से समस्त कारण कह दिया ।।३०।। देवर्षि नारदजी के यह वचन सुनकर विष्णु भगवान् ने 'बहुत अच्छा'— यह कह कर उनका सत्कार किया और कहा—हे नारद ! सुनो, मैं सत्य नारायण देव का एक व्रत बतलाता हूँ जो परम सनातन अर्थात् सर्वदा चले आने वाला है ।।३१।। कृत युग में, त्रेता में और द्वापर में अनेकों रूपों के धारण करने वाले भगवान् विष्णु हैं वे ही सत्य नारायण विभु कलियुग में प्रत्यक्ष फल प्रदान करने वाले होते हैं ।।३२।। धर्म के चार चरण हुआ करते हैं और उसका सत्य प्रसाधन होता है । सत्य से ही यह लोक धारण किया जाता है और सत्य में ब्रह्म ही प्रतिष्ठित है ।।३३।। अतएव यह सत्य नारायण देव का व्रत सबसे श्रेष्ठ कहा गया है । हरि भगवान् के इस वाक्य को सुनकर नारदजी ने फिर कहा— ।।३४।। सत्य नारायण के अर्चन में क्या विधान है और उसका क्या फल होता है, हे देव ! हे कृपानिधे ! कृपाकर वह सभी कुछ बतलाइये ।।३५।।

नारायणार्चने वक्तुं फलं नालं चतुर्मुखः ।
शृणु संक्षेपतो ह्येतत्कथयामि तवाग्रतः ।।३६
निर्धनोपि धनाढ्यः स्यादपुत्रः पुत्रवान्भवेत् ।
भ्रष्ट राज्यो लभेद्राज्यमन्धोऽपि स्यात्सुलोचनः ।।३७
मुच्यते बंधनाद्बद्धो निर्भयः स्यादभयातुरः ।
मनसा कामयेद्यंयं लभते तं विधानतः ।।३८
इह जन्मनि भो विप्र भक्त्या च विधिनार्चयेत् ।
लभेत्कामं हि तच्छीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ।।३९
प्रातः स्नायी शुचिभूत्वा दंतधावनपूर्वकम् ।
तुलसीमञ्जरी धृत्वा ध्यायेत्सत्यस्थितं हरिम् ।।४०
नापायणंसांद्रघनावदातं चतुर्भुजं पीतमहार्हवाससम् ।
प्रसन्नवक्त्रं नवकंजलोचनं सनन्दनाद्यैरुपसेवितं भजे ।।४१
करोमि ते व्रतं देव सायंकाले त्वदर्चनम् ।
श्रुत्वा गाथा त्वदीयां हि प्रसादं ते भजाम्यहम् ।।४२
इति संकल्प्य मनसा सायंकाले प्रपूजयेत् ।
पञ्चभिः कलशैर्जुष्टं कदलीतोरणान्वितम् ।।४३

श्री भगवान् ने कहा—सत्यनारायण देव के अर्चन में जो फल होता है उसे तो ब्रह्मा भी कहने में समर्थ नहीं होते हैं तो भी मैं इसे परम संक्षेप में तुम्हारे सामने बतलाता हूँ। इसको तुम श्रवण करो ।।३६।। जो अत्यन्त निर्धन हो वह भी सत्यनारायण के व्रतार्चन के प्रभाव से बहुत बड़ा धनी हो जाया करता है और जो पुत्र विहीन व्यक्ति है उसको पुत्र की प्राप्ति होती है जिसका राज्य भ्रष्ट हो गया हो वह राज्य पा जाता है और एक अन्धा भी पुरुष पुनः नेत्रों की ज्योति प्राप्त करने वाला हो जाया करता है ।।३७।। बद्ध बन्धन से मुक्त हो जाता है, जो भय से आतुर हो उसका भय चला जाता है। मन से जिस-जिस वस्तु की भी व्रती कामना करता है उन्हें वह विधि-विधान से वृतार्चन करके प्राप्त कर लिया करता है ।।३८।। हे विप्र ! इस जन्म में भक्तिभाव पूर्वक विधि विधान से जो अर्चना करता है वह बहुत ही शीघ्र कामनाओं का

लाभ करता है। इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥३९॥ प्रातःकाल में स्नान करने वाला पवित्र होकर तथा दन्तधावन आदि समस्त शारीरिक आवश्यक कार्य करके तुलसी की मञ्जरी लेकर सत्य में स्थित हरि का ध्यान करे ॥४०॥ सघन मेघ के समान अवदात, चार भुजाओं से शोभित, पीत और वेश कीमती वस्त्र धारण करने वाले, प्रसन्न मुख, नवीन कमल के तुल्य नेत्रों वाले और सनकादि के द्वारा सेवित नारायण की सेवा करनी चाहिए ॥४१॥ हे देव! मैं आपका व्रत करता हूँ और सायङ्काल में आपका अर्चन करूँगा। आपकी गाथा का श्रवण कर मैं आपके प्रसाद का सेवन करूँगा ॥४२॥ इस प्रकार से मन में सङ्कल्प करके सायंकाल में पूजा करनी चाहिए। मण्डप जो भगवान् का बनावे वह पांच कलशों से युक्त हो तथा केला के तोरण से समन्वित होना चाहिए ॥४३॥

शालग्रामं स्वर्णयुक्तं पूजयेदात्मसूक्तकैः।
पंचामृतेन संस्नाप्य चन्दनादिभिरचयेत् ॥४४
ॐ नमो गगवते नित्यं सत्यदेवाय धीमहि।
चतुः पदार्थ दात्रे च नमस्तुभ्यं नमोनमः ॥४५
जप्त्वेत्यष्टोत्तरशतं जुहुयात्तद्दशांशकम्।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ॥४६
षडध्यायीं सत्यमुख्यां तत्पश्चात्तत्प्रसादकम्।
सम्यग्विभज्यतत्सर्वं दापयेच्छ्रोतृकाय च ॥४७
आचार्यायादिभागं च द्वितीयं स्वकुलाय सः।
श्रोतृभ्यश्च तृतीयं च चतुर्थं चात्महेतवे ॥४८
विप्रेभ्यो भोजनं दद्यात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः।
देवर्षेऽनेन विधिना सत्यनारायणार्चनम् ॥४९

स्वर्ण से युक्त शालग्राम की आत्म सूक्तों के द्वारा अर्थात् पुरुष सूक्तों से पूजा करनी चाहिए। पञ्चामृत से स्नान कराकर चन्द्रनादि से अर्चन करना चाहिए ॥४४॥ "ओं नमो भगवते नित्यं सत्य देवाय धीमहि।

चतुः पदार्थदात्रे च नमस्तु भ्यं नमो नमः"—(अर्थात् भगवान् के लिए नित्य ही नमस्कार है, सत्यदेव का ध्यान करते हैं। चार पदार्थों के दाता आपके लिए बार-बार नमस्कार है) इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे और इसका दशम भाग हवन करना चाहिए। इस हवन का दशांश तर्पण और इसका दशांश मार्जन करे और हरि भगवान् की इस कथा का श्रवण करे। यह कथा छै अध्याय वाली है जिसमें सत्य ही मुख्य बताया गया है। इस कथा का श्रवण करके इसके पश्चात् उनके प्रसाद का भली-भाँति वितरण करे। जो भी श्रोता वहाँ हो सबको ही प्रसाद दिलवाना चाहिए ।।४५-४७।। आदि भाग आचार्य को देवे और द्वितीय भाग अपने कुल वालों को तथा तीसरा भाग श्रोताओं को देवे। चौथा भाग अपने लिए रक्खे ।।४८।। ब्राह्मणों को भोजन करावे और वाग्यत (मौन) होकर स्वयं भोजन करे। हे देवर्षि। इस विधि-विधान से सत्य नारायणदेव का अर्चन किया जाता है ।।४९।।

कारयेद्यदि भक्त्या च श्रद्धया च समन्वितः।
व्रती कामानवाप्नोति वांछितानिह जन्मनि ।।५०
इह जन्मकृतं कर्म परिजन्मनि पद्यते।
परजन्मकृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वदा नरैः ।।५१
सत्यनारायण व्रतमिह सर्वान्कामान्ददाति हि।
अद्य व जगतीमध्ये स्थापयामि त्वदाज्ञया ।।५२
इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवो नारदः स्वर्गतिं ययौ।
स्वयं नारायणो देवः काश्यां पुर्यां समागमः ।।५३

यदि इस व्रत अर्चन को भक्ति और श्रद्धा से समन्वित होकर करे तो इस जन्म में ही व्रत करने वाला अपने अभीष्ट सम्पूर्ण कामों को प्राप्त कर लेता है ।।५०।। इस जन्म में किये हुए कर्म को पर-जन्म में प्राप्त करता है और पर जन्म में किए हुए कर्मों के फल को सर्वदा यहाँ भोगना पड़ता है ।।५१।। यह सत्यनारायण का व्रत्त यहाँ समस्त कामों को दे देता है। मैं तुम्हारी आज्ञा से आज ही जगत् में इसकी स्थापना करूंगा ।।५२।। इतना कह कर देव अन्तर्धान हो गये और देवर्षि नारद

जो स्वर्गति को चले गये थे। स्वयं नारायण देव काशीपुरी में आ गये थे ॥५३॥

॥ शतानन्दब्राह्मणकथावर्णनम् ॥

कृपया ब्राह्मणद्वारा प्रकटीकृतवान्स्वकम् ।
इतिहासमिमं वक्ष्ये संवादं हरिविप्रयोः ॥१
काशीपुरीति विख्याता तत्रासीद्ब्राह्मणो वरः ।
दीनो गृहाश्रमी नित्यं भिक्षुः पुत्रकलत्रवान् ॥२
शतानंद इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ।
एकदा पथि भिक्षार्थं गच्छतस्तस्य श्रीपतिः ॥३
विनीतस्यातिशांतस्य स बभूवाक्षिगोचरः ।
वृद्धब्राह्मणवेषेण पप्रच्छ ब्राह्मणं हरिः ।
क्व यासीति द्विजश्रेष्ठ वृत्तिः कामेन कथ्यताम् ॥४
भिक्षावृत्तिरहं सौम्य कलत्रापत्यहेतवे ।
याचितुं धनिनां द्वारि व्रजामि धनमुत्तमम् ॥५
भिक्षावृत्तिस्त्वया दीर्घकालं द्विज सदा धृता ।
तद्वारक उपयोयं विशेषेण कलौ किल ॥६
ममोपदेशतो विप्र सत्यनारायणं भज ।
दारिद्यशोकशमनं संतापहरणं हरेः ।
चरणं शरणं याहि मोक्षदं पद्मलोचनम् ॥७
एवं संबोधितो विप्रो हरिणा करुणात्मना ।
पुनः पप्रच्छ विप्रोसौ सत्यनारायणो हि कः ॥८

इस अध्याय में सत्यनारायण व्रतकर काशीस्थ शतानन्द ब्राह्मण की कथा का वर्णन किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—कृपा करके ब्राह्मण के द्वारा अपने आपको प्रकट किया था। मैं अब इस इतिहास

को जिसमें हरि और विप्र का सम्वाद है कहता हूँ ।।१।। काशीपुरी परम विख्यात है । वहाँ पर श्रेष्ठ किन्तु दीन और नित्य ही भिक्षा करने वाला पुत्र तथा स्त्री से युक्त गृहस्थ ब्राह्मण रहता था ।।२।। इसका नाम शतानन्द प्रसिद्ध था जोकि भगवान् विष्णु के व्रत में परायण रहता था । एक दिन जब कि यह मार्ग में भिक्षा करने के लिए जा रहा था तो अत्यन्त शान्त, विनीत उसे श्रीपति आँखों के सामने प्रत्यक्ष दिखलाई दिए । हरि ने एक वृद्ध ब्राह्मण के वेष में सामने आकर उस शतानन्द ब्राह्मण से पूछा—हे द्विजश्रेष्ठ ! आप इस समय कहां जा रहे हैं ? आप जो भी कुछ वृत्ति करते हों वह भी बतलाइये ।।३-४।। शतानन्द ने कहा—हे सौम्य ! स्त्री और सन्तति के भरण-पोषण करने के वास्ते मैं तो भिक्षा की वृत्ति किया करता हूँ । धनियों के द्वार पर धन की याचना करने के लिए कि उत्तम धन मिल जावे, इस समय जा रहा हूँ । नारायण ने कहा—हे द्विज ! आप ने अपने जीवन में बहुत लम्बे समय से यह भिक्षा की वृत्ति धारण कर रक्खी है और सदा इसे ही करते रहते हो । अब इससे पीछा छुड़ाने का विशेष करके इस कलियुग में एक उपाय है ।।५-६।। अब मेरे उपदेश से हे विप्र ! भगवान् सत्यनारायण की सेवा करो । यह द्वारिका सेवन दारिद्रय, शोक का शमन करने वाला और सब प्रकार के सन्ताप का हरण करने वाला है । तुम सत्यनारायण देव के चरणों की शरण में चले जाओ । उनका पद्म लोचन वपु मोक्ष देने वाला है ।।७।। इस प्रकार से भली-भाँति ज्ञान करुणात्मा हरि के द्वारा उस ब्राह्मण को दिया गया था । तब उस विप्र ने इस वृद्ध वेषधारी ब्राह्मण से फिर पूछा कि यह सत्यनारायण कौन हैं ।।८।।

बहु रूपः सत्यसंधः सर्वव्यापी निरञ्जनः ।
इदानीं विप्ररूपेण तव प्रत्यक्षमागतः ।।९
दुःखोदधिनिमग्नानां तरणिश्चरणौ हरेः ।
कुशलाः शरणं यांति नेतरे विषयात्मिकाः ।।१०
आहृत्य पूजायसंभारान्हिताय जगतां द्विज ।
अर्चयंस्तमनुध्यायंस्त्वमेतत्प्रकटी कुरु ।।११

इति ब्रुवंतं विप्रोसौ ददर्श पुरुषोत्तमम् ।
जलदश्यामलं चारुचतुर्बाहुं गदादिभिः ॥१२
पीतांबरं नवांभोजलोचनं स्मितपूर्वकम् ।
वनमालामधुव्रात चुंबितांघ्रिसरोरुहम् ॥१३
निशम्य पुलकांगोसौ प्रेमपूर्णसुलोचनः ।
स्तुवन्गद्गदया वाचा दंडवत्पतितो भुवि ॥१४

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—यह सत्यनारायण बहुत से रूपों वाला है, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला है, सबमें व्याप्त रहने वाला है और निरञ्जन है और इस समय विप्र के रूप में तुम्हारे हो प्रत्यक्ष में आया हुआ है ॥६॥ हरि के चरण दुःख रूपी समुद्र में डूबे हुओं को एक नौका के समान हैं । जो कुशल पुरुष होते हैं वे उनकी शरण में चले जाया करते हैं दूसरे विषयों में लिप्त रहने वाले व्यक्ति नहीं जाते हैं ॥१०॥ पूजा के लिए समस्त सामग्री लाकर हे द्विज ! संसारी लोगों के कल्याण के लिए उनका अर्चन और उनका ध्यान करते हुए तुम इस सत्यनारायण के व्रतार्चन को प्रकट करो॥११॥इस प्रकार से बोलने वाले भगवान् पुरुषोत्तम का इस ब्राह्मण ने दर्शन किया था । मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, सुन्दर चार भुजाओं से विभूषित जिसमें गदा, पद्म आदि आयुध धारण किए हुए हैं, पिताम्बर पहनने वाले, नवीन कमल के सदृश लोचन वाले, स्मित से युक्त मुख वाले, वनमाला धारी और मधु व्रातों से चुम्बित चरण कमल वाले भगवान् के स्वरूप का दर्शन ब्राह्मण ने प्रत्यक्ष रूप से किया था ॥१२-१३॥ उस भगवान् के मुख से यह सुनकर इस शतानन्द का शरीर पुलकित हो गया और प्रेमावेश से नेत्रों में अश्रु झलक आये थे । तब तो शतानन्द ने भगवान् का स्तवन किया और गद्गद् वाणी से बहुत कुछ स्तुति की तथा एक दण्ड की भाँति वह भगवान् के चरणों में भूमि पर गिर गया ॥१४॥

प्रणमामि जगन्नाथं जगत्कारणकारकम् ।
अनाथनाथं शिवदं शरण्यमनघं शुचिम् ॥१५

अव्यक्तं व्यक्ततां यातं तापत्रयविमोचनम् ॥१६

नमःसत्यनारायणायास्य कर्त्रेनमःशुद्ध सत्त्वाय विश्वस्य भर्त्रे।
करालायकालायविश्वस्यहर्त्रेनमस्तेजगन्मङ्गलायात्ममूर्ते ॥१७

धन्योस्म्ययद्यकृती धान्यो भवोद्य सफलो मम।
वाङ्मनोगोचरो यस्त्वं मम प्रत्यक्षमागतः ॥१८

दिष्टं किं वर्णयाम्याहो न जाने कस्य वा फलम्।
क्रियाहीनस्य मन्दस्य देहोऽयं फलवान्कृतः ॥१९

पूजनं च प्रकर्तव्यं लोकनाथ रमापते।
विधिना केन कृपया तदाज्ञापय मां विभो ॥२०

हरिस्तमाह मधुरं सस्मितं विश्वमोहनः।
पूजायां मम विप्रेन्द्र बहु नापेक्षितं धनम् ॥२१

शतानन्द ने कहा—इस जगत् के कारण को भी करने वाले, समस्त विश्व के नाथ, जो अनाथ हैं उन सब के नाथ, कल्याण के प्रदान करने वाले, शरण्य, अनघ और शुचि आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१५॥ तीनों (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) तापों के विमोचन करने वाले आप अव्यक्त स्वरूप वाले होकर भी व्यक्तता को प्राप्त हो गये हैं ॥१६॥ सत्यनारायण देव के लिए नमस्कार है। इस जगत् के कर्ता आपके लिए नमस्कार है। शुद्ध सत्व और विश्व के भरण करने वाले के लिए नमस्कार है। कराल काल स्वरूप एवं विश्व के हरण करने वाले आपके लिये मेरा नमस्कार है। इस जगत् के मङ्गल के लिए हे आत्ममूर्त्ते। आपको बार-बार मेरा नमस्कार है ॥१७॥ आज मैं परम धन्य हूँ जिसने कि अब तक कुछ भी नहीं किया है। आज मेरा यह जन्म धारण करना भी अत्यन्त धन्य एवं सफल हो गया जो आप वाणी और मन से अगोचर रहने वाले मेरे नेत्रों के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित हो रहे हैं ॥१८॥ बड़े ही सौभाग्य और आनन्द की बात है। मैं क्या वर्णन करूँ। मैं नहीं जान पाता हूँ कि यह किसका सुफल मुझे प्राप्त हुआ है। मेरा यह शरीर तो क्रिया से हीन और परम मन्द है। हे भगवन्! आपने

आज इस शरीर को फल वाला बना दिया है ।।१९।। हे रमा के स्वामिन् ! हे लोकों के नाथ ! पूजन किस विधि से किया जाना चाहिए कृपा करके यह मुझे आज्ञा दीजिएगा । तब तो विश्व को मोहित करने वाले हरि ने मधुर स्मित के साथ उसने कहा—हे विप्रेन्द्र ! मेरी पूजा में बहुत धन की अपेक्षा नहीं होती है ।।२०-२१।।

अनायासेन लब्धेन श्रद्धामात्रेण मांयज ।
ग्राहग्रस्तोजामिलो वा यथाऽभन्मुक्तसंकटः ।।२२
विधानं शृणु विप्रेन्द्र मनसा कामयेत्फलम् ।
पूजासभृतसंभारः पूजां कुर्याद्यथा विधि ।।२३
गोधूमचूर्णं पादार्द्धं सेटकादिप्रमाणतः ।
दुग्धेन तावता युक्तं मिश्रितं शर्करादिभिः ।।२४
तच्चूर्णं हरये दद्याद् घृतयुक्तं हरिप्रियम् ।
गोदुग्धेनैन दधिना गोघृतेन समन्वितम् ।।२५
गंगाजलेन मधुना युक्तं पञ्चामृतं प्रियम् ।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य शालग्रामोद्भवां शिलाम् ।।२६
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्वेदवादैर्मनोहरैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्तांबूलादिभिरर्चयेत् ।।२७
मिष्टान्नपानसन्मानैर्भक्ष्यैर्भोज्यैः फलैस्तथा ।
ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैः पूजयेद्भक्तितत्परः ।।२८

जो बिना ही किसी आयास के प्राप्त हो जावे उसी धन से केवल श्रद्धा का संबल लेकर मेरा यजन करो । जैसे ग्राह से ग्रस्त गज अथवा अजामिल सङ्कटों से युक्त हो गया था वैसे ही संकटों से मुक्त हो जायगी ।।२२।। हे विप्रेन्द्र ! अब विधान का श्रवण करो । पहिले मन से फल की कामना कर लेनी चाहिए फिर पूजा के सम्भार सम्भृत करके यथाविधि पूजा करनी चाहिए ।।२३।। सेटकादि प्रमाण से पादार्ध गोधूम (गैहूँ) का चून उतने ही दुग्ध से युक्त और शर्करा आदि से मिश्रित करे और उस चूर्ण को हरि के लिए समर्पित करना चाहिए उसे घृत से युक्त भी कर लेवे जो कि हरि को

अत्यन्त प्रिय होता है। गोदुग्ध, मधु, गोघृत, गोदधि और गङ्गा जल से युक्त करके पञ्चामृत बनावे जो कि हरि को प्रिय है। इस पञ्चामृत के द्वारा शाल ग्रामोद्भव शिला का संस्नपन करावे ।। २४-२६ ।। गन्धाक्षत पुष्प आदि, नैवेद्य और मनोहर वेदवादों से तथा धूप एवं दीप से, नैवेद्य और ताम्बूल आदि के द्वारा अर्चना करनी चाहिये ।।२७।। भक्ति भाव में तत्पर होकर मिष्टान्न, पान, सम्मान, भक्ष्य, भोज्य, फल जो ऋतु काल के हों और पुष्पों से पूजन करना चाहिए ।।२८।।

ब्राह्मणैः स्वजनैश्चैव वेष्टितः श्रद्धयान्वितः ।
त्वया सार्द्धं मम कथां शृणुयात्परमादरात् ।।२९
स गत्वा स्वगणानाह माहात्मयं हरिसेवने ।
ते हृष्टमनसः सर्वे समग्र चक्रु रादृताः ।।३०
सत्यनारायणे पूजां काष्ठलब्धेन यावता ।
वयं कुलैः करिष्यामः पुण्यवृक्षविधानतः ।।३१
इतिनिश्चित्य मनसा काष्ठं विक्रीय लेभिरे ।
चतुर्गुणं धनं हृष्टाः स्वंस्वं भवनमाययुः ।।३२
मुदा स्त्रीभ्यस्समाचख्युर्वृत्तान्तं सर्वमादितः ।
ताः श्रुत्वाहृष्टमनसः पूजनं चक्रुरादरात् ।।३३
कथान्ते प्रणमन्भक्त्या प्रसादं जगृहुस्ततः ।
स्वजातिभ्यः परेभ्यश्च ददुस्तच्चूर्णमुत्तमम् ।।३४
पूजाप्रभावतो भिल्लाः पुत्रदारादिभिर्युताः ।
लब्ध्वा भूमितले द्रव्यं ज्ञानचक्षुर्महोत्तमम् ।।३५
भुक्त्वा भोगान्यथेष्टन्ते दरिद्रान्वा द्विजोत्तम ।
जग्मुस्ते वैष्णवं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ।।३६

ब्राह्मण और स्वजनों से वेष्टित होकर परम श्रद्धा से अन्वित हो परम आदर से सबके साथ मेरी कथा का श्रवण करना चाहिए ।।२९।। यह सुनकर वह शतानन्द जाकर अपने लोगों से सबसे हरि के सेवन का माहात्म्य कहने लगा। वे सभी परम प्रसन्न हुए और प्रसन्न मन वाले सबने बड़े

आदर से इसके करने की प्रतिज्ञा की थी ॥३०॥ काष्ठ के वेचने पर जितना भी धन मिलेगा उससे हम सत्यनारायण की पूजा करेंगे और समस्त कुल के साथ पुण्य वृक्ष के विधान से अर्चन करेंगे ॥३१॥ ऐसा सबने मन में निश्चय करके काष्ठ को बेचकर चौगुना धन प्राप्त किया था। तब तो वे बहुत ही अधिक प्रसन्न होते हुए अपने-अपने घर को आये और बड़े ही हर्ष से यह समस्त वृत्तान्त अपनी स्त्रियों से कह दिया जो भी आदि से अब तक हुआ था। वे स्त्रियाँ भी इस वृत्तान्त को सुन कर परम प्रसन्न मन वाली हो गईं और बड़े ही आदर से उन्होंने पूजन किया था ॥३२-३३॥ कथा के अत में प्रणाम करके फिर भक्त भाव से सबने प्रसाद ग्रहण किया। अपनी जाति वालों के लिए और जो अन्य थे उन सबके लिए वह उत्तम प्रसाद का चूर्ण (पंजीरी) दी ॥३४॥ पूजा के प्रभाव से भिल्ल पुत्र और दारा आदि से युक्त हो गये थे। इस भूमण्डल में द्रव्य पाकर महान् उत्तम ज्ञान चक्षु के पाने का भी लाभ लिया था ॥३५॥ यहाँ पर यथेष्ट भोगों का उपभोग करके हे द्विजोत्तम ! वे दरिद्रान्ध योगियों के भी ऊपर स्थित वैष्णव धाम को प्राप्त हुए ॥३६॥

———

॥ साधुवणिक्कथावर्णन ॥

अथ ते वर्णयिष्यामि कथां साधूपचारिताम् ।
नृपोपदेशतः साधुः कृतार्थोऽभूद्वणिग्यथा ॥१
मणिपूरपती राजा चन्द्रचूडो महाशयाः ।
सह प्रजाभिरानर्च सत्यनारायणं प्रभुम् ॥२
अथ रत्नपुरस्थायी साधुर्लक्षपतिर्वणिक् ।
धनैरापूर्य तरणीः सह गच्छन्नदीतटे ॥३
ददर्श बहुलं लोकं नानाग्रामविलासिनम् ।
मणिमुक्ताविरचितैर्वितानैस्समलंकृतम् ॥४

वेदवादांश्चशुश्राव गीतवादित्रसंगतान् ।
रम्यं स्थानं समालोक्यं कर्णधारं समादिशत् ।।५
विश्रामयात्र तरणीरिति पश्यामि कौतुकम् ।
भर्त्रादिष्टस्तथा चक्रे कर्णधारः सभृत्कः ।।६
तटसीम्नः समुत्तीर्य मल्ललीलाविलासिनः ।
कर्णधारा नगा वीरा युयुधुर्मल्ललीलया ।।७

इस अध्याय में सत्यनारायण व्रत में साधु वणिक् की कथा का वर्णन किया जाता है। श्री सूत जी ने कहा—इसके साधु के द्वारा उपचरित्र कथा का वर्णन तुम्हें सुनाऊँगा नृप के उपदेश से वणिक साधु जिस तरह से कृतार्थ हुआ था ।।१।। मणिपूर का स्वामी महान् यश वाला चन्द्र चूड़ नामधारी राजा था । वह अपनी समस्त प्रजा के जनों के साथ प्रभु सत्यनारायण देव की पूजा किया करता था ।।२।। इसके अनन्तर रत्नपुर में रहने वाला लक्षपति वणिक् साधु था । वह धन से नौका को भरकर उस नाव के ही साथ नदी के तट पर जा रहा था ।।३।। उसने अनेक ग्रामों के विलास वाले बहुत से लोगों को देखा था । जो कि मणि और मुक्ताओं के द्वारा बनाये हुए वितानों से विभूषितथे ।।४।। वहाँ पर गीता वादित्र से संगत वेद वादों को उसने श्रवण किया था । उस समय परम रम्य स्थान को देखकर कर्ण धार से उसने कहा ।।५।। यहाँ पर हमारी इस नौका को रोक दो । मैं इस कौतुक को देखता हूँ । स्वामी के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके उस कर्णधार ने समस्त भृत्यों के साथ उस नौका को वहाँ रोक दिया था उस तट की सीमा पर उतरकर मल्ल लीला के विलास करने वाले नग कर्ण धार वीर मल्ललीला से युद्ध करने लगे ।६-७।

स्वयमुत्तीर्य सामात्यो लोकान्पप्रच्छ सादरम् ।
यज्ञस्थानं समालोक्यं प्रशस्तं समुदो ययौ ।।८
किमत्र क्रियते सभ्या भवद्भिर्लोकपूजितैः ।
सभ्याऊचुश्च ते सर्वे सत्यनारायणो विभुः ।।९
पूज्यते बंधुभिः सार्धं राज्ञा लोकानुकंपिना ।
प्राप्तं निष्कंटकं राज्यं सत्यनारायणार्चनात् ।।१०

धनार्थी लभते द्रव्यं पुत्रार्थी सुतमुत्तमम् ।
ज्ञानार्थी लभते चक्षुर्निर्भयः स्याद्भयातुरः ॥११

सर्वान्कामानवाप्नोति नरः सत्यसुरार्चनात् ।
विधानं तु ततः श्रुत्वा चैलं बद्धा गलेऽसकृत् ॥१२

दंडवत्प्रणिपत्याप कामं सभ्यानमोदयत् ।
अनपत्योऽस्मिभगवन्तृथैश्वर्यो वृथाद्यम ॥१३

पुत्रं वा यदि वा कन्यां लभेयं त्वत्प्रसादतः ।
पताकां कांचरीं कृत्वा पूजयिष्ये कृपानिधिम् ॥१४

वणिक् अपने अमात्य के साथ स्वयं नौका से नीचे उतर गया और आदर के साथ लोगों से पूछा । उस परम प्रशस्त यज्ञ के स्थान को देख कर आनन्द के साथ वहाँ गया था ॥८॥ हे सभ्यो ! लोक पूजित आप लोग यहाँ क्या करते हैं तब उन समस्त सभ्यों ने कहा—हमारे द्वारा प्रभु सत्य नारायण की अर्चना की जा रही है और लोकों पर दया करने वाले राजा ने बन्धुओं के साथ इसी सत्यनारायण की पूजा के प्रभाव से यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है ॥९-१०॥ सत्यनारायण के अर्चन से धन के चाहने वाला धन पुत्र की इच्छा वाला उत्तम पुत्र ज्ञान,के प्राप्त करने की अभिलाषी ज्ञान चक्षु प्राप्त किया करता है । जो भय से आतुर होता है वह निर्भय हो जाता है ॥११॥ मनुष्य सत्यनारायण देव की पूजा से समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । इसके पश्चात् उसके विधान को सुन कर बार-बार वस्त्र को गले में बाँधकर दण्ड की भाँति भूमि में प्रणाम करके उसने बहुत अधिक उन सभ्यों को प्रसन्न किया था । हे भगवन मैं सन्तान रहित हूँ, उसने कहा—मेरा यह ऐश्वर्य और सारा उद्यम व्यर्थ ही है ॥१२-१३॥ उसने सत्यनारायण प्रभु से प्रार्थना की पुत्र अथवा एक कन्या ही आपके प्रसाद से मुझे प्राप्त हो जावे तो मैं सुवर्ण की पताका बनवाकर कृपा के निधि आपकी पूजा करूँगा ॥१४॥

श्रुत्वा सभ्या अब्रुवंस्ते कामनासिद्धिरस्तु ते ।
हरिं प्रणम्य सभ्यांश्च प्रसादं भुक्तवांस्तदा ॥१५

जगाम स्वालयं साधुर्मनसा चिंतयन्हरिम् ।
स्वगृहे ह्यागते तस्मिन्नार्यो मंगलपाणयः ।।१६
मंगलानि विचित्राणि यथोचितमकारयन् ।
विवेशांत.पुरे साधुर्महाकौतुकमंगलः ।।१७
ऋतु स्नाता सती लीलावती पर्यचरत्पतिम् ।
गर्भं धृतावती साध्वी समये सुषुवे तु सा ।। ८
कन्यां कमललोलाक्षीं बांधवामोदकारिणीम् ।
साधुः परां मुदलेभे विततार धनं बहु ।।१८
विप्रानाहूय वेदज्ञान्कारयामास मंगलम् ।
लेखयित्वा जन्मपत्रीं नाम चक्रे कलावतीम् ।।२०
प्रौढ़ा कालेन तां दृष्ट्वा विवाहार्थमचिन्तयत् ।।२१

उसकी इस प्रार्थना को सुनकर वे सभ्य लोग बोले—तेरी कामना की सिद्धि होगी । इसके अनन्तर उस वणिक् ने हरि और सभ्यों को प्रणाम करके प्रसाद को खाया था ।।१५।। फिर वह साधु वणिक् मन में हरि का चिन्तन करता हुआ अपने घर को चला गया । उसके घर में आने पर मङ्गल द्रव्य हाथों ग्रहण करके नारियों ने विचित्र मङ्गल कार्य यथोचित किये थे । इसके पश्चात महान् कौतुक मङ्गल वाले उस साधु ने अपने अन्तः पुर में प्रवेश किया था ।।१६-७।। फिर ऋतु काल का स्नान करने वाली उसकी पत्नी सती लीलावली ने अपने पति की परिचर्या की थी । तब उसने गर्भ धारण किया और समय आने पर अर्थात् प्रसव काल उपस्थित होने पर उस साध्वी ने कमल के सदृश चंचल नेत्रों वाली और बान्धवों को आनन्द करने वाली कन्या को जन्म दिया था। साधु को महाद् आनन्द हुआ और उसने उस आनन्द के समय में बहुत सा धन वितरित किया था ।।१८-१६।। वेद के ज्ञाता महामनीषी विप्रों को बुलाकर उस साधु ने मङ्गल कृत्य कराया था । जन्मपत्री लिखवाकर उसने उस कन्या का कलावती नाम रक्खा था ।।२०।। जब प्रौढ़ा हो गई तो उसे देखकर साधु ने उसके विवाह करने के विषय में विचार किया था ।।२१।।

नगरे कांचनपुरे वणिक्छंखपतिः श्रुतः ।।२२
कुलीनो रूपसंपत्तिशीलौदार्यगुणान्वितः ।।२३
वरयामास तं साधु र्दुहितुः सदृशं वरम् ।
शुभे लग्ने बहुविधैर्मंगलैरग्निसन्निधौ ।।२४
वेदवादित्रनिनदैर्ददौ कन्यां यथाविधि ।
मणिमुक्ताप्रवालानि वसनं भूषणानि च ।।२५
महामोदमनाः साधुर्मंगलार्थं ददौ च ह ।
प्रेम्णा निवासयामास गृहे जामातरं ततः ।।२६
तं मेने पुत्रवत्साधुः स च तं पितृवत्सुधीः ।
अतीते भूयसः काले सत्यनारायणार्चनम् ।।२७

काञ्चनपुर नगर में शङ्ख पति नाम वाला एक प्रसिद्ध वणिक् था जो परम कुलीन और रूप, सम्पत्तिशील, औदार्य आदि गुणों से युक्त था। साधु उसे ही पुत्री के योग्य वर समझकर वरण किया था। शुभलग्न में और अग्नि की सन्निधि में बहुत प्रकार के मङ्गलों के साथ तथा वेदमन्त्र और वाहित्र ध्वनि के सहित यथाविधि उसको अपनी कन्या का दान साधु वणिक् ने कर दिया था। उसको दहेज में मणि, मुक्ता, प्रवाल, वस्त्र और भूषण दिये थे साधु महान आनन्द में मग्न मन वाला था उसने मङ्गल के लिये यह सभी कुछ दिया था और इसके पश्चात अपने उस जमाई को बड़े ही प्रेम से अपने हो घर रख लिया था ।।२२-२६।। साधु उस अपने जामाता को पुत्र की तरह मानता था ओर वह सुधी जामता भी साधु को अपने पिता की भाँति मानता था। बहुत सा समय व्यतीत हो गया और वह सत्यनारायण की पूजा करने के सकल्प को एकदम भूल गया था। फिर वह अपने जमाई के साथ वाणिज्य का कार्य करने के लिए बाहिर चला गया ।।२७।।

विस्मृत्य सह जामात्रा वाणिज्याय ययौ पुनः ।
अथ साधूः समादाय रत्नानि विवधानि च ।।२८
नौकाः संस्थाप्य स ययौ देशाद्देशान्तरं प्रति ।
नगरं कर्मदातीरे तत्र वासं चकार सः ।।२९

कुर्वन्क्रयं विक्रयं च चिरं तस्थौ महामनाः।
कर्मणा मनसा वाचा न कृतं सत्यसेवनम् ॥३०
ततः कर्मविपाकेन तापमापाचिराद्वणिक् ।
कस्मिंश्चिद्दिवसे रात्रौ राज्ञो गेहे तमोवृते ॥३१
ज्ञात्वा निद्रागतान्सर्वान्हृतं चौरैर्महाधनम् ।
प्रभाते वाचितो राजा सूतमागधबंदिभिः ॥३२
प्रातः कृत्यं नृपः कृत्वा सदः संप्राविशच्च सः ।
ततस्तत्र समायातः किंकरो राजवल्लभः ॥३३
उवाच स तदा वाक्यं शृणुष्वं त्वं धरापते ।
मुक्तामालाश्च बहुधा रत्नानि विविधानि च ॥३४
मुमुषुश्चौरा गतास्सर्वे न जानीमो वयं नृप ।
इति विज्ञापितो राजा पुण्यश्लोक शिखामणिः ॥३५
उवाच क्रोधताम्राक्षो यूयं संयात मा चिरम् ।
सचौरं द्रव्यमादाय मत्पार्श्वं त्वमुपानय ॥३६

सूत जी ने कहा—इसके पश्चात् साधु ने अनेक प्रकार के रत्नों को लेकर नौका में रक्खा और वह दूसरे देशों को चला गया था। एक नगर नर्मदा नदी के तट पर था। वहाँ पर उसने अपना निवास किया था ॥२८-२९॥ वह महान् मन वाला साधु बहुत सा रत्नों का क्रय और विक्रय करके वहाँ पर बहुत समय तक ठहर गया था किन्तु उस समय तक भी उसने कर्म, मन और वचन से भी सत्यनारायण देव का सेवन नहीं किया था ॥३०॥ इसके पश्चात् कर्मों के विपाक होने से शीघ्र ही उस वणिक ताप की प्राप्ति की । किसी दिन रात्रि में राजा के तम से आवृत घर में सबको निद्रा के वशीभूत समझकर चोरों ने महान धन का हरण किया था। जब प्रातः काल हुआ तो सूत मागध और बन्दिरों के द्वारा राजा वाचित किया गया था ॥३१-३२॥ राजा ने प्रातः काल का समस्त कृत्य समाप्त करके वह राजा सभा में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पर राजवल्लभ किङ्कर आया और उसने तब यह वचन कहा—हे धरापते ! आप सुनिये, बहुतसी मोतियों की मालाऐं और अन्य अनेक प्रकार के

रत्नों को चोरों ने हरण कर लिया है और वे सब चले गये हैं। हे नृप! हम को कुछ भी पता नहीं है। इस तरह से विज्ञापित किये गये पुष्प लोकों में शिखामणि उस राजा ने क्रोध से लाल नेत्र करके कहा—तुम लोग जाओ और विलम्ब मत करो। तुम चोरों के साथ उस सम्पूर्ण धन को लाकर मेरे पास आओ ॥३३-३६॥

नो चेद्धनिष्ये सगणानिति दूतान्समादिशत्।
नृपवाक्यं समाकर्ण्य प्रजग्मुस्ते च किंकराः ॥३७
बहुयनैन सशोध्य द्रव्यं चौरसमन्वितम्।
एकीभूत्वाः निशि तदा महाचितातुरोऽभवत् ॥३८
हन्ता मां सगणं राजा किं करोमि कुतः सुखम्।
नृपदंडाच्च मे मृत्युः प्रेतत्वाय भवेदिह ॥३९
नर्मदायां च मरणं शिवलोकप्रदायकम्।
इत्येवं संमतं कृत्वा नर्मदायास्तटं ययुः ॥४०
विदेशिनोऽस्य वणिजो ददर्श विपुलं धनम्।
मुक्ताहारं गले तस्य लुंठितं वणिजोऽस्य च ॥४१
चौरोऽयमिति निश्चित्य तौ बबंधात्मरक्षणात्।
सधनं सह जामात्रा नृपान्तिकमुपानयत् ॥४२

नहीं तो गणों के सहित तुम को मार दिया जायगा। इस तरह से राजा ने दूतों को आज्ञा प्रदान की थी। राजा के वाक्य को सुनकर वे समस्त किंकर चोरों को खोज में गये थे ॥३७॥ बहुत से यत्नों के करने पर भी चोरों से युक्त धन का शोध न पा सके और वे सब रात्रि में एकत्रित होकर महान् चिन्ता से आतुर हो उठे थे ॥३८॥ राजा गण के सहित हमको मार देने वाला है अब क्या किया जावे। कैसे सुख प्राप्त हो। नृप के दण्ड से हमारी मृत्यु होगी तो वह प्रेतत्व के लिये ही होगी ॥३९॥ अतएव इस नर्मदा नदी में डूबकर मरना अच्छा है जो शिव लोक की देने वाली मौत है। इस तरह सब सलाह करके नर्मदा के तट पर चले गये थे ॥ ४० ॥ वहाँ उन्होंने इस विदेशी वणिक का बहुत-सा धन देखा मोतिश्र का हार इस वणिक के गले में पड़ा हुआ

उन्होंने देखा था। उन्होंने यही चोर है, यह कहकर अपनी रक्षा के लिये उस साधु वणिक को बांध लिया था। उसको उसके जमाई और समस्त धन के साथ ले जाकर राजा के समीप पहुंचा दिया ॥४१-४२॥

प्रतिकूले हरौ तस्मिन्राज्ञापि च विचारितम्।
धनागारे धनं नीत्वा बध्नीत तौ सुदुर्मती ॥४३
कारागारे लोहमयैः शृंखलैरंगपादयोः।
इति राजाज्ञया दूतास्तथा चक्रुर्निबंधनम् ॥४४
जामात्रा सहितः साधुर्विललाप भृशं मुहुः।
हा पुत्र तात तातेति जामातः क्व धनं गतम् ॥४५
क्व स्थिता च सुता भार्या पश्य धातुर्विपर्ययम्।
निमग्नौ दुःखजलधौ को वां पास्यति संकटात् ॥४६
मया बहुतरं धातुर्विप्रियं हि पुरा कृतम्।
तत्कर्मणः प्रभावोऽयं न जाने कस्य वा फलम् ॥४७
समं श्वशुरजामात्रौ द्वादशेषु विशादिनौ ॥४८

भगवान् हरि के प्रतिकूल होने पर उस राजा ने भी विचार किया कि धनागार में धन रख कर इन दोनों दुष्ट बुद्धि वालों को बांध लिया जावे। लोहे की शृंखलाओं से इनको अङ्ग और पैरों में बाँधकर कारागार में डाल दिया जावे। इस तरह की जब राजा की आज्ञा हुई तो दूतों ने तदनुसार उसका निबन्धन कर दिया था ॥४३-४४॥ जमाई के साथ उस साधु ने अत्यधिक बार-बार बिलाप किया। हे पुत्र हे! तात ! हे जमाता ! सारा धन कहाँ चला गया ? ॥४५॥ कहाँ तो अब भार्या है और कहां सुता है। विधाता की इस विपरीतता को देखो। हम दोनों इस समय दुःख के सागर में निमग्न हो गये हैं। कौन है जो हमको इस महान संकट से रक्षा करेगा ? ॥४६॥ मैंने पहिले कभी विधाता का कुछ अत्यधिक विप्रिय कर्म किया था आज यह उसी कर्म का यह प्रभाव है। मैं यह नहीं जानता हूं यह कौन से कर्म का फल मिल रहा है ॥४७॥ श्वसुर और जमाई दोनों ही द्वादशों में समान विषाद वाले थे ॥४८॥

॥ साधुवणिकःकारागारान्मुक्तिःवर्णन ॥

तापत्रयहरं विष्णोश्चरितं तस्य ते शिवम् ।
शृण्वति सुधियो नित्यं ते वसंति हरेः पदम् ॥१

प्रतिकूले हरौ तस्मिन्यास्यन्ति निरयान्बहून् ।
तत्प्रिया कमला देवी चत्वारस्तस्त चात्मजाः ॥२

धर्मो यज्ञो नृपश्चौरः सर्वे लक्ष्मीप्रियंकराः ।
विप्रेभ्यश्चातिथिभ्यश्च यद्दानं धर्म उच्यते ॥३

मातृभ्यो देवताभ्यश्च स्वधा स्वाहेति वं मखः ।
धर्मस्यैव मखस्यैव रक्षको नृपतिः स्मृतः ॥४

द्वयोर्हन्ता हि चोरः स ते सर्वे धर्मकिंकराः ।
यत्र सत्यं ततो धर्मस्तत्र लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥५

सत्य हीनस्य तत्साधोर्धनं यत्तद्गृहे स्थितम् ।
हृतवानवनीपालः चोरैर्भार्यातिदुःखिता ॥६

वासोलन्करणादीनि विक्रीय बुभुजे किल ।
नास्ति तत्पच्यते किंचित्तदा कष्टमगाहत ॥७

इस अध्याय में साधु वणिक की भार्या के द्वारा किये हुए सत्य नारायण के व्रत के प्रभाव से साधु वणिक की कारागार से मुक्ति हो जाने का वर्णन किया जाता है। सूत जी ने कहा—तीनों तापों के हरने वाले उन विष्णु के चरित को जोकि परम शिव है जो सुन्दर बुद्धि वाले लोग सुनते हैं वे नित्य ही हरि के पद में निवास किया करते हैं ॥१॥ जब वही भगवान् विष्णु प्रतिकूल हो जाते हैं तो प्राणी बहुत से नरकों में निवास करते हैं। उन की प्रिया तो देवी कमला है और उनके चार पुत्र है। धर्म, यज्ञ, नृप और चौर ये चारों ही लक्ष्मी के प्रियंकर होते हैं। विप्रों के लिए और अतिथियों के लिये जो दान दिया जाता है वही धर्म इस नाम से कहा जाता है ॥२-३॥ माताओं के लिए तथा देवों के लिए

स्वधा और स्वाहा इससे कर्म किया जाता है वह मख या यज्ञ कहलाता है। धर्म का और मख का रक्षक नृपति कहा गया है। दोनों का जो दमन करने वाला है वह चोर होता है। ये सभी धर्म के किंकर होते हैं जहाँ सत्य होता है वही धर्म होता है और वहीं पर लक्ष्मी भी स्थित रहा करती हैं ॥४-५॥ सत्य से हीन साधु का धन और जो उसके घर में स्थित था वह धन अवनिपाल ने हरण कर लिया और चोरों से भार्या अति दुःखित हुई थी ॥६॥ उसने अपने वस्त्र और अलङ्कार आदि बेच कर उदर पूर्त्ति की थी। वह कूछ भी परिपाक नहीं होता है। उस समय कष्ट का अवगादन किया था ॥७॥

अथैकस्मिन्दिते कन्या भोजनाच्छादनं विना।
गता विप्रगृहेऽपश्यत्सत्यनारायणार्चनम् ॥८
प्रार्थयंतं जगन्नाथं दृष्ट्वा सा प्रार्थयद्धरिम्।
सत्यनारायण हरे पिता भर्ता च मे गृहम् ॥९
आगच्छत्वर्चयिष्यामि भवंतमिति याचये।
तथास्तु ब्राह्मणैरुक्ता ततः सा त्वाश्रमं ययौ ॥१०
मात्रा निर्भर्त्सितेयंतं कालं कुत्र स्थिता शुभे।
वृत्तांतं कथयामास सत्यनारायणार्चने ॥११
कलौ प्रत्यक्ष फलदः सर्वदा क्रियते नरः।
कर्तुमिच्छाम्यहं मातरनुज्ञातुं त्वमर्हसि ॥१२
देशमायातु जनकः स्वामी च मम कामना।
रात्रौ निश्चित्य मनसा प्रभाते सा कलावती ॥१३
शीलापालस्य गुप्तस्य गेहे प्राप्ता धनार्थिनी।
बंधो किंचिद्धनं देहि येन सत्यार्चनं भवेत् ॥१४

एक बार वह कन्या भोजनाच्छादन के बिना ही एक विप्र के घर में चली गई और वहाँ उसने सत्यनारायण की पूजा को देखा ॥८॥ वह जगन्नाथ की प्रार्थना को जा रही थी तो उसने भी हरि से प्रार्थना की— हे सत्यनारायण देव ! मेरे पिता और स्वामी घर आ जावें तो मैं आपका

अर्चन करूँगी, मैं आप से यही याचना करती हूँ। तब उन ब्राह्मणों ने कहा—ऐसा ही हो जायगा। ऐसा कहे जाने के पश्चात् वह अपने आश्रम को चली गई ॥ ९-१० ॥ तब माता ने उसको फटकार दी कि तू हे शुभे ! इतने लम्बे समय तक कहां रही थी। उस समय उस कन्या ने सत्यनारायण के अर्चन का सब वृत्तान्त सुना दिया था ॥११॥ यह सत्यनारायण इस कलियुग में प्रत्यक्ष फल के देने वाले हैं और सर्वदा नरों के द्वारा यह किये जाते हैं। मैं भी इसका अर्चन करना चाहती हूँ हे माता ! तुम मुझे इसके करने की आज्ञा देने के योग्य होती हो ॥१२॥ मेरे पिता और मेरे स्वामी अपने देश में आजावें यही मेरी कामना है। इस प्रकार से रात में उस कलावती ने ऐसा मन से निश्चय किया और प्रातः काल में वह शीलपाल गुप्त के घर में धन के लिये गई थी। वहाँ उसने उससे कहा—हे बन्धो ! कुछ धन दो जिससे धन दो सत्यनारायण का अर्चन कर लूं ॥१३-१४॥

इति श्रुत्वा शीलपालः पंचनिष्कं धनं ददौ।
त्वत्पितुश्च ऋणं शेषं मयीत्येव कलावती ॥१५
इत्युक्त्वा सोऽनृणो भूत्वा गयाश्राद्धाय संययौ।
सुतापि तेन द्रव्येण कृतं सत्यार्चनं शुभम् ॥१६
लीलावती सह तया भक्त्याकार्षीत्प्रपूजनम्।
पूजनेन विशेषेण तुष्टो नारायणोऽभवत् ॥१७

नर्मदातीरनगरे नृपः सुष्वाप मंदिरे।
रात्रिशेषे सुपर्यंके निद्रां कुर्वति राजनि।
उवाच विप्ररूपेण बोधयञ्छ्लक्ष्णया गिरा १८
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र तौ साधू परिमोचय।
अपराधं बिना बद्धौ नो चेच्छं न भवेत्तव ॥१९
इत्येवं भूपतिश्चैव विप्ररूपेण बोधितः।
तदा ह्यन्तर्दधे विष्णुर्विनिद्रो नृपतिस्तदा ॥२०

विस्मितः सहसोत्थाम दध्यौ ब्रह्म सनातनम् ।
सभायां मंत्रिणे राजा स्वप्नहेतुं न्यवेदयत् ।।२१

यह सुनकर उस शीलपाल ने पाँचानिष्क उसे दे दिये और कहा—हे कलावति ! तुम्हारे पिता का इतना ही ऋण मुझ पर शेष रह गया था ।।१५।। यह कह कर उऋण हो कर गया श्राद्ध-करने के लिये गया था । उस पुत्री ने भी उस धन से सत्यनारायण का शुभ अर्चन किया था ।।१६।। उसके साथ लीलावती ने भक्ति पूर्वक सत्यनारायण देव का पूजन किया था । इस विशेष पूजन से भगवान् नारायण तुष्ट हो गये थे । ।।१७।। उधर नर्मदा नदी के तट पर मन्दिर में राजा सो रहा था । जब रात्रि का शेषकाल था उस समय वहाँ राजा पर्यङ्क पर निद्रा करने पर भगवान नारायण एक विप्र के वेश में वहाँ आकर राजा से बोले—हे राजेन्द्र ! उठ जाओ और उन दोनो साधुओं को कारागार से मुक्त करा दो । ये दोनों बिना ही किसी अपराध के बन्द किये गये हैं। यदि उन्हें मुक्त नहीं किया तो आपकी भलाई नहीं होगी ।।१८-१६।। इस प्रकार से वह राजा विप्र के रूप से बोधित किया गया था और फिर भगवान् अन्तर्धान हो गये । तब राजा विनिद्र हो गया अर्थात् जाग गया था ।।२०।। वह राजा बहुत ही विस्मत होकर उठ गया और सहसा उसने सनातन ब्रह्म का ध्यान किया । राजा ने सभा में जाकर मन्त्रियों से स्वप्न कारण निवेदित किया था ।।२१।।

महामन्त्री च भूपालं प्राह सत्येन भो द्विज ।
मयापि दर्शितं स्वप्नं बृद्धविप्रेण बोधितम् ।
अतस्तौ हि समानीय संपृच्छ विधिवन्नृप ।।२२
आनीय साधुं पप्रच्छ सत्यमालंब्य भूपतिः ।
कुत्रत्यौ वां कुलं किं वा वसतिः कस्य वा पुरे ।।२३
रम्ये रत्नपुरे वासो वणिग्जातौ जनिर्मम ।
वाणिज्यार्थं महाराज वाणिज्यं जीविकावतोः ।।२४
मणिमुक्तादि विक्रेतुं क्रेतुं वा तव पत्तने ।
प्राप्तौ दूतैश्च बद्धावां त्वत्समीप मुपागतौ ।।२५

प्रतिकूले विधौ को वा दशां नाप्नोति वै पुमान् ।
विनापराधं राजेन्द्र मणिचौरानवादयन् ॥२६
आवां न चौरौ राजेन्द्र तत्वतस्त्वं विचारय ।
श्रुत्वा तन्निश्चयं ज्ञात्वा तयोर्बंधनकारणम् ॥२७
छेदयित्वा दृढं पाशं लोमशांतिमकारयत् ।
कारयित्वा परिष्कारं भोजयामास तौ नृपः ॥२८

हे द्विज ! तब महामन्त्री ने राजा से कहा—सत्यनारायण ने मुझे भी ऐसा ही स्वप्न दिया है और एक वृद्ध विप्र ने मुझे भी जगाया है। अतएव हे नृप ! उन दोनों को यहाँ लाकर विधिवत् पूछिये ॥२२॥ वहाँ बुलाकर राजा ने साधु से पूछा कि तुम सत्य का अवलम्बन करके ठीक बताओ कि आप कहां के दोनों रहने वाले हैं और आपका कुल कौन सा है तथा किस नगर में निवास स्थान है ॥२३॥ साधु ने कहा—रम्यरत्न-पुर में हमारा निवास स्थान है और वणिक जाति में हमारा जन्म हुआ है। हे महाराज ! वाणिज्य करने के लिए हम यहां आये थे क्योंकि वाणिज्य ही हम दोनों की जीविका है ॥२४॥ मणिमुक्ता आदि को बेचने तथा खरीदने के लिए आपके नगर में ठहरे थे कि आपके दूतों के द्वारा हमको प्राप्तकर बांध लिया गया और आपके समीप में पहुंचा दिया था ॥२५॥ जब विधाता प्रतिकूल होता है तो यह पुरुष किस दुर्दशा को प्राप्त नहीं होता है ? हे राजेन्द्र ! बिना ही किसी अपराध के हमको मणियों के चोर बता दिया था ॥२६॥ हे राजेन्द्र ! हम दोनों चोर नहीं हैं। अब आप तत्व से स्वयं विचार कर लीजिये। यह श्रवण कर उनके निश्चय को समझकर कि उन दोनों के बन्धन का कारण क्या था। राजा ने उनको दृढ़ पाश का छेदन कराकर लोम शान्ति कराई और परिष्कार करके राजा ने उन दोनों को भोजन कराया था ॥२७-२८॥

नगरे पूजयामास वस्त्राभूषणवाहनैः ।
अब्रवीत्पूजितः साधुर्भूपतिं विनयान्वितः ॥२९

कारागारे बहुविध प्राप्तं दुःखमतः परम् ।
आज्ञापय महाराज देशं गंतुं कृपानिधे ॥३०
श्रुत्वा साधुवचो राजा प्राह कोशधिकारिणाम् ।
मुद्राभिस्तरणीः सद्यः पूरयाशु मदाज्ञया ॥३१
जामात्रा सहितः साधुर्गीतवादित्रमंगलैः ।
स्वदेशं चलितोऽद्यापि न चक्रे हरिसेवनम् ॥३२
सत्यनारायणो देवः प्रत्यक्षफलदः कलौ ।
स एव तापसो भूत्वा चक्रे साधुविडंबनम् ॥३३
धर्मः किं नौषु ते साधो मामनादृत्य यासिभोः ।
प्रत्युत्तरमदात्साधुः क्षिप नौकाश्च सत्वरम् ॥३४
भोः स्वामिन्मे धनं नास्ति लतापत्रादिपूरितम् ।
नौभिर्गच्छामि स्वस्थानं विरोधे नात्र किं फलम् ॥३५

इसके अनन्तर राजा ने नगर में वस्त्र, भूषण और वाहनादि से पूजा-सत्कार किया। जब साधु इस तरह पूजित हुआ तो वह विनय युक्त हो भूपति से बोला—हे महाराज ! हमने इस कारागार में अनेक प्रकार का दुःख प्राप्त किया था। अब आगे आप हमको आज्ञा प्रदान करें। हे कृपा-निधे ! क्या अब हम अपने देश को जा सकते हैं ? ॥२९-३०॥ यह सुनकर साधु के वचनों के उत्तर में राजा ने कोषाधिकारी से कहा—मेरी आज्ञा से इनकी नौका को मुद्राओं से तुरन्त भर दो ॥३१॥ तब वह साधु अपने जमाई के साथ गीत-वादित्र मङ्गलों से अपने देश को चल दिया था किन्तु अभी तक भी उसने हरि का सेवन नहीं किया था ॥३२॥ सत्य नारायण देव तो इस कलियुग में प्रत्यक्ष फल के प्रदान करने वाले हैं। वही सत्यदेव तापस बनकर आये और उस साधु का विडम्बन किया ॥३३॥ तापस ने कहा—हे साधो ! आपकी नौका में क्या है ? धर्म करो। क्या मेरा अनादर करके ही तुम जा रहे हो। तब साधु ने उत्तर दिया नौका को शीघ्र क्षिप्त करो। हे स्वामिन् ! मेरे पास धन नहीं है। यह नौका तो लता-पत्रादि से भरी हुई है। हम तो नौका से अपने स्थान को जाते हैं। विरोध से यहाँ क्या फल है ॥३४-३५

इत्युक्तस्तापसःप्राह तथास्त्विति वचः क्षणात् ।
धनमंतर्दधे साधोर्लतापत्रावशेषितम् ।।३६

धनं नौकासु नास्तीति साधुश्चिंतातुरोऽभवत् ।
किमिदं कस्य वा हेतोर्धनं कुत्र गतं मम ।।३७

वज्रपाताहत इव भृशं दुःखितमानसः ।
क्व यास्यामि क्व तिष्ठामि किं करोमि धनं कुतः ।।३८

इति मूर्छागतः साधुर्विललाप पुनः पुनः
जामात्रा बोधितः पश्चात्तापसं तं जगाम ह ।।३९

गले वसन मादाय प्रणनाम स तापसम् ।
को भवानिती पप्रच्छ देवो गधर्व ईश्वरः ।।४०

देवदेवोऽथ वा कोऽपि न जाने तव विक्रमम् ।
आज्ञापय महाभाग तद्विडम्बनकारणम् ।।४१

इस प्रकार से कहे हुए उस तापस ने तुरन्त यह वचन कहा—ऐसा ही होवे। उस साधु का सारा धन छिप गया और वहाँ केवल लता-पत्र आदि ही अवशिष्ट रह गये थे ।।३६।। साधु ने देखा कि नौका में धन नहीं है तो वह बहुत ही चिन्तातुर हो गया। यह क्या हुआ और इसका हेतु क्या है जिससे मेरा सारा धन चला गया। यह धन कहाँ चला गया है ।।३७।। वज्रपात से आहत की भाँति वह अत्यन्त ही दुःखी मन वाला हो गया था। मैं कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ और अब क्या करूँ ? यह धन कहाँ गया ।।३८।। इस प्रकार से मूर्छा गत होकर साधु बार-बार विलाप करने लगा। तब उसके जमाई ने उसको समझाया और फिर उसी तापस के पास गया ।।३९।। गले से वस्त्र लगाकर उस साधु ने उस तापस को प्रणाम किया और उससे पूछा आप कौन हैं ? आप कोई देव हैं या गन्धर्व तथा ईश्वर हैं ।।४०।। अथवा आप कोई देवदेव हैं। मैं आपके विक्रम को नहीं जानता हूँ। हे महाभाग ! इस विडम्बना करने के कारण के विषय में अपनी स्पष्ट आज्ञा प्रदान करें कि ऐसा किसलिए हुआ है ।।४१।।

आत्मा चैवात्मनः शत्रुस्तथात्र च प्रियोऽप्रियः ।
त्यज मौढ्यमतिं साधो प्रवादं मा वृथा कृथाः ॥४२
इति विज्ञापितः साधुर्न बुबोध महाधनः ।
पुनः स तापसः प्राह कृपया पूर्वकर्मतः ॥४३
चंद्रचूडो यदानर्च सत्यनारायणं नृपः ।
अनपत्येन सुचिरं पुत्रकन्यार्थिना त्वया ॥४४
प्रार्थितं न स्मृतं ह्येव इदानीं तप्यसे वृथा ।
सत्यनारायणो देवो विश्वव्यापी फलप्रदः ॥४५
तमनादृत्य दुर्बुद्धे कुतः सम्यग्भवेत्तव ।
पुरा लब्धवरं स्मृत्वा सस्मार जगदीश्वरम् ॥४६
सत्यनारायणं देवं तापसं तं ददर्शह ।
प्रणम्य भुवि कायेन परिक्रम्य पुनः पुनः ।
तुष्टाव तापसं तत्र साधुर्गद्गदयागिरा ॥४७

तापस ने कहा—आत्मा ही आत्मा का शत्रु है और तथा वह ही उसका प्रिय या अप्रिय हुआ करता है। हे साधो ! मूढ़ता की मति का त्याग कर दो ! वृथा प्रवाद मत करो ॥४२॥ इस प्रकार से विज्ञापित किया गया भी वह महाधन साधु बोध वाला नहीं हुआ। फिर उस तापस ने कहा—और पूर्व क्रम से कृपा करके समझाया, चन्द्रचूड़ नृप ने जब सत्य नारायण देव की पूजा की थी तब बहुत समय तक सन्तान रहित तूने पुत्र या कन्या का अर्थी होकर प्रार्थना की थी क्या अभी तक तुझे उसका स्मरण नहीं आया ? इस समय वृथा ही इतना दुःखित हो रहा है। सत्यनारायण देव विश्व-व्यापी हैं और फल के प्रदान करने वाले हैं ॥४३-४५॥ हे दुर्बुद्धे ! उस सत्यदेव का अनादर करके कैसे तेरा कल्याण हो सकता है। पहिले प्राप्त वर का स्मरण करके जगदीश्वर का स्मरण किया ॥४६॥ उस तापस को सत्य नारायण देव देखा था तब तो उसको भूमि पर शरीर से दण्डवत् प्रणाम करके बार-बार उस तापस को गद्गद वाणी से साधु वणिक् ने सन्तुष्ट किया था ॥४७॥

सत्यरूपं सत्यसंधं सत्यनारायणं हरिम् ।
यत्सत्यत्वेन जगतस्तं सत्यं त्वां नमाम्यहम् ॥४८
त्वन्मायामोहितात्मानो न पश्यंत्यात्मनःशुभम् ।
दुःखांभोधौ सदा मग्ना दुःखे च सुख मानिनः ॥४९
ढोहं धनगर्वण मदांधीकृतलोचनः ।
मा जाने स्वात्मनः क्षेमं कथं पश्यामि मूढधीः ॥५०
क्षमस्व मम दौरात्म्यं तपो धाम्ने हरे नमः ।
आज्ञापयात्मदास्यं मे येन ते चरणौ स्मरे ॥५१
इति स्तुत्वा लक्षमुद्राः स्थापिताः स्वपुरोधसि ।
गत्वावासं पूजयिष्ये सत्यनारायणं प्रभुम् ॥५२
तुष्टो नारायणः प्राहः वांछा पूर्णा भवेत्तु ते ।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो भुक्त्वा भोगांस्त्वनुत्तमान् ।
अंते सांनिध्यमासाद्य मोदसे त्वं मया सह ॥५३
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः साधूश्च स्वाश्रमं ययौ ।
सप्ताहेन गृहं प्राप्तः सत्यदेवेनः रक्षितः ॥५४
आगत्य नगराभ्याशे प्राहिणोद्द्रुतमाश्रमम् ।
गृहमागत्य दूतोपि प्राह लीलावतीं प्रति ॥५५
जामात्रा सहितः साधुः कृतकृत्यः समागतः ।
सत्यनारायणार्चायां स्थिता साध्वी सकन्यका ॥ ६

साधु वणिक् ने कहा—सत्य प्रतिज्ञा करने वाले, सत्य स्वरूप से युक्त सत्य नारायण हरि को जिसके सत्य से इस जगत् की स्थिति है उस सत्य को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥४८॥ आपकी माया से मोहित आत्मा वाले मानव अपनी आत्मा के शुभ को नहीं देखा करते हैं और सदा दुःख के सागर में निमग्न रहकर दुःख में ही सुख के मानने वाले हैं ॥४९॥ मैं महामूढ़ हूँ जो धन के गर्व से मद द्वारा अन्धे नेत्रों वाला हूँ। आप मेरी इस दुरात्मता को क्षमा करें। मैं मूढ़बुद्धि वाला अपना क्षेम कैसे देख सकता हूँ ॥५०॥ मेरी इस दुरात्मा को क्षमा करें। तपस्या के धाम आपके लिए हे हरे ! मेरा नमस्कार है। अब आप अपनी दासता की मुझे आज्ञा प्रदान

करें जिससे मैं आपके चरणों का स्मरण करूँ ॥५१॥ इस प्रकार से उस साधु ने भगवान् की स्तुति करके अपने पुरोहित के आगे एक लाख मुद्रा रख दी थी कि मैं अपने आवास में पहुँचकर सत्य नारायण प्रभु की पूजा करूँगा ॥५२॥ तब ती नारायण परम तुष्ट होकर बोले—तेरी वाञ्छा पूर्ण होगी। पुत्र-पौत्र से समायुक्त होकर श्रेष्ठ भोगों को भोगकर तू अन्त में मेरे सान्निध्य में पहुँचकर मेरे ही साथ आनन्द प्राप्त करेगा ॥५३॥ यह कह कर विष्णु भगवान् अन्तर्धान हो गये और वह साधु अपने आश्रम को चला गया था। सत्यदेव के द्वारा सुरक्षित होकर एक सप्ताह में वह अपने घर में पहुंच गया था ॥५४॥ अपने नगर के समीप में आकर उसने शीघ्र ही दूत को आश्रम में भेजा था। वह दूत गृह में जाकर लीलावती से बोला—अपने जमाई के साथ साधु कृत होकर आ गए हैं। उस समय में वह साध्वी अपनी कन्या के साथ भगवान् सत्य नारायण की पूजा में स्थित थी ॥५५ ५६॥

पूजाभारं सुतायै सा दत्त्वा नौकांतिकं ययौ।
सखीगणै: परिवृता कृतकौतुकमंगला ॥५७

कलावती त्ववज्ञाय प्रसादं सत्वरा ययौ।
पातुं पतिमुखांभोजं चकोरीव दिनात्यये ॥५८
अवज्ञानात्प्रसादस्य नौकाशंखपतेरथ।
निमग्ना जलमध्ये तु जामात्रा सह तत्क्षणात् ॥५९

मग्नं जामातरं पश्यन्विललाप स मूर्च्छित:।
लीलावती तु तद्दृष्ट्वा मूर्च्छिता विललाप ह ॥६०

तत: कलावती दृष्ट्वा पपात भुवि मूर्च्छिता।
रंभेव वातविहता कान्तकान्तेतिवादिनी ॥६१

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणाकरकौशल।
त्वया विरहिता पत्या निराशा विधिना कृता।
पत्युरर्द्धं गतं कस्मादर्द्धांगं जीवनं कथम् ॥६२

तब यह समाचार सुनकर उसने समस्त पूजा का भार अपनी सुता के सुपुर्द कर दिया और वह नौका के समीप चली गई थी। वह सखीगण के साथ परिवृत होकर कौतुक मङ्गल के करने वाली हो रही थी ॥५७॥ कलावती ने भी सत्य नारायण के प्रसाद को अवज्ञा करके शीघ्रता से वहाँ गमन किया था जिस तरह दिन के अन्त में चकोरी की किरणों को पान करने की इच्छा करती है उसी तरह वह भी अपने पति के मुख कमल को देखने के लिए वहाँ चली गई थी ॥५८॥ सत्यदेव के प्रसाद कीअवज्ञा हो गई करने से शंखपति की नौका तुरन्त जमाई के साथ वहाँ जल में निमग्न ॥५९॥ अपने जामाता को जल में मग्न देखकर वह मूर्च्छित होकर विलाप करने लगा। और लीलावती ने उसे देखकर मूर्च्छित होकर विलाप करना आरम्भ कर दिया था ॥६०॥ इसके अनन्तर कलावती यह देखकर वायु के झोंके से विहता कदली की भाँति "हा कान्त, हा कान्त" यह कहती हुई मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी ॥६१॥ हा नाथ ! हा प्रिय ! हा करुणाकर कौशल ! तुम पति के द्वारा विरहित यह विधा के द्वारा निराश कर दी गई है। जब पति का आधा अङ्ग ही चला गया है तो फिर इस अर्धाङ्ग का जीवन कैसे रह सकता है ॥६२॥

कलावती चारुकशासु कौशला।
प्रवालरक्तांघ्रितलातिकोमला ॥
सरोजनेत्रांबुकणान्विमुंचती
मुक्तावलीभिस्तनकुड्मलांचिता ॥६३
हा सत्यनारायण सत्यसिंधो।
मग्नं हि मामुद्धर तद्वियोगे ॥
श्रुत्वार्तशब्द भगवानुवाच
वचस्तदाकाशसमुद्भवं च ॥६४
साधो कलावती क्षिप्रं मत्प्रसादं हि भोजयेत्।
तत्पश्चादिह संप्राप्य पतिं प्राप्स्यति मा शुचः ॥६५
इत्याकाशे वचः श्रुत्वा विस्मिता तच्चकार सा।
नारायणस्य कृपया पतिं प्राप्ता कलावती ॥६६

तत्रैव साधुः साह्लादो भक्त्या परमया युतः
पूजनं लक्षमुद्राभि सत्यदेवस्य चाकरोत् ॥६७
तेन व्रतप्रभावेन पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
भुक्त्वाभोगान्मुदा युक्तो मृतः स्वर्गपुरं ययौ ॥६८
इतिहासमिमं भक्त्या शृणुयाद्यो हि मानवः ।
सोऽपि विष्णुप्रियतरः कामसिद्धिमवाप्नुयात् ॥६९
इति ते कथितं विप्र व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
कलिकाले परं पुण्यं ब्राह्मणस्य मुखोद्भवम् ॥७०

सूतजी ने कहा—चारु कलाओं में कुशल, प्रवाल के समान लाल चरणों से अत्यन्त कोमल, कलावती अपने कमलों के सदृश नत्रों से जल के कणों को छोड़ती हुई ऐसी प्रतीत होती थी मानो मुक्तावलियों से उसके स्तन कुडमल अंचित हो रहे हैं ॥६३॥ कलावती ने रुदन करते हुए कहा—हे सत्य के समुद्र सत्य नारायण देव ! यति के वियोग में मग्न मेरा उद्धार करो । इस प्रकार के आर्त्तशब्दों को सुनकर भगवान् आकाशवाणी के द्वारा उससे बोले—॥६४॥ हे साधो ! इस कलावती को शीघ्र ही मेरा प्रसाद खिलादो । इसके पश्चात् वह यहां आकर अपने पति को प्राप्त कर लेगी. काई भी चिन्ता मत करो ॥ ६५ ॥ इस तरह के आकाश से उद्भूद वचन को सुनकर विस्मित होकर उसने वही सब किया था और नारायण की कृपा से उस कलावती ने अपने पति को प्राप्त कर कर लिया था ॥ ६६ ॥ वहाँ पर ही बड़े आनन्द से युक्त साधु ने परम भक्ति के भाव से समन्वित होकर एक लक्ष मुद्राओं से सत्य नारायण भगवान् का पूजन किया था ॥ ६७ ॥ उस व्रत के प्रभाव से वह पुत्रों और पौत्रों से समन्वित हो गया । बड़े ही आनन्द के साथ सांसारिक उत्तम भोगों का सुख प्राप्त कर मरने के पश्चात् वह स्वर्गलोक में चला गया था ॥ ६८ ॥ इस परम पावन इतिहास को भक्ति-भाव के साथ जो भी मनुष्य श्रवण करता है वह भी भगवान् विष्णु का अधिक प्रिय हो जाता है और उसकी समस्त कामनाओं की सिद्धि वह प्राप्त कर लिया करता है ॥६९॥ हे विप्र !

मैंने यह समस्त व्रतों में अत्यन्त उत्तम व्रत का वर्णन तुम्हारे आगे कर दिया है। इस कलि काल में ब्राह्मण के मुख से उद्भूत यह परम पुण्य होता है ॥७०॥

॥ पाणिनिमहर्षिवृत्तान्तवर्णनम् ॥

भगवन्सर्वतीर्थानां दानानां किं परं स्मृतम् ।
यत्कृत्वा च कलौ घोरे परां निर्वृतिमाप्नुयात् ॥१
सामनस्य सुतः श्रेष्ठः पाणिनिर्नाम विश्रुतः ।
कणभुग्वरशिष्यैश्च शास्त्रज्ञैः स पराजितः ॥२
लज्जितः पाणिनिस्तत्र गतस्तीर्थान्तरं प्रति ।
स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि संतर्प्य पितृदेवताः ॥३
केदारमुदकं पीत्वा शिवध्यानरोभवत् ।
पर्णाशी सप्तदिवसाञ्जलभक्षस्ततोऽभवत् ॥४
ततो दशदिनान्ते स वायुभक्षो दशाहनि ।
अष्टाविंशद्दिने रुद्रो वरं ब्रूहि वचोऽब्रवीत् ॥५
श्रुत्वामृतमयं वाक्यमस्तौद्गद्गदया गिरा ।
सर्वेशं सर्वलिंगेशं गिरिजावल्लभं हरम् ॥६

इस अध्याय में महर्षि पाणिनि के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। शौनकादि ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! समस्त तीर्थों और अनेक दानों में सबसे परम श्रेष्ठ कौन सा तीर्थ या दान कहा गया है। जिसे करके इस महान् घोर कलियुग में मानव परम निर्वृति को प्राप्त कर लेवे ॥१॥ सूतजी ने कहा—सामन ऋषिका पुत्र परम श्रेष्ठ पाणिनि नाम वाला विश्रुत हुआ था। वह एकबार काणभुग्वर के शिष्यों के द्वारा जोकि बहुत ऊँचे शास्त्रों के ज्ञाता थे, पराजित कर दिया गया था ॥२॥ तब पाणिनि परम लज्जित होकर वहाँ से तीर्थान्तरों को चला गया था। समस्त तीर्थों में उसने स्नान किया और पितृगण तथा देवगण को संतृप्त किया था। फिर उसने केदार उदक का पान कर

शिव के ध्यान में तत्परता की थी। सात दिन तक पत्तों का ही अशन किया और इसके अनन्तर जल का भक्षण करने वाला रह कर समय व्यतीत किया। फिर दश दिन के पश्चात् दश दिन तक केवल वायु का ही भक्षण करके रहा था। अट्ठाईसवें दिन में रुद्रदेव सामने जाकर पाणिनि से बोले—वर माँग ले ॥३-५॥ ऐसे अमृतमय रुद्र के वचनों को सुनकर उसने गद्गद् वाणी से उनका स्तवन किया जोकि सबके ईश,समस्त लिङ्गों के स्वामी और गिरिजा पार्वती के वल्लभ हर हैं ॥६॥

नमो रुद्राय महते सर्वेशाय हितैषिणे।
नन्दीसंस्थाय दवाय विद्याभयकराय च ॥७
पापान्तकाय भर्गाय नमोनन्ताय वेधसे।
नमो मायाहरेशाय नमस्ते लोकशंकर ॥८
यदि प्रसन्नो देवेश विद्यामूलप्रदो भव।
परं तीर्थं हि मे देहि द्वैमातुरपितर्नमः ॥९
इति श्रुत्वा महादेवः सूत्राणि प्रददौ मुदा।
सर्ववर्णमयान्येव अइउणादिशुभानि वै ॥१०
ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।
यः प्राप्तो मानसे तीर्थे सर्वतीर्थफलं भजेत् ॥११
मानसं हि महत्तीर्थं ब्रह्मदर्शनकारकम्।
पाणिने ते ददौ विप्र कृतकृत्यो भवान्भव ॥१२
इत्युक्त्वांतर्दधे रुद्रः पाणिनिः स्वगृहं ययौ।
सूत्रपाठं धातुपाठं गणपाठं तथैव च ॥१३
लिंगसूत्रं तथा कृत्वा परं निर्वाणमाप्तवान्।
तस्मात्त्वं भार्गवश्रेष्ठ मानसं तीर्थमाचर ॥१४
यतो याता स्वयं गङ्गा सर्वतीर्थमयी शिवा।
गङ्गातीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥१५

पाणिनि ने कहा—सबके ईश और हित चाहने वाले महान् रुद्रदेव के लिये मेरा नमस्कार है। नन्दी पर स्थित, विद्या और अभय के करने वाले

देव के लिऐ मेरा नमस्कार है । पापों के अन्तक, भर्ग, अनन्त और वेधा के लिए नमस्कार है । हे लोकों के कल्याण करने वाले ! माया हरेश आपके लिए मेरा बार-बार नमस्कार है ॥७-८॥ हे देवेश ! यदि आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हैं तो आप विद्या के मूल प्रदान करने वाले हो जावें । हे द्वै मातु के पिता ! मुझे परम तीर्थ प्रदान कीजिए ॥९॥ सूतजी ने कहा—महादेवजी ने यह सुनकर प्रसन्नता से सूत्रों को प्रदान किया । वे सूत्र सर्व वर्णमय अइउण थे ॥१०॥ ज्ञान के ह्रद में सत्य जिसमें जल है जो कि राग-द्वेष के मल का अपहरण करने वाला है । जो इस मानस तीर्थ में प्राप्त हो गया है उसने समस्त तीर्थों के फल को प्राप्त कर लिया है ॥११॥ मानस सबसे महान् तीर्थ है जो कि ब्रह्म के दर्शन कराने वाला है । हे विप्र ! पाणिनि के लिए उन्होंने उसे दे दिया था । और कहा अब आप कृतकृत्य हो जाओ ॥१२॥ यह कहकर रुद्रदेव अन्तर्धान हो गये और पाणिनि अपने घर को चला गया था । फिर पाणिनि ने अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ तथा लिङ्ग सूत्र की रचना करके परम निर्वाण की प्राप्ति की थी । इसलिये हे भार्गवश्रेष्ठ ! तुम मानस तीर्थ का आचरण करो ॥१३-१४॥ क्योंकि जिससे स्वयं गङ्गा निकली थी जोकि शिवा और सर्व तीर्थमयी है । गङ्गा एक ऐसा तीर्थ है जिससे परम तीर्थ न तो हुआ और न भविष्य में होगा ॥१५॥

———

॥ तोतादरीस्थबोपदेववृत्तान्तवर्णन ॥

तोतादर्यां द्विजा कश्चिद्बोपदेव इति श्रुतः ।
बभूव कृष्णभक्तश्च वेदवेदांगपारगः ॥१
गत्वा वृन्दावनं रम्यं गोपगोपीनिषेवितम् ।
मनसा पूजयामास देवदेवं जनार्द्दनम् ॥२
वर्षान्ते च हरिः साक्षाद्ददौ ज्ञानमनुत्तमम् ।
तेन ज्ञानेन संप्रासाहृदि भागवती कथा ॥३

शुकेन वर्णिता या वै विष्णुराताय धीमते ।
तां कथां वर्णयामास मोक्षमूर्ति सनातनीम् ॥४
कथान्ते भगवान्विष्णुः प्रादुरासीज्जनार्दनः ।
उवाच स्निग्धया वाचा वरं ब्रूहि महामते ॥५
नमस्ते भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक ।
त्वया ततमिदं विश्वं देवतिर्यङ्नरादिकम् ॥६
त्वन्नाम्ना नरकार्ताश्च ते कृतार्थाः कलौ युगे ।
त्वया दत्तं भागवतं श्रीमद्व्यासेन निर्मितम् ।
माहात्म्यं तस्य मे ब्रूहि यदि दत्तो वरस्त्वया ॥७

इस अध्याय में तोतादरीस्थ वोपदेव के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—तोतादरी में वोपदेव नाम धारी कोई द्विज हुआ था वह श्रीकृष्ण का परम भक्त था और वेदों तथा वेदों के अंगों में पारंगत था ॥१॥ वह गोपों और गोपियों से निषेवित रम्य वृन्दावन में गया और वहाँ उसने देवों के देव जनार्दन की मन से पूजा की थी ॥२॥ एक वर्ष के अन्त में हरि ने साक्षात् आकर उसे उत्तम ज्ञान प्रदान किया था । उस ज्ञान से रांग्रास भागवती कथा हृदय में वर्णित हुई । शुकदेव ने जो पहिले विष्णु रात (परीक्षित) से जोकि परम धीमान् था, वर्णित की थी,उसी मोक्ष की मूर्त्ति सनातनी कथा का वर्णन किया था ॥३-४॥ कथा का जब अन्त होगया तो उस समय में भगवान् जनार्दन विष्णु प्रादुर्भूत हुए और परम स्निग्ध वाणी से बोले—हे महामते! वरदान माँगलो ॥५॥ वोपदेव ने कहा—हे भगवन् ! हे विष्णो ! हे लोकों पर अनुग्रह करने वाले ! आपके लिए मेरा नमस्कार है । आपने ही यह सम्पूर्ण देव, तिर्यक् और नर आदि से युक्त विश्व का विस्तार किया है ॥६॥ जो पुरुष नरकों में पीड़ित हो रहे थे वे आपके नाम का स्मरण करने से इस कलियुग में कृतार्थ हो गये हैं । आपने ही श्री मद् व्यास के द्वारा निर्मित भागवत का प्रदान किया है । यदि आपने मुझे वरदान दिया है तो उस भागवत के माहात्म्य का वर्णन करिये ॥७॥

एकदा भगवान्रुद्रो भवान्या सह शङ्कर॥८
बौद्धराज्ये जगत्प्राप्ते डंभपाखण्डनिर्मिते।
दृष्ट्वा काश्यां भूमितुंगं प्रणनाम मुदा युतः।
जय सच्चिदानन्द विभो जगदानन्द कारक॥९
इति श्रुत्वा शिवा प्राह को देवोऽस्ति तवोत्तमः।
स होवाच महादेवि यज्ञः सप्ताहमत्र वै॥१०
तस्माद्भूमि पवित्रत्वमिह प्राप्तं वरानने।
सर्वतीर्थाधिकत्वं च स्वयं ब्रह्म सनातनम्॥११
इति श्रुत्वा शिवा देवी प्राप्तासीद्गुह्यकालयम्।
रुद्रेण सहिता तत्र भूमिशुद्धिमकारयत्॥१२
चण्डीशश्च गणेशश्च नंदिनो गुह एव च।
रक्षार्थे स्थापितास्तत्र देवदेवेन भो द्विज॥१३
शृणु देवि कथां रम्यां मम मानससंस्थिताम्।
इत्युक्त्वा ध्यानमास्थाय सप्ताहेन स्ववर्णयत्॥१४
अष्टाहे नेत्र उन्मील्य दृष्ट्वा निद्रागतां शिवाम्।
बोधयामास भगवान्कथांते लोकशंकरः॥१५

श्रीभगवान् ने कहा—एक बार भगवान् शङ्कर रुद्रदेव ने भवनी के साथ जगत् के दम्भ और पाखण्ड से रचित बौद्धों के राज्य प्राप्त होजाने पर काशी में भूमि तुंग को देखकर बड़े आनन्द के साथ प्रणाम किया था। हे सच्चिदानन्द ! हे विभो ! हे जगत् के आनन्द को करने वाले ! आपकी जय हो ॥८-९॥ यह सुनकर शिवा ने शिव से कहा—यह आप से भी उत्तम कौन से देव हैं। शंकर ने कहा—हे महादेवि! यहाँ पर सप्ताह यज्ञ हुआ है ॥१०॥ इस कारण से यहाँ की भूमि में पवित्रता है। हे वरानने! स्वयं सनातन ब्रह्म समस्त तीर्थों से अधिक होता है ॥११॥ यह श्रवण कर शिवा देवी गुह्यकालय को प्राप्त हुई थी। और वहां रुद्र के साथ उसने भूमि की शुद्धि कराई थी ॥१२॥ हे द्विज ! वहाँ देवों के भी देव ने उसकी रक्षा के लिये चण्डीश, गणेश, नन्दिन, गुह इन सबको स्थापित किया था ॥१३॥ हे देवि ! मेरे मानस में संस्थित एक परम रम्य कथा का तुम

अब श्रवण करो । यह कह कर ध्यान में आस्थित हो सप्ताह में भली-भाँति उसका वर्णन किया था ॥१४॥ आठवें दिन में नेत्रों को खोलकर देखा कि शिवा निद्रागत हो गई हैं । कथा के अन्त में लोक के कल्याण करने वाले शिव ने उनको प्रबुद्ध किया था ॥१५॥

कियती ते श्रुता गाथा श्रुत्वाह जगदंबिका ।
सुधामंथनपर्यंतं चरित्रं शिवयेरितम् ॥१६
कोटरस्थः शुकः श्रुत्वा चिरंजीवत्वमागतः ।
पार्वत्या रक्षितोसौ वै शुकः परमसुन्दरः ॥१७
स्थित्वा शिवस्य सदने मम ध्यानपरोऽभवत् ।
ममाज्ञया शुकः साक्षात्त्वदीयहृदयस्थितः ॥१८
तेन प्राप्तं भागवतं माहात्म्यं चास्य दुर्लभम् ।
त्वं वै गंधर्वसेनाय पित्रे विक्रमभूपतेः ॥१९
नर्मदाकूलमासाद्य श्रावयस्वं कथां शुभाम् ।
हरिमाहात्म्यदानं हि सर्वदानपरं स्मृतम् ॥२०
सत्पात्राय प्रदातव्यं विष्णुभक्ताय धीमते ।
बुभुक्षितान्नदानं च तद्दानस्य समं न हि ॥२१
इत्युक्त्वांदधे देवो बोपदेवः प्रसन्नधी ॥२२

तुमने कितनी गाथा का श्रवण किया था यह पूछा जाने पर जगदम्बिका ने कहा कि मैंने सुधा के मन्थन पर्यन्त कथा का श्रवण किया है। वहाँ कोटर में स्थित एक शुक था जो कि इस कथा को सुनकर चिरंजीवत्व को प्राप्त हो गया था । यह शुक परम सुन्दर था अतः पार्वती के द्वारा रक्षित हुआ था । ॥१६-१७॥ शिव के सदन में रहकर यह मेरे ध्यान में परायण हो गया और मेरी आज्ञा से शुक साक्षात् तुम्हारे हृदय में स्थित है । उसने इस भागवत को प्राप्त कर लिया है इसका माहात्म्य तो परम दुर्लभ वस्तु है । तू नर्मदा के तट पर जाकर विक्रम भूपति के पिता गन्धर्व सेन के लिए इस शुभ कथा का श्रवण करादे । हरि के माहात्म्य का दान अन्य समस्त दानों से श्रेष्ठ होता है । ऐसा कहा गया है ॥१८-२०॥ यह

किसी सत्पात्र को ही देना चाहिए जो बुद्धिमान् और विष्णु का परम भक्त हो। भूखे को जो अन्न का दान दिया जाता है वह भी इस दान की समानता नहीं करता है ॥२१॥ यह कहकर देव अन्तर्धान हो गये और वोपदेव परम प्रसन्न बुद्धि वाला हो गया ॥२२॥

॥ पतञ्जलिवृत्तान्तवर्णन ॥

चित्रकटे गिरौ रम्ये नानाधातु विचित्रिते।
तत्रावसन्महाप्राज्ञ उपाध्यायः पतञ्जलिः ॥१
वेदवेदांगतत्त्वज्ञो गीताशास्त्रपरायणः।
विष्णुभक्तः सत्यसन्धो भाष्यशास्त्र विशारदः ॥२
कदाचित्स तु शुद्धात्मा गतस्तीर्थांतरं प्रति।
काश्यां कात्यायनेनैव तस्य वादो महानभूत् ॥३
वर्षान्ते च तदा विप्रो देवीभक्तेन निर्जितः।
लज्जितः स तु धर्मात्मा संतुष्टाव सरस्वतीम् ॥४
नमो देव्यै महामूर्त्यै सर्वमूर्त्यै नमो नमः।
शिवायै सर्वमांगल्यै विष्णुमाये च ते नमः ॥५
त्वमेव श्रद्धा बुद्धिस्त्वं मेधा विद्या शिवंकरी।
शांतिर्वाणी त्वमेवासि नारायणि नमोनमः ॥६
इत्युक्ते सति विप्रे तु वागुवाचाशरीरिणी।
विप्रोत्तम चरित्रं मे जप चैकाग्रमानसः ॥७
तच्चरित्रप्रभावेण सत्यं ज्ञानमवाप्स्यसिः।
कात्यायनस्य विप्रस्य राजसंज्ञानमुद्धतम्।
मद्भक्त्या तेन संप्राप्तं पराजय पतञ्जले ॥८

इस अध्याय में व्याकरण के महाभाष्यकार पतञ्जलि के वृत्तान्त वर्णन में सप्तशती के उत्तम चरित्र के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है।

सूतजी ने कहा—परम रम्य चित्रकूट गिरि पर जो कि नाना प्रकार की धातुओं से विचित्रत था वहाँ महान् प्राज्ञ उपाध्याय पतञ्जलि निवास किया करते थे ॥१॥ पतञ्जलि समस्त वेद और उन वेदों के अंग शास्त्रों के तत्त्वों के ज्ञाता थे एवं गीता शास्त्र में परायण,सत्य प्रतिज्ञा वाले,विष्णु के परम भक्त और भाष्य शास्त्र के महान् पण्डित थे ॥२॥ किसी समय में शुद्ध आत्मा वाला वह तीर्थान्तर की ओर गये थे । तब काशी में कात्यायन नामधारी विद्वान के साथ उनका महान वाद अर्थात् शास्त्रार्थ हुआ था ॥३॥ वर्ष के अन्त में वह विप्र देवी के भक्त के द्वारा जीत लिया गया था । वह धर्मात्मा तब तो बहुत ही लज्जित हुआ और उसने सरस्वती देवी को प्रसन्न किया था ॥४॥ पतञ्जलि ने कहा—महामूर्त्ति देवी के लिये नमस्कार है । सर्वमूर्त्ति के लिये मेरा बार-बार नमस्कार है । हे विष्णुमाये ! शिवा और सर्वमांगली ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥५॥ आप ही श्रद्धा हैं, आप ही बुद्धि हैं और आप ही शिवंकरी विद्या हैं । शान्ति और वाणी भी आप ही हैं । हे नारायणि ! आपको मेरा नमस्कार है ॥६॥ ब्राह्मण के ऐसा कहने पर अशरीरिणी वाक् बोली—हे विप्रोत्तम ! तू एकाग्र मन वाला होकर मेरे चरित्र का जाप कर । उस चरित्र के प्रभाव से सत्य और ज्ञान को प्राप्त कर लेगा । कात्यायन विप्र की उद्धत राज संज्ञान मेरी भक्ति से उसने प्राप्त किया है । हे पतञ्जले ! उसका पराजय करो ॥७-८॥

इति श्रुत्वा वचो देव्या विन्ध्यवासिनि मन्दिरम् ।
गत्वा तां पूजयामास तुष्टाव स्तोत्रपाठतः ॥९

ज्ञानं प्रसादजं विप्रः प्राप्य विष्णुपरायणम् ।
कात्यायनं पराजित्य परां मुदमवापह ॥१०
उर्द्ध पुंड्रं च तिलकं तुलसीकण्ठमालिकाम् ।
कृष्णमन्त्रं च शिवदं स्थापयित्वा गृहेगृहे ॥११
जनेजने तथा कृत्वा महाभाष्यं मुदं रयत् ।
चिरंजीवित्वमगमद्विष्णुमाया प्रसादतः ॥१२

इति ते कथितो विप्र जाप्यानामुत्तमो जपः ।
किमन्यच्छ्रोतुमिच्छंति शौनकाद्या महर्षयः ॥१३
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिदुःखभाग्भवेत् ॥१४
मंगलं भगवान्विष्णुर्मंगलं गरुडध्वजः ।
मंगलं पुंडरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः ॥१५
शुचिर्यो हि नरो नित्यमितिहाससमुच्चयम् ।
शृणुद्धाद्धर्मकामार्थी स याति परमां गतिम् ॥१६

यह वचन सुनकर विन्ध्य वासिनी के मन्दिर में जाकर उसका पूजन किया था और स्तोत्र पाठ से उसको सन्तुष्ट किया था ॥६॥ विप्र ने प्रसादज ज्ञान प्राप्त कर विष्णु परायण कात्यायन को पराजित कर दिया और परम हर्ष की प्राप्ति की थी ॥१०॥ उर्द्ध पुण्ड्र तिलक और तुलसी कण्ठ मालिका तथा कृष्ण मन्त्र जो कि कल्याण का देने वाला है उसने घर-घर में स्थापित कर दिया था और जन-जन में ऐसा करके महाभाष्य को कहा, विष्णु माया के प्रसाद से वह चिरञ्जीवित्व को प्राप्त हो गया था ॥११-१२॥ हे विप्र ! जप करने के योग्यों में जो सर्वोत्तम जाप्य है वही हमने तुमसे कह दिया है । शौनकादि महर्षियों! अब अन्य आप लोग क्या श्रवण करना चाहते हैं ? ॥१३॥ सभी लोग भलाइयाँ देखें और कोई भी दुःख का भोगने वाला न होवे ॥१४॥ भगवान् विष्णु मंगल स्वरूप हैं और गरुड़ ध्वज भी मंगलमय हैं । पुण्डरीकाक्ष मंगल स्वरूप वाले हैं और हरि समस्त मंगलों के स्थान हैं ॥१५॥ जो पवित्र होकर मनुष्य इतिहास समुच्चय का नित्य श्रवण करता है, धर्म काम का इच्छुक वह परम गति को प्राप्त होता है ॥१६॥

॥ जायमानैतिहासिकवृत्तान्तवर्णन ॥

भगवन्विक्रमाख्यानकालोऽयं भवतोदितः ।
शतद्वादशमर्यादो द्वापरस्व समो भुवि ॥१
अस्मिन्काले महाभाग लीला भगवता कृता ।
तामेतां कथयास्मान्वै सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ॥२
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥३
भविष्याख्ये महाकल्पे प्राप्ते वैवस्वतेन्तरे ।
अष्टाविंशद्वापरान्ते कुरुक्षेत्रे रणोऽभवत् ॥४
पांडवैर्निर्जिताः सर्वे कौरवा युद्धदुर्मदाः ।
अष्टादशे च दिवसे पांडवानां जयोऽभवत् ॥५
दिनान्ते भगवान्कृष्णो ज्ञात्वा कालस्य दुर्गतिम् ।
शिवं तुष्टाव मनसा योगरूपं सनातनम् ॥६
नमः शांताय रुद्राय भूतेशाय कपर्दिने ।
कालकर्त्रे जगद्भर्त्रे पापहर्त्रे नमोनमः ॥७

इस अध्याय में जायमान ऐतिहासिक वृतान्त का वर्णन शौनकादि के प्रति सूत जी ने किया है। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! आपने यह विक्रमाख्यान काल बताया है जो भूमि में शतद्वादश मर्याद वाला द्वापर के समान है ॥१॥ हे महाभाग ! इसी समय में भगवान ने लीला की थी। आप उसे हमको बताइये। आप सदा सब कुछ के ज्ञाता हैं ॥२॥ सूतजी ने कहा—नारायण को नर और नरोत्तम का नमस्कार करके फिर देवी सरस्वती को तथा व्यास देव को नमस्कार करके जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए ॥३॥ भविष्याख्य महाकल्प में वैवस्वत मनवन्तर के प्राप्त होने पर अष्टविंशद द्वापर के अन्त में कुरुक्षेत्र में रण हुआ था ॥४॥ युद्ध दुर्मद समस्त कौरव पाण्डवों के द्वारा जीत लिए गये थे। अठारहवें दिन में पाण्डवों की जय हुई थी ॥५॥ दिन के अन्त में भगवान कृष्ण ने काल की दुर्गति को जानकर योगरूप सनातन शिव को मन से तुष्ट किया था ॥६॥

श्री कृष्ण ने कहा—शान्त, रुद्र, कपर्दी भूतों के ईश के लिए नमस्कार है। काल के हर्त्ता, जगत् के हर्त्ता और पापों के हरण करने वाले के लिए बार-बार नमस्कार है ।।७।।

पांडवान्रक्ष भगवन्मद्भक्तान्भूतभीरुकान् ।
इति श्रुत्वा स्तवं रुद्रो नंदियानोपरि स्थितः ।
रक्षार्थं शिबिराणां च प्राप्तवाञ्छूलहस्तधृक् ।।८
तदा नृपाज्ञया कृष्णः स गतो गजसाह्वयम् ।
पांडवाः पंच निर्गत्यसरस्वत्या स्तटेऽवसन् ।।९
निशीथे द्रौणिभोजौ च कृपस्तत्र समाययुः ।
तुष्टूवुर्मनसा रुद्रं तेभ्यो मार्गं शिवोददात् ।।१०
अश्वत्थामा तु बलवाञ्छिवदत्तमसिं तदा ।
गृहीत्वा स जघानाशु धृष्टद्युम्नपुरःसरान् ।।११
हत्वा यथेष्टमगमद्द्रौणिस्ताभ्यां समन्वितः ।।१२
पार्षतस्यैव सूतश्च हतशेषो भयातुरः ।
पांडवान्वर्णयामास यथा जातो जनक्षयः ।।१३
आगस्कृतं शिवं ज्ञात्वा भीमाद्याः क्रोधमूर्च्छिताः ।
स्वायुधैस्ताडयामास देवदेवं पिनाकिनम् ।।१४

हे भगवन ! भूत भीरुक भक्त पाण्डवों की रक्षा करो। यह स्तव श्रवण करके नन्दी के यान वाले अर्थात् नन्दी पर सवार होकर शिव हाथ में त्रिशूल धारण करके शिविरों की रक्षा करने के लिये वहाँ प्राप्त हो गये थे ।।८।। उस समय नृप की आज्ञा से कृष्ण हस्तिनापुर को गये। पाँचों पाण्डव निकल कर सरस्वती नदी के तट पर निवास करते थे ।।९।। अर्ध रात्रि में द्रौणि और भोज तथा कृप वहाँ पर आये। उन्होंने मन से रुद्र का स्तवन किया था। उसके लिये शिव मार्ग दे दिया था। अश्वत्थामा बड़ा बलवान था। उस समय में उसने शिव की प्रदान की हुई तलवार को लेकर शीघ्र ही धृष्टद्युम्नपुरःसरों का हनन कर दिया था ।।१०-११।। द्रौणि ने यथेष्ट हनन करके वह उन दोनों से समन्वित हो गया ।।१२।।

पार्षत का भयातुर सूत ही हत शेष रह गया था। उसने जिस तरह धन की क्षय हुआ वह सब पाण्डवों से वर्णन कर सुना दिया था। शिव को इस प्रकार से आगस्कृत जानकर भीम आदि सब क्रोध से मुच्छित हो गये और अपने आयुधों से वे देवों के देव पिनाकी को मारने लगे थे ॥१३-१४॥

अस्त्रशस्त्राणि तेषां तु शिवदेहे समाविशन् ।
दृष्ट्वा ते विस्मिताः सर्वे प्रजघ्नुस्तलमुष्टिभिः ॥१५
ताञ्छशाप तदा रुद्रो यूयं कृष्णप्रपूजकाः ।
अतोऽस्माभी र्रक्षणीया वधयोग्याश्च वै भुवि ॥१६
पुनर्जन्म कलौ प्राप्य भोक्ष्यते चापराधकम् ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पांडवा दुःखितास्तदा ॥१७
हरिं शरणमाजग्मुरपराधनिवृत्तये ।
तदा कृष्णयुताः सर्वे पांडवाः शस्त्रवर्जिताः ॥१८
तुष्टुवुर्मनसा रुद्रं तदा प्रादुरभूच्छिवः ।
वरं वरयत प्राह कृष्णः श्रुत्वाब्रवीदिदम् ॥१९
शस्त्राण्यस्त्राणि यान्येव त्वदंगे क्षपितानि वै ।
पांडवेभ्यश्च देहि त्वं शापस्यानुग्रहं कुरु ॥२०
इति श्रुत्वा शिवः प्राह कृष्णदेव नमोऽस्तु ते ।
अपराधो न स्वामिन्मोहितोऽहं तवाजया ॥२१

उनके अस्त्र और शस्त्र शिव के देह में प्रवेश कर गये थे। वे सब यह देख कर परम विस्मित हुए और तल मुट्ठियों से हनन करने लगे ॥१५॥ तब उनको रुद्र देव ने शाप दिया था। तुम कृष्ण के प्रपूजक हो अतएव हमारे द्वारा रक्ष करने से योग्य हो और भूमण्डल में वध के योग्य होते हो ॥१६॥ और फिर कलियुग में जन्म प्राप्त करके अपराध को भोगोगे। यह कहकर देव वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे। उस समय पाण्डव लोग परम दुखित हुए थे ॥१७॥ वे अपने अपराध की निवृत्ति के लिये हरि की शरण में आये थे। तब कृष्ण से युक्त होकर समस्त पाण्डव शस्त्रों से रहित हो मन से रुद्र की स्तुति करने लगे। उस समय में रुद्र

प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने कहा—वरदान माँगलो ! तब श्रीकृष्ण ने सुनकर यह कहा ॥१८-१९॥ जो भी आपके अङ्ग में शास्त्र और अस्त्र क्षपित हुए हैं आप उन्हें पाण्डवों को दे देवें और शाप जो आपने दिया है उसका अनुग्रह करें ॥२०॥ यह श्रवण कर शिव ने कहा—हे कृष्ण देव ! आपको मेरा नमस्कार है। हे स्वामिन ! इसमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं है, मैं तो आपकी माया से ही मोहित हो गया था ॥२१॥

तद्वशेन मया स्वामिन्दत्तः शापो भयंकरः ।
नान्यथा वचनं मे स्यादंशावतरणं भवेत् ॥२२
वत्सराजस्य पुत्रत्वं गमिष्यति यधिष्ठिरः ।
बलखानिरिति ख्यातः शिरीषाख्यंपुराधिपः ॥२३
भीमो दुर्वचनाहुष्टो म्लेच्छयोनौ भविष्यति ।
वीरणो नाम विख्यातः स व वनरसाधिपः ॥२४
अर्जुनांशश्च मद्भक्तो जनिष्यति महामतिः ।
पुत्रः परिमलस्य्यैव ब्रह्मानन्द इति स्मृतः ॥२५
कान्यकुब्जे हि नकुलो भविष्यति महाबलः ।
रत्नभानुसुतो सौ वै लक्ष्मणो नाम विश्रुतः ॥२६
सहदेवस्तुबलवाञ्जनिष्यति महामतिः ।
भीष्मसिंह सुतो जातो देवसिंह इति स्मृतः ॥२७
धृतराष्ट्रांश एवासौ जनिष्यत्यजमेरके ।
पृथिवीराज इति स द्रोपदी तत्सुता स्मृता ॥२८

हे स्वामिन् ! उसके वश में आकर ही मैंने ऐसा भयङ्कर शाप दिया था। मेरा कहा हुआ वचन तो अब अन्यथा नहीं होगा अंशावतरण होगा ॥२२॥ युधिष्ठिर वत्सराज के पुत्रत्व को प्राप्त होगा। शिरीषाख्य पुर का स्वामी बलखानि इस नामसे प्रसिद्ध होगा। यह भीम दुर्वचन से दुष्ट म्लेच्छ योनि में उत्पन्न होगा और वीरण इस नाम से विख्यात होकर यह वनरस का अधिप होगा ॥२३-२४॥ अर्जुन का अंश मेरा भक्त महामति

जन्म लेगा। यह परिमल का पुत्र होगा जो ब्रह्मानन्द इस नाम से विख्यात होगा ॥२५॥ कान्यकुब्ज में नकुल महाबल होगा। यह रत्न भानु का पुत्र लक्ष्मण इस नाम वाला प्रसिद्ध होगा ॥२६॥ सहदेव बड़ा बल वाला महामति जन्म ग्रहण करेगा और भीष्म सिंह का पुत्र होगा जिसका नाम देवसिंह होगा ॥२७॥ यह धृतराष्ट्र का ही अंश अजमेर में जन्म ग्रहण करेगा। पृथ्वीराज इस नाम से होगा और द्रोपदी इसकी सुता होगी।२८।

वेला नाम्ना च विख्याता तारकः कर्ण एव हि।
रक्तबीजस्तथा रुद्रो भविष्यति महीतले ॥२९
कौरवाश्च भविष्यन्ति महायुद्धविशारदाः।
पाण्डुपक्षाश्च ते सर्वे धर्मिणो बलशालिनः ॥३०
इति श्रुत्वा हरिः प्राह विहस्य परमेश्वरम्।
मया शक्त्यवतारेण रक्षणीया हि पांडवाः ॥३१
महावती पुरी रम्या मायादेवीविनिर्मिता।
देशराजसुतस्तत्र ममांशो हि जनिष्यते ॥३२
देवकीजठरे जन्मोदयसिंह इति स्मृतः।
आल्हादो मम धामांशो जनिष्यति गुरुर्मम ॥३३
हत्वाग्निवंशजान्भूपान्स्थापयिष्यामि वै कलिम्।
इति श्रुत्वा शिवो देवस्तत्रैवांतरधीयत ॥३४

यह वेला इस नाम से विख्याते होगी। तारक कर्ण ही होगा। तथा रक्त बीज रुद्र महीतल में होगा। और कौरव महायुद्ध में परम पण्डित होंगे। वे सब पाण्डुपक्ष धर्मी और बलशाली होंगे ॥२९-३०॥ सूतजी ने कहा—यह सुनकर हरि हंसकर परमेश्वर से बोले—मेरे द्वारा शक्ति के अवतार से समस्त पाण्डव रक्षा करने के योग्य हैं ॥३१॥ मायादेवी के द्वारा विनिर्मित महावती नाम वाली परम रम्यपुरी होगी और वहाँ पर देवराज का पुत्र मेरा अंश जन्म ग्रहण करेगा ॥३२॥ देवकी के उदर में जन्म लेकर उदयसिंह नाम से कहा जायगा। मेरे धाम का अंश आह्लाद मेरा गुरु जन्म लेगा ॥३३॥ अग्नि वंश में उत्पन्न हुए भूपों को मारकर

कलि को स्थापित करूँगा। यह सुनकर देव शिव वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥३४॥

॥ भरतखण्डस्थाष्टादशराज्यस्थान ॥

प्रातः काले च संप्राप्ते पांडवाः पुत्रशोकिनः।
प्रेतकार्याणि ते कृत्वा भीष्मान्तिकमुपाययुः ॥१
राजधर्मान्मोक्षधर्मान्दानधर्मान्विभागशः।
श्रुत्वायजन्नश्चमेधैस्त्रिभिरुत्तमकर्मभिः ॥२
षट्त्रिंशदब्दराज्यं हि कृत्वा स्वर्गपुरं ययुः।
जनिष्यन्ते तदंशा वै कलिधर्म विवृद्धये ॥३
इत्युक्त्वा स मुनिं सर्वान्पुनः सूतो वदिष्यति।
गच्छध्वं मुनयः सर्वे योगनिद्रावशो ह्यहम्।
चक्रतीर्थे समाधिस्थो ध्यायेऽहं त्रिगुणत्परम् ॥४
इति श्रुत्वा तु मुनयो नैमिषारण्यवासिनः।
योगसिद्धिं समास्थाय गमिस्यंत्यात्मनोन्तिके ॥५
द्वादशाब्दशये कालेऽतीते ते शौनकादयः ॥६
उत्थाय देवखाते च स्नानध्यादिकाः क्रियाः।
कृत्वा सूतान्तिकं गत्वा वदिष्यंति पुनर्वचः ॥७

इस अध्याय में भारत खंडस्थ अठारह राज्यों के स्थानों के विभाग का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—प्रातःकाल होने पर पुत्र के शोक वाले पाण्डव लोग प्रेत का कर्म करके भीष्म पितामह के समाप में थे ॥१॥ उन्होंने विभाग पूर्वक राजधर्म, मोक्षधर्म और दान धर्मो को सुनकर उत्तम कर्म वाले तीन अश्व मेधों के द्वारा यजन किया था ॥२॥ छत्तीस वर्ष पर्यन्त राज्य का शासन करके वे सब स्वर्गपुर को चले गये थे। फिर वे सब अपने अंशों से कलियुग के धर्म की विशेष वृद्धि के लिए उत्पन्न होंगे ॥३॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—उसने मुनि से यह कहकर

पुनः सूत सबको कहेगा। सब मुनि लोग अब जाओ। इस समय मैं योग निद्रा के वशीभूत हो रहा हूँ। चक्रतीर्थ में समाधि में स्थित होकर मैं त्रिगुण से पर का ध्यान कर रहा हूँ ॥४॥ यह सुनकर नैमिषारण्य के निवासी सब मुनिगण योग सिद्धि में समास्थित होकर आत्मा के समीप में जायेंगे ॥५॥ बारह सौ वर्ष काल के व्यतीत हो जाने पर वे शौनकादि ऋषिगण उठे और उठकर देवखात में स्नान ध्यान आदि क्रिया करके सूतजी के समीप में जाकर फिर वचन बोलेंगे ॥६-७॥

विक्रमाख्यानकालोऽयं द्वापरे च शिवाज्ञया।
विनीतान्भगवन्भूमौ तदा तान्नृपतीन्वद ॥८
स्वर्गते विक्रमादित्ये राजानो बहूधाऽभवन्।
तथाष्टादश राज्यानि तेषां नामानि मे शृणु ॥९
पश्चिमे सिंधुनद्यन्ते सेतुबन्धे हि दक्षिणे।
उत्तरे बदरीस्थाने पूर्वे च कपिलान्तिके ॥१०
अष्टादशैव राष्ट्राणि तेषां मध्ये बभूविरे।
इन्द्रप्रस्थं च पांचालं कुरुक्षेत्रं च कापिलम् ॥११
अन्तर्वेदीब्रजथ्यैवाजमेरं मरुधन्व च।
गौर्ज्जरं च महाराष्ट्रं द्राविडं च कलिंगकम् ॥१२
आवंत्यं चोड्डपं वंगं गौडं मागधमेव च।
कौशल्यं च तथा ज्ञेयं तेषां राजा पृथक्पृक् ॥१३
नानाभाषाः स्थितास्तत्र वहुधर्मप्रवर्तकाः।
एवमब्दशतं जातं ततस्ते वै शकादयः ॥१४

ऋषियों ने कहा—द्वापर में शिव की आज्ञा से यह विक्रमाख्यान का काल है। हे भगवान् ! उस समय में भूमि में जो विनीत नृपति थे उनको बतलाइये ॥८॥ सूतजी ने कहा—राजा विक्रमादित्य के स्वर्ग में चले जाने पर बहुत से राजा हुए थे। तथा उनके अष्टादश राज्य हुए थे। अब आप लोग उनके नामों का श्रवण करो ॥९॥ पश्चिम में सिन्धु नदी के अन्त में, दक्षिण में सेतुबन्ध में, और उत्तर में वदरी स्थान में तथा पूर्व कपिल

के समीप में उनके मध्य में अष्टादश हो राष्ट्र हुए थे। उनके नाम इन्द्र-प्रस्थ, पाँचाल, कुरु, क्षेत्र, कापिल, अन्तर्भेदो, ब्रजथ्या, मरुधन्व, गौर्जर, महाराष्ट्र, द्राविड़, कलिङ्ग, आवंत्यं, चोडुप, वंग, गौड, मागध और कौशल्य हैं। इनके पृथक् २ राजा हुए थे ।।१०-१३।। उन राज्यों में अनेक प्रकार की भाषायें थीं और वहाँ पर बहुत से धर्मों के प्रवर्त्तक हुए थे। इस प्रकार से एक सौ वर्ष हो गये। इसके बाद वे शकादि हो गये ।।१४।।

श्रुत्वा धर्मं विनाशं च बहुवृंदैः समन्विताः ।
केचित्तीर्त्वा सिंधुनदीमार्य्यदेशं समागताः ।।१५
हिमपर्वतमार्गेण सिंधुमार्गेण चागमन् ।
जित्वाय्यर्ल्लाँठयित्वा तान्स्वदेशं पुनराययुः ।।१६
गृहीत्वा योषितस्तेषां परं हर्षमुपाययुः ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहनभूपतिः ।।१७
विक्रमादित्यपौत्रश्च पितृराज्यं गृहीतवान् ।
जित्वा शकान्दुराधर्षाश्चीनतैत्तिरिदेशजान् ।।१८
बाह्लीकान्कामरूपांश्च रोमजान्खुरजाञ्छठान् ।
तेषां कोशान्गृहीत्वा च दंडयोग्यानकारयत् ।।१९
स्थापिता तेन मर्य्यादा म्लेच्छार्याणां पृथक्पृथक् ।
सिंधुस्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्य्यस्य चोत्तमम् ।।२०

धर्म के विनाश को सुनकर बहुत से वृन्दों से समन्वित होकर कुछ सिन्धु नदी को पारकर आर्यदेश में आ गये थे ।।१५।। वे हिमालय पर्वत के मार्ग से और सिन्धु मार्ग के द्वारा आये थे। आर्यों को जीतकर उन्हें लूटकर वे फिर अपने देश को पुनः आ गये थे ।।१६।। उनकी स्त्रियों को ग्रहण करके वे परम हर्ष को प्राप्त हुए थे। इसी बीच में वहाँ पर शालिवाहन भूपति हुआ था जोकि राजा विक्रमादित्य का पौत्र था इसने अपने पिता के राज्य को ग्रहण किया था। चीन और तैत्तिर देश में होने वाले दुर्धर्षशकों को इसने

जीत लिया था ॥१७-१८॥ वाह्लिक, कामरूप, रोमज, खुरख शठों पर भी इसने विजय प्राप्त की थी। उन सबके कोशों को ग्रहण करके उन्हें इसने दण्ड के योग्य कर दिया था ॥१९॥ उसने म्लेच्छार्यों की पृथक्-पृथक् मर्यादा स्थापित की थी। आर्य का उत्तम राष्ट्र सिन्धु स्थान इस नाम से जानना चाहिये ॥२०॥

म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना।
एकदा तु शकाधीशो हिमतुंगं समाययौ ॥२१
हूणदेशस्य मध्ये वै गिरिस्थं पुरुषं शुभम्।
ददर्श बलवान्राजा गौरांगं श्वेतवस्त्रकम् ॥२२
को भवानिति तं प्राह स होवाच मुदान्वितः।
ईशपुत्रं च मां विद्धि कुमारीगर्भसंभवम् ॥२३
म्लेच्छधर्मस्य वक्तारं सत्यव्रतपरायणम्।
इति श्रुत्वा नृपः प्राह धर्मः को भवतो मतः ॥२४
श्रुत्वोवाच महाराज प्राप्ते सत्यस्य संक्षये।
निर्मर्यादे म्लेच्छदेशे मसीहोऽहं समागतः ॥२५
ईशामसी च दस्यूनां प्रादुर्भूता भयंकरी।
ईशामसी च दस्यूनां प्रादुर्भूता भयंकरी।
तामहं म्लेच्छतः प्राप्य मसीहत्वमुपागतः ॥२६
म्लेच्छेषु स्थापितो धर्मो मया तच्छृणु भूपते।
मानसं निर्मलं कृत्वा मलं देहे शुभाशुभम् ॥२७
नैगमं जपमास्थाय जपेत निर्मलं परम्।
न्यायेन सत्यवचसा मनसैक्येन मानवः ॥२८

उस महात्मा ने सिन्धु से परे म्लेच्छों का स्थान किया था। एकबार शकों के अधीश हिमतुङ्ग में आया था ॥२१॥ हूण देश के मध्य में गिरि में स्थित शुभ पुरुष को देखा था जोकि बलवान् राजा और अङ्ग वाला और श्वेत वस्त्र वाला था ॥२२॥ उसने आनन्द से युक्त होकर उससे कहा-आप कौन हैं ? उसने उत्तर दिया कि कुमारी के गर्भ से उत्पन्न

मुझको ईश का पुत्र जानिए ॥२३॥ मैं म्लेच्छों के धर्म का वक्ता हूँ और सत्य व्रत का परायण हूँ। यह उत्तर सुनकर राजा ने कहा—आपका धर्म क्या अभिमत है ? ॥२४॥ उसने यह बात सुनकर कहा—हे महाराज ! सत्य का संक्षय प्राप्त होने पर तथा म्लेच्छ देश के मर्यादा से रहित हो जाने पर मसीह मैं आया था ॥२५॥ दस्युओं को भय करने वाली ईशामसी प्रादुर्भूत हुई है। उसको मैंने म्लेच्छ से प्राप्त किया था अतः मैं मसीहत्व को प्राप्त होगया हूँ ॥२६॥ हे भूपते ! मैंने म्लेच्छों में इस धर्म को स्थापित किया है सो आप सुनिए और अपने मन को निर्मल करके तथा देह में शुभाशुभ मल को हटाकर नैगम अर्थात् निगमोक्त जप में आस्थित होकर परम निर्मल का जाप करना चाहिए। मानव को न्याय, सत्य वचन और मन की एकाग्रता से इसे करना चाहिए ॥२७-२८॥

ध्यानेन पूजयेदीशं सूर्यमंडलसंस्थितम् ।
अचलोऽयं प्रभुः साक्षात्तथा सूर्योचलः सदा ॥२९
तत्त्वानां चलभूतानां कर्षणः स समंततः ।
इति कृत्येन भूपाल महीसा विलयं गता ॥३०
ईशमूर्तिर्हृदि प्राप्ता नित्यशुद्धा शिवंकरी ।
ईशामसीह इति च मम नाम प्रतिष्ठितम् ॥३१
इति श्रुत्वा स भूपालो नत्वा तं म्लेच्छपूजकम् ।
स्थापयामास तं तत्र म्लेच्छस्थाने हि दारुणे ॥३२
स्वराज्यं प्राप्तवान्राजा हयमेधमचीकरत् ।
राज्यं कृत्वा स षष्टचब्दं स्वर्गलोकमुपाययौ ॥३३
स्वर्गते नृपतौ तस्मिन्यथा चासीत्तथा शृणु ॥३४

सूर्य मण्डल में संस्थित करने वाले ईश को ध्यान से पूजना चाहिए। यह साक्षात् अर्थात् प्रभु अचल हैं वैसे ही सर्वदा सूर्य भी अचल एवं स्थिर हैं ॥२९॥ चलभूत चलायमान स्वभाव वाले तत्वों का वह सभी ओर से कर्षण करने वाला है। हे भूपाल ! इस कृत्य से मसीहा विलय को प्राप्त होगई ॥३०॥ ईश की मूर्त्ति हृदय में प्राप्त हो गई जोकि नित्य शुद्ध और

शिव करने वाली थी। तब से ईशामसीह यह मेरा नाम प्रतिष्ठित होगया था ॥३१॥ यह श्रवण करके उस भूपाल ने उस म्लेच्छों के पूजक को नमस्कार करके उसको उस दारुण म्लेच्छों के स्थान में स्थापित कर दिया था ॥३२॥ फिर राजा अपने राज्य में प्राप्त होगया था और उसने अश्वमेध यज्ञ किया था। साठ वर्ष पर्यन्त वह राज्य के सुखों का उपभोग करके अन्त में स्वर्गलोक में चला गया था ॥३३॥ उस राजा के स्वर्ग में चले जाने पर जैसा भी कुछ हुआ था उसे अब श्रवण करो ॥३४॥

———

॥ शालिवाहनवंशीयनृपतिवर्णन ॥

शालिवाहनवंशे च राजानो दश चाभवन् ।
राज्यं पंचशताब्दं च कृत्वा लोकान्तरं ययुः ॥१
मर्य्यादा क्रमतो लीना जाता भूमंडले तदा ।
भूपतिर्दशमो यो वै भोजराज इति स्मृतः ।
दृष्ट्वा प्रक्षीणमर्य्यादां बली दिग्विजयं ययौ ॥२
सेनया दशसाहस्त्र्या कालिदासेन संयुतः ।
तथान्यैर्ब्राह्मणैः सार्द्धं सिंधुपारमुपाययौ ॥३
जित्वा गांधारजान्म्लेछा-काश्मीरान्नारवाञ्छठान् ।
तेषां प्राप्य महाकोशं दण्डयोग्यानकारयत् ॥४
एतस्मिन्नन्तरे म्लेच्छ आचर्य्येण समन्वितः ।
महामद इति ख्यातः शिष्यशाखासमन्वितः ॥५
नृपश्चैव महादेवं मरुस्थलनिवासिनम् ।
गंगाजलैश्च संस्नाप्य पंचगव्यसमन्वितैः ।
चंदनादिभिरभ्यर्च्य तुष्टाव मनसा हरम् ॥६

इस अध्याय में शालिवाहन वंश में होने वाले राजाओं का वर्णन किया जाता है। श्रीसूतजी ने कहा—राजा शालिवाहन के वंश में दश राजा हुए थे। उन सबने पाँच सौ वर्ष पर्यन्त राज्य शासन किया था और

अन्त में दूसरे लोक में चलेगये थे ॥१॥ उस समय में इस भूमण्डल में क्रम से मर्यादा लीन हो गई थी। जो इनमें दशम राजा हुआ है वह नाम से भोजराज प्रसिद्ध हुआ था। उसने प्रक्षीण मर्यादा को देखकर परम बल-वान् उसने दिग्विजय करने को गमन किया था ॥२॥ दश सहस्र सेना के साथ तथा कविश्रेष्ठ कालिदास को साथ में लेकर एवं अन्य ब्राह्मणों के सहित वह सिन्धु के पार में प्राप्त हुआ था ॥३॥ वहाँ उस दिग्विजय में उसने गान्धारज, म्लेच्छ, काश्मीर, नारव और शठों को जीतकर उनका बहुत बड़ा कोश प्राप्त करके उन सबको दण्ड के योग्य करा दिया था ॥४॥ इस बीच में आचार्य से समन्वित म्लेच्छ जी महामद इस नाम से प्रसिद्ध था, शिष्यों की शाखाओं से समन्वित होगया था ॥५॥ और नृप ने मरु-स्थल में निवास करने वाले महादेव को पञ्चगव्य से युक्त गंगा के जलों से स्नान कराके तथा चन्दन आदि से अभ्यर्चना करके मन से हर को तुष्ट अर्थात् स्तुत किया था ॥६॥

नमस्ते गिरिजानाथ मरुस्थलनिवासिने।
त्रिपुरासुरनाशाय बहुमायाप्रवर्त्तिने ॥७
म्लेच्छैर्गुप्ताय शुद्धाय सच्चिदानन्दरूपिणे।
त्वं मां ही किंकरं विद्धि शरणार्थमुपागतम् ॥८
इति श्रुत्वा स्तवं देवः शब्दमाह नृपाय तम्।
गंतव्यं भोजराजेन महाकालेश्वरस्थले ॥९
म्लेच्छैस्सुदूषिता भूमिर्वाहीका नाम विश्रुता।
आर्य्यधर्मो हि नैवात्र वाहोके देशदारुणे ॥१०
बभूवात्र महामायी योऽसौ दग्धो मया पुरा।
त्रिपुरो बलिदैत्येन प्रेषितः पुनरागतः ॥११
अयोनिः स वरो मत्तः प्राप्तवान्दैत्यवर्द्धनः।
महामद इति ख्यातः पैशाचकृतितत्परः ॥१२
नागन्तव्यं त्वया भूप पैशाचे देशधूर्तके।
मत्प्रसादेन भूपाल तव शुद्धिः प्रजायते ॥१३

इति भूत्वा नृपश्चैव स्वदेशान्पुनरागमत् ।
महामदश्च तैः सार्द्धं सिंधुतीरमुपापयौ ।।१४

भोजराज ने कहा–हे गिरिजा नाथ ! मरुस्थल में निवास करने वाले, बहुत सी माया में प्रवृत्त होने वाले, म्लेच्छों से रक्षित, शुद्ध और सच्चिदानन्द रूप वाले त्रिपुर असुर के नाशक आपके लिए मेरा नमस्कार है। आप मुझे अपना एक किङ्कर समझिये। मैं आपके शरण में उपस्थित हुआ हूँ ।।७-८।। सूतजी ने कहा—देव ने इस प्रकार से राजा का स्तवन सुनकर राजा के लिये यह शब्द कहा—भोजराज को महा कालेश्वर के स्थल में जाना चाहिए ।।९।। वाहिक नाम से प्रसिद्ध भूमि म्लेच्छों के द्वारा दूषित हो गई है। यहाँ पर आर्य धर्म सर्वथा नहीं है। यह वाहीक देश बहुत ही दारुण है ।।१०।। यहाँ महामायी हुआ था जिसको मैंने पहिले दग्ध कर दिया था। वह त्रिपुर दैत्य के द्वारा भेजा गया यहाँ फिर आगया है ।।११।। अयोनि उसने जोकि दैत्यों के बढ़ाने वाला था, मुझसे वरदान प्राप्त कर चुका है। पैशाच कृतियों के करने में तत्पर वह महामद इस नाम से प्रसिद्ध है ।।१२।। हे भूप ! धूर्तों के देश में जोकि पैशाचिक है तुमको यहाँ नहीं आना चाहिए। हे भूपाल ! मेरे प्रसाद से तेरी शुद्धि हो जायगी ।।१३।। इस प्रकार से कहे जाने पर वह राजा पुनःअपने देशोंमें आगया था और महामद उनके साथ सिन्धुके तीर पर आगया था ।।१४।।

उवाच भूपतिं प्रेम्णा मायामदविशारदः ।
तव देवो महाराज मम दासत्वमागतः ।।१५
ममोच्छिष्टं सभुंजीयाद्यथा तत्पश्य भो नृप ।
इति श्रुत्वा तथा दृष्ट्वा परं विस्मयमागतः ।।१६
म्लेच्छधर्मे मतिश्चासीत्तस्य नृपस्य दारुणे ।।१७
तच्छ्रुत्वा कालिदासस्तु रुषा प्राह महामदम् ।
माया ते निर्मिता धूर्त नृपमोहनहेतवे ।।१८
हनिष्यामि दुराचारं वाहीकं पुरुषाधमम् ।
इत्युक्त्वा स द्विजः श्रीमन्नवार्णजपतत्परः ।।१९

जप्त्वा दशसहस्रं मद्दशांशं जुहाव सः ।
भस्म भूत्वा स मायावी म्लेच्छदेवत्वमागतः ॥२०
भयभीतास्तु तच्छिष्या देशं वाहिकमाययुः ।
गृहीत्वा स्वगुरोर्भस्म मदहीनत्वमागतम् ॥२१

मायामद के परम पण्डित उसने प्रेम के साथ राजा से कहा—हे महाराज ! आपके देव मेरी दासता को प्राप्त हो गये हैं ॥१५॥ हे नृप ! मेरा उच्छिष्ट (भूठा) जैसे ही खालो वैसे ही उसे देख लो। यह सुनकर तथा देखकर वह परम विस्मय को प्राप्त हुआ था । उस राजा की दारुण म्लेच्छ धर्म में वृद्धि हो गई थी ॥१६-१७॥ यह श्रवण करके कालिदास ने क्रोध में भरकर उस महामद से कहा—हे धूर्त्त ! तू ने नृप से मोह न करने के लिए माया रची है ॥१८॥ दुष्ट आचार वाले पुरुषों में अधम को मैं मार डालूँगा । यह कहकर उस श्रीमान् ब्राह्मण ने नवार्ण मन्त्र के जप में तत्परता की थी ॥१९॥ उसने नवार्ण मन्त्र का दश सहस्र जाप किया और उसका दशांश भाग का उसने हवन किया था । वह मायावी भस्म होकर म्लेच्छ देवत्व को प्राप्त हो गया था ॥२०॥ भय से भीत हो कर उसके शिष्य वाहीक देश में आगये थे । उन्होंने अपने गुरु की भस्म को ग्रहण कर लिया था और वे मद होनता को प्राप्त हो गए थे ॥२१॥

स्थापितं तैश्च भूमध्ये तत्रोषुर्मदतत्पराः ।
मदहीनं पुरं जातं तेषां तीर्थं समं स्मृतम् ॥२२
रात्रौ स देवरूपश्च बहुमायाविशारदः ।
पैशाचं देहमास्थाय भोजराजं हि सोऽब्रवीत् ॥२३
आर्य्यधर्म्मो हि ते राजन्सर्वधर्मोत्तमः स्मृतः ।
ईशाज्ञया करिष्यामि पैशाचं धर्मदारुणम् ॥२४
लिंगच्छेदी शिखाहीनः श्मश्रुधारी स दूषकः ।
उच्चालापी सर्वभक्षी भविष्यति जनो मम ॥२५
विना कौलं च पशवस्तेषां भक्ष्या मता मम ।
मुसलेनैव संस्कारः कुशैरिव भविष्यति ॥२६

तस्मान्मुसलवन्तो हि जातयो धर्मदूषकाः ।
इति पैशाचधर्मश्च भविष्यति मया कृतः ॥२७
इत्युक्त्वा प्रययौ देवः स राजा गेहमाययौ ।
त्रिवर्णे स्थापिता वाणी सांस्कृती स्वर्गदायिनी ॥२८

उन्होंने भूमध्य में उस भस्म को स्थापित कर दिया था और मद तत्पर हो कर वे वहाँ पर ही बस गये थे । वह मदहीनपुर हो गया जोकि उनका तीर्थ के समान कहा जाता है ॥२२॥ उस बहुत माया के पण्डित ने देवरूप होकर रात्रि में पैशाचिक देह धारण किया और वह भोजराज से बोला—॥२३॥ हे राजन् ! तुम्हारा यह आर्य धर्म समस्त धर्मों में अति उत्तम है । ईश की आज्ञा से पैशाच दारुण धर्म को मैं करूँगा ॥२४॥ मेरे मनुष्य लिंग के छेदन करने वाले अर्थात् खतना कराने वाले, शिखा (चोटी) से रहित अर्थात् बिना चोटी वाले और दाढ़ी रखने वाले, दूषक, ऊँचे स्वर से आलाप करने वाले और सभी कुछ खाने वाले होंगे ॥२५॥ कौल के बिना समस्त पशु उनके भक्ष्य पदार्थ हैं ऐसा मेरा मत है । मुसल से ही कुशों की भाँति उनका संस्कार होगा ॥२६॥ इससे मुसल वाली धर्म की दूषक उनकी जातियाँ हैं । मेरे द्वारा किया हुआ इस प्रकार का पैशाच धर्म होगा ॥२७॥ यह कहकर वह देव चला गया और राजा अपने स्थान में आ गया था । उसने तीनों वर्णों में स्वर्ग प्रदान कराने वाला साँस्कृती भाषा का स्थापित किया था ॥२८॥

शूद्रेषु प्राकृती भाषा स्थापिता तेन धीमता ।
पचाशदब्दकालं तु राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२९
स्थापिता तेन मर्य्यादा सर्वदेवोपमानिना ।
आर्य्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विंध्यहिमालयोः ॥३०
आर्य्यवर्णाः स्थितास्तत्र विंध्यान्ते वर्णसंकराः ।
नरा मुसलवन्तश्च स्थापिताः सिंधुपारजाः ॥३१
बर्बरे तुषदेशे च द्वीपे नानाविधे तथा ।
ईशामसीहधर्म्माश्च सुरै राज्ञैव संस्थिताः ॥३२

उस धीमान् ने शूद्रों प्राकृती भाषा को ही स्थापित किया था अर्थात् संस्कृत भाषा न बोल कर केवल प्राकृत भाषा ही बोला करते थे क्योंकि उनके लिए राजा ने इसी भाषा की स्थापना की थी। इस राजा न पचास वर्ष के काल पर्यन्त राज्य का शासन किया था। इसके पश्चात् वह दिवंगत हो गया था ॥२६॥ इस राजा ने समस्त देवों की उपमानिनी मर्यादा की स्थापना की थी। विन्ध्य और हिमाचल के मध्य में आर्यावर्त्त परम पुण्य की भूमि है अर्थात् सबसे अधिक पवित्र भूमि है ॥३०॥ वहाँ पर आर्यवर्ण स्थित है और विन्ध्य के अन्त में वर्ण शङ्कर हैं। मुसलवान् नर सिन्धु पारज स्थापित हैं ॥३१॥ बर्वर में तुष देश में तथा नाना प्रकार के द्वीप में ईसामसीह धर्म सुरों के द्वारा आज्ञा से राजा के द्वारा ही संस्थित हैं ॥३२॥

॥भोजराजवंश्यानेकभूपालराज्यवर्णन ॥

स्वर्ग ते भोजराजे तु सप्तभूपास्तदन्वये।
जाताश्चाल्पयुषो मन्दास्त्रिशताब्दान्तरे मृताः ॥१
बहुभूपवती भूमिस्तेषां राज्ये बभूव ह।
वीरसिंहश्च यो भूप. सप्तमः संप्रकीर्तितः ॥२
तदन्वये त्रिभूपाश्च द्विशताब्दान्तरे मृताः।
गंगासिंहश्च यो नृपो दशमः स प्रकीर्तितः ॥३
कल्पक्षेत्रे च राज्यं स्वं कृतवान्धर्मतो नृपः।
अन्तर्वेद्यां कान्यकुब्जे जयचन्द्रो महीपतिः ॥४
इंद्र प्रस्थेनंगपालस्तोमरान्वयसभवः।
अन्ये च बहवो भूपा बभूवुर्ग्रामराष्ट्रपाः ॥५
अग्निवंशस्य विस्तारो बभूव बलवत्तरः।
पूर्वे त कपिलेस्थाने वाही कान्ते तु पश्चिमे ॥६
उत्तरे चीनदेशान्ते सेतुबंधे तु दक्षिणे।
षष्टिलक्षाश्च भूपालाः ग्रामपा बलवत्तराः ॥७

इस अध्याय में भोजराज के वंश में होने वाले अनेक भूपालों के राज्य का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—भोजराज के स्वर्गवासी हो जाने पर उसके वंश में सात राजा हुए थे किन्तु अल्प आयु वाले और मन्द थे जोकि सभी तीन सौ वर्ष के अन्तर में ही मर गए थे ।।१।। उनके राज्य में यह भूमि बहुत भूपों वाली हो गई थी। वीरसिंह नामधारी जो राजा था वह सातवाँ राजा हुआ है ।।२।। उसके वंश में तीन भूप हुए जो दो सौ वर्ष के अन्तर में मृत हो गए थे। गङ्गासिंह जो राजा था वह दशवाँ राजा कहा गया है ।।३।। राजा ने कल्पक्षेत्र में धर्म से अपना राज्य किया था। अन्तर्वेदी में कान्य कुब्ज में जयचन्द्र नामक राजा हुआ था ।।४।। इन्द्रप्रस्थ में अनङ्ग पाल राजा था जो तोमर वंश में पैदा हुआ था। इनके अतिरिक्त बहुत से भूप हुए थे जोकि ग्राम राष्ट्रप थे ।।५।। अग्नि वंश का विस्तार अधिक बलवान् हुआ था। पूर्व में तो कपिल स्थान में और पश्चिम में वाहीकान्त में, उत्तर में चीन देश के अन्त में और दक्षिण में सेतुबन्ध के अन्त में साठ लाख भूपाल अधिक बलवान् ग्रामप हुए हैं ।।६-७।।

अग्निहोत्रस्वकर्तारो गोब्राह्मणहितैषिणः ।
वभूवुर्द्वापरसमा धर्मकृत्यविशारदाः ।।८

द्वापराख्यसमः कालः सर्वत्र परिवर्तते ।
गेहेगेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जनेजने ।।९
ग्रामेग्रामे स्थितो देवो देशेदेशे स्थितो मखः ।
आर्यधर्मकरा म्लेच्छा बभूवु सर्वतोमुखाः ।।१०
इति दृष्ट्वा कलिर्घोरो म्लेच्छया सह भीरुकः ।
निलाद्रौ प्राप्य मतिमान्हरिं शरणमाययौ ।।११
द्वादशाब्दमिते काले ध्यानयोगपरोऽभवत् ।
ध्यानेन सच्चिदानन्दं दृष्ट्वा कृष्णं सनातनम् ।।१२
तुष्टाव मनसा तत्र राधया सहितं हरिम् ।
पुराणमजरं नित्यं वृन्दावननिवासिनम् ।।१३

साष्टांगं दंडवत्स्वामिन्गृहाण ममचेश्वर ।
पाहि मां शरणं प्राप्तं चरणे ते कृपानिधे ।।१४

ये अग्निहोत्र के करने वाले, गौ और ब्राह्मणों के हित चाहने वाले तथा धर्म के कृत्यो के परम पण्डित द्वापर के समान हुए थे ।।८।। द्वापराख्य समान काल सर्वत्र हो परिवर्तित हो गया था । घर-घर में बहुत द्रव्य था और जन-जन में धर्म को चर्चा एवं कार्य थे ।।९।। ग्राम-ग्राम में देवालय स्थित थे और देश-देश में 'मख' होते थे । म्लेच्छ भी सर्वतोमुख होकर आर्यों के धर्म के अनुसार चलने वाले थे ।।१०।। यह उस समय की दशा देखकर घोर कलि म्लेच्छ के साथ परम भीरु हो गया था और नीलगिरी में जाकर उसने भगवान् हरि की शरण की ग्रहण की थी ।।११।। बारह वर्ष तक के समय में वह ध्यानयोग में परायण हो गया था । उसने ध्यान से सच्चिदानन्द सनातन श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त किया और राधा के साथ हरि का वहाँ पर उसने मन से स्तवन किया था जो परम पुराण, अजर, नित्य और वृन्दावन के निवास करने वाले हैं ।।१२-१३।। कलि ने कहा—हे ईश्वर ! हे स्वामिन् ! मेरा साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम ग्रहण कीजिए । हे कृपा की निधि ! आपके चरण में प्राप्त होने वाले और शरण में आये हुए मेरी रक्षा कीजिए ।।१४।।

सर्वपापहरस्त्वं वै सर्वकालकरो हरिः ।
भवान्गौरः सत्ययुगे त्रेतायां रक्तरूपकः ।।१५
द्वापरे पीतरूपश्च कृष्णत्वं मम दिष्टके ।
मत्पुत्राश्च स्मृताम्लेच्छा आर्य्यधर्मत्वमागताः ।।१६
चतुर्गृहं च मे स्वामिन्द्यूतं मद्यं सुवर्णकम् ।
स्त्री हास्यं चाग्निवश्यैश्च क्षत्रियैश्च विनाशितम् ।।१७
त्यक्तदेहस्त्यक्तकुलस्त्यक्तराष्ट्रो जनार्दन
त्वत्पादांबुजमाधाय स्थितोऽहं शरणं त्वयि ।।१८
इति श्रुत्वा स भगवान्कृष्णः प्राह विहस्य तम् ।
भो कले तव रक्षार्थं जनिष्येहं महावतीम् ।।१९

ममांशो भूमिमासाद्य क्षयिष्यति महाबलान् ।
म्लेच्छवंशस्य भूपालान्स्थापयिष्यति भूतले ॥२०
इत्युक्त्वा भगवान्साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत ।
कलिस्तु म्लेच्छया सार्धं परमानंदमाप्तवान् ॥२१

कलि ने कहा—आप तो समस्त पापों के हरण करने वाले हैं और हरि सकल कालों के करने वाले होते हैं। आप सत्य युग में गौर वर्ण वाले थे, त्रेता में रक्त रूप आपका था तथा द्वापर में पीत वर्ण आपने धारण किया था और अब मेरे समय में आप कृष्ण रूप में हैं। मेरे पुत्र म्लेच्छक कहे गये हैं वे भी इस समय आर्य धर्म में आ गये हैं ॥१५-१६॥ हे स्वामिन् ! मेरे द्यूत, मद्य सुवर्ण और स्त्री हास्य ये चार ही तो घर हैं सो अग्निवंश में होने वाले क्षत्रियों ने ये मेरे समस्त विनाशोत कर दिये हैं ॥१७॥ हे जनार्दन ! मैं इस समय देह त्याग ने वाला, कुल का त्याग कर देने वाला और अपने राष्ट्र को छोड़ देने वाला होकर आपके चरण-कमल का आश्रय लेकर आपकी ही शरण में स्थित हो गया हूँ ॥१८॥ यह इस प्रकार की आर्त्त स्तुति को सुनकर भगवान् कृष्ण ने हंसकर उससे कहा—हे कलि ! मैं तेरी रक्षा करने के लिए महावतो में जन्म ग्रहण करूँगा ॥१९॥ मेरा अंश भूमि में प्राप्त होकर महान् बल वालों का क्षय करेगा। फिर म्लेच्छ वंश के राजाओं को भूतल में स्थापित करेगा ॥२०॥ इतना कहकर साक्षात् भगवान् वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। कलि ने फिर म्लेच्छा के साथ परम आनन्द की प्राप्ति की थी ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्र यथा जातं शृणुष्व तत् ।
आभीरी वाक्सरे ग्रामे व्रतपा नाम विश्रुता ॥२२
नवदुर्गाव्रतं श्रेष्ठं नववर्षं चकार ह ।
प्रसन्ना चंडिका प्राह परं वरय शोभने ॥२३
साह तां यदि मे मातर्वरो देयस्त्वयेश्वरि ।
रामकृष्णसमौ बालौ भवेयातां ममान्वये ॥२४

तथेत्युक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तधीयत ।
वसुमान्नाम नृपतिस्तस्या रूपेण मोहितः ॥२५
उद्वाह्य धर्मतो भूपः स्वगेहे तामवासयत् ।
तस्यां जातौ नृपात्पुत्रौ देशराजस्तु तद्वरः ॥२६
आवार्यो वत्सराजश्च शतहस्तिसमो बले ।
जित्वा तौ मागधान्देशान्राज्यवंतौ बभूवतुः ॥२७
शतयत्तः स्मृतो म्लेच्छः शूरो वनरसाधिपः ।
तत्पुत्रो भीमसेनांशो वीरणोभूच्छिवाज्ञया । २८
तालवृक्षप्रमाणेन चोर्ध्व वेगो हि तस्य वै ।
तालनो नाम विख्यातः शतयत्तेन वै कुतः ॥२९
ताभ्यां नृपाभ्यांत च्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
युद्धेन हीनतां प्राप्तस्तालनो बलवत्तरः ॥३०
तदा मैत्री कृता ताभ्यां तालनेन समन्विता ।
जयचंद्रपरीक्षार्थे त्रयः शूराः समाययुः ॥३१

हे विप्र ! इस अन्तर में जैसा भी कुछ हुआ था तुम उसका श्रवण करो। वाक्सर ग्राम में व्रतपा नाम से प्रसिद्ध एक आभीरी हुई थी। उसने परम श्रेष्ठ नवदुर्गा व्रत नौ वर्ष पर्यन्त किया था। तब तो चण्डिका देवी प्रसन्न होकर उससे बोली—हे शोभने ! तू जो चाहे माँग ले ॥२२॥ जो राजा जयचन्द्र के पक्ष में हैं वे भी उसके भय से भूमिराज के लिए उसके मान से सत्कृत दण्ड देते हैं। ॥२३॥ उसने कहा—हे माता ! यदि आप हे ईश्वरि ! प्रसन्न होकर मुझे वरदान देना चाहती हैं तो मैं यही वरदान माँगती हूँ कि राम कृष्ण के समान मेरे वंश में बालक जन्म ग्रहण करें ॥२४॥ ऐसा ही होगा, यह कहकर वह देवी वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई थी। वसुमान् नाम वाला एक राजा था जो उसके रूप से मोहित हो गया था ॥२५॥ उस राजा ने उसके साथ विवाह कर लिया और उसे अपने घर में लाकर रख दिया था। उस राजा से दो पुत्र उत्पन्न हुए। देश राज तो उसका वर था। उनके नाम आवार्य और वत्सराज थे। यह वत्सराज सौ हाथियों के समान बल वाला था। उन

दोनों ने मागध देशों को जीतकर वे राज्य वाले हो गए थे ।।२६-२७।। वनरसाधिप शूर शतयत्त म्लेच्छ कहा गया है । उसका पुत्र भीमसेन का अंश शिव की आज्ञा से वीरण हुआ था ।।२८।। ताल के वृक्ष के प्रमाण से उसका ऊर्ध्व वेग था । अतएव वह तालन, इस नाम से विख्यात हुआ था जोकि शतयत ने किया था ।।२९।। उन दोनो राजाओं का बड़ा भीषण रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था । अधिक बलवान् तालन उस युद्ध से हीनता को प्राप्त हो गया था ।।३०।। तब उन दोनों ने मैत्री करली थी और तालन से युक्त होकर वे तीनों शूरवीर जयचन्द्र को परीक्षा के लिए आये थे ।।३१।।

।। जयचन्द्र तथा पृथ्वीराज की उत्पत्ति ।।

इंद्रप्रस्थेऽनंगपालोनपत्यश्च महीपतिः ।
पुत्रार्थं कारयामास शैवं यज्ञं विधानतः ।।१
कन्यके च तदा जाते शिवभागप्रसादतः ।
चन्द्रकांतिश्च ज्येष्ठा वै द्वितीया कीर्तिमालिनी ।।२
कान्यकुब्जाधिपायैव चन्द्रकान्ति पिताददत् ।
देवपालाय शुद्राय राष्ट्रपालान्वयाय च ।।३
सोमेश्वराय भूपाय शपहानिकुलाय तु ।
अजमेराधिपायैव तया वै कीर्तिमालिनीम् ।।४
जयशर्मा द्विजः कश्चित्समाधिस्थो हिमालये ।
दृष्ट्वा भूपोत्सवं रम्यं राज्यार्थे स्वमनोऽदधत् ।।५
त्यक्त्वा देहं स शुद्धात्मा चंद्रकांत्याः सुतोभवत् ।
जयचंद्र इति ख्यातो बाहुशाली जितेन्द्रियः ।
रत्नभानुश्च संजज्ञे शूरस्तस्यानुजो बली ।।६
स जित्वा गौडवंगादीन्मरुदेशान्मदोत्कटान् ।
दंड्यान्कृत्वा गृहं प्राप्य भ्रात्राज्ञातत्परोऽभवत् ।।७

इस अध्याय में जयचन्द्र पृथ्वीराज की उत्पत्ति के साथ आर्य देश के सम दो भागों के आधिपत्य के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूत जो ने कहा—इन्द्रप्रस्थ में जो अनङ्गपाल राजा था वह सन्तान हीन था। उसने पुत्र की प्राप्ति करने के लिये एक शैव यज्ञ को विधि-विधान के साथ कराया था ॥१॥ शिवभाग के प्रसाद से उस समय उसके दो कन्याऐं उत्पन्न हुई थीं। जो उन दोनों कन्याओं में ज्येष्ठ थी उसका नाम चन्द्र-कान्ति था और जो दूसरी छोटी थी उसका नाम कीर्तिमालिनी था ॥२॥ पिता ने कान्यकुब्ज देश के राजा को चन्द्रकान्ति का दान किया था। जो शुद्ध, राष्ट्रपाल के वंश वाला, देवपाल चाप हानि कुल वाला अजमेर का अधिप सोमेश्वर राजा था उसको कीर्तिमालिनी का दान किया था ॥३-४॥ उस समय में कोई जयशर्मा नाम का ब्राह्मण हिमालय में समाधि में स्थित था उसने इस परम रम्य भूप के उत्सव को देखकर राज्य के प्राप्त करने का मन में विचार किया था ॥५॥ उसने अपने देह का त्याग कर शुद्धात्मा वह चन्दकान्ति का पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था। वह जयचंद्र इस नाम से ख्यात हुआ जोकि बाहुशाली और इन्द्रियों को जीतने वाला था। उसका छोटा भाई बलवान और शूर रत्न भानु उत्पन्न हुआ था। उसने गौड़वगादि मदोत्कट मरुदेशों को जीतकर उन्हें दण्ड देने के योग्य बनाकर गृह में आया और अपने भाई की आज्ञा में तत्पर होकर रहने लगा ॥६-७॥

गंगासिंहस्य भगिनी नाम्ना वीरवती शुभा।
रत्नभानोश्च महिषी बभूव वरवर्णिनी ॥८
नकुलांशस्तदा भूमौ तस्यां जातः शिवाज्ञया।
लक्षणो नाम बलवान्खड्गयुद्धविशारदः।
स सप्ताब्दान्तरे प्राप्ते पितुस्तुल्यो बभूव ह ॥९
त्रयश्च कीर्तिमालिन्यां पुत्रा जाता मदोत्कटाः।
धुंधकारश्च प्रथमस्ततः कृष्णकुमारकः।
पृथिवीराज एवासौ ततोनुज इति स्मृतः ॥१०

द्वादशाब्दवयः प्राप्तः सिंहखेलस्ततोऽभवत् ।
श्रुत्वाचानंगपालश्च तस्मै राज्यं स्वयं ददौ ।
गत्वा हिमगिरिं रम्यं योगध्यानपरोभवत् ॥११
मथुरायां धुंधकारोऽजमेरे च ततोनुजः ।
राजा बभूवनीतिज्ञस्तौ सुतौ पितुराज्ञया ॥१२
प्रद्योतश्चैव विद्योतः क्षत्रियौ चंद्रवंशजौ ।
मंत्रिणौ तस्य भूपस्य बलवंतौ मदोत्कटौ ॥१३
प्रद्योततनयो जाते नाम्ना परिमलो बली ।
लक्षसेनाधिपः सो हि येन राज्ञैव संस्कृतः ॥१४

गङ्गासिंह की भगिनी नाम से वीरवती थी और बहुत अच्छी थी । वह वर वर्णिनी रत्नभानु राजा की पट्टाभिषिक्ता रानी हुई थी ॥८॥ उसमें शिव की आज्ञा से भूमि में नकुल का अंश उत्पन्न हुआ था । लक्षण नाम वाला अति बलवान खड्गयुद्ध में विशारद वह हुआ था । वह सात वर्ष के अन्तर में अपने पिता ही के समान हो गया था ॥९॥ कीर्त्ति मालिनी में मद से उत्कट तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे । सबसे प्रथम धुन्धकार था । इसके पश्चात कृष्ण कुमार हुआ । यह पृथ्वीराज ही था । इसके पश्चात् अनुज कहा गया है ॥१०॥ जब बारह वर्ष की इसकी अवस्था हुई थी तभी वह सिंहों से खेल करने वाला था । अनङ्गपाल ने यह श्रवण कर उसके लिये स्वयं राज्य दे दिया था । वह फिर हिमालय पर्वत पर जाकर योग के द्वारा ध्यान में अवस्थित हो गया था ॥११॥ मथुरा में धुन्धकार और अजमेर में ततोनुज राजा हुआ था । यह बड़ा नीतिज्ञ था । ये दोनों पुत्र पिता की आज्ञा के पालक हुए थे ॥१२॥ प्रद्योत और विद्योत ये दो चन्द्रवंश में उत्पन्न क्षत्रिय थे जोकि उस राजा के अति बलवान महोत्कट मन्त्री हुए थे ॥१३॥ प्रद्योत के बलवान् परिमल नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था । वह एक लाख सेना का स्वामी था जोकि उसी राजा के द्वारा संस्कार युक्त किया गया था ॥१४॥

विद्योताद्भीष्मसिंहश्च गजसेनाधिपोऽभवत् ।
स्वर्गतेऽनंगपाले तु भूमिराजो महीपतिः ॥१५

दृष्ट्वा तान्विप्रियान्सर्वान्निजराज्यान्निराकरोत् ।
प्रद्योताद्याश्च चत्वारः स्वशूरैर्द्विशतैर्युताः ॥१६
कान्यकुब्जपुरं प्राप्य जयचंद्रमवर्णयन् ।
जयचंद्र महीपाल त्वन्मातृष्वसृजो नृपः ॥१७
मातामहस्य ते राज्यं प्राप्तवान्निर्भयो बली ।
न्यायेन कथितोऽस्माभिरर्द्धं राज्यं हि ते स्मृतम् ॥१८
सर्वराज्यं कथं भुंक्षे श्रुत्वा तेन निराकृताः ।
भवन्तं शरणं प्राप्ता यथायोग्यं तथा कुरु ॥१९
इति श्रुत्वा महीपालो जयचंद्र उवाच तान् ।
अश्वसैन्ये मदीये चाधिकारी ते सुतो भवेत् ॥२०
नाम्ना परिमलः शूरस्त्वं मन्मंत्री भवाधुना ।
विद्योतश्च तथा मंत्री गजसैन्ये हि भीष्मकः ॥२१

विद्योत से भीष्म सिह गजो की सेना का स्वामी हुआ था। राजा अनङ्गपाल जिस समय में स्वर्ग वासी हो गये थे तो फिर उनके राज्यासन पर भूमि नामधारी महीपति बैठा था ॥१५॥ उसने अपने जो विप्रिय लोग थे उन सबको अपने राज्य से निराकृत कर दिया था। प्रद्योतादि चार थे किन्तु अपने शूरों के साथ दो सौ से युक्त थे ॥ ६॥ कान्यकुब्ज पुर में जाकर वे जयचन्द का वर्णन करते थे। हे जयचन्द महीपाल ! तुम्हारी मोसी का पुत्र नृप है। उसने तुम्हारे मातामह का ही राज्य प्राप्त किया है और अब वह बलवान् निर्भय हो गया है। यह हमने न्याय युक्त बात कह दी है। इसका आधा राज्य आपका कहा गया है ॥१७-१८॥ वह सम्पूर्ण राज्य को कैसे भोगता है, यह कहा तो इसे श्रवण कर उसने निराकृत कर दिया था। अब हम सब आपके शरण में प्राप्त हुए हैं। आप जैसा भी उचित हो वैसा ही करिये ॥१९॥ यह सुनकर राजा जयचन्द उससे बोला—मेरे अश्वों की सेना में तुम्हारा पुत्र अधिकारी होगा ॥२०॥ परिमल नाम वाला जो शूरवीर है वह इस समय मेरा मन्त्री हो जावे। और विद्योत भी उसी प्रकार का मन्त्री होगा तथा भीष्मक गजों की सेना में होगा ॥२१॥

वृत्त्यर्थं च मया वो वै पुरी दत्ता महावती ।
महीपतेश्च भूपस्य नगरी सा प्रियंकरी ॥२२
इतिश्रुत्वा तु ते सर्वे तथा मत्वा मुमोदिरे ।
महीपतिस्तु बलवान्दुःखात्संत्यज्य तां पुरीम् ॥२३
कृत्वौर्वीयां पुरीमन्यां तत्र वासमकारयत् ।
अगमा मलना चैव भगिन्यौ तस्य चोत्तमे ॥२४
अगमा भूमिराजाय चान्या परिमलायसा ।
दत्ता भ्राता विधानेन परमानन्दमापतुः ॥२५
विवाहांते च भूराजा दुर्गमन्यमकारयत् ।
कृत्वा च नगरीं रम्यां चतुर्वर्णनिवासिनीम् ॥२६
देहली सुमुहूर्तेन दुर्गद्वारे सुरोपिता ।
गता सा योजनान्ते वै वृद्धिरूपा सुकालतः ॥२७

आप लोगों की वृत्ति के लिये मैंने आपको महावती पुरी दे दी है। और महीपती राजा की वह नगरी बहुत ही प्रियङ्करी थी ॥२२॥ यह श्रवण कर वे सब वैसा ही मान कर बहुत ही प्रसन्न हुए थे। महीपति तो बलवान् था किन्तु दुख से उसने उस पुरी का त्याग कर दिया था ॥२३॥ उसने अन्य पुरी को और्वीर्या बनाकर वहाँ पर उसने अपना निवास किया था। उसकी अगमा और मलिना ये अति श्रेष्ठ भगिनी हुईं थीं ॥२४॥ भाई ने अगमा को भूमिराज के लिए दान किया था और दूसरी को परिमल के लिये दे दिया था। विधान पूर्वक दिये जाने पर वे दोनों परम आनन्द को प्राप्त हुईं थीं ॥२५॥ विवाह के अन्त में भूराजा ने अन्य दुर्ग बनवाया था। और उसने चारों वर्णों के निवास किये जाने वाली परम सुन्दर नगरी का निर्माण किया था ॥२६॥ अच्छे मुहूर्त में दुर्ग के द्वार पर देहली को सुरोपित किया था वही सुकाल के अन्त में योजनान्त में वृद्धि रूप हो गईं थी ॥२७॥

विस्मितः स नृपो भूत्वा देहली नाम चाकरोत् ।
देहलीग्राम इति च प्रसिद्धोऽभून्नृपाज्ञया ॥२८

त्रिवर्षांते च भो विप्रा जयचन्द्रो महीपतिः ।
लक्षषोडशसैन्याढ्यस्तत्र पत्रमचोदयत् ॥२९
किमर्थं पृथिवी राज मद्दायं मे न दत्तवान् ।
मातामहस्य वै दायं चार्द्धं मे च समर्पय ॥३०
नो चेन्मच्छस्त्रकठिनैः क्षयं यास्यंति सैनिकाः ।
इति ज्ञात्वा महीराजो विंशल्लक्षाधिपो बली ॥३१
दूतं वै प्रेषयामास राजराजो मदोत्कटः ।
जयचन्द्र महीपाल सावधानं शृणुष्व तत् ॥३२
यदा निरां कृता धूर्ता मया तै चंद्रवंशिनः ।
ततः प्रभृति सेनाङ्गं विंशल्लक्षं समाहृतम् ॥३३
त्वया षौडशलक्षं च युद्धसैन्यं समाहृतम् ।
सर्वं वै भारते भूपा दडयोग्याश्च मे सदा ॥३४

उस राजा ने विस्मित होकर उसका नाम देहली ही रख दिया था। वह राजा की आज्ञा से देहली ग्राम ऐसा प्रसिद्ध हो गया था ॥२८॥ हे विप्रगण ! तीन वर्ष के अन्त में राजा जयचन्द्र सोलह लाख सेना से युक्त होगया था और उसने एक पत्र प्रेरित किया था ॥२९॥ पत्र में यह आशय था कि हे पृथ्वीराज ! किस लिये तुमने मेरा दाय मुझे नहीं दिया है। मेरे मातामह का दाय तुम्हारे पास है। उसका आधा भाग मुझे दे दो ॥३०॥ यदि तुमने मेरा आधा भाग नहीं दिया तो मेरे कठिन शस्त्रों के द्वारा तुम्हारे सैनिक क्षय को प्राप्त हो जावेंगे। यह जानकर बीस लाख सेना के स्वामी महा बलवान् महीराज ने अपना महात्कट राजदूत भेजा था। उसने दूत से कहलवाया था कि हे महीपाल जयचन्द्र ! तुम सावधान होकर यह सुनलो ॥३१-३२॥ जब से मैंने चन्द्रवंश में होने वाले धूर्तों का निराकरण किया था तभी से लेकर मैंने बीस लाख सेना एकत्रित करली है ॥३३॥ आपने भी सोलह लाख सेना बना ली है जोकि युद्ध करने में समर्थ है। भारत में समस्त भूप सदा मेरे दण्ड के योग्य है ॥३४॥

भवान्न दंड्यो बलवान्करं मे दातुमर्हति ।
नो चेन्मत्कठिनैर्बाणैः क्षयं यास्यति सैनिकाः ॥३५

इति ज्ञात्वा तयोर्घोरं वैरं चासीन्महीतले ।
भूमिराजश्च बलवाञ्जयचन्द्रभयार्दितः ॥३६
जयचन्द्रश्च बलवान्पृथिवीराजभीरुकः ।
जयचन्द्रश्चार्यदेशमर्द्धराष्ट्रमकल्पयत् ॥३७
पृथिवीराज एवासौ तदार्द्धं राष्ट्रमानयत् ।
एवं जातं तयोर्वैरमग्निवंशप्रणाशनम् ॥३८

आपको मैंने कभी दण्ड देने के योग्य नहीं बनाया था । आप बलवान् हैं किन्तु अब आप मुझे कर देने के योग्य हैं । अगर ऐसा नहीं किया तो मेरे कठिन बाणों से तुम्हारे समस्त सैनिक क्षय को प्राप्त हो जायेंगे ॥३५॥ यह जानकर उन दोनों में इस भूमण्डल में बड़ा घोर वैर हो गया था । और भूमिराज बलवान था किन्तु जयचन्द के भय से सदा अर्दित रहा करता था ॥३६॥ और बलवान् जयचन्द पृथ्वीराज से डरा हुआ रहता था । जयचन्द ने आर्य देश को अर्ध राष्ट्र बना दिया था ॥३७॥ पृथ्वीराज ही यह था कि उस समय में आधा राष्ट्र ले लिया था इस प्रकार उन दोनों का यह वैर था जो अग्नि वंश का नाश करने वाला हुआ था ॥३८॥

———

॥ संयोगिता स्वयंवर वर्णन ॥

एकदा रत्नभानुर्हि महीराजेन पालिताम् ।
दिशं याम्यां स वै जित्वा तेषां कोशानुपाहरत् ॥१
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा परं विस्मयमागतः ।
रत्नभानोश्च तिलको बभूव बहुविस्तरः ॥२
तिलका नाम विख्याता या तु वीरवती शुभा ।
श्रेष्ठा द्वादशराज्ञीनां जननीं लक्षणस्य वै ॥३
जयचन्द्रस्य भूपस्य योषितः षोडशाभवन् ।
तासां न तनयो ह्यासीत्पूर्वकर्मविपाकतः ॥४

गौडभूपस्य दुहिता नाम्ना दिव्यविभावरी ।
जयचन्द्रस्य महिषी तद्दासी सुरभानवी ।।५
रूपयौवन संयुक्ता रतिकेलिविशारदा ।
दृष्ट्वा तां स नृपः कामी बुभुजे स्मरपीडितः ।।६
तस्यां जाता सुता देवी नाम्ना संयोगिनी शुभा।
द्वादशाब्दवयः प्राप्ता सा बभूव वरांगना ।।७

इस अध्याय में जयचन्द्र की सुता संयोगिनी के स्वयम्बर में पृथ्वीराज की प्रतिमा का संयोगिनी के द्वारा वर्णन किया जाता है । सूत जी ने कहा—एक बार रत्न भानु ने महीराज के द्वारा पालिव याम्य दिशा को जीतकर उनके समस्त कोशों का हरण कर लिया था ।।१।। महीराज ने यह सुनकर बहुत अधिक विस्मय किया था और रत्नभानु का तिलक विस्तार वाला हो गया था ।।२।। जो शुभवीर वती थी वह तिलका के नाम से विख्यात हुई थी । वह बारह रानियों में सब से श्रेष्ठ थी और लक्षण को माता थी ।।३।। जयचन्द राजा की सोलह स्त्रियाँ थीं । उनमें से किसी के भी पूर्व कर्म के वियाक के कारण पुत्र नहीं था ।।४।। गौड़ देश की पुत्री जिसका नाम विभावरी था राजा जयचन्द्र की महिषी थी और उसको दासो का नाम सुराभानवी था ।।५।। यह सुरभानवी दासी रूप और यौवन से सम्पन्न थी । तथा रति की कीढ़ा करने में बड़ी कुशल भी थी । राजा ने उसको देखा और वह उस पर आसक्त हो गया था । उस कामी ने काम से पीड़ित होकर उसका उपभोग किया था ।।६।। उस दासी में परम शुभ संयोगिनी नाम वाली पुत्री ने जन्म ग्रहण किया था । जब वह बारह वर्ष की अवस्था वाली हुई तो वराङ्गना हो गई थी ।।७।।

तस्याः स्वयंवरे राजाह्वयद्भूपान्महाशुभान् ।
भूमिराजस्तु बलवाञ्छ्रुत्वा तद्रूपमुत्तमम् ।।८
विवाहार्थं महश्चासीच्चन्द्रभट्टमवोदयत् ।
मंत्रिप्रवर भो मित्र चन्द्रभट्ट मम प्रिय ।।९

कान्यकुब्जपुरीं प्राप्य मन्मूर्ति स्वर्णनिर्मिताम् ।
स्थापय त्वं सभामध्ये यद्वृत्तांतं तु मे वद ॥१०
इति श्रुत्वा चन्द्रभट्टो भवानीभक्तितत्परः ।
गत्वा तत्र भृगुश्रेष्ठ यथा प्रोक्तस्तथाकरोत् ॥११
स्वयंवरे च भूपाश्च नानादेश्याः समागताः ।
त्यक्त्वा संयोगिनी तान्वै नृपमूर्तिविमोहिता ॥१२
पितरं प्राह कामाक्षी यस्य मूर्तिरियं नृप ।
भविष्यति स मे भर्ता सर्वलक्षणलक्षितः ॥१३
जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा चन्द्रभट्टमुवाच तम् ।
यदि ते भूपतिश्चैव सर्वसैन्यसमन्वितः ॥१४

उस संयोगिनी का स्वयम्बर राजा ने किया था उसमें राजा ने महान् शुभ राजाओं का आह्वान किया था। भूमिराज बड़ा ही बलवान् राजा था। उसने भी उस संयोगिनी के उत्तम रूप के विषय में सुना था। उसके मन में उसके साथ विवाह करने की इच्छा हुई और उसने चन्दभट्ट को प्रेरित किया था कि हे मंत्रि प्रवर ! भो मित्र ! हे चन्दभट्ट ! तुम मेरे प्रिय हो ॥८-९॥ कान्यकुब्ज पुरी में जाकर स्वर्ण से बनाई हुई मेरी मूर्ति की स्थापना करो और सभा के बीच में रखकर तुम मुझे इस वृत्तान्त को बता देना ॥१०॥ यह सुन कर भवानी की भक्ति में तत्पर चन्द्रभट्ट ने यह सुनकर हे भृगु श्रेष्ठ ! वह वहाँ पर गया और जैसा उससे कहा गया था वैसा ही उसने किया था ॥११॥ उस स्वयंवर में अनेक देश के राजा लोग आये थे। संयोगिनी ने उन सबको त्याग दिया और वह उस नृप मूर्त्ति पर मोहित हो गई थी ॥१२॥ उसका माक्षी ने कहा हे नृप ! जिसकी यह मूर्त्ति है वही समस्त लक्षणों से लक्षित मेरा पति होगा ॥१३॥ यह सुनकर जयचन्द्र ने चन्दभट्ट से कहा कि यदि तुम्हारा राजा सब प्रकार की सेना से समन्वित है तो मुझे बताओ ॥१४॥

सञ्जयेद्योगिनीमेतां तर्हि मेऽतिप्रियो भवेत् ।
चन्द्रभट्टस्तु तच्छ्रुत्वा तत्तु सर्वमवर्णयत् ॥१५

पृथिवीराज एवासौ श्रुत्वा सैन्यमचोदयत् ।
एकलक्षा गजास्तस्य सप्तलक्षास्तुरंगमाः ॥१६
रथाः पंचसहस्राश्च धनुर्बाणविशारदाः ।
लक्षाः पदातयो ज्ञेया द्वादशेव महाबलाः ॥१७
राजानस्त्रिशतान्येव महीराजपदानुगाः ।
सार्द्धं द्वाभ्यां च बन्धुभ्यां कान्य कुब्जे नृपोऽगमत् ॥१८
धुन्धुकारश्च तद्बधुर्गजानीकपतिस्सदा ।
हयानीकपतिः कृष्ण कुमारो बलवत्तरः ॥१९
पदातीनां नृपतयः पतयस्तत्र चाभवन् ।
महान्कोलाहलो जातः स्थलीं शून्यामकारयन् ॥२०
विंशत्कोशप्रमाणेन स्थितं तस्य महाबलम् ।
जयचन्द्रस्तु संज्ञाय महीराजस्य चागमम् ॥२१

समस्त सैन्य से समन्वित होकर इस योगिन को सम्यक् प्रकार से वह जीत लेता है तो मेरा अत्यन्त प्रिय हो जायगा । चन्द्रभट्ट ने यह सुनकर वह सब आकर वर्णन कर दिया था ॥१५॥ यह पृथ्वीराज ही था जिसने उसे सुनकर सेना को प्रेरित किया था । उसके एक लाख हाथी थे और सात लाख अश्व थे ॥१६॥ पांच सहस्र रथ थे और धनुर्बाण में विशारद महाबल वाले बारह लाख पदाति थे ॥१७॥ तीन सौ राजा महीराज के पदानुग थे अर्थात् अनुयायी थे । राजा दो भाइयों के साथ कान्य कुब्ज देश में गया था ॥१८॥ धुन्धकार नाम का उसका भाई सदा हाथियों की सेना का अधिपति रहा करता था । अधिक बल वाला कृष्ण कुमार अश्वों की सेना का पति था ॥१९॥ वहाँ पर पदातियों के स्वामी भी राजा ही थे । उस समय महान् कोलाहल हो गया था और स्थली को शून्य कर दिया था ॥२०॥ उसकी बड़ी सेना तीस कोश प्रमाण की भूमि में स्थित थी । तब जयचन्द्र को ज्ञात हो गया था कि महीराज का आगमन हो गया है ॥२१॥

स्वसैन्यं कल्पयामास लक्षषोडशसंमितम् ।
एकलक्षा गजा स्तस्य सप्तलक्षाः पदातयः ॥२२

वाजिनश्चाष्टलक्षाश्च सर्व युद्धविशारदाः ।
द्विशतान्येव राजानः प्राप्तास्तत्र समागमे ॥२३
आगस्कृतं महीराजं मत्वा ते शुल्कवंशिनः ।
युद्धार्थिनः स्थितास्तत्र पुरमागस्कृतं ह्यभूनत् ॥२४
ईशनद्याः परे कूले तद्दोला स्थापिता तदा ।
नाना वाद्यानि रम्याणि तत्र चक्रुर्महारवम् ॥२५
रत्नभानुर्गजानीके रूपानीके हि लक्षणः ।
ताभ्यां सेनापतिभ्यां तौ संगुप्तौ बलवत्तरौ ॥२६
प्रद्योतश्चैव विद्योतो रत्नभानुं ररक्षतुः ।
भीष्मः परिमलश्चैव लक्षणं चन्द्रवंशजा ॥२७
भूपाः दातिसैन्ये च संस्थिता मदविह्वलाः ।
ततोऽश्वासीन्महद्युद्धं दारुणं सैन्यसंक्षयम् ॥२८

राजा जयचन्द्र ने भी उस समय में अपनी सोलह लाख सेना को सज्जित किया था। उसकी सेना में एक लाख हाथी और सात लाख पैदल सैनिक थे। आठ लाख अश्व थे जोकि सब प्रकार के युद्ध में निपुण थे। दो सौ राजा लोग थे जो वहां उस समागम में आये थे ॥२२-२३॥ पृथ्वीराज को अपराधी मानकर शुक्ल वंश वाले वे युद्ध करने की इच्छा वाले वहाँ स्थित हुए थे। उस समय वह पुर भी आगस्कृत हो गया। ॥२४॥ ईशानदी के दूसरे तट पर उस समय उसकी दोलास्थापित की गई थी। अनेक प्रकार के सुन्दर वाद्यों की वहाँ पर महान् ध्वनि हुई थी ॥२५॥ गजों की सेना में रत्नभानु और रूपानीक में लक्षण इन दोनों से नापतियो द्वारा वे दोनों बलवान् संरक्षित थे ॥२६॥ प्रद्योत और विद्योत ने रत्नभानु की रक्षा की थी। चन्द्र वंश में जन्म लेने भीष्म और परिमल ने लक्षण की रक्षा की थी ॥२७॥ पदातियों की सेना में मद से विह्वल भूप संस्थित हो रहे थे। इसके पश्चात् जब दोनों ही ओर की सेनायें एकत्रित हो गई थो तो सैन्य का संक्षय करने वाला बड़ा दारुण युद्ध होने लगा ॥२८॥

हया हयैंमृता जाता गजाश्चैव गजैस्तथा ।
पदातयः पदातैश्च मृताश्चान्ये क्रमाद्रणे ।।२९
भूपैश्च रक्षिताः सर्वे निर्भया रणमाययुः ।
यावत्सूर्यः स्थितो व्योम्नि तावद्युद्धवर्तत ।।३०
एवं पंचदिनं जातं युद्ध वीरजनक्षयम् ।
गजा दशसहस्राणि हया लक्षाणि संक्षिताः ।।३१
पंचलक्षं महीभर्तुर्हतास्तत्र पदातयः ।
राजानो द्वे शते तत्र रथाश्च त्रिशतं तथा ।।३२
कान्यकुब्जाधिपस्यैव गजा नवसहस्रकाः ।
सहस्रैकं रथा ज्ञेयास्त्रिलक्षं च पदातयः ।।३३
एकलक्षं हयास्तत्र मृताः स्वर्गपुरं ययुः ।
षष्ठाहे समनुप्राप्ते पृथिवीराज एव सः ।।३४
दुःखितो मनसा देवं रुद्रं तुष्टाव भक्तिमान् ।
संतुष्टस्तु महादेवो मोहयामास तद्बलम् ।।३५

अश्वों से अश्व और गजों के द्वारा गज तथा पैदल सैनिकों से पदाति सैनिक क्रम से उस रण में मृत हो गये थे ।।२९।। भूपों के द्वारा सुरक्षित सभी निर्भय होकर उस रण में आ गए थे । जब तक सूर्य आकाश में रहता था तब तक बराबर युद्ध होता रहता था । इस प्रकार से पाँच दिन व्यतीत हो गये थे और वीर लोगों के क्षय करने वाला युद्ध बराबर होता रहा था । दश सहस्र हाथी एक लाख घोड़े उस युद्ध में संक्षीण हुए थे ।।३०-३१।। पृथ्वीराज के पाँच लाख पैदल वहाँ पर हत हो गये थे । दो सौ राजा और तीन सौ रथ हत हो गये थे ।।३२।। और जो कान्य कुब्ज देश का राजा था उसके भी नौ हजार हाथी, एक सहस्र रथ, तीन लाख पदाति (पैदल सैनिक) और एक लाख अश्व मर गये और स्वर्ग लोक में प्राप्त हो गए थे । जब छटा दिन हुआ तो वह पृथ्वीराज मन में बहुत दुःखित हुआ था और भक्तिमान् उसने मन से भद्रदेव की स्तुति की थी । उस स्तवन से सन्तुष्ट होकर महादेव ने उसके बल को मोहित कर दिया था ।।३३-३५।।

प्रसन्नस्तु महीराजो गतः संयोगिनीं प्रति ।
दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं मुमोह वसुधाधिपः ॥३६

संयोगिनी नृपं दृष्ट्वा मूर्च्छिता चाभवत्क्षणात् ।
एतस्मिन्नंतरे राजा तद्दोलामनयद्बलात् ॥३७

जगाम देहलीं भूपः सर्वसैन्यसमन्वितः ।
योजनान्ते गते तस्मिन्बोधितास्ते मदोद्भटाः ॥३८

दृष्टानैव तदा दोलां प्रजग्मुर्वेगवत्तराः ।
श्रुत्वा कोलाहलं तेषां महीराजो नृपोत्तमः ॥३९

अर्द्धसैन्यं च संस्थाप्य स्वयं गेहमुपागमत् ।
उभौ तद्भ्रातरौ वीरौ चार्द्धसैन्यसमन्वितौ ॥४०

सूकरक्षेत्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितौ ।
एतस्मिन्नन्तरे सर्वं प्रद्योतादिमहाबलाः ॥४१

स्वसैन्यैः सह संप्राप्य महद्युद्धमकारयन् ।
हया हयैश्च संजग्मुर्गजा अथ गजैः सह ॥४२

तब तो पृथ्वीराज प्रसन्न होकर संयोगिनो के पास गया और उसके परम सुन्दर रूप-लावण्य को देखकर वह राजा मोहित हो गया था ॥३६॥ संयोगिनी भी राजा को देखकर उसी समय मूच्छित हो गई थी । इसी बीच में राजा ने उसकी पालकी को बल से प्राप्त कर लिया था ॥३७॥ समस्त सेना से समन्वित होकर राजा देहली को चला गया था । योजन के अन्त में उसके चले जाने पर मदोद्भरों को होश हुआ ॥३८॥ उसी समय वहाँ संयोगिनी की दोला को न देखकर बड़े वेग से वे पीछे चले थे । उनके कोलाहल को सुनकर नृपोत्तम महीराज ने वहाँ उनसे भिड़ने के लिए अपनी आधी सेना संस्थापित करके स्वयं अपने घर को चला गया था । उसके दोनों वीर भाई आधी सेना से समन्वित थे ॥३९-४०॥ सूकर क्षेत्र में पहुँच कर वे दोनों युद्ध करने के लिए समुपस्थित हो गये थे । इसी अन्तर में प्रद्योत आदि जो महान् बलवान् थे वे सभी अपनी

सेनाओं के साथ वहाँ प्राप्त हो गये थे और उन्होंने महान् युद्ध किया था। घोड़ों से घोड़े और हाथियों से हाथी वहाँ पर भिड़ गये थे ॥४१-४२॥

संकुलश्च महानासीद्दारुणो लोमहर्षणः।
दिनान्ते संक्षयं यातं तयोश्चैव महद्बलम् ॥४३
भलभीताः परे तत्र ज्ञात्वा रात्रिं तमोवृताम्।
प्रदुद्रुवुर्भयाद्वीरा हतशेषास्तु देहलीम् ॥४४
प्रद्योताद्याश्च ते वीरा देहलीं प्रति संययुः।
पुनस्तयोर्महद्युद्धं ह्यभवल्लोमहर्षणम् ॥४५
धुंधुकारश्च प्रद्योतं हृदि बाणैरताडयत्।
त्रिभिश्च विषनिर्धूतैर्मूर्छितः स ममार च ॥४६
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा विद्योतश्च महाबलः।
आजगाम गजारूढो धुंधुकारमताडयत् ॥४७
त्रिभिश्च तोमरैः सोऽपि मूर्छितो भूमि मागमत्।
मूर्छितं भ्रातरं दृष्ट्वा धुंधुकारं महाबलम् ॥४८
तदा कृष्णकुमारोऽसौ गजस्थस्त्वरितो ययौ।
रूपाविष्टश्च तं वीरं भल्लेनैवमताडयत् ॥४९

वह बहुत ही दारुण और रोमाञ्चकारी महान् युद्ध हुआ था। दिन के अन्त में उन दोनों का बल संक्षय को प्राप्त हो गया था ॥४३॥ वहाँ पर अन्धकार आवृत रात्रि को देखकर दूसरे भय से भीत होकर हत शेष वीर देहली को भाग गये थे ॥४४॥ प्रद्योत आदि वे वीर देहली की ओर चल दिए थे। फिर उनका महान् लोमहर्षण युद्ध हुआ था ॥४५॥ धुन्धकार ने प्रद्योत के हृदय में बाणों के प्रहार किए थे और इस प्रकार से विष के बुझे हुए तीन बाणों से वह मूर्च्छित होकर मृत हो गया था ॥४६॥ अपने भाई को मरा हुआ देखकर महान् बलवान् विद्योत आया था और गजारुढ़ उसने धुन्धकार को ताड़ित किया। वह भी तीन तोमरों के द्वारा मूर्च्छित हो गया और भूमि में गिर पड़ा था। महान् बल-शाली अपने भाई धुन्धकार को मूर्च्छित देखकर तब कृष्ण कुमार गज पर

स्थित होकर तुरन्त ही गया था। और रूपाबिष्ट ने उस वीर को भालों के द्वारा ताड़ित किया ॥४७-४९॥

भल्लेन तेन संभिन्नो मृतः स्वर्गपुरं ययौ।
विद्योते निहते तस्मिन्सर्वसैन्यचमूपतौ ॥५०
रत्नाभानुर्महावीरोऽयुध्यत्तेन समन्वितः।
एतस्मिन्नंतरे राजा सहस्त्र गजसंयुतः ॥५१
लक्षणं सहितं ताभ्यां क्रुद्धं तं समयुध्यत।
शिवदत्तावरो राजा भीष्मं परिमलं रुषा ॥५२
रुद्रास्त्रैर्मोहयामासः लक्षणं बलवत्तरम्।
मूर्छितांस्तान्समालोक्य रत्नभानुः शरैर्निजैः ॥५३
धुंधुकारं महीराजं वैष्णवैः सममोहयन्।
कृष्णको रत्नभानुश्च युयुधाते परस्परम् ॥५४
उभौ समबलौ वीरौ गजपृष्ठस्थितौ रणे।
अन्योन्यनिहतौ नागौ खड्गहस्तौ महीतले ॥५५
युयुधातें बहून्मार्गान्कृतवंतौ सुदुर्जयौ।
प्रहरान्तं रणं कृत्वा मरणायोपजग्मतुः ॥५६

इस तरह भाले से वह संभिन्न होकर मृत हो गया और स्वर्गलोक को चला गया था। समस्त सैन्य के चमूपति उस विद्योत के मर जाने पर तब महावीर रत्न भानु ने उससे समन्वित होकर युद्ध किया था। इस बीच में एक सहस्र गजों से संयुक्त होकर राजा ने उन दोनों से क्रुद्ध उससे लक्षण के सहित युद्ध किया था। शिव से वरदान प्राप्त करने वाले राजा ने भीष्म परिमल को रोष से रुद्रास्त्रों के द्वारा बलवत्तर लक्षण को मोहित कर दिया था। उन सबको मूर्च्छित देखकर रत्न भानु ने अपने शरों से जोकि वैष्णव शर थे धुन्धकार महीराज को सम्मोहन करते हुये कृष्णक और रत्न भानु आपस में युद्ध कर रहे थे। ये दोनों वीर समान बल वाले थे और रण भूमि में दोनों ही हाथियों के पीठ पर सवार थे। अन्योन्य के नाग निहत हो गये तो खड्ग हाथ में लेकर भूमि तल में युद्ध कर रहे थे और बहुत समार्गों में युद्ध किया था,दोनों ही सुदुर्जय थे। एक

प्रहर के अन्त तक इन्होंने युद्ध किया और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो गये थे ।।५०-५६।।

हते तस्मिन्महावीर्ये कान्यकुब्जा भयातुराः ।
मूर्छितांस्त्रीन्समादाय पंचलक्षबलैर्युताः ।।५७
रणं त्यक्त्वा गृहं जग्मुर्नृपशोकपरायणाः ।
रत्नभानौ च निहते हतोत्साहाश्च भूमिपाः ।।५८
स्वंस्व निवेशनं जग्मुर्महीराजभयातुराः ।
देवानाराधयामासुर्यथेष्टं ते गृहे गृहे ।।५९
महीराजस्तु बलवान्सप्तलक्षबलान्वितः ।
धुंधुकारेण सहितो बंधुकृत्योर्ध्वमाचरत् ।।६०
तथा भीष्मः परिमलो लक्षणः पितरं स्वकम् ।
गंगाकूले समागम्य चोर्ध्वदैहिकमाचरन् ।।६१
भूमिराजस्य विजयो जयचन्द्रयशा रणे ।
प्रसिद्धमभवद्भूमौ गेहेगेहे जनेजने ।।६२
जयचंद्रः कान्यकुब्जे देहल्यां पृथिवीपतिः ।
उत्सवं कारयित्वा तु परमानन्दमाययौ ।।६३

उस महावीर के मर जाने पर कान्य कुब्ज महान् भय से आतुर हो गए थे । उन तीनों को मूर्च्छित दशा में लेकर पाँच लाख बल से युक्त नृप के शोक में परायण वे रणभूमि को छोड़कर घर को चले गये थे । रत्न-भानु के मर जाने पर राजा लोग हतोत्साह हो गये थे ।।५७-५८।। मही-राज के भय से आतुर वे सब अपने २ घरों में चले गये थे । उन्होने यथेष्ट घर-घर में देवों की आराधना की थी ।।५९।। महीराज तो बलवान् था जो सात लाख सेना के बल से युक्त था । उसने धुन्धकार के सहित बन्धु कृत्य की अर्ध्व क्रिया की थी ।।६०।। उसी प्रकार से भीष्म, परिमल और लक्षण ने अपने पिता को गङ्गा के तट पर आकर उसकी अर्ध्व दैहिक क्रिया की थी ।।६१।। भूमिराज का विजय रण में जयचन्द्र का वंश भूमि पर प्रसिद्ध हो गया था, घर-घर में और जन-जन में प्रसिद्ध था ।।६२।।

कान्य कुब्ज में जयचन्द्र और देहली में पृथ्वीराज ने उत्सव कराके परम आनन्द को प्राप्त किया था ॥६३॥

॥ इन्द्र का वडवादान ॥

भीष्मः सिंहस्थिते गंगाकूले शक्रप्रपूजकः ।
शक्रं सूर्यमयं ज्ञात्वा तपसा समतोषयत् ॥१
मासांते भगवानिंद्रो ज्ञात्वा तद्भक्तिमुत्तमाम् ।
वरं वरय च प्राह श्रुत्वा शूरोब्रवीदिदम् ॥२
देहि मे वडवां दिव्यां यदि तुष्टो भवान्प्रभुः ।
इति श्रुत्वा तदा तस्मै वडवां हरिणीं शुभाम् ॥३
ददौ स भगवानिंद्रस्तत्रैवान्तर्हितोभवत् ॥४
तस्मिन्काले परिमलः पितृशोकपरायणः ।
पार्थिवैः पूजयामास महादेवमुमापतिम् ।
परीक्षार्थे शिवः साक्षात्सर्परोगेण तं ग्रसत् ॥५
व्यतीते पंचमे मासे नृपः शक्तिविवर्जितः ।
न तत्याज महापूजां महाक्लेशसमन्वितः ॥६
मरणाय ययौ काशीं स्वपत्न्या सहितो नृपः ।
उवास वटमूलांते रात्रौ रोगप्रपीडितः ॥७

इस अध्याय में भीष्मराज की तपस्या से सन्तुष्ट इन्द्रदेव के द्वारा उसके लिये वडवा के दान का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—गङ्गा के तट पर भीष्मसिंह के स्थित होने पर शक्र की पूजा करने वाले उसने शक्र को सूर्यमय जानकर तप के द्वारा उसको सन्तुष्ट किया था ॥१॥ एक मास के अन्त में भगवान् इन्द्र ने उसकी सर्वोत्तम भक्ति को समझकर, आकर उससे कहा—वरदान माँग ले, यह सुनकर उस शूर ने यह कहा ॥२॥ यदि आप मुझ पर पूर्ण रूप सन्तुष्ट एव प्रसन्न होकर मुझे वरदान देना चाहते हैं तो दिव्य वडवा मुझे प्रदान कीजिए। यह श्रवण

करके उस समय उस इन्द्र ने परम शुभहरिणी वडवा को उसे दे दिया था ॥३॥ उस समय में परिमल अपने पिता के शोक में परायण था। उसने पार्थिव विधि से उमा के पति महादेव की पूजा की थी। परीक्षा के लिये शिव ने उसे साक्षात् सर्प रोग से ग्रस लिया था ॥४-५॥ पाँचवाँ मास व्यतीत हो जाने पर राजा शक्ति से वर्जित होगया था किन्तु महान् क्लेश से युक्त होकर भी उसने उस महा पूजा का त्याग नहीं किया था ॥६॥ अपनी पत्नी के साथ राजा मरण के लिये काशीपुरी में चला गया था। वहाँ वटमूल के अन्त में रात्रि में रोग से प्रपीड़ित होकर रह गया था ॥७॥

एतस्मिन्नन्तरे कश्चित्पन्नगो मूलसंस्थितः।
शब्दं चकार मधुरं श्रुत्वा रुद्राहिरायर्यौ ॥८
रुद्राहिं पन्नगः प्राह भवान्निदय मन्दधीः।
शिवभक्तं नृपमिमं पीडयेत्प्रत्यहं खलः ॥९
मूर्खोऽयं भूपतिः साक्षादारनालं पिबेन्नहि।
इति श्रुत्वा स रुद्राहिराह रे पन्नगाधम ॥१०
राज्ञौ देहे परं हर्षं प्रत्यहं प्राप्तवाहनम्।
स्वगेहं दुःखतस्त्याज्यं कथं त्याज्य मया शठ ॥
मूर्खोत्र भूपतिर्यो वै तैलोष्णं यन्न दत्तवान्।
इत्युक्त्वान्तर्गतो देहे श्रुत्वा सा मलना सतो ॥१२
चकार पन्नगोक्तं तद्गतरोगो नृपोऽभवत्।
तैलोष्णं बिलमापूर्य चखान च सती स्वयम् ॥१३
ततो जातं स्वयं लिंगमंगुष्ठाभं सनातनम्।
ज्योतिरूपं चिदानन्दं सवलक्ष्मसमन्वितम् ॥१४

इसी बीच में कोई पन्नग मूल में संस्थित था उसने अपना शब्द किया था। उस मधुर शब्द को सुनकर रुद्र का अहि [सर्प] वहाँ आगया था ॥८॥ उस रुद्र के सर्प को देखकर उस पन्नग ने उससे कहा—आप बहुत निर्दयी और मन्द बुद्धि वाले हैं। शिव के भक्त इसे नृप खल की भाँति नित्य ही पीड़ा दिया करते हैं ॥९॥ रे अधम पन्नग! यह राजा बड़ा मूर्ख

है क्योंकि आर नाल को यह नहीं पीता है, यह उस रुद्र के सर्प ने पन्नग की बात सुनकर कहा था ॥१०॥ राजा के शरीर में मैंने नित्य परम हर्ष प्राप्त किया है। अपना घर तो बड़े ही दुःख से त्याज्य होता है। हे शठ ! मेरे द्वारा यह कैसे त्यागा जा सकता है ॥११॥ यह भूपति मूर्ख है जिसने कि तैलोष्ण नहीं दिया था। यह कहकर वह देह में अन्तर्गत होगया था। उस मलना सती ने यह श्रवण किया था ॥१२॥ उसने सब सुनकर उस पन्नग के द्वारा कहा हुआ किया तो नृप गत रोग होगया था अर्थात् उसकी समस्त पीड़ा शान्त हो गई थी। उष्ण तैल से विल को आपूरित करके सती ने स्वयं खोदा था। तब तो वहां से अंगुष्ठाभ एक सनातन लिङ्ग उत्पन्न हुआ था। यह लिङ्ग ज्योति रूप चिदानन्द और समस्त लक्षणों से समन्वित था ॥१३-१४॥

निशीथे तम उद्भूते दिक्षु सूर्यत्वमागतम्।
दृष्ट्वा स विस्मितो राजा पूजयामास शङ्करम् ॥१५
महिम्नस्तवपाठैश्च तुष्टाव गिरिजापतिम्।
तदा प्रसन्नो भगवान्वरं ब्रूहि तमब्रवीत् ॥१६
श्रुवाह नृपतिर्दे यदि तुष्टो महेश्वर।
श्रीपतिर्मे गृहं प्राप्य वसेन्मत्प्रियकारकः ॥१७
तथेत्युक्त्वा महादेवो लिंगरूपत्वमागतः।
प्रत्यहं भारमेकं च सुवर्णं सुषुवे तनोः ॥१८
तदा मलस्तु संतुष्टः प्राप्तो गेहं महावतीम्।
भीष्मसिंहेन सहितः परमानंदमाययौ ॥१९
ततःप्रभृति वर्षांते जयचद्रपुरीं ययो।
दृष्ट्वा पारमलं राजा कृतकृत्यत्वमागतः ॥२०
दिष्ट्या ते संक्षिता रोगो दिष्टया ते दर्शितं मुखम्।
भवान्निजपुरीं प्राप्य सुखी भवतु मा चिरम् ॥२१

आधी रात में अन्धकार के उत्पन्न होने पर दिशाओं में सूर्यत्व आगया था। उस राजा को यह देखकर बहुत विस्मय हुआ और उसने शङ्कर की पूजा की थी ॥१५॥ महिम्न स्तोत्र के पाठों के द्वारा उसने गिरिजा के

पति का स्तवन किया था। तब तो भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न होकर उससे बोले—वर माँग लो ॥१६॥ यह सुनकर राजा ने देव से कहा—हे महेश्वर ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो यह वरदान दीजिए कि श्रीपति स्वयं मेरे घर में प्राप्त होकर मेरे प्रिय के करने वाले हो जावें ॥१७॥ ऐसा ही होगा—यह कहकर फिर महादेव लिङ्ग रूपत्व में प्राप्त होगये थे। वे प्रतिदिन एक भार सुवर्ण अपनी तनु से प्रसूत किया करते थे ॥१८॥ तब तो मल परम सन्तुष्ट होकर महावती को अपने घर में प्राप्त होगया था। भीष्मसिंह के साथ वह परम आनन्द को प्राप्त हुआ था ॥१९॥ तब से लेकर वर्ष के अन्त में जयचन्द्र की पुरी को गया। राजा ने परिमल को देखा और वह कृतकृत्यत्व को प्राप्त हुआ था ॥२०॥ उसने कहा—बड़े हर्ष की बात है कि तुम्हारा रोग नष्ट होगया और तुम्हारा सुख मैंने देख लिया है। आप अपनी पुरी में जाकर सुखी रहो, अधिक काल तक न रहो और जब भी मेरा कोई विघ्न आवे तो उस समय तुम मेरा समाचरण करना ॥२१॥

यदा मे विघ्न आभूयात्तदा त्वं मां समाचर।
इति श्रुत्वा परिमलो गत्वा स्थानमवासयत् ॥२२
तदा तु लक्षणो वीरो भगवन्तमुषापतिम्।
जगन्नाथमुपागम्य समभ्यर्च्चापरोऽभवत् ॥२३
पक्षमात्रांतरे विष्णुर्जगन्नाथ उषापतिः।
वरं ब्रूहि वचश्चेति लक्षणं प्राह हर्षतः ॥२४
इत्युक्तः स तु तं देवं नत्वोवाच विनम्रधीः।
देहि मे वाहनं दिव्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥२५
इति श्रुत्वा जगन्नाथः शक्तिमैरावताद्गजात्।
समुत्पाद्य ददौ तस्मै दिव्यामैरावतीं मुदा ॥२६
आरुह्यैरावतीं राजा लक्षणो गेहमाययौ।
स वै परिमलो राजा जगाम च महावतीत् ॥२७
एतस्मिन्नंतरे वीरास्तालनाद्या मदोत्कटाः।
महावतीं पुरीं प्राप्य ददृशुस्तं महीपतिम् ॥२८

यह श्रवण करके परिमल ने जाकर अपने स्थान में निवास बनाया था ॥२२॥ उस समय वीर लक्षण जगन्नाथ पुरी में जाकर उमापति भगवान् की समभ्यर्चना में तत्पर हो गया था ॥२३॥ एक पक्ष मात्र के बीच में ही उमापति जगन्नाथ विष्णु आकर हर्ष से उस लक्षण से कहने लगे—वर मांग ले ॥२४॥ जब उससे ऐसा कहा गया तो विनम्र बुद्धि वाले उसने देव को नमस्कार करके कहा—हे देव ! आप मुझे समस्त शत्रुओं के नाश करने वाला कोई एक परम दिव्य वाहन प्रदान करें ॥२५॥ यह सुनकर जगन्नाथ ने ऐरावत हाथी से शक्ति का समुत्पादन करके प्रसन्नता से उसको दिव्य ऐरावती शक्ति प्रदान की थी ॥२६॥ राजा लक्षण तब तो उस ऐरावती पर सवार होकर अपने घर को चला गया था। और वह राजा परिमल महावती को चला गया था ॥२७॥ इस बीच में तालन आदि जो वीर थे बड़े मदोत्कट हुए थे। उन्होंने महावती पुरी में जाकर उस राजा ने वहाँ देखा था ॥२८॥

तेन सार्द्धं च महतीं प्रीतिं कृत्वा न्यवासयन् ।
मासान्ते च पुनस्ते वै राजानो विनयान्विताः ॥२९
ऊचुस्तं शृणु भूपाल वयं गच्छामहे पुरीः ।
तदा राजापि तान्प्राह सर्वान्क्षितिपतीनथ ।
दत्त्वाधिकारं पुत्रेभ्यस्तदाऽऽयास्यामि वोऽन्तिकम् ॥३०
तथेत्युक्तास्तु ते राज्ञा स्वगेहे पुनराययुः ।
सानुजो देशराजस्तु द्विजेभ्यः स्वपुरं ददौ ॥३१
पुत्रेभ्यस्तालनो वीरो ददौ वाराणसीं पुरीम् ।
अलिकोल्लामतिः कालः पत्रः पुष्पोदरी वरी ॥३२
करीनरी सुललितस्तेषां नामानि वै क्रमात् ।
द्वौ द्वौ पुत्रौ स्मृतौ तेषां पितुस्तुल्यपराक्रमौ ॥३३
स वै पुत्राज्ञया शूरस्तालनो राक्षसप्रियः ।
यातुधानमयं देवं तुष्टाव म्लेच्छपूजनैः ॥३४
तथा वसुमतः पुत्रौ भूप्ती देशवत्सजौ ।
शक्रं सूर्यं समाराध्य कृतकृत्यौ बभूवतुः ॥३५

उसके साथ बड़ी भारी प्रीति करके वहाँ पर ही निवास बना लिया था। मास के अन्त में फिर वे विनय से युक्त राजा लोगे कहने लगे—हे भूपाल ! सुनिये, अब हम पुरियों को जाते हैं। तब तो वह राजा भी उन समस्त क्षिति के स्वामियों से बोला—मैं अपने पुत्रों को अधिकार देकर तब आपके समीप में आऊँगा। ऐसा ही हो—यह कहकर वे समस्त राजा लोग अपने घर में फिर आगये थे। अपने मनुज के सहित देशराज ने तो द्विजों के लिये अपने पुर को दे दिया था। वीर तालन ने पुत्रों के लिये वाराणसी पुरी दे दी थी। उनके नाम अलिकोल्लामति-काल-पत्र-पुष्पोदरी वरी-करी नरी और सुललित ये क्रम से थे। उनके दो-दो पुत्र बताये गये हैं जो पराक्रम में अपने पिताओं के ही समान थे। राक्षसों को प्यारे शूर तालन ने पुत्र की आज्ञा से म्लेच्छ पूजनों के द्वारा यातुधानमय देव की स्तुति की तथा वसुमान् के पुत्र राजा देशवत्सज ने अर्थात् इन दोनों ने इन्द्र सूर्य की आराधना की और कृतकृत्य होगये ॥२९-३५॥

सिंहिनीं नाम वडवां या तु दत्ता भयानका।
आरुह्य बलवाञ्छूरो गमनाय मनो दधौ ॥३६
पंचशब्दं महानागमिन्द्रदत्तं मनोरमम्।
देशराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ॥३७
हयं पपीहकं नाम सूर्यदत्तं नरस्वरम्।
वत्सराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ॥३८
त्रय शूराः समागम्य नगरीं ते महाव्रतीम्।
ऊषुस्तत्र महात्मानो बहुमानेन सत्कृताः ॥३९
सेनाषष्टिसहस्रं तत्तेषां स्वामी स तालनः।
मंत्रिणौ भ्रातरौ तौ च नृपतेश्चन्द्रवंशिनः ॥४०
तैर्वीरैः रक्षितो राजा कृतकृत्यत्वमागतः ॥४१

सिंहिनी नाम वाली वड़वा पर जो भयानक दी गई थी बलवान् शूर चढ़कर जाने के लिए मन वाला हुआ था अर्थात् उसने बड़वा पर चढ़कर जाने का मन किया था ॥३६॥ इन्द्रदेव के द्वारा दिया हुआ पञ्च शब्द

महानाग था जो बहुत सुन्दर था देशराज ने उस पर सवार होकर गमन करने के लिये मन में विचार किया था ॥३७॥ सूर्यदेव के द्वारा दिया हुआ नरस्वर पपीहक नाम वाला अश्व था । वत्सराज ने उस पर आरोहण करके गमन करने का मन किया था ॥३८॥ तीनों शूर वे महावती नगरी में आकर बहुमान से सत्कार किये गये महात्मा वहाँ निवास करने लगे थे ॥३९॥ वह साठ हजार सेना थी जिसका स्वामी वह तालन हुआ था और चन्द्रवंश वाले राजा के वे दोनों भाई मन्त्री हुए थे ॥४०॥ उन वीरों के द्वारा रक्षा किया गया राजा सफलता को प्राप्त हुआ था ॥४१॥

॥ देशराजवत्सराजविवाह ॥

कालियं तौ पराजित्य भ्रातरौ नृपसेवकौ ।
गतौ गोपालके राष्ट्रे भूपतिर्दलवाहनः ॥१
सहस्रचंडिकाहोमे नानाभूपसमागमे ।
गृहीतौ महिषौ ताभ्यां भूपैरन्यैश्च दुर्जयौ ॥२
पूर्वं हि नृपकन्याभ्यां प्रत्यहं बंधनं गतौ।
तौ संपूज्य विधानेन ददौ ताभ्यां च कन्यके ॥३
देवकीं देशराजाय ब्राह्मीं तस्यानुजाय वै ।
ददौ दुर्गाज्ञया राजा रूपयौवनशालिनीम् ॥४
लक्षावृत्ति तथा वेश्यां गीतनृत्यविशारदाम् ।
कन्ययोश्च सखीं रम्यां मेघमल्लाररागिणीम् ॥५
शतं गजान्रथान्पंच हयांश्च वशसहस्रकान् ।
चत्वारिंशच्चशिबिकाः प्रददौ दलवाहनः ॥६
बहुद्रव्ययुतां कन्यां दासदासीसमन्विताम् ।
उद्वह्य वेदविधिना प्रापतुश्च महावतीम् ॥७

इस अध्याय में देशराज, वतसराज के विवाह के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—नृप के सेवक वे दोनों भाई कालिय को पराजित करके गोपालक राष्ट्र में गये जहाँ दलवाहन भूपति था ॥१॥

वहाँ सहस्र चण्डी के होम में अनेक भूपों का समागम हुआ था, उन दोनों ने महिषों को ग्रहण किया जो कि महिष अन्य राजाओं के द्वारा बहुत ही दुर्जय थे ।।२।। पहिले नृप को कन्याओं के द्वारा प्रतिदिन बन्धन को प्राप्त हुए फिर उन दोनों का भली भांति पूजन करके उन दोनों के लिये दोनों कन्याऐं विधि-विधान से दान कर दीं थीं ।।३।। देवकी नाम वाली कन्या देशराज को और उसके छोटे भाई को ब्राह्मी नाम वाली कन्या दान कर दी थी। राजा ने रूप, यौवन से सम्पन्न कन्या को दुर्गादेवी की आज्ञा से दे दिया था ।।४।। लक्षावृत्ति नाम धारिणी वेश्या को जो गान-नृत्य में बड़ी पण्डित थी और मेघ मल्लार राग गाने वाली एवं परम सुन्दर थी अपनी दोनों कन्याओं की सखी बनाकर दे दिया था ।।५।। एक सौ हाथी, पाँच रथ, एक सहस्र अश्व, चालीस पालकी भी दलवाहन राजा ने दहेज में दिये थे ।।६।। बहुत अधिक धन से युक्त तथा दास और दासियों से समन्वित कन्या का वेद की विधि से विवाह करके वे दोनों महावती नगरी में प्राप्त होगये थे ।।७।।

मलना तां वधूं दृष्ट्वा तस्यै ग्रैवेयकं ददौ ।
ब्राह्म्यै षोडशशृङ्गारं तथा द्वादशभूषणम् ।।८
राजा च परमानन्दा देशराजायशूरिणे ।
ददौ दशपुरं रम्यं नानाजननिषेवितम् ।।९
ऊषतुस्तत्र तौ वीरौ राजमान्यौ महाबलौ ।
एतस्मिन्नन्तरे जातो देवसिंहो हराज्ञया ।।१०
जाते तस्मिन्कुमारे तु देवकी गर्भमादधौ ।
दासश्रुता पतेर्देवी सुषुवे पुत्रमूर्जितम् ।।११
गौरांगं कमलाक्षं च दीप्यमानं स्वतेजसा ।
तदानन्दमयो देवः शक्रः सुरगणैः सह ।।१२
शङ्खशब्दं चकारोच्चैर्जयशब्दं पुनः पुन. ।
दिशः प्रफुल्लिताश्चसन्ग्रहाः सर्वे तथा दिवि ।।१३
आयाता बहवो विप्रा वेदशास्त्रपरायणाः ।
चक्रुस्ते जातकर्माणि नामकर्म तथाविधन् ।।१४

मलना ने उस परम सुन्दरी वधू को देखकर उसे ग्रैवेयक (गरदन में पहिनने का आभूषण) दिया था। ब्राह्मी को सोलह शृङ्गार तथा बाहर भूषण दिये थे ।।८।। और राजा ने परम आनन्द वाला होकर देशराज शूरि के लिये नाना प्रकार के जनों से निषेवित परम सुन्दर दशपुर दे दिया था ।।९।। वहाँ पर वे दोनों वीर जो महान् थे, राजा के अतिमान्य होते हुए रहा करते थे। इसी बीच में शिव की आज्ञा से देवसिंह ने जन्म धारण किया था ।।१०।। उस कुमार के उत्पन्न हो जाने पर देवकी ने गर्भ धारण किया था। पति की दास श्रुता देवी ने एक अर्जित पुत्र का प्रसव किया था ।।११।। वह पुत्र गौर अङ्ग वाला, कमल के सदृश नेत्रों वाला और अपने तेज से दीप्यमान था। तब तो इन्द्रदेव देवों के सहित परम आनन्द से पूर्ण होगये थे ।।१२।। शङ्ख की ध्वनि की थी और बार-बार जय शब्द हो रहा था। समस्त दिशाऐं उस समय बहुत ही प्रफुल्लित थीं तथा स्वर्ग में समस्त ग्रह भी प्रफुल्लित हो रहे थे ।।१३।। उस आनन्द के समारोह के अवसर पर बहुत से वेदों और शास्त्रों में पूर्ण परायण विप्र आये और उन्होंने इस कुमार का जातकर्म एवं नाम कर्म किया था ।।१४।।

रामांशं तं शिशुं ज्ञात्वा प्रसन्नवदनं शुभम् ।
भाद्रकृष्णतिथौ षष्ठ्यां चन्द्रवारेऽरुणोदये ।।१५

सञ्जातः कृत्तिकाभे च पितृवंशयशस्करः ।
आह्लादनाम्ना ह्यभवत्प्रश्रितश्च महीतले ।।१६

मासान्ते च सुते जाते ब्राह्मी पुत्रमजीजनत् ।
धर्मजांशं तथा गौरं महाबाहुं सुवक्षसम् ।।१७

तदा च ब्राह्मणाः सर्वे दृष्ट्वा बालं शुभाननम् ।
प्रसन्नवदनं चारुं पद्मचिह्नपदस्थितम् ।।१८

तैर्द्विजैश्च कृतो नाम्ना बलखानिर्महाबलः ।
वर्षान्ते वत्सजे जाते मूलगंडान्तसंभवः ।।१९

चामुण्डो देवकिसुतो निजवंशभयङ्करः ।
जनितारं ततस्त्याज्य इत्यूचुर्द्विजसत्तमाः ।
न तत्याज सुतं राजा बालत्वेऽपि दयापरः ।।२०
त्रिवर्षांते तस्मिन्बलखानौ सुते शुभे ।
शूद्रयांजातः शिखण्डयंशो रूपणो नाम विश्रुतः ।।२१

उस शिशु को राम का अंश, प्रसन्न मुख वाला शुभ जानकर जोकि भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि में चन्द्रवार के दिन कृत्तिकानक्षत्र में अरुणोदय के समय में समुत्पन्न हुआ था पिता के वंश के यश को बढ़ाने वाला था । उसका नाम आल्हाद हुआ था जो महीतल प्रश्रित था ।।१५-१६।। मास के अन्त में सुत के उत्पन्न होने पर ब्राह्मीने भी पुत्र को जन्म दिया था । यह धर्मज का अंश, गौर वर्ण वाला, महान बाहुओं से युक्त और सुन्दर वक्षः स्थल वाला था ।।१७।। उस समय समस्त ब्राह्मणों ने शुभ मुख से युक्त पद में पद्म का चिन्ह धारण करने वाले सुन्दर बालक को देखकर उसका नाम महाबल वाला बलखानि यह नाम रक्खा था । वर्ष के अन्त में वत्सज के उत्पन्न होने पर मूलगण्डान्त में जन्म लेने वाला चामुण्ड देवकी का पुत्र अपने वंश में भय करने वाला है । तब ब्राह्मणों ने पिता से कहा—यह तो त्यागने के योग्य है । बच्चे के बालकपन पर दया में परायण राजा ने पुत्र का त्याग नहीं किया था ।।१८-२०।। तीन वर्षों के अन्त में जबकि वह बलखानि सुत शुभ हो गया तो शूद्रा में शिखण्डी का अंश उत्पन्न हुआ था जिसका नाम रूपण प्रसिद्ध था। ।।२१।।

वत्सराजो ययौ देशे गुर्जरे च मदालसाम् ।
स सुतां च स मादाय दिने तस्मिन्समागतः ।।२२
प्राप्ते तस्मिन्वत्सराजे जम्बुकः स्वबलैर्वृतः ।
सप्तलक्षैश्च संप्राप्तो बहुशाली यतेंद्रियः ।।२३
रुरोध नगरीं सर्वां राज्ञः परिमलस्य वै ।
त्रिलक्षैश्च माहावत्यै साद्धं तौ जग्मतुः पुरात् ।।२४

माहिष्मतैः सप्तलक्षैः सार्द्धं युद्धमभून्महत् ।
त्रिरात्रं दारुणं घोरं यमराष्ट्रविवर्द्धनम् ।।२५

शिवस्य वरदानेन भ्रात्रोर्जातः पराजयः ।
बद्धा तौ जम्बुको राजा लुंठयित्वा महावतीम् ।।२६

वेश्यां लक्षारतिं तस्य तं हयं तद्गजं तथा ।
ग्रैवेयकं तथा हारं मणिरत्नविभूषितम् ।।२७
गृहीत्वा नगरीं सर्वां भस्मयित्वा गृहं ययौ ।
ये गुप्ता भूतले शूरास्ते शेषाश्च तदाऽभवन् ।।२८

वत्सराज गुर्जर (गुजरात) देश में गया था और उस दिन में वह मदालसा सुता को लेकर आया था ।।२२।। उस वत्सराज के आ जाने पर जम्बुक नामधारी अपनी सेनाओं से युक्त होकर जोकि संख्या में सात लाख थीं वहाँ प्राप्त हो गया था । यह बाहुशाली और यतेन्द्रिय वीर था ।।२३।। इसने राजा परिमल की नगरी को घेर लिया था । वे दोनों तीन लाख माहावत्यों के साथ पुर से गये थे ।।२४।। उनका माहिष्मत सात लाखों के साथ महान् युद्ध हुआ था । यह युद्ध तीन रात्रि तक बहुत ही घोर, दारुण और यमराष्ट्र के वर्धन करने वाला हुआ था ।।२५।। भगवान् शिव के वरदान के कारण दोनों भाइयों का पराजय हो गया था । जम्बुक राजा ने उन दोनों को बाँधकर तथा महावती की लूट करके, उसकी लक्षारत्ति वेश्या को, उस अश्व को, उस गज को और मणि तथा रत्नों से विभूषित ग्रवेयक हार को ग्रहण करके एवं समस्त नगरी को भस्म कराकर वह अपने घर को चला गया था । जो शूर भूतल में छिपकर रक्षित रह गये थे वे ही उस समय में शेष रहे थे ।।२६-२८।।

दुर्गेषु यानि रत्नानि तानि प्राप्य मुदा ययौ ।
लुंठिते नगरे तस्मिन्देवकी गर्भमुत्तमम् ।।२९
कृष्णांश सप्तमास्यं हि चादधाद्वत्सप्रिया ।
ज्ञात्वा कुलाधमं पुत्रं चामुंड देवकी सती ।।३०

कल्पक्षेत्रं समागम्य कालिंद्यां तमपातयत् ।
योजनान्ते गते तस्मिन्महीराजपुरोहितः ।।३१
सामन्तो नाम तं गृह्य श्वशुरालयमाययौ ।
जातस्तु दशमासान्ते रात्रो घोरतमोवृते ।।३२
भाद्रकृष्णाष्टमीसौम्ये ब्राह्मनक्षत्रसंयुते ।
प्रादुरासीज्जगन्नाथो देवक्यां च महोत्तमः ।।३३
श्यामांगः स च पद्माक्ष इंद्रनीलमणिद्युतिः ।
विमानानां सहस्राणां प्रकाशः समजायत ।।३४
विस्मिता जननी तत्र दृष्ट्वा बालं तमद्भुतम् ।
नगरे च महाश्चर्यं जातं सर्वे समाययुः ।।३५

दुर्गों में जितने भी रत्न वहाँ उस समय में थे उन सबको प्राप्त करके वह प्रसन्नता से गया था । उस नगर के लुण्ठित हो जाने पर दैधतों की प्रिया देवकी ने सप्तमास्य कृष्ण का अंश उत्तम गर्भ धारण किया था सती देवकी ने कुल का अधम चामुण्ड पुत्र को जानकर उसने कल्पक्षेत्र में जाकर उसको कालिन्दी (यमुना) नदी में गिरा दिया था । एक योजन पर्यन्त उसके नदी में बहकर चले जाने पर महीराज के पुरोहित ने जिसका नाम सामन्त था उसे ग्रहण कर लिया और वह अपनी श्वशुराल में आ गया था । दश मासों के अन्त हो जाने पर जबकि घोर अन्धकार से समावृत रात्रि का समय था उस वक्त में भाद्रप्रद मास की कृष्ण पक्ष की सौम्य अष्टमी तिथि के दिन जोकि ब्राह्म नक्षत्र से युक्त थी महान् उत्तम जगत् का नाथ देवकी में प्रादुर्भूत हुआ था ।।२९-३३।। इसका अङ्ग श्याम वर्ण का था, नेत्र पद्म के समान सुन्दर थे और इन्द्र नीलमणि के समान द्युति थी । उस समय सहस्रों विमानों का प्रकाश उत्पन्न हो गया था ।।३४।। बालक की माता इस प्रकार के परम अद्भुत शिशु को देखकर अत्यन्त विस्मय से भर गई थी और समस्त नगर में महान् आश्चर्य छा गया था । सभी लोग उसे देखने के लिए आये थे ।।३५।।

उदयः किमहो जातो देवानां सूर्यरूपकः ।
इत्याश्चर्य्यजुजां तेषां वागुवाचाशरीरिणी ।।३६

कृष्णांशो भूतले जातः सर्वानन्दप्रदायकः ।
स नाम्नोदयसिंहो हि सर्वशत्रुप्रकाशहा ॥३७
इत्याकाशवचः श्रुत्वा ते परं हर्षमाययुः ।
यस्मिन्काले सुतो जातस्तदा च मलना सती ॥३८
श्यामांगं सुन्दरं बालं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
सुषुवे परमोदारं फाल्गुनांशंशिवाज्ञया ॥३९
तदा तु नगरी सर्वा हर्षभूता बभूव ह ।
षष्ठाह्नि सुते जाते ब्रह्मानन्दगुणाकरे ॥४०
ब्राह्मी तु सुषुवे पुत्रं पार्षदांशं महाबलम् ।
श्यामांगं कमलाक्षं च दृढस्कन्धं महाभुजम् ॥४१
ब्राह्मणाश्च तदागत्य जातकर्म ह्यकारयन् ।
सुखखानिर्द्विजैर्नाम्ना कृतस्तु गणकोत्तमैः ॥४२

सबको आश्चर्य हो रहा था कि क्या यह देवों का सूर्य रूप वाला कोई उत्पन्न हुआ है या सूर्य का ही यह उदय हो गया है, इस प्रकार के आश्चर्य करने वाले उन सबके आगे बिना शरीर वाली आकाश से एक वाणी ने कहा—॥३६॥ यह कृष्ण का अंश इस भुतल में उत्पन्न हुआ है जो कि सबको आनन्द के प्रदान करने वाला है । यह नाम से उदयसिंह हैं जोकि समस्त शत्रुओं के प्रकाश का हनन करने वाला है ॥३७॥ इस प्रकार की आकाश से होने वाली वाणी को सुनकर वे सब परम हर्षित हुए थे । जिस समय में यह सुत उत्पन्न हुआ था उसी समय में सती मलना ने एक श्याम अङ्ग वाला, अति सुन्दर, समस्त शुभ लक्षणों से समन्वित, परम उदार फाल्गुनांश बालक को शिव की आज्ञा से प्रसव किया था ॥३८-३९॥ उस समय में समस्त नगरी हर्ष से भर गई थी । सुत के जन्म के छटवें दिन में जाकि ब्रह्मानन्द गुण का आकार था ब्राह्मी ने पार्षद का अंश महान् बल वाला पुत्र को उत्पन्न किया था । यह पुत्र भी श्याम अंग वाला, कमलाक्ष, दृढ़ स्कन्द वाला और महाभुज था ॥४०-४१॥ उस समय ब्राह्मणों ने आकर इसका जात कर्म कराया । उत्तम गुणों के कारण ब्राह्मणों ने इसका नामकरण करके इसका सुखखानि नाम रखा॥४२॥

क्रमेण वर्द्धिता बालाः सर्वलोकशिवंकराः ।
तेषां काली महच्छ्रेष्ठा पितृमातृप्रियंकरी ॥४३
तृतीयाब्दे वयः प्राप्ते कृष्णांशेबलवत्तरे ।
शक्रस्तद्दर्शनकांक्षी हयारूढो जगाम ह ॥४४
क्रीडन्स चन्दनारण्ये कृष्णांशो भ्रातृभिः सह ।
नभस्थं पुरुषं दृष्ट्वा सहस्राक्षं जहास वै ॥४५
अश्विनी हरिणी दिव्या उच्चैःश्रवसमन्तिके ।
गत्वा गर्भमुमादाय स्वगेहं पुनरराययौ ॥४६
वर्षांतरे च सुषुवे कपोतं तनयं शुभम् ।
पञ्चाब्दे च समायाते विद्याध्ययनमास्थिताः ॥४७
ब्राह्मणं शिवशर्माणं सर्वविद्याविशारदम् ।
स्वभक्त्या सेवनं कृत्वा ते चक्रुर्वेदपाठिकाम् ॥४८
अष्टाब्दे चैव कृष्णांशो नामपत्रादिकां क्रियाम् ।
लिखतां बालकानां च कृष्णांशः श्रेष्ठतामगात् ॥४९

क्रम से ये बालक बड़े होने लगे जोकि समस्त लोकों के कल्याण के करने वाले थे। उनकी काली महान् श्रेष्ठ और पिता-माता की प्रियङ्करी थी ॥४३॥ बलवत्तर अर्थात् अधिक बलवान् कृष्णांश से तीन वर्ष की अवस्था पा जाने पर वहाँ पर इन्द्रदेव उसके दर्शन करने की इच्छा वाला होकर अश्व पर सवारी करके गया था ॥४४॥ वह कृष्णांश बालक चन्दन के वन में अपने भाइयों के साथ क्रीड़ा करते गए आकाश में स्थित सहस्र नेत्रों वाले पुरुष को देखकर बहुत हँसा था ॥४५॥ दिव्य हरिणी अश्विनी उच्चःश्रवा के पास गई और उससे गर्भ धारण करके फिर अपने घर को चली आई थी ॥४६॥ एक वर्ष के पश्चात् शुभ तनय कपोत का उसने प्रसव किया था। पाँच वर्ष के हो जानेपर ये विद्या के अध्ययन करने में आस्थित हुए थे ॥४७॥ समस्त विद्याओं के महान् पण्डित शिव-शर्मा नामक ब्राह्मण की अपनी भक्ति से सेवा करके इन्होंने वेदों की

पाठिका की थी ॥४८॥ आठ वर्ष की अवस्था में कृष्णांश ने नाम तथा पत्र आदि लिखने की क्रिया को पूर्ण कर लिया था। जो बालक लिखने वाले थे उन सबमें कृष्णांश ने श्रेष्ठता प्राप्त की थी ॥४९॥

॥ कृष्णांशचरित्रवर्णनम् ॥

नवमाब्दं वयः प्राप्ते कृष्णांशो बलवत्तरः।
पठित्वान्वीक्षिकीं विद्यां चतुःषष्टिकलास्तथा ॥१
धर्मशास्त्रं तथैवापि सर्वश्रेष्ठो बभूव ह।
तस्मिन्काले भृगुश्रेष्ट महीराजो नृपोत्तमः ॥२
करार्थं प्रेषयामास स्वसैन्यं च महावतीम्।
ते वै लक्षं महाशूराः सर्वशस्त्रास्त्र धारिणः ॥३
ऊचुः परिमलं भूपं शृणु चन्द्रकुलोद्भव।
सर्वे च भारते वर्षे ये राजानो महाबलाः ॥४
षडंशं करमादायास्मद्राजाय ददंति वै।
भवान्करे हि तस्यैव योग्यो भवति सांप्रतम् ॥५
अद्यप्रभृति चेद्राज्ञे तस्मै दद्यात्करं न हि।
महीराजस्य रौद्रास्त्रैः क्षयं यास्यति सैनिकैः ॥६
ये भूपा जयचंद्रस्य पक्षगास्ते हि तद्भयात्।
ददंते भूमिराजाय दंडं तन्मानसत्कृताः ॥७

इस अध्याय में कृष्णांश के चरित्र का तथा राजाओं को करद बनाने के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—जब कृष्णांश की नौ वर्ष की आयु हो गई तो वह अधिक बलवान् हो गए थे। उन्होंने आन्विक्षिकी विद्या, चौसठ कलायें, धर्मशास्त्र यह सब पढ़ तथा सीख लिया था और वह सर्वश्रेष्ठ हो गये थे उस समय में हे भृगुश्रेष्ठ ! नृपों में उत्तम महीराज ने अपनी सेना महावती पुरी में कर ग्रहण करने के लिए भेजी

थी । उस सेना में एक लाख महान् शूरवीर थे जो समस्त शस्त्र और अस्त्रों के धारण करने वाले थे ।।१-३।। उन्होंने वहाँ आकर परिमल राजा से कहा—हे चन्द्रकुल में समुत्पन्न होने वाले राजन् ! सुनो, इस समस्त भारतवर्ष में जो भी महा बलवान् राजा लोग हैं वे सब छटवां अंश कर लेकर हमारे महाराज को दिया करते हैं आप भी उसी प्रकार से इस कर के अब देने के योग्य हैं ।।४-५।। यदि अब से लेकर जो भी हमारे महाराज को कर नहीं देंगे तो वे महीराज महाराज के रौद्र अस्त्रों के द्वारा सैनिकों से क्षय को अवश्य ही प्राप्त हो जायेंगे ।।६-७।।

इति श्रुत्वा स नृपतिस्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
करं षडंशमादाय ददौ प्रीतिसमन्वितः ।।८
दशलक्षमितं द्रव्यं गृहीत्वा ते समाययुः ।
महीराजः प्रसन्नात्मा पूर्ववैरमपाहरत् ।।९
तदा ते लक्षशूराश्च कान्यकुब्जमुपाययुः ।
जयचंद्रं तु नत्वोचुः शृणु लक्षणकोविद ।।१०
पृथ्वीराजो महाराजो दंडं त्वत्तः समिच्छति ।
इत्युक्तस्तैर्वैष्णवास्त्री लक्षणास्तानुवाच ह ।।११
मद्देशे मंडलिकाश्च बहवः संति सांप्रतम् ।
भूमिराजो मांडलिको मयि जीवति मा भवेत् ।।१२
इत्युक्त्वा वैष्णवास्त्रं तान्क्रुद्धः स च समादधत् ।
तदस्त्रज्वालतः सर्वे भयभीताः प्रदुद्रुवुः ।।१३
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा महद्दुःखमुपागमत् ।
दशाब्दं च वयः प्राप्ते कृष्णांशे मल्लकोविदे ।।१४

यह उन सैनिकों से श्रवण कर उस राजा परिमल ने छटवाँ भाग कर लाकर महात्मा महीराज के लिये प्रीति से युक्त होकर दे दिया था ।।८।। उन्होंने दश लाख प्रमाण का द्रव्य लेकर फिर वे वहां से चले आये थे और महीराज परम आत्मा वाले हो गये तथा उन्होंने पहिला जो वैर

था वह भी दूर कर दिया था ।।९।। फिर उस समय वे एक लाख शूरवीर कान्य कुब्ज देश में चले आये थे। उन्होंने जयचन्द्र को नमस्कार करके कहा—हे लक्षणों के ज्ञात विद्वन् ! सुनिये ।।१०।। महाराज—पृथ्वीराज आप से दण्ड लेने की इच्छा करते हैं। इस प्रकार उनके द्वारा कहा गया वह वैष्णव अस्त्र वाला लक्षण उनसे बोला—।।११।। मेरे देश में इस समय बहुत से माण्डलिक हैं। मेरे जीवित रहते हुए भूमिराज माण्डलिक नहीं होगा ।।१२।। यह कहकर उसने क्रुद्ध होकर उनके प्रति वैष्णवास्त्र को धारण किया था। उस अस्त्र की ज्वालाओं से समस्त भयभीत होकर वहाँ से भाग गये थे ।।१३।। महीराज को यह वृत्तान्त श्रवणकर बड़ा भारी भय उपस्थित हो गया था। मल्लों के परम पण्डित कृष्णांश जब दश वर्ष की अवस्था में प्राप्त हो गये तो उस समय में वहाँ बहुत से मल्ल विद्या के विद्वान आये थे ।।१४।।

नानामल्लाः समाजग्मुस्तेन राज्ञैव सत्कृताः ।
तेषां मध्ये स कृष्णांशो बाहुशाली बभूव ह ।।१५
उर्वीयाधिपतेः पुत्रः षोडशाब्दवया बली ।
शतमल्लैश्च सहितः कदाचित्स समागतः ।।१६
पितृष्वसृपतिं भूपं नत्वा नाम्नाऽभयो बली ।
उवाच शृणु भूपाल कृष्णोऽयं मदमत्तरः ।।१७
तेन सार्द्धं भवेन्मल्लयुद्धं मम नृपोत्तम ।
इति वज्रसमं वाक्यं श्रुत्वा राजा भयातुरः ।।१८
उवाच श्यालजं प्रेम्णा भवान्युद्धविशारदः ।
लष्टाब्दोऽय सुतः स्निग्धो मम प्राणसमो भुवि ।।१९
क्व भवान्वज्रसदृशः क्व सुतोऽयं सुकोमलः ।
अन्यैर्मल्लैर्मदीयैश्च सार्द्धं योग्यो भवान्रणे ।।२०
इति श्रुत्वा नृपः श्यालो महीपतिरिति स्मृतः ।
स तमाह रुषाविष्टो बालोऽयं बलवत्तरः ।।२१

उस राजा के द्वारा सत्कार पाने वाले वहाँ बहुत सारे मल्ल उप-

स्थित हुए थे। उन सबके मध्य में कृष्णांश ही बाहुशाली हुए थे ।।१५।। उर्वीयाधिपति का पुत्र जो सोलह वर्ष की अवस्था वाला अत्यन्त बलवान् था, किसी समय में एक सौ मल्लों के सहित वहाँ पर आ गया था ।।१६।। पितृष्वसा के (भूआ के) पति राजा को प्रणाम करके अभय नामधारी जो बलि था, वह बोला—हे भूपाल ! सुनिये, यह कृष्ण अधिक मद वाला है। हे नृपोत्तम ! उसके साथ मेरा मल्ल युद्ध होना चाहिए। इस प्रकार के वज्र के समान वचनों को श्रवण कर राजा भय से आतुर हो गया था ।।१७-१८।। फिर उस राजा ने अपने साले के पुत्र से प्रेम-पूर्वक कहा—आप तो मल्ल युद्ध के महा पण्डित हैं। यह आठ वर्ष का स्नेह पात्र भूमि में प्राण के समान प्रिय पुत्र है। कहाँ तो आप वज्र के तुल्य शरीर वाले हैं और कहाँ यह अत्यन्त कोमल मेरा पुत्र है। आप दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। मेरे अन्य बहुत से मल्ल उपस्थित हैं उनके साथ मल्ल युद्ध करने के लिए आप योग्य होते हैं ।।१९-२०।। यह सुनकर वह राजा महीपति नाम से कहा जाता है, श्याल था, उससे उसने क्रोध से आविष्ट होकर कहा कि यह बालक अधिक बलवान् है ।।२१।।

शृणु तत्कारणं भप यथा ज्ञातो मया शिशुः ।
आगस्कृतं महीराज मत्वा सतिलकः सुतम् ।।२२
पंडितांश्च समाहूय मुहूर्तं पृष्टवान्मुदा ।
गणेशो नाम मतिमाञ्ज्योतिश्शास्त्रविशारदः ।।२३
लक्षणं वचनं प्राह महीराजमनुत्तमम् ।
शिवदत्तातरो राजन्कुबेर इव सांप्रतम् ।।२४
कृष्णांशस्तस्य योग्योऽयं देशराजसुतोऽवरः ।
नान्योऽस्ति भूतले राजन्सत्यं सत्य ब्रवीम्यहम् ।।२५
तच्छ्रुत्वा लक्षणो वीरः पूर्वं बर्हिष्मतीं प्रति ।
कल्पक्षेत्रं दक्षिणे च भूमिग्रामं तु पश्चिमे ।।२६
उत्तरे नैमिषारण्यं स्वकीयं राष्ट्रमादधत् ।
अतः श्रेष्ठः कुमारोऽयं कान्यकुब्जे मयां श्रुतः ।।२७

नागोत्सवे च भूपाल पंचम्यां च नभस्सिते ।
दृश्यमात्रं कुमारांगं तस्माद्योग्यो ह्ययं सुतः ॥२८

हे भूप ! मैंने जिस तरह से उस बालक को समझा है वह कारण आप श्रवण करिये । सतिलक ने सुत महीराज को आगस्कृत मानकर उसने पण्डितों को बुलाकर बड़ी प्रसन्नता से मूहूर्त्त पूछा था । गणेश नामधारी एक परम बुद्धिमान् और ज्योतिष शास्त्र का महा पण्डित था । उसने श्रेष्ठ महीराज के विषय में लक्षण से यह वचन कहे थे—हे राजन् ! यह शिव के दिए हुए वरदान वाला है और इस समय कुवेर के समान स्थित है ॥२२-२४॥ यह कृष्णांश उसके योग्य है और यह देशराज का अवर पुत्र है । हे राजन् ! भूतल में अन्य नहीं है यह मैं परम सत्य कह रहा हूँ ॥२५॥ यह श्रवण कर वीर लक्षण ने पूर्व में बर्हिष्मती के प्रति, दक्षिण में कलक्षेत्र, पश्चिम में भूमिग्राम और उत्तर में नैमिषारण्य अपना राष्ट्र धारण किया था । अतः मैंने यह श्रेष्ठ कुमार कान्य कुब्ज में श्रवण किया था ॥२६-२७॥ हे भूपाल ! नागोत्सव में नमस्सित पञ्चमी में कुमाराङ्गदश्य मात्र है । इससे यह सुत योग्य है ॥२८॥

इति श्रुत्वा स कृष्णांशो वाक्छरेण प्रपीडितः ।
अभयं भुजयोः शीघ्रं गृहीत्वा सोऽयुधद्बली ॥२९
क्षणमात्रं रणं कृत्वा भूमिमध्ये तमक्षिपत् ।
अभयस्य भुजो भग्नस्तत्र जातो बलेन वै ॥३०
मूर्च्छितं स्वसुतं ज्ञात्वा खंगहस्तो महीपतिः ।
प्रेषयामास तान्मल्लान्कृष्णांशस्य प्रहारणे ॥३१
रुषाविष्टांश्च ताञ्ज्ञात्वा कृष्णांशो बलवत्तरः ।
तानेकैकं समाक्षिप्य विजयी स बभूव ह ॥३२
पराजिते मल्लबले खंगहस्तो महीपतिः ।
मरणाय मतिं चक्रे कृष्णांशस्य प्रभावतः ॥३३
ज्ञात्वा तमीदृश भूपं वारयामास भूपतिः ।
अभयं नीरुज कृत्वा प्रेम्णा गेहमवासयत् ॥३४

नवाब्दांगे च कृष्णांशे चाह्लादाद्याः कुमारकाः ।
मृगयार्थे दधुश्चित्तं तमूचुर्भूपति प्रियम् ॥३५

यह सुनकर वह कृष्णांश वचन रूपी शरों से अत्यन्त पीड़ित हो गया और भुजाओं में अभय को शीघ्र ग्रहण करके वह बली युद्ध करने लगा था ॥२९॥ एक क्षण भर ही में युद्ध करके उसको भूमि के मध्य में फेंक दिया था । वहाँ पर बल के कारण अभय की भुजा भग्न हो गई थी ॥३०॥ अपने पुत्र को मूच्छित जान कर हाथ में खड्ग लेने वाले महीपति ने कृष्णांश के प्रहरण करने के कार्य में अन्य मल्लों को भेजा था ॥३१॥ रोष में भरे हुए उन्हें जानकर अधिक बलवान् कृष्णांश ने उनमें से एक-एक को समाक्षिप्त करके वही विजयी हो गया था ॥३२॥ समस्त मल्लों के बल के पराजित हो जाने पर खड्गधारी महीपति ने कृष्णांश के प्रभाव से मरने के लिए अपनी बुद्धि बनाली थी ॥३३॥ उस भूप को ऐसे विचार समझकर राजा ने उसका वारण किया था अर्थात् मरने से रोका था । अभय को रोग रहित स्वस्थ बनाकर प्रेम के साथ घर में वास करा दिया था ॥३४॥ कृष्णांश के नौ वर्ष हो जाने पर आह्लाद आदि कुमारों ने मृगया करने का मन में विचार किया था और वे सब उस प्रिय भूपति से बोले ॥३५॥

नमस्ते तात भूपाग्र्य सर्वानंदप्रदायक ।
अस्मभ्यं त्वं हयान्देहि मत्प्रियान्करुणाकर ॥३६
इति श्रुत्वा वचस्तेषां तथेत्युक्त्वा महीपतिः ।
भूतले वासिनोऽश्वान्वै दिव्यान्नाद्र चतुरो वरान् ॥३७
ददौ तेभ्यो मुदा युक्तो हरिणीगर्भसंभवासु ।
त्वन्मुखेन श्रुतं सूत हरिणी वडवा यथा ॥३८
भीष्म सिहाय संप्राप्ता शक्राद्द्वेशतो मुने ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामः कुतो जातास्तुरंगमाः ॥३९
दिव्यांगा भूषणापन्ना नभस्सलिलगामिन ।
देशराजेन भूपेन पुरा धर्मयुतेन वै ॥४०

सेवनं भास्करस्यैव कृतं च द्वादशाब्दिकम् ।
सेवान्ते भगवान्सूर्यो वरं ब्रूहि तमब्रवीत् ॥४१
प्राह देव नमस्तुभ्यं यदि देयो वरस्त्वया ।
हयं दिव्यमयं देहि नभस्थलजलातिगम् ॥४२

हे तात ! हे भूपो में श्रेष्ठतम ! हे सबको आनन्द प्रदान करने वाले ! हे तात ! आपको हमारा नमस्कार है । हे करुणा करने वाले ! आप हमको हमारे प्रिय अश्व दीजिए ॥३६॥ उनके इन वचनों का श्रवण कर राजा ने कहा—ऐसा ही होगा । भूतल में वास करने वाले दिव्य तथा श्रेष्ठ चार अश्वों को राजा ने हर्ष से युक्त होकर उन्हें दे दिया था जो कि हरिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ॥३७-३८॥ ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आपके ही मुख से सुना है कि हरिणी वडवा शुक्रदेव से भीष्म सिंह को प्राप्त हुई थी । हे मुने ! अब हम यह सुनना चाहते हैं कि तुरङ्गम कैसे उत्पन्न हुए थे ॥३९॥ जो तुरङ्गम दिव्य अङ्गों वाले, भूषणों से सम्पन्न और आकाश तथा जल सर्वत्र गमन करने वाले थे ॥४०॥ सूतजी ने कहा—राजा देशराज ने धर्मयुक्त होकर पहिले भगवान् भास्कर की सेवा की थी और यह सेवन लगातार बारह वर्ष पर्यन्त किया था । सेवा के अन्त में भगवान् सूर्यदेव ने उससे कहा था कि मनोवाञ्छित वरदान माँग लेवे ॥४१॥ उसने इसके उत्तर में कहा—हे देव ! यदि आपको वरदान देना ही है तो मुझे एक दिव्य अश्व प्रदान कीजिए जो आकाश, स्थल और जल सर्वत्र गमन करने वाला हो ॥४२॥

तथेत्युक्त्वा रविः साक्षाद्ददौ तस्मै पपिहकम् ।
लोकान्पाति पपीशो यस्तस्येदं नाम चोत्तमम् ॥४३
अतः पपीहको नाम लोकपालनकर्मवान् ।
स हयो मदमत्तश्च हरिणीं दिव्यरूपिणीम् ॥४४
बुभुजे स्मरवेगेन तस्या जातास्तुरंगमाः ।
मनोरथश्च पीतांगः करालः कृष्णरूपकः ॥४५
एकगर्भे समुद्भूतौ शैब्यसुग्रीवकांशकौ ।
यस्मिन्दिने समुद्भूतौ जिष्णुविष्णुकलांशतः ॥४६

तदा जातौ हरिण्याश्च मेघपुष्पबलाहकौ ।
बिन्दुलश्च सुवर्णांगः श्वेतांगो हरि नागरः ।। ४७
दिव्यांगास्ते हि चत्वारः पूर्वं जाता महाबलाः ।
पश्चादंशावताराञ्च जातास्तेषां महात्मनाम् ।।४८
इति ते कथितं विप्र श्रृणु तत्र कथां शुभाम् ।
भूतले ते हयाः सर्वे प्राप्ताश्चोपरिभमिगाः ।।४९

भगवान् रवि ने कहा—ऐसा ही होवे और उसे पापिहक दे दिया था। जो लोकों की रक्षा करता है इसलिए वह पपी जानने के योग्य है और उसका यह उत्तम नाम इसीलिए था ।।४३।। अतएव पपोहक नाम-धारी लोकों के पालन का कर्म करने वाला था। वह अश्व बड़ा मदमत्त था, उसने दिव्य रूप वालो हरिणी का उपभोग किया था। कामदेव के वेग से उसके द्वारा उपभोग करने से उस हरिणी में तुरंगम उत्पन्न हुए थे। मनोरथ, पातांग, कराल, और कृष्ण रूपक ये उन तुरङ्गमों के नाम थे ।।४४-४५।। एक गर्भ में शैव्य सुग्रीव का शक उत्पन्न हुए थे। ये उसी दिन हुए थे जिस दिन में जिष्णु विष्णु कलांश से समुद्भूत हुए थे ।।४६।। उस समय में हरिणी के मेघपुष्प और बलाहक, बिन्दुल, सुवाणाङ्ग, श्वेतांग, हरिनागर ये दिव्य अङ्ग वाले महा बलशाली चार पहले उत्पन्न हुए थे फिर उन महात्माओं के अंशावतार हुये थे। हे विप्र ! यह तुमको सब बतला दिया है। अब वहाँ पर शुभ कथा और श्रवण करो। भूतल में वे अश्व सब ऊपर भूमि पर गमन करने वाले प्राप्त हुये थे ।।४७-४९।।

देवसिंहाय बलिने ददौ चाश्वं मनोरथम् ।
आह्लादाय करालं च कृष्णांशायैव बिन्दुलम् ।।५०
ब्रह्मानंदाय पुत्राय प्रददौ हरिनागरम् ।
ते चत्वारो हयारूढा मृगयार्थं वनं ययुः ।।५१
हरिणीं वडवां शुभ्रां बलखानिः समारुहत् ।
तदनु प्रययौ वीरो वनं सिंहनिषेवितम् ।।५२
आह्लादेनैव शार्दूलो हतः प्राणिभयंकरः ।
देवसिंहेन सिंहश्च सूकरो बल खानिना ।।५३

ब्रह्मानंदेन हरिणो हतस्तत्र महावने ।
मृगाः शतं हतास्तैश्च तान्गृहीत्वा गृहं ययुः ।।५४
एतस्मिन्नतरे देवी शारदा च शुभानना ।
मृगी स्वर्णमयी भूत्वा तेषामग्रे प्रधाविता ।।५५
दृष्ट्वा तां मोहिताः सर्वे स्वैः स्वैर्बाणैरताडयन् ।
शरास्तु संक्षयं जग्मुर्मृग्यंगे बलवत्तराः ।।५६

बलवान् देवसिंह के लिये मनोवाञ्छित अश्व दे दिया था । आह्लाद के लिये कराल नामक अश्व और कृष्णांश के लिये बिन्दुल दिया था ।।५०।। ब्रह्मानन्द पुत्र के लिये हरिनागर नाम वाला अश्व दिया था । इस तरह वे चारों ही कुमार अपने अपने प्राप्त हुये अश्वों पर समारोहण करके मृगया खेलने के लिये वन में चले गये थे ।।५१।। परम शुभ्र हरिणी नाम वाली जो वडवा थी उस पर बलखानि ने आरोहण किया था । उसके पीछे वीर सिंहों से सेवित वन में चला गया था ।।५२।। आह्लाद ने ही समस्त प्राणियों को भय देने वाला शार्दूल मार दिया था । देवसिंह ने सिंह की शिकार की और बलखानि के द्वारा एक सूकर हत किया गया था ।।५३।। उस महान् वन में ब्रह्मानन्द ने एक हरिणी का वध किया था । इस तरह उन्होंने सौ मृग मारे थे तथा उन मृत शिकारों को लेकर वे घर को चले गये थे ।।५४।। इसी बीच में देवी शारदा शुभ आनन वाली स्वर्णमयी मृगी होकर उनके आगे दौड़ी थी ।।५५।। उस सुन्हली मृगी को देखकर सभी लोग मोहित हो गये थे और सभी ने अपने बाणों से उस पर प्रहार किया था । किन्तु उनके समस्त शर संक्षय को प्राप्त हो गये थे जो कि अधिक बल वाले थे । वे सभी मृगी के अंग में क्षीण हो गये थे ।।५६।।

आह्लादाद्याश्च ते शूरा विस्मिताश्च बभूविरे ।
तस्मिन्काले स कृष्णांगो बाणेनैव ह्यताडयत् ।।५७
तदा च पीडिता देवी भयभीता ययौ वनम् ।
कृष्णांशः क्रोधताम्राक्षस्तत्पश्चात्प्रययौ बली ।।५८
वनांतरं च संप्राप्य देवी धृत्वा स्वकं वपुः ।
तमुवाच प्रसन्नाक्षी परीक्षा ते मया कृता ।।५९

यदा ते च भयं भूयात्तदा त्वं मां सदा स्मर।
साधयिष्यामि ते कार्यं कृष्णांशो हि भवान्विभुः ॥ ६०
इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शारदा सर्वमङ्गला।
कृष्णांशस्तु ययौ गेहं तैश्च सार्द्धं मुदा युतः ॥६१
तदा पराक्रमं तेषां दृष्ट्वा राजा सुखोऽभवत्।
गृहे गृहे च सर्वेषां लक्ष्मीर्देवी समाविशत् ॥ ६२

आह्लाद आदि जो शूर थे वे सब बहुत ही विस्मित हो गये थे। उस समय में उस कृष्णांग ने एक ही बाण से उसे ताड़ित कर दिया था। तब तो वह देवी पीड़ित होकर भय से भीत होती हुई वन में चली गई थी। क्रोध से लाल ताम्र जैसे नेत्रों वाला कृष्णांश भी उसके पीछे ही चला गया था ॥५७॥५८॥ दूसरे वन में जाकर देवी ने अपना शरीर धारण करके प्रसन्न नेत्रों वाली होकर उससे बोली—मैंने तेरी यह परीक्षा की थी ॥५९॥ जब कभी भी तुझे कुछ भय उत्पन्न हो तो उसी समय तू मेरा सदा स्मरण कर लेना। मैं तेरे काम का साधन करूंगी क्योंकि कृष्णांश विभु भगवान् ही हैं ॥६०॥ यह कहकर सर्व मंगला वह शारदा देवी अन्तर्धान हो गई थी तब वह कृष्णांश बड़ी प्रसन्नता से उन्हीं साथियों के साथ में घर चला गया था। उस समय में उन सबके पराक्रम को देखकर राजा बहुत ही सुखी हुआ था। उन सबके घर-घर में लक्ष्मी देवी ने समावेश किया था ॥६१-६२॥

———

।। महीराजपराजयादिवृत्तान्त ।।

दशाब्दे च वयः प्राप्ते विष्णोः शक्त्यवतारके ।
वसंतसमये रम्ये ययुस्ते प्रमदावनम् ।।१
ऊषुस्तत्र व्रताचारे माधवे कृष्णवल्लभे ।
स्नात्वा च सागरे प्रातः पूजयामासुरंबिकाम् ।।२
ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैर्विधानतः ।
जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं दध्युः सर्वकरीं शिवाम् ।।३
कंदमूलफलाहारा जीवहिंसाविवर्जिताः ।
तेषां भक्ति समालोक्य मासांते जगदम्बिका ।।४
ददौ तेभ्यो वरं रम्यं तच्छृणुध्वं समाहिताः ।
आह्लादाय सुरत्वं च बलत्वं बलखानये ।।५
कालज्ञत्वं च देवाय ब्रह्मज्ञत्वं नृपाय च ।
कृष्णांशायैव योगत्वं दत्त्वा चांतर्दधे शिवा ।।६
कृताकृत्यास्तदा ते वै स्वगेहं पुनराययुः ।
तेषां प्राप्ते वरे रम्ये मलना पुत्रमूर्जितम् ।।७

इस अध्याय में कृष्णांश के द्वारा किये गये महीराज के पराजय आदि का वर्णन किया गया है। श्री सूतजी ने कहा—विष्णु की शक्ति के अवतार के दश वर्ष की अवस्था प्राप्त हो जाने पर परम रम्य बसन्त के समय में वे प्रमदा वन को गये थे ।।१।। वहाँ पर कृष्ण वल्लभ माधव व्रताचार में रहने लगे थे। प्रातःकाल में सागर में स्नान करके अम्बिका देवी की पूजा किया करते थे ।।२।। ऋतु काल में उत्पन्न होने वाले पुष्पों के द्वारा, धूपों से और दीपों से विधि पूर्वक सप्तशती स्तोत्र का पाठ करके उन्होंने सब कुछ पूर्ण करने वाली शिवा का ध्यान किया था ।।३।। कन्द, मूल और फलों का आहार करते हुए वे सब जीवों की हिंसा से रहित थे। इस तरह की उनकी भक्ति की भावना समझकर एक मास के अन्त में जगदम्बिका ने उनके लिये परम रम्य वरदान दिया था। अब आप लोग बहुत समाहित होकर उसका श्रवण करो। आह्लाद को अम्बिका ने सुरत्व का

वर दिया था, बलखानि के लिये बलत्व का वर प्रदान किया था ॥४-५॥ देव के लिये काल का ज्ञान प्राप्त करने का और नृप के लिये ब्रह्मज्ञत्व का वर दिया था। जो कृष्णांश था उसे देवी ने योगत्व प्रदान करके वह शिवा वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गई थीं ॥६॥ तब वे सब कृत कृत्य होकर अपने घर को फिर आ गये थे। उनके रम्य वर के प्राप्त होने पर मलना ने एक परम अर्जित, श्यामाङ्ग, शुभ लक्षणों से युक्त सात्यकि का अंश पुत्र का प्रसव किया था ॥७॥

श्यामांगं सात्यकेरंशं सुषुवे शुभलक्षणम् ।
स ज्ञेयो रणजिच्छूरो राजन्यप्रियकारकः ॥८
आषाढे मासि संप्राप्ते कृष्णांशो हयवाहनः ।
उर्वीयां नगरीं प्राप्त एकाकी निर्भयो बली ॥९
दृष्ट्वा स नगरीं रम्यां चतुर्वर्णनिषेविताम् ।
द्विजशालां ययौ शूरो द्विजधेनुप्रपूजकः ॥१०
दत्त्वा स्वर्णं द्विजातिभ्यः संतर्प्य द्विजदेवताः ।
महीपतिगृहं रम्यं जगाम बलवत्तरः ॥११
नत्वा स मातुलं धीमांस्तथान्यांश्च सभासदः ॥१२
तदा नृपाज्ञया शूरा बधनाय समुद्यताः ।
खड्गहस्ताः समाजग्मुर्यथा सिंहं गजाः शशाः ॥१३
मोहितं तं नृपं कृत्वा दुष्टबुद्धिर्महीपतिः ।
कृत्वा लोहमयं जालं तस्योपरि समादधे ॥१४

वह पुत्र रणजित् शूर जानना चाहिए जो कि राजन्यों का प्रिय करने वाला था ॥८॥ आषाढ के मास में प्राप्त होने पर कृष्णांश अश्व पर सवार होकर एकाकी (अकेला) निडर और बलवान् उर्वीया नगरी में पहुँच गया था ॥९॥ उसने उस नगरी को जो कि अत्यन्त रम्य और चारों वर्णों के लोगों से सेवित थी, देखा था। वह शूर वहां द्विजशाला में द्विज और धेनुओं का पूजने वाला प्राप्त हुआ था ॥१०॥ वहाँ द्विजाति गण के लिये स्वर्ण का दान करके और द्विजों के देवों का भली-भाँति तर्पण करके अधिक बलशाली वह रम्य गृह को चला गया था ॥११॥ वह

श्रीमान् मातुल को नमस्कार करके तथा अन्य सभासदों को प्रणाम करके तब शूर बन्धन के लिये समुद्यत हुए थे। खड्ग हाथों में लेकर जैसे शश सिंह पर आया करते हैं उसी भाँति आये थे। दुष्ट बुद्धि महीपति ने उस राजा को मोहित करके लोहमय जाल करके उसके ऊपर समाधान किया था ॥१२-१४॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो बोधितो देवमायया।
आगस्कृतान्रिपून्ज्ञात्वा खड्ग हस्तःसमावधीत् ॥१५
हत्वा पंचशतं शूरो हयारूढो महाबली।
उर्वीयां नगरीं प्राप्य जलपाने मनो दधौ ॥१६
कूपे दृष्ट्वा शुभा नार्यो घटपूर्तिकरीस्तदा।
उवाच मधुरो वाक्यं देहि सुंदरि मे जलम् ॥१७
दृष्ट्वा ताः सुंदरं रूपं मोहनायोपचक्रिरे।
भित्त्वा तासां तु वै कुम्भान्पाययित्वा हयं जलम् ॥१८
वनं गत्वा रिपुं जित्वा बद्धा तमुभय बली।
चण्डिकापार्श्वमागम्य तद्वधाय मनोदधे ॥१९
श्रुत्वा स करुणं वाक्यं त्यक्त्वा स्वनगरं ययौ।
नृपांतिकमुपागम्य वर्णयामास कारणम् ॥२०
श्रुत्वा परिमलो राजा द्विजातिभ्यो ददौ धनम्।
समाघ्राय स कृष्णांशं कृतकृत्योऽभवन्नृपः ॥२१

इस अन्तर में देवों की माया से वीर-बोधित हो गया था उसने आगस्कृत शत्रुओं को जानकर खड्ग हस्त में लेकर मार दिया था ॥१५॥ शूर ने पाँच सौ को मार कर अश्व पर आरूढ़ हो उर्वीय नगरी में पहुँचकर जलपान करने में मन लगा दिया था ॥१६॥ कूप पर घटों की पूर्त्ति करने वाली अच्छी स्त्रियों को देखा था और उन्हें देखकर मधुर वाणी में कहा—हे सुन्दरि : मुझे पीने के लिये जल दे दो ॥१७॥ उन स्त्रियों ने वह परम सुन्दर रूप देखा और वे सब मोहन होने के लिये विवश हो गईं थीं। उनके घटों को फोड़कर, अश्व को जल पिलवा कर, वन में जाकर, शत्रु को जीतकर और बली ने उन दोनों को बाँधकर चण्डिका के समीप में ले

जाकर उसने उसके वध करने का मन में विचार किया था ॥१८-१९॥ उसने करुणा से भरे हुए वचनों को सुनकर उसे त्यागकर वह अपने नगर को चला गया था। राजा के पास पहुँचकर उसने समस्त कारण का वर्णन कर दिया था ॥२०॥ राजा परिमल ने यह सब श्रवण करके उसने ब्राह्मणों को बहुत धन दान में दिया था। उसने कृष्णांश का शिर सूंघ-कर राजा बहुत ही कृतकृत्य हुआ था ॥२१॥

संप्राप्तैकादशाब्दे तु कृष्णांशे युद्धदुर्मदे ।
महीपतिर्निरुत्साहः प्रययौ देहलीं प्रति ॥२२
बलिं यथोचितं दत्त्वा भगिन्यै भयकातरः ।
रुरोद बहुधा दुःखं देशराजात्मजप्रजम् ॥२३
अगमा भगिनी तस्य दृष्ट्वा भ्रातरमातुरम् ।
स्वपतिं वर्णयामास श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ॥२४
अद्याहं स्वबलैः सार्द्धं गत्वा तत्र महावतीम् ।
हनिष्यामि महादुष्टं देशराजसुतं रिपुम् ॥२५
इत्युक्त्वा धुंधुकारं च समाहूय महाबलम् ।
सैन्यमाज्ञापयामास सप्तलक्षं तनुत्यजम् ॥२६
केचिच्छूरा हयारूढा उष्ट्रारूढा महाबलाः ।
गजारूढा रथारूढाः संययुश्च पदातयः ॥२७
देवसिंहस्तु कालज्ञः श्रुत्वा चागमनं रिपोः ।
नृपपार्श्वं समागम्य सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥२८

जब यह कृष्णांश ग्यारह वर्ष की आयु में प्राप्त हुआ जो कि युद्ध में दुर्मद था, महीपति उत्साह हीन होकर देहली की ओर चला गया था ॥२२॥ भगिनी को यथोचित बली देकर भय से कातर होता हुआ देशराज के पुत्र से उत्पन्न दुःख के विषय में अत्यधिक रुदन किया था। उसकी अगमा भगिनी थी। उसने अपने भाई को आतुर देखकर अपने पति से वर्णन किया था। यह सुनकर राजा ने कहा— आज ही मैं अपने बल के साथ वहाँ महावती में जाकर उस देशराज के पुत्र शत्रु को मार डालूंगा जो कि महान् दुष्ट है ॥२३-२५॥ इतना कह

कर उसने धुन्धकार को बुलाकर महान् बल वाली सेना को आज्ञा दे दी थी जो अपने शरीर की परवाह न कर मरने मारने वाली संख्या में सात लाख थी ॥२६॥ उस सेना में कुछ शूर तो हयों पर आरूढ़ होने वाले थे, कुछ महान् बल वाले ऊँटों पर समारोहण किये हुए थे। हाथियों पर आरूढ़ और रथों पर चढ़े हुए तथा पैदल सैनिक सब के सब चल दिये थे ॥२७॥ देवसिंह तो वरदानी काल का ज्ञाता था उसने शत्रु का आगमन श्रवण करके राजा के समीप में पहुँचकर सभी वृतान्त राजा को वर्णित कर दिया था ॥२८॥

श्रुत्वा परिमलो राजा विह्वलोऽभूद्भयातुरः।
बलखानिस्तमुत्थाय हर्षयुक्त इवाह च ॥२९
अद्याहं च महीराजं धुन्धुकारं ससैन्यकम्।
जित्वा दंड्यं च भवतः करिष्यामि तवाज्ञया ॥३०
इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य सेनापतिरभून्मुने।
तदा तु विर्भया वीरा दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥३१
चतुर्लक्षबलैः सार्द्धं ते युद्धाय समाययुः।
शिंशपाख्यं वनं घोरं छेददित्वा रिपोस्तदा ॥३२
ऊषुस्तत्र रणे मत्ताः शर्व शत्रुभयङ्करा।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र धुन्धुकारादयो बलाः ॥३३
कृत्वा कोलाहलं शब्दं युद्धाय समुपाययुः।
पूर्वाह्णे तु भृगुश्रेष्ठ सन्नद्धास्ते शतघ्निपाः ॥३४
शतघ्नीभिस्त्रिसाहस्रैः पञ्चसाहस्रका ययुः।
द्विसहस्रशतघ्नीभिः सहिताश्चन्द्रवंशिनः ॥३५

परिमल राजा ने जब यह सुना तो वह भय से विह्वल हो गया था। बलखानि ने उसे उठाकर हर्ष से युक्त होकर कहा—आज मैं महीराज को धुन्धकार और उसकी समस्त सेना के साथ जीतकर आपकी आज्ञा से उसे दण्ड देने के योग्य कर दूंगा ॥२९-३०॥ यह कहकर उसको नमस्कार करके हे मुने! वह सेनापति हो गया था। तब तो वीर राजा को आतुर देखकर निर्भय होगये थे। वे सब चार लाख सेना के साथ

युद्ध के लिये चले आये थे। उस समय में शिशया नामक घोर रिपु के वन का छेदन करके वहाँ रण में मत्त होकर समस्त शत्रुओं के लिए बहुत भयङ्कर वहाँ पर रह गये थे। इसी अन्तर में धुन्धकार आदि का बल बहुत अधिक कोलाहल करता हुआ वहाँ युद्ध करने के लिये आ गया था। हे भृगुश्रेष्ठ ! पूर्वाह्न में तो ये शतघ्निय सन्नद्ध हुए थे ॥३१-३४॥ तीन सहस्र शतघ्नियों से पाँच सहस्र शतघ्नी वाले युद्ध के लिये चले गये थे। दो सहस्र शतघ्नियों के सहित चन्द्रवंशी लोग थे ॥३५॥

सैन्यं षष्टिसहस्रं च स्वर्गलोकमुपाययौ।
तदर्द्धं च तथा सैन्यं महीराजस्य संक्षिप्तम् ॥३६
दुद्रुवुर्भीरुकाः शूरा बलखानेर्दिशो दश।
रथा रथै रणे हन्युर्गजाश्चैव गजैस्तथा ॥३७
हया हयैस्तथा उष्ट्रा उष्ट्रैश्च समाहनन्।
एवं सुतुमुले जाते दारुणे रोमहर्षणे ॥३८
हाहाभूतान्स्वकीयांश्च सैन्यान्दृष्ट्वा महाबलान्।
अपराह्णे भृगुश्रेष्ठ पञ्च शूराः समाययुः ॥३९
ब्रह्मानन्दः शरैः शत्रूननयद्यमसादनम्।
देवसिंहस्तथा भल्लैराह्लादस्तत्र तोमरैः ॥४०
बलखानिः स्वखंगेन कृष्णांशस्तु तथैव च।
द्विलक्षान्क्षत्रियाञ्जघ्नुः सर्वसैन्यैः समंततः ॥४१
दृष्ट्वा पराजितं सैन्य धुन्धुकारो महाबलः।
आह्लादं च स्वभल्लेन गजारूढः समावधीत् ॥४२

इस प्रकार से साठ हजार सैन्य स्वर्गलोक को पहुंच चुकी थी। और उसकी आधी सेना महीराज की संक्षिप्त होगई थी ॥३६॥ बलखानि के डरे हुए शूर दशों दिशाओं में भागने लगे थे। रथों के द्वारा रथ, गजों के द्वारा गज, अश्वों के द्वारा अश्व और ऊंट मारे गये थे। इस तरह वहाँ उस समय में परम दारुण एवं तुमुल तथा रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था ॥३७-३८॥ महान् बलवान् हाहाभूत अपने सैनिकों को देखकर हे भृगुश्रेष्ठ ! अपराह्न-काल में पाँच शूर आये थे ॥३९॥ ब्रह्मानन्द ने शरों

के द्वारा शत्रुओं को यमराज के घर में पहुंचा दिया था। उसी प्रकार से देवसिंह ने भालों से और आह्लाद ने वहाँ पर तोमरों के द्वारा शत्रु को यमपुर निवासी बनाया था ।।४०।। बलखानि ने अपने खड्ग के द्वारा तथा कृष्णांश ने भी खड्ग से चारों ओर समस्त सैन्यों से दो लाख क्षत्रियों का वध किया था ।।४१।। महान् बल वाले धुन्धकार ने सेना को पराजित होती हुई देखकर गजारूढ़ होकर अपने भाले से आह्लाद का वध किया था ।।४२।।

आह्लादे मूर्च्छिते तत्र देवसिंहो महाबलः।
भल्लेन भ्रातरं तस्य दंशयामास वेगतः ।।४३
स तीक्ष्णव्रणमासाद्य गजस्थः संमुमोह वै ।
आगाताः शतराजानो नानादेश्या महाबलाः ।।४४
शस्त्राण्यस्त्राणि तेषां तु छित्वां खड्गेन वत्सजः ।
स्वखड्गेन शिरांस्येषां पातयामास भूतले ।।४५
हतें शत्रुसमूहे तु तच्छेषास्तु प्रदुद्रुवुः ।
महीराजस्तु बलवान्दृष्ट्वा भग्नं स्वसैन्यकम् ।।४६
आजगाम गजारूढः शिवदत्तवरो बली ।
रौद्रेणास्त्रेण हृदये चावधीद्वत्सजं रिपुम् ।।४७
आह्लादं च तथा वीरं देवं परिमलात्मजम् ।
मूर्च्छयित्वा महावीराञ्छत्रुसैन्यमुपागमत् ।।४८
पूजयित्वा शतघ्नीश्च महावधमकारयत् ।
रोपणस्त्वरितो गत्वा राज्ञे सवमवर्णयम् ।।४९

वहाँ पर आह्लाद के मूर्च्छित हो जाने पर महान् बली देवसिंह ने बड़े वेग से उसके भाई को भाले से दंक्षित किया था ! वह बहुत तीक्ष्ण व्रण प्राप्त कर हाथी पर बैठा हुआ ही मूर्च्छित होगया था । तब तो अनेक देशों के महाबली सौ राजा लोग आ गये थे । वत्सज ने अपने खड्ग से उनके शस्त्र और अस्त्रों को काट कर फिर उनके मस्तक उसने भूतल में गिरा दिये थे ।।४३-४५।। इस तरह से शत्रुओं के समूह के हत हो जाने पर जो भी बच गये थे वे सब भाग खड़े हुए । बलशाली महीराज ने अपनी

सेना की भङ्ग होती हुई देखा था ॥४६॥ तब शिव के द्वारा दत्त वर वह वलवान् हाथी पर आरूढ़ होकर वहां आ गया था और उसने रौद्र अस्त्र के द्वारा वत्सज शत्रु के हृदय में प्रहार करके उसे मार डाला था ॥४७॥ तथा आह्लाद और वीर परिमलात्मज देव को मूर्च्छित करके एवं महावीरों को मूर्च्छित करके वह शत्रु की सेना में आ गया था ॥४८॥ शतघ्नियों की पूजा करके उसने महान् वध कराया था रोपण ने बहुत ही शीघ्र जाकर यह समस्त वृत्तान्त राजा को वर्णन करके सुना दिया था ॥४९॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः सुखखानिर्महाबलः ।
कपोतं हयमारुह्य नभोमार्गेण चागमत् ।।५०
मूर्च्छयित्वा महीराजं स्वबंधूंश्च सवाहनान् ।
कृत्वा नृपांतमागम्य बंधनाय समुद्यतः ।।५१
तदोत्थाय महीराजो महादेवेन बोधितः ।
पुनस्तान्स्वशरै रौद्रैर्मूर्च्छयामास कोपवान् ।।५२
सुखखान्यादिकाच्छूरान्संबध्य निगडैर्दृढः ।
नृपं परिमलं प्राप्य पुन र्युद्धमचीकरत् ।।५३
हाहाभूतं स्वसैन्यं च दृष्ट्वा स उदयो हरिः ।
नभोमार्गे हयं कृत्वा ताः शतघ्नीरनाशयत् ।।५४
महीराजगजं प्राप्य बद्धा तं निगडैर्बली ।
आह्लादपार्श्वमागम्य भ्रात्रे भूपं समर्पयत् ।।५५
तदा तु पृथिवीराजो लज्जितस्तेन निर्जितः ।
पञ्चकोटिधनं दत्वा स्वगेहं पुनराययौ । ५६

इस बीच में महान् बलवान् वीर सुखखानि अपने कपोत नामक अश्व पर समारोहण कर आकाश के मार्ग से वहाँ आगया था ॥५०॥ उसने महीराज को मूर्च्छित करके और अपने बन्धुओं को वाहन से युक्त करके वह राजा के पास बन्धन के लिये समुद्यत होगया था ॥५१॥ उस समय में महादेव ने महीराज को उठाकर बोधित किया और उसने फिर अपने रौद्र शरों से क्रोधित होकर उन्हें मूर्च्छित किया था ॥५२॥ सुख-

खानि और शूरों को दृढ़ निगड़ों से बाँध कर राजा परिमल के पास जाकर उसने पुनः युद्ध किया था ॥५३॥ उदय हरि ने हाहाकार से युक्त अपनी सेना को देखकर अपने अश्व को आकाश के मार्ग में करके उन शतघ्नीयों का नाश कर दिया था ॥५४॥ महीराज के पास जो कि एक गज पर सवार था, बली उसने उसको निगडों से बाँध लिया था और आह्लाद के समीप में आकर राजा को भाई के लिये सौंप दिया था ॥५५॥ तब तो पृथ्वीराज उसके द्वारा निर्जित होता हुआ बहुत लज्जित हुआ था। उसने पांच करोड़ का धन देकर अपना छुटकारा कराया और फिर अपने घर में आगया था ॥५६॥

देवसिंहाज्ञया शूरो बलखानिर्हि वत्सजः ।
तैर्द्रव्यैर्नगरीं रम्यां कारयामास सुन्दरीम् ॥५७
शिरीषाख्यं पुरं नाम तेन वीरेण वै कृतम् ।
सर्ववर्णसमायुक्तं द्विक्रोशायामसंमितम् ॥५८
तत्रैव न्यवसद्वीरो वत्सजः स्वकुलैः सह ।
त्रिंशत्क्रोशे कृतं राष्ट्रं तत्रैव बलखानिना ॥५९
श्रुत्वा परिमलो राजा तत्रागत्य मुदान्वितः ।
आघ्राय वत्सजं शूरं देवराजसुतं तथा ॥६०
ब्रह्मानन्देन सहितः स्वगेहं पुनराययौ ॥६१

देवसिंह की आज्ञा से वत्सज शूर बलखानि ने धन से अपनी नगरी को परम रम्य एवं सुन्दरी करवाली थी ॥५७॥ उस पुर का नाम शिरीष रक्खा था। वह पुर ऐसा था जिसमें समस्त वर्णों के लोग निवास करते थे और दो कोश के आयाम वाला था ॥५८॥ वहाँ पर ही वीर वत्सज अपने कुलों के साथ निवास करता था। वहाँ पर ही बलखानि ने तीस कोश में राष्ट्र बनाया था ॥५९॥ राजा परिमल ने इसे सुनकर बहुत ही हर्ष हुआ और मुदान्वित होकर वहाँ आया था। शूर वत्सज तथा देवराज के पुत्र को उसने मस्तक पर आघ्राण किया था ॥६०॥ फिर ब्रह्मानन्द के सहित वह अपने गृह को चला गया था ॥६१॥

।। कृष्णांश के पास राजाओं का आगमन ।।

द्वादशाब्दे हि कृष्णांशे यथाजातं तथा शृणु ।
इषशुक्लदशम्यां च राज्ञां जातः समागमः ।।१
कान्यकुब्जे महारम्ये नानाभूपाः समाययुः ।
श्रुत्वा पराजयं राज्ञो महीराजस्य लक्षणः ।।२
कृष्णांशदर्शने वांछा तस्य चासीत्तदा मुने ।
पितृव्यं भूपतिं प्राह द्रष्टुं यास्यामि तं शुभम् ।।३
जितो येन महीराजः सर्वलोकप्रपूजितः ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य जयचंद्रो महीपतिः ।
भ्रातृजं प्रणतं प्राह शृणु शुक्लयशस्कर ।।४
राजराजपदं ते हि कथं संहर्तुमिच्छसि ।
इत्युक्त्वा जयचंद्रस्तु तदाज्ञां नैव दत्तवान् ।।५
राजानस्ते च सहिताः स्वसैन्यैः परिवारिताः ।
कृष्णांशं द्रष्टुमिच्छन्तः संययुश्च महीपतिम् ।।६
शिरीषाख्यपुरस्थं च ज्ञात्वा कृष्णांशमुत्तमम् ।
महीपतिं पुरस्कृत्य समाजग्मुर्नृपास्तदा ।।७

इस अध्याय में कृष्णांश के समीप में राजाओं के मण्डल के आगमन का वृत्तान्त वर्णित किया गया है। श्रीसूतजी ने कहा—बारह वर्ष की आयु हो जाने पर कृष्णांश के विषय में जो कुछ हुआ था उस विषय में अब श्रवण करो। इस मास को अर्थात् आश्विन मास की शुक्लपक्ष को दशमी में राजाओं का एक समागम हुआ था ।।१।। महान् रमणीक कान्य कुब्ज देश में अनेक राजा लोग आये थे। लक्षण ने महीराज राजा का पराजय सुना था और तभी से उसकी कृष्णांश के दर्शन करने की इच्छा होगई थी। हे मुने ! उसने अपने पितृव्य (चाचा) भूपति से कहा कि मैं उस शुभ को देखने के लिए जाऊंगा ।।२-३।। जिसने समस्त लोकों के द्वारा प्रपूजित महीराज को जीत लिया है उसे अवश्य ही देखना चाहता हूं। यह सुनकर महीपति जयचन्द्र उस प्रणत

भाई के पुत्र से बोला—हे शुक्ल यशस्कर ! सुनो, तू अपने राजराज के पद को कैसे संहृत करना चाहता है। यह कह कर जयचन्द्र ने उस समय उसे जाने की आज्ञा नहीं दी थी ॥४-५॥ वे राजा लोग अपनी-अपनी सेनाओं के सहित परिवारित होकर कृष्णांश के दर्शन की इच्छा करते हुए महीपति के पास गये थे ॥६॥ शिरीष नाम वाले पुर में स्थित उत्तम कृष्णांश को जानकर उस समय महीपति को आगे करके नृप आये थे ॥७॥

ददृशुस्तं महात्मानं पुंडरीकनिभाननम् ।
प्रसन्नवदनाः सर्वे प्रशशंसुः समंततः ॥८
तदा महीपतिः क्रुद्धो वचनं प्राह भूपतीन् ।
यस्येयं च कृता श्लाघा युष्माभिर्दूरवासिभिः ।
पितरौ तस्य बलिनौ माहिष्मत्यां मृतिं गतौ ॥९
जम्बुको नाम भूपालो नार्मदीयः समन्वितः ।
बद्धा तौ प्रययौ गेहं लुंठयित्वा धनं बहु ।
शिलापत्रे समारोप्य तयोर्गात्रमचूर्णयत् ।
शिरसी च तयाश्छित्वा वटवृक्षे समारुहत् ॥१०
अद्यापि तौ स्थितौ वीरौ हा पुत्रेति प्रभाषिणौ ।
प्रेतदेहे च पितरौ यस्य प्राप्तौ महाबलौ ।
तस्योदयो वृथा ज्ञेयो वृथाकीर्तिः प्रियंकरी ॥११
इति श्रुत्वा स कृष्णांशो भूपतीन्प्राह नम्रधीः ।
गतौ मत्पितरौ सार्द्धं गुर्जरे यत्र वै रथः ॥१२
म्लेच्छैर्नराशनैः सार्द्धं तन्नृपेण रणोऽभवत् ।
देशराजो वत्सराजो युद्धं कृत्वा भयंकरम् ।
म्लेच्छैस्तैश्च हतौ तत्र श्रुतेयं विश्रुता कथा ॥१३
मातुलेनाद्य कथितं नवीनं मरणं तयोः ।
चेत्सत्यं वचनं तस्य पौरुषं मम पश्यत ॥१४

वहाँ पर पुण्डरीक के समान मुख वाले उस महात्मा को देखा था और सब बड़े ही प्रसन्न वदन वाले हुए तथा सब ओर से उसकी प्रशंसा

करने लगे ॥८॥ तब महीपति ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजाओं से कहा—दूर के निवास करने वाले आप लोगों ने जिसकी यह श्लाघा की है उसके बली माता-पिता माहिष्मती में मृत्यु को प्राप्त हो गये थे ॥९॥ जम्बुक नाम वाला राजा नाम-दीपों से युक्त था। उन दोनों को बाँधकर और बहुत सा धन लूटकर अपने घर चला गया था। शिला पत्र घर समारोपित करके उन दोनों के शरीर का चूर्ण कर दिया था। उन दोनों के मस्तक काटकर उसने वट के वृक्ष पर टाँग दिये थे ॥१०॥ आज भी वे दोनों वीर वहाँ पर स्थित हैं और 'हा पुत्र'—ऐसा कहा करते हैं। जिसके पिता प्रेत देह में महान् बली होकर भी प्राप्त होगये हैं उसका जो कुछ भी उदय है वह व्यर्थ ही जानना चाहिए। उसकी प्रियङ्करी कीर्त्ति भी वृथा ही है ॥११॥ यह सुनकर वह कृष्णांश नम्र होकर राजाओं से बोला—मेरे पितर साथ में गुर्जर देश में गये थे जहाँ कि रण हुआ था। मनुष्यों के खाने वाले म्लेच्छों के साथ उस राजा से युद्ध हुआ था देशराज, वत्सराज भयंकर युद्ध करके उन म्लेच्छों के द्वारा हत हुए थे। वहाँ पर यह कथा परम प्रसिद्ध सुनी गई है ॥१२-१३॥ आज मातुल ने उन दोनों का मरण एक नया ही कहा है। यदि उसका वचन सत्य हो है तो अब मेरा पौरुष देख लो ॥१४॥

इत्युक्त्वा तान्स कृष्णांशो मातरं प्राह सत्वरम् ।
हेतुं च वर्णयामास भाषितं च महीपतेः ॥१५
श्रुत्वा वज्रसमं वाक्यं रुरोद जननी तदा ।
नोत्तरं प्रददौ माता पति दुःखेन दुःखिता ॥१६
ज्ञात्वा पितृवधं श्रुत्वा जम्बुकं शिवकिंकरम् ।
मनसा स च कृष्णांशस्तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥१७
जय जय जय जगदम्ब भवानि
ह्यखिललोकं सुरपितृमुनिखानि ।
त्वया ततं सचराचरमेव
विश्वं पातमिदं हृतमेव ॥१८

इति ध्यात्वा स कृष्णांशः सुष्वाप निजसद्मनि ।
तदा भगवती तुष्टा तालनं वलवत्तरम् ।
मोहयित्वाशु तत्पार्श्वे प्रेषयामास सर्वगा ।।१९
चतुर्लक्षबलैः सार्द्ध तालनः शीघ्रमागतः ।
स्वसैन्यं चोदयामास चैकलक्षं महाबलम् ।। २०
बलखानिस्तदा प्राप्तश्चैकलक्षबलान्वितः ।
अनुजं तत्र संस्थाप्य शिरीषाख्ये महाबलः ।।२१

उनसे यह कहकर कृष्णांश ने शीघ्र ही माता से उसका हेतु और महीपति का भाषित कहा था ।।१५।। उस समय उसकी माता वज्र के समान इस वाक्य को सुनकर रुदन करने लगी थी । माता ने कोई इसका उत्तर पति के दुःख से अत्यन्त पीड़ित होकर नहीं दिया था ।।१६।। अपने पिता के वध को जानकर तथा जम्बुक को शिव का किङ्कर श्रवण करके वह कृष्णांश मन से परमेश्वरी को स्तुति करने लगा था ।।१७।। हे जगत् की अम्बा ! हे भवानि ! हे समस्त लोक-सुर-पितृ और मुनियों की खानि ! आपकी जय हो, जय हो । आपने ही यह सचराचर विश्व को रचा है और इसकी पूर्ण रक्षा भी की है तथा संहार भी किया है ।।१८।। यह ध्यान करके वह कृष्णांश अपने घर में सो गया था । तब भगवती प्रसन्न होकर अधिक बलवान् तालन को मोहन करके सर्वगा ने शीघ्र ही उसके पास में भेज दिया था ।।१९।। चार लाख सेना के साथ तालन शीघ्र ही वहाँ आगया था । और महान् बलवान् एक लक्ष अपनी सेना को प्रेरित किया था ।।२०।। उस समय बलखानि भी एक लाख सेना से समन्वित होकर प्राप्त होगया था । महाबल ने अपने छोटे भाई को शिरीषाख्यपुर में संस्थापित किया था ।।२१।।

सज्जीभूतान्समालोक्य तानुद्याने ससैन्यकान् ।
भीतः परिमलो राजा कृष्णांशं प्रति चाययौ ।।२२
विह्वलं नृपमालोक्य कृष्णांशोऽऽश्वासयन्मुदा ।।२३
लक्षसैन्यं तदीयं च गृहीत्वा चाधिपोऽभवत् ।
शतघ्न्यः पञ्चसाहस्रा नानावर्णाः सुवाहनाः ।।२४

पताकाः पञ्चसाहस्राः साहस्रं काष्ठकारिणः ।
गजा दशसहस्राश्च रथाः पञ्चसहस्रकाः ।।२५
त्रिलक्षाश्च हयाः सव उष्ट्रा दशसहस्रकाः ।
शेषाः पदातयो ज्ञेयास्तस्मिन्सैन्ये भयानके ।।२६
तालनश्च समायातः सवसेनाधिपोऽभवत् ।
देवसिंहो रथानां च सर्वेषामीश्वरोऽभवत् ।।२७
बलखानिर्हयानां च सर्वेषामधिपोऽभवत् ।
आह्लादश्च गजानां च सर्वेषामधिपोऽभवत् ।
पत्तीनां चैव सर्वेषां कृष्णांशश्चाधिपोऽभवत् ।।२८

उन समस्त सञ्जीभूत (तयार हुए) अपने सैनिकों को उद्यान में देखकर भीत परिमल राजा कृष्णांश के पास गया था ।।२२।। उस नृप को अत्यन्त विह्वल देखकर कृष्णांश ने आनन्द के साथ आश्वासन दिया था ।।२३।। और उसकी एक लाख सेना लेकर अधिप होगया था । पाँच सहस्र शतघ्नी वाले तथा अनेक वर्ण वाले वाहन, पांच हजार पताका, एक सहस्र काष्ठकारी, दश सहस्र हाथी, पाँच हजार रथ, तीन लाख अश्व, दश सहस्र ऊँट और शेष पैदल सैनिक उस परम भीषण सेना में थे ।।२४-२६।। तालन आ गया था और वह उस सम्पूर्ण सेना का अधिप हुआ था । देवसेन समस्त रथों का अधिप बना था । बलखानि समग्र अश्वों का स्वामी हुआ था । आह्लाद समस्त गजों का अधिप हुआ था । और समस्त पैदल सैनिकों का अधिप कृष्णांश स्वयं हुआ था ।।२७-२८।।

नत्वा ते मलनां भूपो दत्त्वा दानान्यनेकशः ।
समाययुश्च ते सर्वे दक्षिणाशां बलान्विताः ।।२९
पक्षमात्रगतः कालो मार्गे तस्मिन्रणैषिणाम् ।
छित्त्वा तत्र वन घोरं नानाकंटकसंयुतम् ।
सेनां निवासयामासुर्निर्भयास्ते महाबलाः ।।३०
देवसिंहमतेनैव योगिनस्ते तदाभवन् ।
नर्तकश्चैव कृष्णांशश्चाह्लादो डमरुप्रियः ।।३१

मड्डुधारी तदा देवो वीणाधारी च तालनः ।
वत्सजः कांस्यधारी च बलखानिर्महाबलः ॥३२
मातुरग्रे स्थिता स्ते वै ननृतुः प्रेमविह्वलाः ।
मोहिता देवकी चासीन्न ज्ञातं तत्र कारणम् ॥३३
मोहितां मातरं दृष्ट्वा परं हर्षमुपाययुः ।
तदा तां कथयामासुर्वयं ते तनया हि भोः ॥३४
नत्वा तां प्रययुः सर्वे पुरीं माहिष्मतीं शुभाम् ।
नगरं मोहयामासुर्वाद्यगानविशारदाः ॥३५

उन्होंने मलना को प्रणाम करके और राजा ने अनेक प्रकार के दान देकर वे सब सेना से समन्वित् दक्षिण दिशा में आ गये थे ॥२६॥ उन युद्ध करने की इच्छा रखने वालों का मार्ग में एक पक्ष ही व्यतीत हुआ था। वहाँ पर उस घोर वन को काटकर जो कि अनेक प्रकार की काँटेदार झाड़ियों से युक्त था उसमें उन्होंने अपनी सेना को निवास दिलाया था और वे महान् बल वाले निर्भय थे ॥३०॥ देवसिंह के मत से ही वे उस समय सब योगी हो गये थे। कृष्णांश तो नर्तक होगया था और आह्लाद ने डमरू से प्यार किया था ॥३१॥ देव मड्डूधारी, तालन वाणी लेने वाला, वत्सज कांस्यधारी और बलखानि भी कास्य धारण करने वाला होगया था जो कि महान् बलवान् था ॥३२॥ वे सब माता के आगे स्थित होगये थे और प्रेम में विह्वल होकर नाचने लगे थे। देवकी मोहित होगई किन्तु इसका कारण नहीं जाना था ॥३३॥ माता को मोहित देखकर सब को परम हर्ष हुआ था। उस समय में उन्होंने कहा कि हम आप के पुत्र हैं ॥३४॥ उसको सब नमस्कार करके शुभ माहिष्मती पुरी को प्रस्थान कर गये थे। वाद्य और गान के पण्डितों ने उस सम्पूर्ण नगर को मोहित कर दिया था ॥३५॥

दूत्या सार्द्धं रिपोर्गेहं ययुस्ते कार्यतत्पराः ।
नृत्यगानसुवाद्यैश्च राज्ञस्ते मोहने रताः ॥३६
विसञ्ज्ञा महिषीं कृत्वा कृष्णांशः सर्वमोहनः ।
प्राप्तवांस्तत्र यत्रासौ तत्सुता विजयैषिणी ॥३७

दृष्ट्वा सा सुन्दरं रूपं श्यामांगं पुरुषोत्तमम् ।
मुमोह वशमापन्ना मैथुनार्थं समुद्यता ॥३८

दृष्ट्वा तथा गतां नारीं कृष्णांशः श्लक्ष्णया गिरा ।
शत्रोर्भेदं च पप्रच्छ कामिनीं मदविह्वलाम् ॥३९

साह भो देवकीपुत्र यदि पाणिं ग्रहीष्यसि ।
तर्हि ते कथयिष्यामि पितुर्भेदं हि दारुणम् ॥४०

तथेत्युक्त्वा स बलवाँस्तस्याःपाणि गृहीतवान् ।
ज्ञात्वा भेदं रिपोः सर्वं तामास्वास्य ययौ मुदा ॥४१

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी बाधिता प्राह योगिनम् ।
देशराजप्रियाहारं नवलक्षस्य मूल्यकम् ।
तुभ्यं दास्यामि संतुष्टा नृत्यगानविमोहिता ॥४२

कार्य में तत्पर वे सब दूती के साथ रिपु के घर में गये थे और नृत्य, गान तथा सुन्दर वाद्यों के द्वारा वे राजा के मोहन करने में संलग्न होगये थे ॥३६॥ सब को मोहन करने वाले कृष्णांश ने महिषी (रानी) को संज्ञाहीन करके वहाँ पहुँच गया जहाँ पर उसकी पुत्री विजयैषिणी थी ॥३७॥ उसने श्याम अङ्गों वाले उस सुन्दर रूप को देखा जो कि पुरुषों में सर्वोत्तम था और वह मोहित होगई थी तथा वश में प्राप्त हुई मैथुन के लिये प्रस्तुत होगई थी ॥३८॥ उस प्रकार की दशा में प्राप्त हुई नारी को देखकर कृष्णांश ने बड़ी श्लक्ष्ण वाणी से उस मद से विह्वल कामिनी से शत्रु का भेद पूछा था ॥३९॥ वह बोली—हे देवकी के पुत्र ! यदि आप मेरा पाणि का ग्रहण करोगे तो मैं पिता का दारुण भेद सब कह दूँगी ऐसा ही होगा—यह कह कर उस बलवान् ने उसका हाथ ग्रहण कर लिया था। रिपु का समस्त भेद जान कर और उसको आश्वासन देकर बड़े प्रेम से वह चला गया था ॥४०-४१॥ इस बीच में रानी बाधिता योगीं से बोली—देशराज की प्रिया का हार नौ लाख मूल्य का है। वह मैं तुझको दे दूँगी क्योंकि मैं तेरे नृत्य-गान से विशेष रूपसे मोहित होगई हूँ ॥४२॥

इति श्रुत्वा वत्ससुतस्तां प्रशस्य गृहीतवान् ।
प्रययौ बधुभिः सार्द्धं जम्बुको यत्र तिष्ठति ।।४३
ननर्त तत्र कृष्णांशो बलखानिरगायत ।
आह्लादस्तालनो देवो दध्मुर्वाद्यगतौमुर्दा ।।४४
मोहितोऽभून्नृपस्तत्र कालियः स्वजनैः सह ।
कामं वरय कृष्णांग यच्च ते हृदये स्थितम् ।।४५
इति श्रुत्वा वचः शत्रोबलखानिर्महाबलः ।
तमाह भो महीपाल लक्षावर्तिर्वरांगना ।
स्वविद्यां दशयेन्मह्यं तदा तृप्ति व्रजाम्यहम् ।।४६
इति श्रुत्वा तथा मत्वा लक्षावर्ति नृपोत्तमः ।
सभायां नर्तयामास देशराजप्रियां तथा ।।४७
सा वेश्या सुतमाह्लादं ज्ञात्वा योगित्वमागतम् ।
रुरोद तत्र दुःखार्ता नेत्रादश्रूणि मुंचती ।।४८
रुदितां तां समालोक्य रुदन्नाह्लाद एव सः ।
स्वभुजौ ताडयामास तत्प्रियार्थं महाबलः ।।४९
कृष्णांशस्तत्र तं हारं तस्याः कंठे प्रदत्तवान् ।
उवाच क्रोधताम्राक्षस्तामाश्वास्य पुनः पुनः ।।५०

यह सुनकर वत्स सुत ने उसकी बड़ी प्रशसा करके उसको ग्रहण कर लिया था और बन्धुओं के साथ वहाँ गया जहाँ पर जम्बुक रहता था ।।४३।। कृष्णांश वहाँ पर नाचा और बलखानि ने गान किया था। आह्लाद-तालन देव ने बड़े आनन्द से वाद्यों की गति से बजाया था वहाँ पर कालिय नृप मोहित होगया था जोकि अपने जनों के साथ था । हे कृष्णांग ! जो भी इच्छा हो वरदान माँग ले और अपने दिल के अनुसार माँगले ।।४४-४५।। महान् बलवान् बलखानि शत्रु के यह वचन सुनकर उससे बोला—हे महीपाल ! लाक्षावर्त्ति वराङ्गना मुझको अपनी विद्या को दिखावे तब ही मैं पूर्ण तृप्ति को प्राप्त होऊंगा ।।४६।। यह सुनकर और इस बात को मानकर नृप लाक्षावर्त्ति को सभा में नचाया था जो कि देशराज की प्रिया थी। उस वेश्या ने योगित्व को प्राप्त हुइ आह्लाद सुत

को जान लिया था और वह नेत्रों से आँसुओं को टपकाती हुई दुःख से आर्त्त होकर रोने लगी थी ॥४७-४८॥ रोती हुई उसको देखकर वह आह्लाद भी रोने लगा था। महाबल ने उस प्रिया के लिये अपनी भुजाओं का ताड़न किया था। कृष्णांश ने वहाँ पर उस हार को उसके कण्ठ में डाल दिया था। क्रोध से लाल आँखें करके उसका बार-बार आश्वासन करके बोला ॥४९-५०॥

अहं चोदयसिंहोऽयं पितुर्वैरार्थमागतः।
हनिष्यामि रिपुं भूपं सात्मजं सबलं तथा ॥५१
इति श्रुत्वा वचस्तस्य कालियो बलवत्तरः।
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य शतव्यूहसमन्वितः ॥५२
तेषां च बंधनायैव कपाटं समारुद्ध सः।
तान्छत्रून्समनुज्ञाय पाशहस्तान्सशस्त्रगान् ॥५३
स्वंस्वं खड्गं समाकृष्य क्षत्रियास्ते समाघ्नत।
शतशूरे हते तैश्च कालियो भयकातरः ॥५४
त्यक्त्वा तातं प्रदुद्राव ते तु गेहाद्बहिर्ययुः।
स्वसैन्यं शीघ्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थिता।
शिबिराणि कृतान्येव नर्मदाकूलमास्थितैः ॥५५
कृत्वा तु नर्मदासेतुं नल्वमात्रं सुपुष्टिदम्।
स्वसैन्यं तारयामास चतुरङ्गसमन्वितम् ॥५६

यह मैं उदयसिंह हूँ पिता के बैर के लिये ही यहाँ आया हूँ। अब मैं शत्रु राजा को पुत्रों के सहित तथा सेना के सहित मार दूंगा ॥५१॥ उसके यह वचन सुनकर अधिक बलवान् कालिय पिता की आज्ञा को आगे करके शत व्यूह से समन्वित होकर उनके बन्धन के लिये उसने कपाट बन्द कर दिये थे। उन-उन शत्रुओं को जिनके हाथों में पाश तथा शस्त्र थे समनुज्ञात करके अपना-अपना खड्ग खींचकर उन क्षत्रियों ने मार दिया था। शत शरों को उनके द्वारा हत हो जाने पर कालिय भय से कातर होगया था ॥५२-५४॥ वह अपने पिता को त्यागकर भाग गया था और

वे भी गृह से बाहिर चले गये थे। शीघ्र ही अपनी सेना को प्राप्त कर युद्ध के लिये समुपस्थित होगये। नर्मदाकूल में आस्थितों के द्वारा शिविर बनाये हुए थे ॥५५॥ नल्वमात्र सुपुष्टि देने वाला नर्मदा का सेतु बनाकर अपनी सेना को जो कि चतुरङ्ग समन्वित थी उतार दिया था ॥५६॥

रुरोध नगरीं सर्वां बलखानिर्बलैर्युतः।
शतघ्नीरग्रतः कृत्वा महाशब्दकरीस्तदा।
माहिष्मत्याश्च हर्म्याणि पातयामास भूतले ॥५७
नराश्च स्वकुलैः सार्द्धं मुख्यद्रव्यसमन्विताः।
विंध्याद्रेश्च गुहां प्राप्य तत्रोषुर्भयकातराः ॥५८
कालियस्तु गजानीके पञ्चशब्दगजे स्थितः।
हस्तिपा दशसाहस्रा युद्धाय समुपाययुः ॥५९
तस्यानुजः सर्यवर्मा त्रिलक्षैस्तुरगैर्यु
तुंदिलश्च रथैः सार्द्धं रथस्थश्च सहस्रकैः ।६०
रङ्कणो वङ्कणश्चोभौ चतुर्लक्षपदातिभिः।
जग्मुतुस्तौ महाम्लच्छौ म्लेच्छभूपसहस्रकैः।
दक्षिणात्यग्रामपास्ते तौ पुरस्कृत्य संययुः ॥६१
उभे सेने समासाद्य युद्धाय समुपस्थिते।
तयोश्च तुमुल युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥६२
त्रियामे रुधिरैस्तेषां नदी प्रावर्तत द्रुतम्।
दृष्ट्वांस्नजां नदीं घोरां मांसकर्दमवाहिनीम्।
बलखानिरमेयात्मा खड्गपाणिर्नरोययौ ॥६३

सेना से युक्त बलखानि ने सम्पूर्ण नगरी को घेर लिया था उस समय महान् शब्द के करने वाली शतघ्नी तोपें, आगे करके माहिष्मती के महलों को भूमि पर गिरा दिया ॥५७॥ और मनुष्य अपने कुलों के साथ मुख्य द्रव्य से युक्त होकर विन्ध्याचल की गुहा में जाकर भयभीत होकर निवास करने लगे थे ॥५८॥ कालिय गजों की सेना में पंच शब्द गज पर स्थित होकर और दश सहस्र हस्तिप युद्ध के लिये आये थे ॥५९॥ उसका छोटा भाई सूर्य वर्मा तीन लाख अश्वों से युक्त होकर आया था जो एक

सहस्र रथस्थों के साथ तुन्दिल से युद्ध किया था। रंकण और वंकण ये दोनों महाम्लेच्छ चार लाख पदातियों के साथ थे एक सहस्र म्लेच्छ राजाओं के साथ गये थे। दाक्षिणात्य ग्रामप जो थे वे उन दोनों को आगे करके गये थे ।।६०-६१।। दोनों सेनाऐं वहाँ प्राप्त होकर युद्ध करने के लिये पूर्णतया तयार होगईं थीं। उन दोनों सेनाओं का एक बड़ा ही भीषण एवं रोमाञ्चकारी तुमुलं शब्द हुआ था ।।६२।। तीन प्रहर में उनके रुधिर से शीघ्र ही एक नदी बनकर बहने लगी थी। उस खून से समुत्पन्न बहुत ही घोर मांस के कीच के वाहिनी नदी को देखकर अमेयात्मा बलखानि हाथ में खड्ग लेकर वहाँ गया था ।।६३।।

भल्लहस्तस्तदा देवो मनोरथहये स्थितः।
बिंदुलस्थश्च कृष्णांशः खड्गेनैव रिपूहनम् ।।६४
आह्लादश्च गदाहस्तः पोथयामास वाहिनीम्।
रूपणो नाम शूद्रश्च शक्तिहस्तोन्यहन्रिपून्।
तालनो हस्तिनिस्त्रिंशो माहिष्मत्यां हनन्ययौ ।।६५
एवं महाभये जाते रणे तस्मिन्महाबले।
दुद्रुवुः सर्वतो वीराः पाहिपाहीत्यथाब्रुवन् ।।६६
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा कालिया बलखानिकम्।
गजस्थस्ताडयामास स्वबाणैस्तं महाबलः ।।६७
हरिणी वडवा तस्य ज्ञात्वा स्वाधिनमातुरम्।
गजोपरि समास्थाय स्वपादैस्तमपातयत् ।।६८
पतिते कालिये वीरे पञ्चशब्दो महागजः।
शृङ्खलैस्तडयामास शूरांस्तान्मदमत्तकान् ।।६९
मूर्च्छिते पञ्चशूरे तु रूपणो भयकातरः।
देवकीं वर्णयामास यथाजातं गजेन वै ।।७०

हाथ में भाला लेकर उस समय में देव मनोरथ अश्व पर चढ़कर स्थित था, कृष्णांश बिन्दुल नामक अश्व पर सवार था जिसने खड्ग से

ही रिपुओं का हनन किया था ।।६४। आह्लाद ने हाथ में गदा लेकर सेना को पोथित किया था । रूपण नाम वाला शूद्र जो था उसने अपने हाथ में शक्ति को ग्रहण करके शत्रुओं का हनन किया था । तालन हस्ति निस्त्रिंश होकर माहिष्मती नगरी में हनन करता हुआ गया था ।।६५।। इस प्रकार से वह महान् बल वाला बड़ा ही भयानक युद्ध होने पर सभी ओर से वीर लोग बचाओ-बचाओ की ध्वनि करते हुए भागने लगे थे ।।६६।। उस समय में कालिय ने अपनी सेना को भंग होते हुए देखकर बलखानि पर हाथी पर स्थित होकर महान् बलवान् ने अपने बाणों के द्वारा ताड़न किया था ।।६७।। उसकी हरिणी नाम वाली बड़वाने अपने स्वामी को भय से आतुर देखकर गज के ऊपर समास्थित होकर अपने पादों से उसको गिरा दिया था ।।६८।। कालिय वीर के गिर जाने पर पंच-शब्द नामक महा गज ने शृङ्खलाओं से उन मध्यस्त शूरों की ताड़ना की थी ।।६९।। पञ्चशूर के मूच्छित होने पर रूपण भय से कातर हो गया था और गज से यथा जात को उसने देवकी को वर्णन किया था ।।७०।।

तदा तु दुःखिता देवी दालामारुह्य सत्वरा ।
तं गज च समासाद्य वर्णयामास कारणम् ।।७१
गजराज नमस्तुभ्यं शक्रदत्त महाबल ।
एते पुत्रास्तु ते वीर पालनीया यथा पितुः ।।७२
इति श्रुत्वा दिव्यगजो देवमायाविशारदः ।
देवकीं शरणं प्राप्य क्षमस्वागस्कृतं ममः ।।७३
इत्युक्ते गजराजे तु कृष्णांशो वलवत्तरः ।
त्यक्त्वा मूर्च्छां ययौ यत्राह्लादश्च मूर्च्छितः ।।७४
तमुत्थाप्य करस्पर्शैबलखानिसमन्वितः ।
पितुर्गजं महासत्तामाह्लादाय प्रदत्तवान् ।
करालमश्वं दिव्यांगं रूपणाय तदा ददौ ।।७५
मूर्च्छित कालियं शत्रुं बद्धा स निगडैर्दृढैः ।
सेनान्तं प्रेषयामास बलखानिर्महाबलः ।।७६

सूर्यवर्मा तदा ज्ञात्वा बद्धं बंधुं च कालियम् ।
प्रययौ शत्रुसेनान्तं क्रोधेन स्फुरिताधरः ।।७७

उस समय देवकी बहुत दुःखित होकर शीघ्र ही स्वयं दोला पर आरुढ़ होकर उस कारण गज के समीप पहुँच कर उसका स्तवन करने लगी थी ।।७१।। हे गजराज ! हे शक्रदत्त महाबल ! तुम्हारे लिये मेरा नमस्कार है । हे वीर ! ये तेरे पुत्र हैं इनका पालन तुमको पिता के समान ही अवश्य करना चाहिए ।।७२।। यह सुनकर वह देवमाया का पण्डित दिव्य गज देवकी को अपने शरण में प्राप्त करके कहने लगा मेरे अपराध को क्षमा कर दो ।।७३।। उस गजराज के ऐसा कहने पर अधिक बलवान् कृष्णांश मूर्छा का त्याग कर वहाँ पहुँचा था जहाँ पर आह्लाद मूर्च्छित हो गया था ।।७४।। बलखानि से समन्वित होकर करके स्पर्श से उसे उठाकर महामत्त पिता के गज को आह्लाद के लिये उसने दे दिया था । और कराल अश्व को रूपण के लिए आरोहण करने को दिया था ।।७५।। तब उस मूर्च्छित कालिय को निगड़ों ने खूब मजबूती के साथ बाँध कर उसने महा बलवान् बलखानि ने उसे सेना के समीप में भेज दिया था ।।७६।। तब सूर्यवर्मा ने अपने बन्धु कालिय को बँधा हुआ देखकर क्रोध से होठों को फड़काते हुए वह शत्रु सेनान्त के पास चला गया था ।।७७।।

तमायान्तं समालोक्य ते वीरा युद्धदुर्मदाः ।
रथस्थं मंडलीकृत्य स्वंस्वमस्त्रं समाक्षिपन् ।।७८
कुंठितेऽस्त्रे तदा तेषां विस्मितास्तेऽभवन्सुखे ।
चिन्तां च महीं प्राप्ताः कथं वध्यो भवेदयम् ।।७९
तस्यास्त्रैस्ते महावीरा व्रणार्तिभयपीडिताः ।
त्यक्त्वा युद्धं पुनर्गत्वा रणं चक्रुः पुनः पुनः ।।८०
एवं कति दिनान्येव बभूव रण उत्तमः ।
आह्लादो वत्सजो देवस्तालनो भयसयुतः ।
कृष्णांशं शरणं चग्मुस्तेन वीरेण मोहिताः ।।८१

कृष्णस्तु तं तथा दृष्ट्वा देवीं विश्वविमोहिनीम् ।
तुष्टाव मनसा वीरो रात्रिसूक्तं पठन्हृदि ॥८२
तदा तुष्टा जगद्धात्री दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
मोहयित्वा तु तं वीरं तत्रैवांतरधीयत ॥८३
निद्रया मोहितं दृष्ट्वा कृष्णांशस्तु महाबलः ।
बबंध निगडैस्तं च देवक्यन्ते समागमात् ॥८४

उन युद्ध दुर्मद वीरों ने उसे आते हुये देखकर रथ में स्थित को मण्डल से घेरकर उस पर अपने २ अस्त्रों की बौछार करने लगे थे ॥७८॥ उस समय उनके अस्त्रों के कुण्ठित हो जाने पर वे सब बहुत ही विस्मित हो गये थे और उन्हें बहुत बड़ी चिन्ता हो गयी थी कि यह कैसे वध के योग्य होगा ॥७९॥ उसके अस्त्रों से वे महावीर व्रणों की आर्ति से भय पीड़ित हो गये थे। युद्ध को छोड़कर फिर बार-बार युद्ध करने लगे थे ॥८०॥ इस तरह से कितने ही दिनों तक वह उत्तम रण होने लगा था आह्लाद, वत्सज, देव और तालन सभी भय से युक्त हो गये थे। तब वे सब कृष्णांश की शरण में गये क्योंकि उस समय में उस वीर के द्वारा मोहित हो गये थे ॥८१॥ कृष्णांश ने उसको उस प्रकार का देखकर मन में विश्व मोहिनी देवी का स्तवन किया था और वीर ने हृदय में रात्रिसूक्त का पाठ किया था ॥८२॥ तब जगत् की धात्री दुःखों के नाश करने वाली दुर्गा प्रसन्न हो गई और उस वीर को मोहित करके वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई थी ॥८३॥ जब वह निद्रा से मोहित हो गया तो महान् बलवान् कृष्णांश ने उसे देखकर निगड़ों से उसे दृढ़ता से बाँधकर देवकी के समीप से ले गया था ॥८४॥

तुंदिलश्च तथा ज्ञात्वाभ्रातृशोकपरिप्लुतः ।
आजगाम हयारूढः खड्गहस्तो महाबलः ।
रिपुसैन्यस्य मध्ये तु बहूशूरानताडयत् ॥८५
माहिष्मत्याश्च ते शूरा रंकणेन समन्विताः ।
तत्सैन्यं भङ्गयामासुस्तालनेन प्रपालितम् ॥८६

प्रद्रु तं स्वं बलं दृष्ट्वा तालनः परिघायुधः ।
शिरांसिपोथयामास म्लेच्छानां च पृथक्पृथक् ॥८७
वंकणं च तथा हत्वा खडगेनैव च रकणम् ।
तुं दिलं च तथा बद्ध्वा दिनान्ते शिबिरं ययौ ॥८८
कालिये च रिपौ बद्धे सुबद्धे सूर्यवर्मणि ।
तुं दिले च तथा बद्धे रंकणे वंकणे हते ॥८९
सहस्रं म्लेच्छराजानो हतशेषा बलान्विताः ।
पक्षमात्रमहोरात्रं युद्धं चक्रुः समंततः ॥९०
प्रत्यहं तालनो वीरः सेनापतिरमर्षणः ।
षष्टि भूपान्जघानाशु शत्रुसैन्यभयंकरः ॥९१

तुन्दिल ने उस प्रकार का ज्ञान करके भाई के शोक से परिप्लुत होकर हाथ में खड्ग धारण करते हुए घोड़े पर सवार होकर वह महा बलवान् वहाँ आ गया था । शत्रु को सेना के मध्य में उसने बहुत से रिपुशूर वीरों का हनन किया था ॥८५॥ माहिष्मती नगरी उन शूरों ने रङ्कण से युक्त होकर तालन के द्वारा रक्षित उस सेना का भञ्जन कर दिया था ॥८६॥ जब तालन देखा कि उसकी सेना के लोग भागने लगे तो उसने परिध नाम का आयुध लेकर म्लेच्छों के मस्तकों को अलग-अलग करके काट दिया था ॥८७॥ वंकण और रंकण को भी उसने अपने खड्ग से मार गिराया । और तुन्दिल को बाँधकर दिन के अन्त में शिविर में चला गया था ॥८८॥ कालिय और सूर्यवर्मा शत्रुओं के बद्ध हो जाने पर तथा तुन्दिल के भी बँध जाने पर और रंकण एवं वंकण के मारे जाने पर एक सहस्र म्लेच्छ राजा लोगों ने जो कि मरने से बच गए थे और सेना से समन्वित थे एक पक्ष भर पर्यन्त चारों ओर से युद्ध डटकर किया था ॥८९॥९०॥ प्रतिदिन वीर तालन और अमर्षण सेनापति साठ भूपों को शीघ्र ही मार देता था क्योंकि यह शत्रु की सेना के लिए महान् भयङ्कर था ॥९१॥

भयभीता रिपोः शूरा हता भूपा हतौजसः ।
हतशेषा ययुर्गेहमर्द्धसैन्या भयातुराः ॥९२

जम्बुकस्तु तथा श्रुत्वा दुःखितो गेहमाययौ ।
व्रतं ह्यशनं कृत्वा रात्रौ शोचन्नशेत सः ॥६३
निशीथे समनुप्राप्ते तत्सुता विजयैषिणी ।
पूर्णा तु सा कला ज्ञेया राधाया व्रजवासिनी ॥६४
आश्वास्य पितरं तं च ययौ मायाविशारदा ।
रक्षकाञ्छिबिराणां च मोहयित्वा समाययौ ॥६५
भ्रातरो तत्र गत्वासौ यत्र सर्वानबोधयत् ।
कृत्वा सा राक्षसीं मायां पंचवीरानमोहयत् ॥६६
निरस्त्रकवचान्बंधून्प्रतिदोलां समारुहत् ।
पितुरंतिकमासाद्य तस्मै भ्रातृन्ददौ मुदा ॥६७
प्रभाते बोधिताः सर्वे स्नानध्यानादिकाः क्रियाः ।
कृत्वा ययू रिपोः शालां दृष्टवन्तो न तांस्तदा ॥६८

भय से डरे हुए शत्रु के शूर मारे गये थे क्योंकि वे सब भूप हत ओज वाले हो गये थे । जो भी कुछ मरने से शेष रह गये थे वे भयातुर अर्ध सैन्य अपने घर में चले गये थे ॥६२॥ जम्बुक ने इस प्रकार वृत्तान्त सुना तो वह परम दुःखित होकर घर में आ गया था । उसने अनशन व्रत किया और वह इसी चिन्ता को करता हुआ रात में भी नहीं सोता था ॥६३॥ अर्धरात्रि के प्राप्त होने पर उसकी पुत्री विजयैषिणी राधा की व्रज में निवास करने वाली पूर्ण कला ही जाननी चाहिए ॥६४॥ माया में परम पण्डिता वह अपने पिता को आश्वासन देकर चली गई थी । वह शिविरों के रक्षकों को मोहित करके आगई थी ॥६५॥ वहाँ जाकर इसने जहाँ भाई थे उन सबको बोधित किया था । उसने राक्षसी माया को फैलाकर पंचवीरों को मोहित कर दिया था ॥६६॥ निरस्त्र कवच वाले बन्धुओं को प्रत्येक दोला में चढ़ा दिया था । पिता के समीप में आकर उसके लिये प्रसन्नता भाइयों को दे दिया था ॥६७॥ प्रातः काल में जब कि सब जगे तो स्नान ध्यान आदि समस्त क्रियाओं से निवृत्त हो कर शाला को उन्होंने देखा तो उस समय में उनको वहां नहीं देखा था ॥६८॥

बभूवुर्दुःखिताः सर्वे किमिदं कारणं कथम् ।
तानुवाच तदा देवः प्राप्ताः ह्यत्र रिपोः सुता ॥९९
कृत्वा सा राक्षसीं मायां हृत्वा तान्गेहमाययौ ।
तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गत्वा यत्रैव तद्गुरुः ॥१००
विंध्योपरि महारण्ये नानासत्त्वनिषेविते ।
कुटीरं तस्य तत्रैव ग्राम्नैवैलविली हि सः ।
योगसिद्धियुतः कामी राक्षसेभ्यो हि निर्भयः ॥१०१
जम्बुकस्य सुता तत्र प्रत्यहं स्वजनैर्युता ।
एकाकिनी च सा रात्रौ स्वं गुरुं तमरोरमत् ॥१०२
कृतेयं चैलविलिना माया मनुजमोहिनी ।
कार्यसिद्धिं गमिष्यामो तं पुरुषाधमम् ।
इति श्रुत्वा तु चत्वारो विनाह्लदं ययुर्वनम् ॥१०३
गीतनृत्यप्रवाद्यैश्च मोहयित्वा च तं दिने ।
वासं चक्रुश्च तत्रैव धूर्तं मायाविशारदम् ॥१०४
स तु पूर्वभवे दैत्यश्चित्रो नाम महासुरः ।
बाणकन्यामुषां नित्यमवाञ्छच्छिव पूजकः ।
जात ऐलविली नाम पक्षपूजी स वेगवान् ॥१०५

सब लोग बहुत ही दुःखित हुए थे और विचर कर रहे थे कि इसका क्या कारण है और कैसे ऐसा हो गया है । उस समय में उनसे देव ने कहा कि यहाँ रिपु की सुता आई थी । उसने राक्षसी माया करके उनका हरण करके घर में लेकर चली गई थी । इससे आप लाग मेरे साथ चलो जहां कि इसका गुरु रहता है ॥९९-१००॥ विन्ध्याचल के ऊपर बड़े विशाल वन में जहाँ कि अनेक प्रकार के सत्त्व रहा करते हैं उसकी वहाँ पर ही कुटिया है । उसका नाम ऐल-विली है । वह योग की सिद्धियों से परिपूर्ण है और कामी है तथा राक्षसों से सदा निर्भय रहा करता है ॥१०१॥ जम्बुक की सुता वहां पर अपने जनों से युक्त प्रतिदिन तथा अकेली ही रात्रि में जाकर उस अपने गुरु को रमण कराया करती थी ॥१०२॥ उस ऐलीतिली ने यह मनुष्यों को मोहित करने वाली माया

की है। उस अधम पुरुष के पास जाकर हम कार्य की सिद्धि को प्राप्त कर लेंगे। यह सुनकर चारों आह्लाद के बिना उस वन में गए थे ॥१०३॥ गीत, नृत्य और वाद्यों से दिन में उसे मोहित करके रात्रि में उन्होंने उस धूर्त्त माया विशार के वहाँ पास में ही निवास किया था ॥१०४॥ वह पहिले जन्म में चित्र नामधारो महान् असुर दैत्य था। उसने शिव की पूजा करते हुए वाण की कन्या उषा के प्राप्त करने की इच्छा की थी। पक्षपूजी वह वेगवान् अब ऐलविली के नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥१०५॥

तयोर्मध्ये प्रमाणोऽयं विवाहो मे यदा भवेत् ।
तदाहं त्वां भजिष्यामि संत्यक्त्वोद्वाहितं पतिम् ॥१०६
हते तस्मिन्महाधूर्ते गत्वा संग्राममूर्द्धनि ।
जम्बूकस्य ययुर्दुर्गं दृष्ट्वा ते तं समारुहन् ।
हत्वा तत्र स्थितान्वीराञ्छतघ्न्यः परिखाकृताः ॥१०७
तदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो बली ।
जित्वा पञ्च महावीरान्बद्ध्वा तान्निगडैर्दृढैः ।
शैवं यज्ञं च कृतवांस्तेषां नाम्नोपबृंहितम् ॥१०८
रूपेणस्तु तथा ज्ञात्वा देवकीं प्रत्यवर्णयत् ।
तदा तु दुःखिता देवी भवानीं भयहारिणीम् ।
मनसा च जगामाशु शरण्यां शरणं सती ॥१०९
तदा तुष्टा जगद्धात्री स्वप्नांते तामवर्णयत् ।
अहो देवकि कल्याणि पुत्रशोकं त्याजधुना ॥११०
यदा तु जम्बको राजा शिवदत्तवरो बली ।
होमं कर्ता स मंदात्मा तेषां च बलिहे तवे ॥१११
मोहयित्वा तदाहं तं मोचयित्वा च ते सुतान् ।
विजयं ते प्रदास्यामि मा च शोके मनः कृथाः ॥११२

उन दोनों के मध्य में यह प्रमाण है कि जब मेरा विवाह हो जावेगा तो उस उद्वाहित पति का त्याग करके मैं तेरा ही सेवन करूँगी ॥१०६॥

उस महाधूर्त के मारे जाने पर संग्राम के मूर्धा में जाकर जम्बुक के दुर्ग में चले गये थे। वे वहाँ उसको देखकर उन्होंने उस पर चढ़ाई कर दी थी। वहाँ पर स्थित वीरों को मारकर शतघ्नियों को परिखाकृत बना दिया था ॥१०७॥ उस समय में राजा जम्बुक जोकि शिव का दत्तावर और बली था पांचों महावीरों को जीत उन्हें निगड़ों से दृढ़ता के साथ बाँध दिया और उसने उनके नाश से उपबृंहित शैव यज्ञ किया था ॥१०८॥ रूपण को जब इसका ज्ञान प्राप्त हुआ तो उसने देवकी का स्तवन किया था तब दुःखित देवी ने भय के हरण करने वाली भवानी को मन से ध्यान किया था जोकि बड़ी शरण्य है और सतो शरण्यों की शीघ्र ही रक्षिका होती हैं ॥ १०९ ॥ तब तो वह जगदम्बा प्रसन्न हुई उसने स्वप्नान्त में उससे कहा—हे देवकि ! हे कल्याणि ! अब तुम पुत्र के शोक को त्याग दो। जबकि राजा जम्बुक शिव के वरदान पाने वाला बलवान् होम के करने वाला है और वह मन्दात्मा उनको बलि के लिये ही यह यज्ञ कर रहा है ॥११०-१११॥ उस समय में मैं उसको मोहित करके तुम्हारे पुत्रों को छुड़वाकर विजय तुझे दूंगी, मन में शोक मत करो ॥११२॥

इति श्रुत्वा सती देवी नमस्कृत्य महेश्वरीम् ।
पूजयामास विधिवद्धूपदीपोपहारकैः ॥११३
एतस्मिन्नन्तरे राजा देवमायाविमोहितः ।
सुष्वाप तत्र होमान्ते ते च जाता ह्यबंधनाः ॥११४
तैर्बद्धो जम्बुको राजा निगडरायसैर्दृढः ।
ते तं बद्ध्वा ययुः शीघ्रं देवकीं प्रति निर्भयाः ॥११५
एतस्मिन्नंतरे तत्र कालियाद्यास्त्रयः सुताः ।
त्रिलक्षं सैन्यमादाय युद्धाय समुपाययुः ॥११६
पुनर्युद्धमभूद्धोरं सेनयारुभयोस्तदा ।
तालनाद्याश्च चत्वारो हत्वा तां रिपुवाहिनीम् ॥११७
त्रीञ्छत्रून्कोष्ठकीकृत्य स्वशस्त्रैर्जघ्नुरूर्जिता। ।
एवं दिनानि कतिचित्तत्र जातो महारणः ॥११८

कालियो दुःखितो भूत्वा सस्मार मनसा हरम्।
मोहनं मंत्रमासाद्य मोहयामास तान्रिपून् ॥११९

सती देवी ने यह श्रवण करके महेश्वरी को नमस्कार किया और धूप, दीप तथा उपहारों के द्वारा विधिपूर्वक पूजा की थी ॥११३॥ इसी बीच में देवमाया से विमोहित होकर राजा जम्बुक सो गया था और वहां पर होम के अन्त में वे सब बन्धन से रहित हो गये थे ॥११४॥ फिर उनके द्वारा लोहे के निगड़ों से वह राजा जम्बुक दृढ़ता से बाँध लिया गया। वे उसको बाँधकर निर्भय होकर शीघ्र ही देवकी के पास में चले गये थे ॥११५॥ इस अन्तर में कालिय आदि तीन पुत्र तीन लाख सेना लेकर युद्ध करने के लिये उपस्थित हो गये थे ॥११६॥ उस समय में फिर दोनों सेनाओं का महान् घोर युद्ध हुआ था। तालन आदि चारों ने शत्रु की सेना को मारकर अजित उन्होंने तीनों शत्रुओं को कोष्ठकी कृत करके अपने शस्त्रों से मार डाला था। इस प्रकार कुछ दिनों तक वहाँ पर महायुद्ध हुआ था ॥११७-११८॥ कालिय ने अत्यन्त दुःखित होकर भगवान् हरि का स्मरण मन से किया और मोहन मन्त्र शिव से प्राप्तकर उससे उन शत्रुओं का मोहन कर दिया था ॥११९॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी देवकी पतिदेवता।
पातिव्रत्यस्य पुण्येन सुतांतिकमुपागता ॥१२०
बोधयित्वा तु कृष्णांशं पञ्चशब्दगजस्थितम्।
पुनस्तुष्टाव जननीं सर्वविश्वविमोहिनीम्।
तदा तुष्टा स्वयं देवी बोधयामास तान्मुदा ॥१२१
आह्लादः सूर्यवर्माणं कालियं च ततोऽनुजः।
जघानबलखानिस्तं तुन्दिलं जम्बुकात्मजम् ॥१२२
ते तु पूर्वभवे विप्र ज़रासंधः सकालियः।
द्विविदो वानरः शूरः सूर्य्यवर्मेह चाभवत् ॥१२३
त्रिशिरास्तुंदिलो जातः शृगालः स च जम्बुकः।
नित्यवैरकराः सर्वे भूपाश्चासन्महीतले ॥१२४

हतेषु शत्रुपुत्रेषु देवकी जम्बुकं रिपुम् ।
खड्गेन तर्जयामास पतिशोकपरायणा ॥१२५
कृष्णांशः शिरसी पित्रोर्गृहीत्वा स्नेहकातरः ।
जम्बुकस्यैव हृदये स्थापयामास विह्वलः ॥१२६

इस बीच में पति के देवता वाली देवी देवकी अपने पातिव्रत्य के पुण्य से पुत्रों के समीप में उपगत हो गई थी, उसने कृष्णांश को बोधित करके जो कि पञ्चशब्द गज पर स्थित था, फिर विश्व विमोहिनी जननी की उसने स्तुति की । तब देवी स्वयं प्रसन्न होकर आईं और उसने सबको बोधित प्रसन्नता में किया था ॥१२०-१२१॥ फिर आह्लाद ने सूर्यवर्मा को उसके अनुज ने कालिय को और बलखानि ने जम्बुक पुत्र उस तुन्दिल को दिया था ॥१२२॥ हे विप्र ! वे पूर्वजन्म में वह कालिय जरासन्ध था और सूर्यवर्मा शूर द्विविद वाला था जिसने यहाँ आकर जन्म ग्रहण किया था ॥१२३॥ त्रिशिरा ने तुन्दिल होकर जन्म लिया था तथा शृगाल ने जम्बुक राजा का जन्म प्राप्त किया था । ये समस्त भूप इस महीतल में नित्य ही वैर के करने वाले हुए थे ॥१२४॥ शत्रु के पुत्रों के हत हो जाने पर पति के शोक में परायण देवकी ने जम्बुक शत्रु को खड्ग से स्वयं तर्जित किया था ॥१२५॥ कृष्णांश ने स्नेह से कातर होकर पितरों के शिरों को ग्रहण कर विह्वल हो जम्बुक के ही हृदय पर स्थापित कर दिया था ॥१२६॥

विहस्यतौ तदा तत्र प्रोचतुर्वचनं प्रियम् ।
चिरं जीव हि कृष्णांश गयां कुरु महामते ।
इति वाणी तयोर्जाता बलिनोः प्रेतदेहयोः ॥१२७
खड्गहस्ता च सा देवी शिलायंत्रे तु तं रिपुम् ।
संस्थाप्य चोदयामास स्वपुत्रान्हर्षसंयुता ॥१२८
हे पुत्राः स्वपितुः शत्रुं जम्बुकं पुरुषाधमम् ।
खण्डंखण्डं च तिलशः कृत्वानन्दसमन्विताः ॥१२९
संचूर्णयत तद्गात्रं तत्तैलैर्मदनिर्मितैः ।
स्नास्याम्यहं तथेत्युक्त्वा रुरोद जननी भृशम् ॥१३०

तथा कृत्वा तु ते पुत्रा महिषीं ससुतां तदा ।
बलखानियुतास्तत्राहूय चक्रुश्च तत्क्रियाम् ।।१३१
तदा परिमलं राज्ञी दृष्ट्वा स्वामिनमातुरम् ।
मरणायोन्मुखं विप्र पंचतत्वममन्मुने ।।१३२
तत्सुता खड्गमानीय बलखानिभुजं प्रति ।
कृतित्वा मूर्छयित्वा तं तत्पक्षानन्वधावत ।।१३३

वे दोनों तब हँसकर वहाँ पर प्रिय वचन बोले—हे कृष्णांश ! तू चिरकाल तक जीवित रह । हे महान् मति वाले ! अब तू गया कर दे । उन दोनों बली प्रेत की देहों से उस समय यही वाणी प्रकट हुई थी ।।१२७।। हाथ में खड्ग लेने वाली उस देवी ने शिलायन्त्र में उस शत्रु को संस्थापित करके हर्ष से युक्त होकर उसने अपने पुत्रों को प्रेरित किया था । हे पुत्रो ! अपने पिता के शत्रु पुरुषों से अधम इस जम्बुक को तिल के समान खण्ड-खण्ड करके आनन्द से समन्वित हो जाओ ।।१२८-१२९।। उसके गात्र को अच्छी तरह चूर्णित कर डालो । उसके महनिर्मित तैल से मैं स्नान करूंगी—इतना कहकर वह जननी बहुत अधिक रुदन करने लगी ।।१३०।। उन पुत्रों ने उसी प्रकार से करके उस पुत्रा को महिषी करके बलखानि से युक्त वहाँ बुलाकर उसकी क्रिया की थी ।।१३१।। तब राज्ञी ने परिमल को मरणोन्मुख आतुर स्वामी देखकर, हे मुने ! वह पञ्चत्व को प्राप्त हो गई थी । उसकी पुत्री ने खड्ग लाकर बलखानि की भुजा को काटकर और उसको मूर्छित करके वह उसके पक्षों के पीछे दौड़ गई थी ।।१३२-१३३।।

तालनं देवसिंहं च रामांशंच तथाविधम् ।
कृत्वान्यांश्च तथा शत्रूनगच्छत्कुलकातरा ।।१३४
कृष्णांशं मोहयित्वाशु मायया च समाहरत् ।
हते तत्र शते शूरे बलखानिरमर्षितः ।
तच्छिरश्च समाहृत्य चितायां च समाक्षिपत् ।।१३५
तदा वाणी समुत्पन्ना बलखाने शृणुष्व भोः ।
अवध्या च सदा नारी त्वया वध्या ह्यधर्मिणः ।।१३६

फलमस्य विवाहे स्वे भोक्तव्यं पापकर्मणः ।
इति श्रुत्वा तदा दुःखी बलखानिर्ययौ पुरम् ॥१३७
ततस्तु सैनिकाः सर्वे महाहर्षसमन्विताः ।
शतोष्ट्रभारवाह्यानि लुंठयित्वा धनानि च ॥१३८
महावतीं समाजग्मुः कृतकृत्यत्वमागताः ।
हतशेषैश्चार्द्ध सैन्यैः सहिता गेहमाययुः ॥१३९

तालन, देवसिंह और रामांश को उस प्रकार का करके तथा कुल कातर अन्य शत्रुओं को चले गए थे ॥१३४॥ कृष्णांश को माया से मोहित करके शीघ्र माया से समाहित कर लिया था। वहाँ पर एक सौ शूरों के हत हो जाने पर बलखानि अमर्षित हो गया था। और उसका शिर लाकर उसने चिता में फेंक दिया था ॥१३५॥ उस समय में आकाश से वाणी का प्रादुर्भाव हुआ था। हे बलखानि! सुनो, नारी सदा वध के योग्य नहीं होती है। तूने इसका वध किया है अतः तू अधर्मी है। अब इस पाप कर्म का फल तुझे अपने विवाह में भोगना ही चाहिए। यह श्रवण करके बलखानि उस समय बहुत ही दुःखित हुआ और पुर को चला गया था ॥१३६-१३७॥ इसके अनन्तर समस्त सैनिक महान् हर्ष से समन्वित होकर सौ ऊँटों के वहन के योग्य भार के बराबर धनों को लूटकर महावती को चले गए थे और कृतकृत्यता को प्राप्त हो गए थे। जो मरने से बच गये थे वे शेष अर्ध सैन्यों के साथ घर को आ गये थे ॥१३८-१३९॥

———

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्मग्रन्थ

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा सम्पादित

१– चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड	—	२७)
अथर्व वेद २ खण्ड	—	१३)५०
यजुर्वेद १ खण्ड	—	६)७५
सामवेद १ खण्ड	—	६)७५

२– १०८ उपनिषद् (ज्ञान, ब्रह्म विद्या, साधना) (३ खण्ड) — २१)२५

३– षट्दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	—	४)
सांख्य दर्शन	—	४)
योग दर्शन	—	४)
वैशेषिक दर्शन	—	४)
न्याय दर्शन	—	४)
मीमांसा दर्शन	...	४)

४– २० स्मृतियाँ २ खंड — १४)

५– पुराण

शिव (२ खंड)	१५)	वायु (२ खंड)	१४)
विष्णु (२ खंड)	१४)	अग्नि (२ खंड)	१४)
मार्कण्डेय (२ खण्ड)	१५)	गरुड़ (२ खण्ड)	१५)
हरिवंश (२ खण्ड)	१५)	भविष्य (२ खण्ड)	१५)
पद्म (२ खण्ड)	१५)	देवीभागवत (२ खण्ड)	१५)
लिङ्ग (२ खण्ड)	१४)	वामन (२ खण्ड)	१५)
मत्स्य (२ खण्ड)	१५)	ब्रह्मवैवर्त (२ खण्ड)	१५)
कूर्म (२ खण्ड)	१५)	कल्कि (१ खण्ड)	७)७५

स्कन्द पुराण (२ खण्ड १५)

६– विष्णु रहस्य — ६)

७– तंत्र महाविज्ञान २ खण्ड — १५)

संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली।

गोपाल आर्ट प्रेस बरेली।